Reg. No. : N-1316/2014-15

ISSN 2394-2207
May-October 2018
Vol. IV, No. II
IIJ Impact Factor : 2.011

उन्मेष

Unmesh

An International Half Yearly
Peer Review Research Journal
(Art & Humanities)

सम्पादकद्वय

डॉ० राधेश्याम मौर्य

शिवेन्द्र कुमार मौर्य

प्रकाशक

जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़, उ०प्र०

Reg. No. : N-1316/2014-15

IIJ Impact Factor : 2.011
ISSN : 2394-2207

उन्मेष
Unmesh

An International Half Yearly Peer Review Research Journal (Art & Humanities)

Vol. : IV **No. II** **May-October, 2018**

सम्पादकद्वय

डॉ० राधेश्याम मौर्य

शिवेन्द्र कुमार मौर्य

सह–सम्पादक

डॉ० मनोहर लाल

प्रकाशक

जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान, प्रतापगढ़–२३०००१ (उ०प्र०)

lj{kd&eMYk

M,0 pEik dekjh flg] प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
MkO ch0,u0 flg] पूर्व निदेशक, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उ0प्र0
M,0 gjh'kpUæ tk;lokYk] पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इविंग क्रिश्चियन महाविद्यालय, इलाहाबाद वि0वि0, उ0प्र0

lEikna

M,0 jk/k';ke ek;] (राष्ट्रपति सम्मान प्राप्त) प्रवक्ता, जी0वी0आई0सी0, देल्हूपुर, प्रतापगढ़, उ0प्र0
f'koUn dekj ek;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

lg&lEikna

MkO eukgj yky] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

lEikna&e.MYk

MkO d".k dekj dkf'kd % प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
MkO fgjk'kh llkdh % एसो0 प्रोफेसर, डिपार्टमेंट ऑफ सोशल एजूकेशन, हिरोशिमा विश्वविद्यालय, जापान
MkO vfuy dekj ek;l % असि0 प्रोफेसर, विधि संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0
MkO lehj dekj ikBd % असि0 प्रोफेसर, डी0ए0वी0 पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी, उ0प्र0
MkO jek'kdj d'kokgk % असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
lUr"k dekj % विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, जक्खिनी, वाराणसी, उ0प्र0
fHk{k Ýklkelkd o..klu] विहाराधिपति, वॉट थाई बुद्ध विहार, बैंकाक, थाईलैंड

ijke'k&e.My

MkO idk'k pUn frokjh] विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विभाग, कमला नेहरू इंस्टीट्यूट ऑफ फिजिक्स एण्ड सोशल साइंस, सुल्तानपुर उ0प्र0
MkO jtuh ckyk] एसो0 प्राफेसर, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू कश्मीर
MkO lnhi oek] असि0 प्रोफेसर, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
MkO eukt dekj ek;] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, सूर्यमणि नगर, अगरतला
';keuUnu] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार
MkO iPkrl] असि0 प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, यूइंग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
MkO vfer dekj flg d'kokgk] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राजस्थान

eY;kdu lfefr

ikQlj ¼MkO½ l/;kjkuh 'kkD;] क्षेत्रीय उच्च शिक्षा अधिकारी एवं प्राचार्या राजकीय महाविद्यालय, समथर, झाँसी, उ0प्र0
MkO ink"k jFk] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, उड़ीसा।
MkO vfe"k oek] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल
MkO ';kek flg] असि0 प्रोफेसर, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, झूँसी, इलाहाबाद
MkO /kuth ilkn] असि0 प्रोफेसर, भाषा विज्ञान एवं भाषा प्रोद्यौगिकी, महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
MkO bnthr feJ] असि0 प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, डी0ए0वी0पी0जी0 कॉलेज, बी0एच0यू0, वाराणसी
MkO jkt'k flg d'kokgk] असि0 प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग, डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद
MkO jke jru ikloku] असि0 प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।
MkO ld'k ykgkj] असि0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कल्याणी विश्वविद्यालय, कल्याणी, नदिया, पश्चिम बंगाल
unh iVkfn;k] असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, डॉ0 हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश
MkO ih;"kdkUr 'kek] एसो0 प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, एम0डी0पी0जी0 कॉलेज, प्रतापगढ़, उ0प्र0
MkO Kkukck f=cd <x] विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, कर्मवीर काका साहेब बाघ आर्ट्स, साइंस एण्ड कॉमर्स कॉलेज, पीपल गाँव (बी) नासिक, महाराष्ट्र
MkO vfu'k dekj oek] असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, मड़ियाहूँ पी0जी0 कॉलेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर
MkO idt flg] असि0 प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, बांदा, उ0प्र0
jke flg] असि0 प्रोफेसर, भूगोल विभाग, जवाहरलाल नेहरू पी0जी0 कॉलेज, एटा, आगरा, उ0प्र0

{k=h; lEikn

f'kojke ek;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, डॉ0 हरि सिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश
l'khy dekj] शोध छात्र, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद
iepUn ek;] शोध छात्र, हिन्दी विभाग, केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, केरल

icU/k&lEikn

Mk0 lhrk jke flg] एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, गणपत सहाय पी0जी0 कॉलेज, सुलतानपुर, उ0प्र0
vt; dekj ek;] शोध छात्र, तुलनात्मक धर्म दर्शन विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
je'k dekj ek;] प्रबन्धक, काशी ज्ञान इंस्टीट्यूट, लंका, वाराणसी

vuokn lgk;d

gfj'pUn d'kokgk] पूर्व अतिथि प्रवक्ता, डी0ए0वी0पी0जी0 कॉलेज, बी0एच0यू0, वाराणसी
leuyrk dekjh] शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

fof/k&ijke'k

Kku Ádk'k e©;l	:	पूर्व राज्य सूचनायुक्त, उ0प्र0
Mk0 vkn'k dekj	:	असि0 प्रोफेसर, विधि संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

lEikndh; lEidZ

tu lok ,o 'kS/k f'k{kk lLFkku
सी–23, आवास विकास कालोनी, प्रतापगढ़–230001 (उ0प्र0) भारत
मो0– 08004802456, 09415627372
ई–मेल : unmesh0110@gmail.com, shivendrakr.maurya@gmail.com

idk'kd %

tu lok ,o 'kk/k f'k{kk lLFkku
सी–23, आवास विकास कालोनी, प्रतापगढ़–230001, (उ0प्र0), भारत

eæd %

jkt xkfQDl
बी0एच0यू0 रोड, लंका, वाराणसी
ek0 % 09415842611

uV % सम्पादन, संचालन–पूर्णतः अवैतनिक/अव्यावसायिक/अनियतकालीन। उन्मेष में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। लेखों एवं उद्धरणों से सम्बन्धित किसी भी वाद–विवाद के लिए लेखक की जिम्मेदारी स्वयं की होगी। सम्पादक, प्रकाशक एवं उन्मेष परिवार के किसी भी सदस्य की जिम्मेदारी नहीं होगी। किसी भी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र इलाहाबाद उच्च न्यायालय होगा।

lEikndh;

देश की समृद्धि के लिए प्रत्येक व्यक्ति का शिक्षित होना आवश्यक है। शिक्षा को समझदारी नहीं, बल्कि रोजगार से जोड़कर देखना हमारी भूल है। पहले शिक्षा संस्कार तथा व्यवहारपरक होती थी, किन्तु अब रोजगार परख हो गई है। शिक्षा पर जो जितना व्यय करता है उसका हजार गुना लाभ कमाने की सोचता है। इसलिए कह सकते हैं शिक्षा का मानदण्ड अब लागत–लाभ विधि पर पूर्णता आधारित हो गया है। आप शिक्षा पर जितनी लागत लगायेंगे उससे ज्यादा उसके लाभ के बारे में सोचेंगे। लाभ का मतलब है पूँजी। पूँजी ने पूँजीवाद को जन्म दिया तथा पूँजीवाद ने पूँजीपतियों को। शिक्षा अब इन्हीं पूँजीपतियों की हो गयी है। अच्छे शिक्षण संस्थान पूँजीपतियों के हैं। उनके संस्थानों में शिक्षा ग्रहण करना आमजन के बस का नहीं है। उसके लिए मोटी पूँजी चाहिए। मोटी पूँजी खेती–किसानी, मजदूरी या रिक्शा, मोटर चलाकर नहीं आ सकती। ऐसे में इन खेती–किसानी या मजदूरी करने वाले बच्चों का भविष्य क्या होगा?

क्या ऐसे माँ–बाप अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दे पायेंगे जिनके पास पूँजी नहीं है? क्या पूँजीविहीन बच्चों के लिए सिर्फ सरकारी विद्यालय ही वरेण्य है? जहाँ योग्य शिक्षक होने के बावजूद भी अच्छी शिक्षा का अभाव है। ऐसे बच्चों के मानसिक विकास का क्या होगा? जिस देश की सरकार शिक्षा पर न्यूनतम खर्च करे और सरकारी विद्यालयों को आवारा छोड़ दे। ऐसे बच्चों के साथ दोहरा अन्याय हुआ। रोजगार और संस्कार दोनों की शिक्षा उनके हाथ से गयी। मान लीजिए ऐसे बच्चे यदि अपना तन, पेट काट कर उच्च शिक्षा तक पहुँचते भी हैं तो रोजगार की कोई गारंटी नहीं। हर भर्ती के अब चार चरण हो गये। प्रारंभिक, मुख्य, साक्षात्कार, न्यायालय। यानि हर भर्ती न्यायालय के अधीन होगी। बाकी पेपर आउट होने के किस्से आम हो चले हैं। एक भर्ती क्लीयर होने से कई साल लग जा रहा है ऐसे में बेरोजगारों की फौज लगातार तैयार होती जा रही है। शिक्षित युवाओं के भटकाव से देश को हर स्तर से नुकसान झेलना पड़ रहा है? आखिर इसका जिम्मेदार कौन होगा? सरकार या स्वयं देश के नागरिक।

खैर, ये समस्या विकराल है। यह एक अनसुलझा पहलू है जिसे सुलझाने में किसी की कोई रूचि भी नहीं दिखती। इस बीच यू0जी0सी की उठा–पटक भी जारी है। शोध–पत्रिकाओं को अपनी लिस्ट में शामिल करना, फिर निकालना उसका अनवरत क्रम जारी है। शिक्षक, शोधार्थी इसी जानकारी में लगे हैं कौन सी पत्रिका यू0जी0सी0 सूचीबद्ध है, कौन सी बाहर है? भारत के शोधार्थियों में इतनी ज्यादा खामी है कि सम्पादक उनके आगे हाथ जोड़े नत ही मिलेंगे। लाख समझाने, बताने के बाद भी शोध की वह गुणवत्ता देखने को कम ही मिलती है जिसकी हमें अपेक्षा रहती है।

'उन्मेष' पत्रिका अन्तर्विषयी होने के कारण विविध विषयों के शोध आलेख इसमें शामिल हैं। कई शोध–आलेखों में नवीनता दिखाई पड़ती है। कुछ शोध–आलेख समसामयिक विषयों पर हैं। जैसे– डॉ0 संजय कुमार मौर्य का 'भारतीय राजनीति में राजनीतिक दलों की भूमिका'', डॉ0 बिपिन चन्द्र कौशिक का 'नरेन्द्र मोदी युग में भारतीय विदेशी नीति''। डॉ0 राजेश कुमार पाण्डेय ने अपने शोध–आलेख ''भारत की धर्मनिरपेक्षता की दशा और दिशा' में भारत की धर्म निरपेक्षता

पर सवाल खड़े किये हैं। क्या भारत अब वाकई धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र नहीं रह गया है उनका शोध–पत्र इस विषय पर सोचने को मजबूर करता है। डॉ0 प्रियंका रानी ने 'नारी आन्दोलन का इतिहास' शोध–पत्र में अपने विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। डॉ0 विंध्याचल यादव, शतरूद्र प्रकाश, गजेन्द्र सिंह यादव, डॉ0 आलोक कुमार, डॉ0 सीताराम सिंह, डॉ0 गरिमा राजे आदि के शोध–पत्र पठनीय हैं। आगे अन्य शोधार्थियों से यही उम्मीद रहेगी कि वे अपने शोध–पत्र में गुणवत्ता का ध्यान रखें ताकि शोध की दिशा में 'उन्मेष' का सार्थक प्रयास जारी रहे।

20 अक्टूबर 2018

संपादक

Mk0 jk/ks';ke ekS;Z

f'koSUnz dqekj ekS;Z

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018

vuØef.kdk

- Ük³xkUufr lk/ku deykdjer leh{k.ke — 1&3
  डॉ0 सुदिष्ट कुमार
- Hkkjrh; ifjis{; e fof/kd lsok dh 0;kidrk — 4&7
  अखिलेश यादव
- iepn dk ykd thou ,o xkn ku eY;kdu — 8&11
  कंचन यादव
- /ke vkj fof/k % ,d fo'y"k.kkRed v/;;u — 12&15
  रमेश कुमार प्रजापति
- egkdfoHkkjfo% — 16&18
  डॉ0 शुभेन्दु पाठक
- ry lhnkl dk ;xck/k — 19&21
  किरन
- eY;ijd f'k{kk % Ekkuoh; thou e eY;k d fodkl dk ,d lkFkd dne — 22&29
  धनंजय भारती, डा0 छाया सोनी
- Hkkjrh; lkfgR; dh fofo/k çofÙk;k — 30&35
  सुधीर साहू
- flU/kh] xt jkrh vkj fgUnh e ixfr'khy dk0; — 36&38
  डॉली मेघनानी
- lelkef;d fgUnh dgkfu;k e rrh;fyxh foe'k — 39&41
  ऋषिका चौधरी
- Hkkjrh; jktuhfr e jktuhfrd nyk dh Hkfedk — 42&45
  डॉ0 संजय कुमार मौर्य
- Hkkjr dh /kefuji{krk dh n'kk vkj fn'kk — 46&49
  डॉ0 राजेश कुमार पाण्डेय
- Hkfexr ty lI k/ku % ,d Hkkxkfyd v/;;u — 50&54
  डॉ0 गरिमा राजे
- Hkkjr e efgyk pruk dk fodkl % ,d foe'k — 55&57
  डॉ0 बृजेन्द्र सिंह
- fofHkUu lLÑr&:idk e ikIr lU; foKku dk Lo:i ,o egÙo — 58&60
  डॉ0 आरती सरोज
- vejdkUr d dFkk lkfgR; e ykd thou — 61&63
  डॉ0 सुधा सिंह

■ Hkkjr esa cky Je dk lkekftd ifjn`'; 64&68

डॉ0 जितेन्द्र कुमार तिवारी

■ Hkkjrh; lekt esa laLdkj % ,d fo'ys"k.kkRed v/;;u 69&71

डॉ0 साधना

■ ujsæ eksnh ;qx esa Hkkjrh; fons'k uhfr 72&76

डॉ0 बिपिन चन्द्र कौशिक

■ Ukkjh vkanksyu dk bfrgkl 77&83

डॉ0 प्रियंका रानी

■ dQu % xkeh.k Hkkjrh; L=h ds ^lks'ky&lokboy* dk loky
ck;k cqf/k;k dh i=lo&ihMk 84&88

डॉ0 विन्ध्याचल यादव

■ 'kqØuhfr vkSj euqLe`fr ds jktuSfrd fl)kUrksa dk rqyukRed vè;;u 89&92

सतरुद्र प्रकाश

■ lkaiznkf;d jktuhfr ds vk;ke % mnkj ukxjh fookn vkSj
mldh ,sfrgkfld i"BHkwfe 93&96

डॉ0 अरविन्द

■ Hkkjrh; lkfgR; dh ewyHkwr ,drk 97&100

अनुराधा गुप्ता

■ 'kkjhfjd v{kerk vkSj f'k{kk i.kkyh ij pkV djrh fQYek ^fgpdh^ 101&105

डॉ0 ममता खाण्डल

■ ifrek'kkL= dh mikns;rk 106&108

डॉ0 स्वतंत्र कुमार मौर्य

■ 0;olk;&uhfr'kkL= dk Lo:Ik 109&112

अभय यादव

■ *vYek dcwrjh* miU;kl esa vkfnoklh thou dh vfHk0;fDr 113&115

कपिल कुमार रंजन

■ vFkoZosn esa vkfFkZd fLFkfr 116&118

राजुल सिंह

■ Hkfädkyhu iq#"k jpukdkjksa dh L=h&laonuk vkSj ehjk dk L=h foe'kZ 119&123

डॉ0 संदीप रणभिरकर

■ ledkyhu ifjos'k esa foKkiu fueZk.k izfØ;k 124&127

डॉ0 अमित कुमार सिंह कुशवाहा

■ laLdkjxhr % lksgj 128&129

कुमारी चन्दा

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018

■ edÑr dVk{k'krd e: id vy dkj % ,d foopu 130&132
अंकिता तिवारी

■ Hkkjrh; lekt e f'k{kk % ,d uohu fo'y"k.k 133&135
सुश्री रमा सोनी

■ LokrU«;kRrj fgUnh x t y vkj ie[k x t ydkj 136&139
शिप्रा

■ u0;U;k; e ^voPNnd* foe'k ¼u0;U;k;Hkk"kkçnhi d fo'k"k lUnHk e½ 140&142
पूजा सिंह

■ vUèkk&;x ukVd e ;xckèk 143&148
डॉ0 सुरेश सिंह राठौड़

■ Hkkjr dh l?k"kjr turk dk Loj % ^le; dk ifg;k* 149&154
रतिराम अहिरवार

■ tc tc n[kk Yk¨gk n[kk 155&157
सुषमा

■ ;) vkj thou dh =klnh d dFkkdkj % txnh'kpUæ 158&162
डॉ0 राजेन्द्र यादव

■ L=h vfLerk vkj eUUk Hk.Mkjh dh dgkfu;k 163&165
पूजा पाण्डेय

■ i0 Jh gfj 'kkL=h nk/khp dk 0;fDrÙo ,o Ñfr Ùo 166&171
मनीष कुमार दूबे

■ Hkkjrh; elyeku % ,d v/;;u 172&175
डॉ0 सुधीर सिंह

■ dBkifu"kn e vkRek dk Lo:i 176&180
अंकित सिंह यादव

■ vk/kfud Hkkjrh; lxhr d ?kjkuk dh fLFkfr 181&182
डॉ0 मीरा अग्रवाल

■ ofnd f'k{kk e ou lj{k.k 183&184
डॉ0 कु० मृणालिनी

■ uohu ik|kfxdh vkj m|kxk d lc/kk dk ,d fo'y"k.k 185&187
डॉ0 नीरज कुमार राय

■■■

उन्मेष
Unmesh - ISSN 2394-2207
IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018

- **ICT integration: Designing Innovative Techno-Pedagogic Strategies for Teacher Education Programmes** **1-3**
  Dr. Ajay Singh
- **Higher Education in New India** **4-7**
  Dr. Alok Kumar
- **The Engineer of Soil- Earthworm (Vermicompost)** **8-12**
  Parth
- **The Familial Role of Woman as Housewife** **13-16**
  Dr. Mamta Rani
- **Mobile Phone and Rural Youth: A Sociological Analysis** **17-26**
  Dr. Sita Ram Singh
- **The Significance of Rational thoughts of Dr. B.R. Ambedkar on Education** **27-31**
  Shishu Pal Singh
- **Victim of Crime: An Introduction to Compensation and Rehabilitation** **32-35**
  Sudhanshu Singh
- **Condition of Women in Patriarchal Society of India with special reference to "A Matter of Time" by Shashi Deshpande** **36-38**
  Dr. Vidyawati Yadav
- **Problem of Cultural Connotations in Indian Vernacular: a Study of Limbale's Hindu and Premchand's Godaan** **39-42**
  Kamalesh Kumar Mourya
- **Five Year Plans and Health Facilities in India: A Brief Study** **43-45**
  Gayatri Maurya & Dr. D. Gownamani
- **Manimekalai : On Buddhist Path** **46-47**
  Anoma Saakhare
- **Equal Pay for Equal Work a Gender Perspective** **48-56**
  Gajendra Singh Yadav
- **Social Media Innovations for Excellence in Teaching and Learning** **57-59**
  Dr. Rashmi Singh

■■■

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 1-3

Ük³xkUufr lk/ku deykdjer leh{k.ke

Mk0 lfn"V dekj*

गोलमृगोपाधिनालंकृतः दैवज्ञ नृसिंहस्य पुत्रः दिवाकरस्य भ्राता चासीत् कमलाकरभट्टः। गोलगणियोरूभयपक्षयोः प्रकाण्ड विद्वान् आसीत्। अनेन प्रचलितसूर्यसिद्धान्तानुसारेण "सिद्धान्ततत्त्वविवेक" नामकं ग्रन्थं शकसंवते 1580 शिवपुर्य्यां काशीनगरय्यां रचितम्। सौरपक्षस्य परम्परागत श्रेष्ठतां मन्यान्यब्रह्मपक्षमस्वीकृतम्। कारणादस्मात् भास्कराचार्यस्य पदे–पदे आक्षेपितम्। प्रख्यातालोचक एवास्य नामख्याति विश्रुता विद्यते। ग्रन्थस्य आदावेव कथितम् यथा–

iR;{kkxe;fä'kkfy rfnn 'kkL=fogk;kUe;kA
;Rdofÿr ujk/kekLr rnlr onkfä'kU;kHk'keAA[1]

वेदोखिलोधर्ममूलमित्यवगम्य सूर्यसिद्धान्तपक्षमनुसृत्य सिद्धान्त–तत्त्वविवेककारस्य श्रृंगोन्नतिसा–धन विषयकं मतं म0 म0 सुधाकर–द्विवेदिमहानुभावेनालोचितम्। तेन कथितम्–

Ukohufl)kUrfonkoj.k Li"VkUrjk'kku flrHkkxdk'pA
KkRok flrk'kku frfFkfHkfoHkT; flr Ñr foRdeykdj.kAA[2]

नवीना ये सिद्धान्तविज्ञा मुनिश्वरप्रभृतयस्तेषा वरेण श्रेष्ठेन कमलोरेण स्पष्टान्तरांशान् सितभागकांश्च ज्ञात्वा यद् तिथिभिर्विभाज्य सितं कृतं, तदुपरि म0 म0 सुधाकरेणालोचितम्। द्विवेदि महानुभावः कथयति यत् नवीनेषु ईदृशो गोलाभिज्ञः को पि न समजनि। यद्यपि बहुनूतनप्रकारः भित्तिनिर्माता मुनीश्वरो किन्तु तत्र नाना विधसद्विषय चित्रकलाकलाप रचयिता कमलाकार एवेति। अत्र भित्तिनिर्माता मुनीश्वराचार्यस्य कृते कथितम्। अत्रेदमेव ध्वनितं भवति यत् मृत्तिका निर्मिताभित्तिः प्रखरवायुझंझावातवृष्ट्यादैः प्रकम्पेन धराशायी भवति। अस्तु तावत् स्थूलतां प्रतिभाति।

एतदनन्तरं कमलाकरस्य सितांशागुलानयन विधिं दूषयति यथा निगदितं म0 म0 सुधाकरेण–

v; l/kh% l;dj% inhlr pUnL;foEc lrr flr L;krA
v/kkf/kd pR;oxE; fo}ku pØ rFkog flr ;Fkk·U;AA[3]

गोलमृगोपाधिनालंकृतः अयं सुधिरूत्कृष्टबुद्धिमान कमलाकरः सूर्यकरैर्दिनकरनिकरैः प्रदीप्तं समुज्वलितं चन्द्रस्य विम्बं सततं दिवारात्रौ अर्धाधिकं शुल्कं स्यादिति ज्ञात्वा पि यथा न्ये लल्लर्यभटमुनीश्वरादयः प्रभृतयः आचार्या सितांगुलानसनं कृतबन्तः तथैव अयमप्याचार्यः कमलाकरः अन्यैवासुसरणशीलः विद्यते। अन्धानुकरणशीलः भावः।

ध्यावतव्यं यत् रविचन्द्रविम्बयो परितः कृताभिः स्पर्श–रेखाभिः स्पृष्टचन्द्रविम्बप्रदेश एव वास्तवशुक्लवृत्तम्। दृष्टिस्थानात् कृतस्पर्शरेखास्पृष्टविम्बपृष्टप्रदेशे वास्तवदृश्यवृत्तम्। वास्तव– शुक्लदृश्यवृत्तयोः सम्पातावेव श्रृंगाग्रे भवतः। वास्तवदृश्यवृत्तान्त–यार्वान् शुक्लप्रदेशः प्रविष्टस्तावादेव शुक्लम्। श्रृङ्गोन्नति विषये सुगोलज्ञा जानत्येव। ताव दृश्यादृश्यत्व विषये गोलमृग कमला–कस्याभिमतं सर्वप्रथममुपस्थापितम्। तद्यथा–

LorLrt lkndxkykRlnk Yik&fo/kkuhjxkyk d lE;Urj ;%A
lglk'kfn';L; pk/kkfnd ;r HkonTtoy Lok/orn f'elx%AA
Rkn/kkYid pkU;fndLFk jo;&Ro'kYd LoekUr% fLFkr lonoA
flrpkflr ck/;edkYidkuk rnU;kEcxkykRedkukeihRFkeAA[4]

*सहायाकाचार्य, रा0उ0सं0म0वि0, सुखसेना, पूर्णियाँ

स्वमस्तैजसादर्कगोलात् विधोः चन्द्रस्य जलमय विम्बगोलः सर्वदाल्पोस्ति। तेन चन्द्रविम्बदिगभिमुखं तच्छाया सूच्याः क्रमसंकोचसिध्या अर्क रश्म्यन्तरे सूर्यदिशि चन्द्रस्यार्धाधिकं मानं रविकिरण संयोगैरूज्ज्वल भवेत्। तथारवेन्रन्य दिकस्थं स्वच्छायासूच्यन्तर्गतं तदर्धाल्पमानं तत्सदैवाशुल्कमनुज्जवलं भवति। एवं चन्द्रवत्–मनुज्जवलं च सुक्ष्मदृशाज्ञेयं भवति। तथा चोक्तमनेनैव विम्बाधिकारे "ये च नीर मया गोलास्तेजोगोलात् विवस्वतः। स्वल्पाः स्युः सर्वतद्गोले शौक्ल्यमर्धाधिकं भवेत्।।" एवं छायाधिकारे पि "अर्कतो यो अल्पको गोलस्तत्छायाविस्तृतिभृशम्। उत्तरोत्तरमल्पास्या–दधिकस्याधिका स्मृता"।[5] fl-r-fo- Nk- v- 'ykd&4A

अमान्ते चन्दगानुज्जवलहेतु श्रृंगाकारकारणं कथयति गोलमृगः। यथा –

veklr fo/kk:/o[k.M flr L;k&nojdjk'l'k fylrkfn ;kxkrA
v/k% lfLFkr pkflr j'E; ;kxk&rFkko jofjUnn'kk xgkn;%AA
fofHkUuk ;Fkk 'kDyof)LrFkkL;k&}jk;e[k RoEc'khrk'k foEcA
fo/kkxkydRok|n/kkYi'kDy Hkorf) Ükx};kdkje=AA[6]

अमान्ते रविचन्द्रयोरेकसूत्रगतत्वात अथ च तदा परमर्शराग्रस्थस्यापि कालांशान्तर्गतत्वात् चन्द्ररविबिम्बद्वय जनिता सूची या, तदग्रं भूम्यभिमुखं स्यात्तेन चन्द्रबिम्बस्य शुक्लत्वादूर्ध्वभागः सितस्तथा भूसंमुखे धोभागो सित इति स्पष्टमेव। अथैव यदा शीघ्रगतित्वादिन्दुप्रदेशो ग्रहाद्यैरन्तिरतस्तथा तथा क्रमेण तिर्यग्रविकिरणपाताधिकयात् भूसंमुखे चन्द्रभागे शुक्लवृद्धि स्यात्। तत्र दृष्टि स्थानात्कृताभिर्विम्बस्पर्शरेखाभिः स्पृष्टतत्तप्रदेशस्य व्रत्तत्वस्य वास्तवदृश्यवृत्तमिति नाम, तथा च रविचन्द्रविम्बद्वय स्पर्शसूची स्पृष्टचन्द्र विम्बप्रदेशस्यापि वृत्तत्वात् तस्य वास्तवशुक्लवृत्तमिति संज्ञा। वास्तवदृश्यवृत्तान्तर्वास्तवशुक्लवृत्तप्रदेशो यावान् प्रविष्टः, स एव शुक्लभागो दृश्यः।

तत्र वास्तवदृश्यशुक्लवृत्तसंपातौ तु श्रृंगरूपौ भवतः। एतदनंतरं स्थितिविशेषेण विम्बान्तरसूत्रस्वरूपंनिगदितं तेन। पश्चात् भास्कराचार्यमतं वर्णयति, मतमालोचितञ्च तेन।

भास्करमतं वर्णयति। तद्यथा–

uo uohukLr ;rk dd{kk] r; fopUnJo.kkUrj fgA
n'k HkofÙk;fxuk ;rkC tkRiknk"kV dk"VyokUrj r%AA
Ny un';L; nyL; 'kDy&Ek=kfi l{e onrkerrA
v/kkf/kdRokPp flrL; lE;x ny u 'kDy ujnXtfcEoAA[7]

एवमर्थात् त्रिभेन्तरे चार्द्धंशुक्लमिति नवीना भास्कराचार्याः नैवाहुः। यतस्तन्मतं तु–

d{kk prFk rj.kfgpn&d.kkUrj fr;fxuk ;rkCtkrA
iknku"kVdk"VyokUrj rk ny un';L; nyL; 'kDyeAA[8]

अर्ककक्षातुर्ये, रविकक्षातश्चतुर्थसंख्यक चन्द्रकक्षायामिति।। परन्तत्वत्रापि वस्तुतः सितवृत्तीयांन्तरांशमाने पादोनषट्काष्टलवतुल्ये भास्करोक्तं युक्तमेव, परन्त्वत्र सितवृत्तीयन्तराशज्ञानाभावात् क्रान्तिवृत्तीयान्तराशमाने 85 / 45 एतन्मिते तदा स्फुटान्तरांशानां कर्णरूपत्वात्पदभेदेन भृवीयान्तरांशरूपकोटेः कर्णान्न्यूनाधिकत्वात् तदुक्तार्धशुक्लावसरे 85 / 45 स्फुटान्तराशंमनामेतस्मात् 85 / 45 न्यूनाधिकत्वात् तन्मतं न युक्तमिति।

वस्तुतो भास्करस्य सितवृत्तयान्तराशमानमेवाभीष्टं, प्रचीनत्वात् स्पष्टं नोदितमिति सुधिज्ञेयम्। कथमन्यथैकधरातले तेन बिम्बद्वयं विलिख्योपपत्तिः प्रदर्शिताः। विम्बद्वयस्य केवलं सितवृत्तभूतल एव गतत्वादिति।।

एतदतित्तिं अर्धशुक्लकालिक स्पष्टन्तरांशान्, भास्करोक्तदृश्यार्ध सामयिक अन्तरांशा अयुक्तेति कमलाकरेणालोचितम्। अथैक गोले रविचन्द्रयोः कल्पनायां दोषमारोपितं कमलाकरेण। यथा–

fotkrh; ;kxkUrjkno flf);fn L;kRofn"VL; rRlJ.kRoeA
;nk Hkor lee.MykHk joe/;rLr= leurk'k%AA
ikd if'peLFkk Hkork jchUnuiknku"kVdk"V nykYiHkkx%
f'kjke.kk r= u rnchU}kn"VkUrj rPNo.kkfRer fgAA[9]

lUnHkZ xzUFk lwph

1. सिद्धान्त सारभौम, मुनीश्वराचार्य, मोतिलाल बनारसीदास, दिल्ली।
2. सिद्धान्त शिरोमणि, भास्कराचार्य, मुरलीधर ठाकुर, चौखम्बा।
3. सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, कमलाकरभट्ट, का0सिं0द0सं0वि0वि0,दरभंगा।
4. सूर्यसिद्धान्त, कपिलेश्वर चौधरी, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, काशी वाराणसी।
5. सिद्धान्तशेखर, श्रीपति–श्रीकृष्ण मिश्र, एसि0सोसायटी, कलकत्ता।
6. ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त, मेडिकल हॉल प्रेस, काशी।
7. सिद्धान्त सुन्दर, ज्ञानराज, चौखम्बा।
8. ब्रह्मसिद्धान्त, श्रीपति, चौखम्बा।
9. वास्तवचन्द्रश्रृंगोन्नति, सुधाकर द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती।
10. शिश्यधीवृद्धिदम्, लल्लाचार्य, सं0सं0विश्व0,वाराणसी।
11. ग्रहचार रहस्य, संकलितम्।
12. दीर्घवृत लक्षणम्, सुधाकर द्विवेदी, सं0सं0विश्व0,वाराणसी।
13. भारतीय ज्योतिष, शंकर वा0 दीक्षित, हिन्दी समिति, उ0प्र0।
14. ग्रहलाघव, गणेश दैवज्ञ, विश्वनाथ मल्लारि सुधाकर, वाराणसी।
15. श्रीभगवद्गीता, व्यास, गीता प्रेस, गोरखपुर।
16. सद्धिान्ततत्त्वविवेक, कमलाकर भट्ट, का0सिं0द0सं0वि0वि0, दरभंगा।
17. बृहज्जातकम्, वाराहमिहिर, ठाकुर प्रसाद एण्ड सन्स।
18. बृहत्संहिता, प0 अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
19. नैषणीय चरित्र, श्री हर्ष, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
20. तैत्तरिय संहिता, आर्ष निर्मित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
21. गणकतरंगिणी, सुधाकर द्विवेदी, सं0सं0वि0वि0,वाराणसी।
22. आर्यभट्टीय, रामनिवास राम, सं0सं0वि0वि0,वाराणसी।

lUnHkZ

1. भा.ज्यो. पृ. – 113।
2. वा.चं.श्रृं.सा. श्लोक – 50।
3. वा.चं.श्रृं.सा. श्लोक – 51।
4. सि.त.वि. श्रृं. अ. श्लोक – 1–2।
6. सि.त.वि. छा. श्रृं अ. श्लोक – 3–4।
7. सि.त.वि. श्रृं अ. श्लोक – 10–11।
8. सि.शि. श्रृं अ. श्लोकः।
9. सि.त.वि. श्रृं. अ. श्लोकः– 21–22।

◆◆◆

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 4-7

Hkkjrh; ifjiz{; esa fof/kd lsok dh O;kidrk

vf[kys'k ;kno*

ifjp; l{kid ¼ सभी को न्याय का समान अवसर उपलब्ध कराना न्यायिक प्रशासन का मूलभूत सिद्धान्त है। प्रत्येक कल्याणकारी राज्य का यह परम कर्तव्य है कि यह सभी प्रकार के भेदभावों जैसे वह जाति–पाति तथा धार्मिक, सामाजिक या आर्थिक भेदभाव से ऊपर उठकर सभी नागरिकों को समुचित न्याय उपलब्ध कराये। भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ अधिकांश जनता निर्धन, गरीब, साधनहीन है वहाँ सभी को समान तथा सुनिश्चित न्याय उपलब्ध कराना संभव नहीं है, समान न्याय तभी सम्भव है जब आपराधिक एवं सिविल मामलों में पक्षकारों को समुचित कानूनी सहायता उपलब्ध हो। यदि व्यक्ति को अपने विधिक एवं संविधानिक अधिकारों को प्रवर्तित कराने या उनकी प्रतिरक्षा का पर्याप्त अवसर उपलब्ध न हो, तो ऐसी न्याय व्यवस्था भेद–भाव पूर्ण होगी जो समान न्याय के सिद्धान्त के विपरीत है।

भारत क विधि आयोग ने अपने 14 वें प्रतिवेदन में विधिक सहायता की आवश्यकता एवं उपयोगिता को रेखांकित करते हुये इस बात पर जोर दिया कि समाज के निर्धन एवं निःशक्त या साधनहीन वर्ग के लोगों को विधिक सहायता उपलब्ध किये बिना विधि के समक्ष समता के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता जो विधि–सम्मत शासन का आवश्यक तत्व है।

fof/kd lsok dk vFkZ ¼ निर्धन व्यक्तियों को न्यायालय अथवा अधिकरणों के समक्ष चलने वाली न्यायिक कार्यवाहियों में निःशुल्क विधिक सहायता के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ऐसे निर्धन व्यक्तियों को सहायता प्रदान करना है जो विधि द्वारा प्रदत्त अपने अधिकारों को प्रवर्तन कराने में सक्षम नहीं है।

fof/kd lgk;rk dk mn~ns'; ¼ समाज के कमजोर वर्गों को यह सुनिश्चित करने के लिए आर्थिक या अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न हो जाये, विधिक सेवा उपलब्ध कराने के लिए विधिक सेवा प्राधिकरण का गठन करने और यह सुनिश्चित करने के लिए वे विधिक प्रणाली का प्रवर्तन समान अवसर के आधार पर न्याय का संवर्धन करे, तथा साथ लोक अदालतों का आयोजन का उपबन्ध किया जाये।

भारत में विधिक सहायता का प्रारम्भ इसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु किया गया। 'विधक सहायता के अर्थ एवं उद्देश्य को अधिक स्पष्ट करते हुये न्यायपूर्ति पी0एन0 भगवती ने कहा कि इसका लक्ष्य समाज में एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करना है जिससे गरीब से गरीब वर्ग के व्यक्ति को भी न्याय की सुलभता आसानी से प्राप्त हो सके तथा अपने विधि द्वारा प्रदत्त अधिकारों के संरक्षण हेतु ऐसे वर्ग के व्यक्तियों को इधर–उधर न भटकना पड़े।[1]

विधिक सहायता का उद्देश्य समान न्याय सुनिश्चित करना है। विधिक सहायता यह सुनिश्चित करने के लिए प्रदान की जाती है कि न्याय सुनिश्चित करने के अवसर से किसी भी व्यक्ति को उसकी निर्धनता, अशिक्षा आदि के कारण से वंचित न किया जा सके।

भारत के संविधान द्वारा न्याय की समानता पर जोर दिया गया। संविधान की उद्देशिका अपने सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय सुनिश्चित करती है। अनुच्छेद–14 का उद्देश्य समान न्याय सुनिश्चित करना है। अनुच्छेद–14 में यह स्पष्ट किया गया है कि राज्य अपने राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता अथवा विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।

*शोधछात्र, विधि विभाग, इलहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ0प्र0

संविधान द्वारा नागरिकों को कतिपय मूल अधिकार प्रदान किये गये है और उन अधिकारों को प्रवर्तन के लिए उन्हें उच्चतम न्यायालय जाने का अधिकार भी प्रदान किया गया है और वह भी स्वयं अपने आप में एक मूल अधिकार है। यदि कोई नागरिक अपनी गरीबी या अशिक्षा के कारण अपने मूल अधिकारों के उल्लंघन पर उच्चतम न्यायालय में याचिका नहीं दाखिल कर पाता तो वह न्यायालय भी उसको उपचार नहीं प्रदान कर सकता है। परन्तु यदि ऐसे किसी व्यक्ति को विधिक सहायता प्रदान की जाती है तो न्यायालय उसके साथ न्याय कर सकता है।

साररूप में यह कहा जा सकता है कि विधिक सहायता का अर्थ यह है कि सीमित साधनों वाले व्यक्तियों को निःशुल्क अथवा नाम मात्र के शुल्क (फीस) पर विधिक सलाह या विधिक सहायता उपलब्ध कराई जाये। यद्यपि विधिक सलाह और विधिक सहायता एक दूसरे से पूरक है, परन्तु दोनों में भिन्नता है। विधिक सहायता से आशय किसी न्यायालय या अधिकरण की कार्यवाही में पक्षकार द्वारा निःशुल्क अथवा नाममात्र फीस लेकर सहायता या मद्द करना है जबकि विधिक सलाह में उपचारात्मक तथा निवारणात्मक, दोनों ही उपायो का समावेश है।[2]

fof/kd lgk;rk dh ladYiuk dk mnHko % किसी भी लोकतांत्रिक देश की सत्ता में न्यायापालिका का महत्वपूर्ण योगदान पाया जाता है।

महाभारत में भीष्म पितामह धर्मरत युधिष्ठिर को न्यायपालिका का महत्व बताते हुये कहते है–विधि का अवलम्बन नहीं किया जा सकता तो न्यायतंत्र का कोई व्यवहारिक फायदा नहीं है।'' न्यायतंत्र का संचालन बहुत महँगा है, न्यायपालिका की अधिकारिता का अवलम्बन लेने में गरीबों को बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अधिकांश उसका खर्च नहीं उठा सकते, इस कारण उन्हें विधि का संरक्षण नहीं मिल सकता जब तक कि उन पर विधिक सहायता के माध्यम से विशेष धन नहीं दिया जाता।

गरीबों एवं निर्धनों को विधिक सहायता दिये जाने के सम्बन्ध में प्रस्ताव सर्वप्रथम संयुक्त राष्ट्र (United Nation) के तत्वाधान में सन् 1968 में आयोजित मानवाधिकार सम्मेलन में पारित हुआ। इस प्रस्ताव में यह स्वीकार किया गया कि समाज के निर्धन एवं पिछड़े वर्ग के लोगों के मानव अधिकारों तथा मूलभूत स्वतंत्रताओं की संरक्षा के लिए कानूनी सलाह एवं विधिक सहायता योजनायें लागू करना राज्य का दायित्व है और इस हेतु राष्ट्र संघ द्वारा विभिन्न देशों को विधिक सहायता दी जानी चाहिए। मत्स्य पुराण में कहा गया है–

^^cky o`)krqj;frf} t L=h fo/kok ;r%A
ekRL;kU;k; e";sju ;fn n.M u ikr;sr~AA[3]

अर्थात् राज्य में दण्डनीति की व्यवस्था न रखी जाये तो बालक, वृद्ध आतुर, संन्यासी, ब्राह्मण, स्त्री और विधवा ये सभी एक दूसरे को खा जायें। अन्यायियों को दण्डित कर सताये हुये लोगों को न्याय उपलब्ध कराना निःसन्देह शासन का सर्वोपरि कर्तव्य है। न्याय दर्शन का मूल सिद्धान्त इसी पर टिका है–''विलम्ब से प्राप्त न्याय अस्तित्वहीन एवं निरर्थक है।'' विधिक सहायता का विचार प्राचीन में ब्रिटेन में विधिक सहायता प्रणाली जिसने हैनरीपंचम के शासनकाल में एक कानून का रूप लिया था, इंग्लैण्ड में ''इन फोरमा पापरिस'' (अकिंचन के रूप में) प्रक्रिया के रूप में जानी जाती थी। रोवर्ट एजर्टन ने अपनी पुस्तक ''लीगल एण्ड के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक में लिखा है कि एक संगठित समाज में सम्भव है कि विधि अच्छी हो और न्यायलय निष्पक्ष हो।

fof/kd lgk;rk dk Lo:i % विधिक सहायता प्रदान करने के सम्बन्ध में दो व्यापक पक्ष है–

क) पहला पक्ष परम्परागत पक्ष है। जिसका तात्पर्य यह है कि एक गरीब व्यक्ति को विधिक सहायता देना कि जिससे वह अपने मामले की पैरवी सही ढंग से कर सकें।

ख) दूसरा पक्ष व्यापक है जिसे भारत के पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति पी0एन0 भगवती ने प्रतिपादित किया। वे मानते हैं ''भारत जैसे विकासशील देशों में यह कार्यक्रम बहुत ही महत्वपूर्ण है जहाँ, गरीबी, निरक्षरता और अपने अधिकारों का प्रति जागरूकता का अभाव हो तथा बलात् न्याय से वंचित

किये जाने जैसे बुराइयाँ मौजूद है जहाँ न्यायालयों पर इतना अधिक बोझ है, कि मामलों के निर्णय में कई वर्ष लग जाते हैं।

fof/kd lgk;rk dh fo'k"krk,¡@egRo %

1) भारतीय विधिज्ञ परिषद् के परामर्श से, क्लीनिक्स कानूनी शिक्षा के कार्यक्रम विकसित करना तथा विश्वविद्यालयों, विधि महाविद्यालयों और अन्य संस्थाओं में विधिक सेवा क्लीनिकों की स्थापना और कामकाज में मार्गदर्शन देना और पर्यवेक्षण करना,
2) सरकार को उन विधि सुधारों का सुझाव देना जिन्हें वह आवश्यक समझे और प्रशासनिक निकायों का ध्यान समाज के कमजोर वर्गों की शिकायतों के प्रति आकृष्ट करना।
3) विधिक सहायता के माध्यम से असहाय, गरीबों तथा निःशक्तों को समानता का अभास होना।

इस प्रकार से विधि के शासन एवं प्रजातंत्र के संरक्षण के लिए तथा समानता के अधिकार एवं समान न्याय के अधिकार सहित मौलिक अधिकारों को अर्थ पूर्ण बनाने के लिए गरीबों एवं कमजोर व्यक्तियों को विधिक सहायता प्रदान किया जाना आवश्यक है।

egRoi.kZ U;k;f;d fu.kZ; % ,e0,e0 gkLdkV cuke egkjk"V jkT;[4] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सिद्धदोष व्यक्ति को उच्च न्यायालय में ''अपील फाइल'' करने का मूल अधिकार है तथा उसे निर्णय की प्रतिलिपि निःशुल्क पाने तथा ''निःशुल्क कानूनी सहायता'' पाने का भी अधिकार प्राप्त है। इन शर्तों के उल्लंघन से अनुच्छेद 21 में प्रदत्त दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार का अतिक्रमण होता है। न्यायाधिपति श्रीकृष्ण अय्यर ने बहुमत का निर्णय सुनाते हुए यह अवलोकन किया कि ''निःशुल्क कानूनी सहायता राज्य का कर्तव्य है न कि राज्य का दान।''

fdUrq j?kqohj flag cuke fcgkj jkT;[5] के मामले में यह निर्णय दिया गया है कि केवल पुलिस जांच में विलम्ब होने के कारण यह नहीं माना जा सकता है कि अनु0 21 में प्राप्त ''शीघ्रतर परीक्षण'' के अधिकार का उल्लंघन हुआ है।

सुपरिन्टेन्डेन्ट एण्ड रिमेम्ब्रान्सर ऑफ लीगल अफेयर्स वेस्ट बंगाल बनाम एम0 भौमिक[6] में न्यायालय ने हुस्न आरा खातून (नं0 1) के निर्णय का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि निःशुल्क विधिक सहायता पाने का अधिकार अनु0 21 के अधीन युक्तियुक्त एवं ऋतु प्रक्रिया का एक आवश्यक तत्व है, जिसके अभाव में प्रक्रिया अयुक्तियुक्त हो जायेगी।

lq[knkl cuke l?k jkT; {k= v#.kkpy insz'k[7]

अपने एक महत्वपूर्ण निर्णय egkjk"V jkT; cuke euHkkbZ ikxth oklh[8] में निःशुल्क सहायता के अधिकार के क्षेत्र को पर्याप्त विस्तृत कर दिया है। यह निर्णय दिया गया कि निःशुल्क सहायता प्रदान करने के लिए प्रशिक्षित अधिवक्ताओं की आवश्यकता होती है और यह तभी सम्भव है जब विधि शिक्षा के लिए अच्छे कालेज हो जिनमें अच्छे अध्यापक, पुस्तकालय आदि भी हो। अनु0 39क राज्य को निर्देश देता है कि वह सभी को ''समान न्याय'' और ''निःशुल्क विधिक सहायता'' प्रदान करने की व्यवस्था करावें। इसका अर्थ है विधि के अनुसार न्याय। इसके लिए समुचित विधि प्रणाली का होना आवश्यक है।

'kh?kz ijh{k.k dk vf/kdkjA

gqlSu vkjk [kkrwu cuke fcgkj jkT;[9] (नं0 1) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि ''शीघ्रतर परीक्षण'' (Speedy trial) और ''निःशुल्क विधिक सहायता'' के अधिकार अनु0 21 द्वारा प्रदत्त दैहिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार का एक आवश्यक तत्व है।

vCnqy jgeku vUrqys cuke vkj0,l0 ikBd[10] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने आपराधिक मामलों में अभियुक्त के ''शीघ्रतर परीक्षण'' के लिए विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धान्त विहित किया है। इसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अनु0 21 के अन्तर्गत प्राप्त शीघ्रतर परीक्षण का अधिकार अभियुक्त को सभी स्तरों पर अर्थात् अन्वेषण, जांच, परीक्षण, अणील, पुनरीक्षण और पुनर्परीक्षण

पर प्राप्त है। ये सभी अधिकार अभियुक्तों को भारतीय दण्ड प्रक्रिया दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 309 के अधीन भी उसे प्राप्त है।

Jhfuokl xkiky cuke v#.kkpy in'k[11] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि शीघ्र न्याय (फनपबा रनेजपबम) अनु0 21 का एक अनिवार्य तत्व है और इसका उल्लंघन दाण्डिक अभियोजन को असंवैधानिक बना देता है।

lUnHkZ xzUFk %

* पाण्डेय जे0एन0, भारत का संविधान? सेण्ट्रल लॉ एजेन्सी, 50वॉ, संस्करण, 2017
* राव ममता, लोकहितवाद, विधिक सेवा, एवं लोक अदालत, इर्स्टन बुक कम्पनी, द्वितीय संस्करण, 2006
* सक्सेना आलोक, लोक अदालत और विधिक सहायता, इण्डिया पब्लिशिंग कम्पनी, प्रथम संस्करण, 2016

lUnHkZ %

1. विधिक सहायता समिति (गुजरात का प्रतिवेदन, (1971) पृ0–5)
2. डॉ0 परांसये एन0पी0: विधि शास्त्र एवं विधिक सिद्धान्त, 2005 पृष्ठ–431
3. मत्स्य पुराण–225/9
4. ए0आई0आर0 1978, एस0सी0 1548
5. ए0आई0आर0 1987, एस0सी0 149
6. ए0आई0आर0 1981, एस0सी0 917
7. (1986) 2 एस0सी0सी0 401
8. (1995) 2 एस0सी0सी0 730
9. ए0आई0आर0 1979, एस0सी0 1360; अब्दुल रहमान अन्तुले बनाम आर0एस0 नायक 1992 एस0सी0सी0 225
10. (1992) 1 एस0सी0सी0 225
11. (1988) 4 एस0सी0सी0 36

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 8-11

iepn dk ykd thou ,o xknku eY;kdu

dpu ;kno*

ifjp; % मुंशी प्रेमचंद का जन्म एक गरीब परिवार के काशी से चार मील दूर बनारस के पास 'लमही' नामक गाँव में 31 जुलाई 1880 में हुआ था। उनका असली नाम श्री धनपत राय, उनकी माता का नाम आनंदी देवी था। आठ वर्ष की अल्पायु में ही उन्हें मातृस्नेह से वंचित होना पड़ा। दुःख ने यहाँ भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। चौदह वर्ष की अल्पायु में पिता का निधन हो गया। उनके पिता मुंशी अजायब लाल डाकखाने में मुंशी थे। घर में यू ही बहुत गरीबी थी, ऊपर से सिर से पिता का साया हट जाने के कारण उनके सिर पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। ऐसी परिस्थिति में पढ़ाई–लिखाई से ज्यादा रोटी कमाने की चिन्ता उनके सिर पर आ पड़ी। 15 वर्ष की अवस्था में उनका विवाह कर दिया गया जो दांपत्य जीवन में आए क्लेश के कारण सफल नहीं रहा। प्रेमचन्द ने बाल विधवा शिवरानी देवी से दूसरा विवाह कर लिया, उनके साथ सुखी दांपत्य जीवन जीने लगे। विद्यार्थियों को ट्यूशन पढ़ाकर किसी तरह उन्होंने सिर्फ अपनी रोजी–रोटी चलाई, बल्कि मैट्रिक की कक्षा भी पास की इसके उपरान्त उन्होंने स्कूल में मास्टरी शुरू की। और नौकरी करते हुए उन्होंने एफ0ए0 और बी0ए0 पास किया। एम0 ए0 भी करना चाहते थे, पर कर नहीं सके। शायद ऐसा सुयोग नहीं हुआ।

स्कूल मास्टरी के रास्ते पर चलते–चलते सन् 1921 ई0 में वे गोरखपुर में डिप्टी इंस्पेक्टर स्कूल में थे, जब गांधी जी ने सरकारी नौकरी से इस्तीफे का नारा दिया, तो प्रेमचंद जी ने सत्याग्रह से प्रभावित होकर सरकारी नौकरी छोड़ दी, रोजी–रोटी चलाने के लिए उन्होंने कानपुर के मारवाड़ी स्कूल में काम किया। पर वहाँ भी ज्यादा दिनों तक नहीं चल सका। प्रेमचंद ने सन् 1901 ई0 में उपन्यास लिखना शुरू किया। कहानी 1907 ई0 से लिखने लगे। उर्दू में नवाबराय नाम से लिखते थे। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में लिखी गयी उनकी कहानी सोजेवतन 1910 ई0 मं जब्त की गई, उसके बाद अंग्रेजों के उत्पीड़न के कारण प्रेमचंद नाम से लिखने लगे। 1923 ई0 में उन्होंने सरस्वती प्रेस की स्थापना की। 1930 ई0 में हंस का प्रकाशन शुरू किया। उन्होंने 'मर्यादा, हंस' जागरण तथा 'माधुरी' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं का संपादन किया। जीवन के अंतिम दिनों में सन् 1933–34 ई0 में जो मुम्बई की फिल्म दुनिया में बीता, उनका पूरा समय बनारस और लखनऊ में गुजरा, जहाँ उन्होंने अनेक पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन किया और अपना साहित्य सृजन करते रहे। लेकिन क्या कहा जाय कि यह महान गद्य हस्ती 8 अक्टूबर 1936 को जालोदर रोग के कारण काल के गाल में समा गये।

इनकी रचनाओं में से एक 'गोदान' (1936 ई0) उपन्यास के बारे में मूल्यांकन और आधुनिक सन्दर्भ में लेख प्रस्तुत कर रहा हूँ। प्रेमचंद युगीन हिन्दी उपन्यासकारों में अपनी महान प्रतिभा के कारण युग प्रवर्तक के रूप में जाने जाते है। वस्तुतः सही अर्थों में उन्होंने ही हिन्दी उपन्यास शिल्प का विकास किया। उन्होंने उपन्यासों में पहली बार सामान्य जनता की समस्याओं की कलात्मक अभिव्यक्त की गयी थी और जन–जीवन का प्रमाणित एवं वास्तविक चित्र पाठकों को देखना सुलभ हुआ था। अपने महान उपन्यासों के कारण वे वास्तव में 'उपन्यास सम्राट' की पदवी पाने के अधिकारी सिद्ध हुए। प्रेमचंद के उपन्यास राष्ट्रीय आन्दोलन, कष्षक समस्या, मानवतावाद, भारतीय संस्कषति, शोषण, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि विविध विषयों से सम्बन्धित है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रेमचंद का मूल्यांकन करते हुए लिखा है ''प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0

आवाज थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दुःख–सुख और सूझ–बूझ जानना चाहते हैं, तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।''

भारतीय नाट्यशास्त्र में सुखान्त श्रेणी के नाटकों की परम्परा रही हैं ट्रेजेडी या दुःखान्त की पश्चिमी श्रेणी की शैली रही है। गोदान उपन्यास है नाटक नहीं, फिर भी इसमें नाट्य परिवेश व्याप्त है। नाटकों की तरह ही इसमें कथावस्तु नाट्य दृश्य, नाट्य संघर्ष जैसी योजनाओं की सम्भावना दिखाई पड़ती है। पश्चिमी विद्वान अरस्तू व शेक्सपीयर ने यह माना है कि ट्रेजेडी का नायक विशिष्ट गुणों से युक्त नहीं होता बल्कि सामान्य गुणों से युक्त तथा मानवीय संवेदनाओं का वाहक होता है। इनके अनुसार श्रासदी का नायक सामाजिक परिस्थितियों तथा क्रूरनियतियों से जीवनपर्यन्त टकराता रहता है। वह अपनी किसी रणनीतिक भूल व महत्वाकांक्षा का शिकार होकर या तो आत्महत्या कर लेता है या तो उसकी हत्या कर दी जाती है। भारतीय साहित्य शास्त्र/नाट्य शास्त्र में फलागम या उद्देश्य ही हर हालत में उपलब्धि से जुड़ता है तथा त्रासदी का नायक फलागम से चूक पाता है।

गोदान की कथा शहरी व ग्रामीण कथा के रूप में भारतीय जीवन धारा को पकड़ने की कोशिश करती है। इसकी मुख्य कथा ग्रामीण कथा तथा कृषकों के जीवन से है। प्रेमचंद जी ने औपनिवेशिक भारत के किसानों की. त्रासदीपूर्ण परिस्थितियों को उद्घटित करने की कोशिश की है, जिसकी आकांक्षा राजपाट या भोगविलास की नहीं है। इसको प्रस्तुत करता हुआ होरी कहता है ''इस जन्म में कोई आशा नहीं है भाई। हम राजपाट नहीं चाहते, भोगविलास नहीं चाहते। मोटा–झोटा पहनना व मोटा–झोटा खाना व मरजात के साथ रहते है।'' इस दौर के किसानों के जीवन में सुख व शान्ति का पर्याय श्रममुक्तता है वह अपने छोटे भाई शोभा से कहता है कि 'क्या खाकर मोटे हुए हो भाई मोटे तो वे होते है जिन्हे न श्रम की सोच हो न मरजाद की चिन्ता' काशीनाथ सिंह ने माना कि होरी की मौत उसकी गाय सुन्दरी की तरह हो जैसे स्लो प्वाइजन का केस हो। बचपन से ही महाजनों ने होरी को कर्ज व शूद की ढ़रकी पिलाकर पाला। उसकी त्रासदी का कारण कुछ ऐसा ही रहा है।

गोदान की केन्द्रीय ऋण की ही समस्या हैं उपन्यासकार ने इसे उद्घाटित करते हुए लिखा कि जमींदार तो एक था लेकिन महाजन तीन थे। यदि उपन्यास के आंकड़े का प्रयोग किया जाए तो होरी ने दुलारी सहुआइन से तीस रूपये, मंगरूशाह से पचास रूपये तथा दातादीन से तीस रूपये लिए। यह राशि 5–10 वर्षों के अन्तराल में दो सौ से तीन सौ रूपयों में तब्दील हो गई। औपनिवेशिक शोषण ने अपने जमींदारी तथा महाजनी चंगुल से जिस प्रकार कृषकों का शोषण किया उससे यह कहा जा सकता है कि यह समस्या होरी की नही थी बल्कि उसके समान सभी सीमान्त किसानों की थी। गोबर जब दूसरी बार शहर से लौटता है तो वह पाता है कि घर का एक कोना गिरने को है, द्वार पर एक बूढ़ा बैल बधा है वह भी नीमजान। घर के सभी सदस्यों की सूरत कुछ रोनी थी। यह स्थिति कुछ होरी के परिवार की नहीं थी, बल्कि गाँव के सभी सदस्यों की कुछ ऐसी ही स्थिति थी। गोदान भारतीय ग्रामीण जीवन तथा कृषि परम्परा के ताने–बाने को उद्घाटित करने वाला उपन्यास है। प्रेमचंद जी ने कृषक जीवन के सभी पहलुओं को छूने की कोशिश की है। होरी जैसे किसान यदि त्रासदपूर्ण जीवन जीने को अभिशप्त थे तो उसका एकमात्र कारण औपनिवेशिक शोषण ही नहीं बल्कि ग्रामीण जीवन की आस्था, धार्मिक व जजमानी व्यवस्था, पंचायत बिरादरी के प्रति मोह, सामाजिक अनुष्ठान विलासप्रियता जैसे कारण भी प्रभावशाली थे। जाति बिरादरी में आस्था के कारण ही होरी पर तीस मन अनाज व सौ रूपये जुर्माना लगा। इस आस्था के कारण ही वह दण्ड की इस राशि को सहर्ष भर सका। कृषक जीवन में शादी–विवाह जैसे अवसर व पारिवारिक–सामाजिक वर्चस्व दिखाने के लिए प्रदर्शनीय को विशेष महत्व दिया जाता है। होरी ने बड़ी बेटी सोना की शादी बिना मांगे अपनी क्षमता दहेज देकर की। सामाजिक दिखावे के कारण वह जिस कर्ज का शिकार हुआ उसे चुकाने के लिए छोटी बेटी रूपा की शादी एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति रामसेवक से दो सौ रूपये लेकर करता है। होरी को लगता है कि जिस जमीन के पीछे वह बेहाल था न तो वह जमीन बचा सका न ही मरजाद को। जैसे वह बीच चौराहे पर खड़ा हो जो भी आता हो उसके मुँह पर थूककर चला जाता हो।

गोदान भारतीय ग्रामीण का सच्चा व युगनियामक दस्तावेज है। यह यहाँ की 80 प्रतिशत जनता जो गाँवों में रहती है के सुख–दुःख की जीवन गाथा हैं गाँव की कहानी किसान से भिन्न नहीं हो सकती इसीलिए गोदान की अधिकाधिक कथा की शुरूआत होरी की दिनचर्या से होती हैं धीरे–धीरे होरी ग्रामीण जीवन के संकट मे घिसता चला जाता है और अन्त में मौत ही उसे संकट से मुक्त कर पाती है। गोदान उपन्यास की होरी की मृत्यु व धनिया के पछाड़ खाकर गिरने से होती है उपन्यास का वातावरण होरी व धनिया के दुःख–दर्द से भरा हुआ है। अतः गोदान भारतीय ग्राम संस्कृति में विकसित होते हुए होरी धनियां व उनकी तरह के किसानों की करूण कथा है।

गोदान में ग्राम जीवन और उसकी संस्कृति सम्पूर्णता में चित्रित है। हालाँकि इसमें काल विशेष के ग्रामीण समाज के चित्र है, परन्तु ये व्यापक, विविध व बहु–आयामी हैं। गोदान में जो निर्ममतापूर्वक कहे गए कथन है, उसका यथार्थवाद भारतीय किसान की जीवन दर्षष्टि का अर्जित यथार्थवाद है। भारतीय किसान बहुत यथार्थवादी व व्यावहारिक होता है वह मिट्टी से जुड़ा हुआ होता है। थोड़ा झूठ बोल लेने व चालाकी कर लेने को वह पाप नही समझता, होरी भोला को विवाह करा देने का लालच देकर उधार गाय ले आता है, स्वार्थ–सिद्धि को वह छल के दायरे से बाहर समझता हैं।

प्रेमचंद कहते हैं, इस तरह के छल तो वह दिन–रात करता रहता था। हाथ मे दो–चार रूपये पड़े रहने पर भी वह महाजन के सामने कसमें खा जाता था कि घर में एक भी पाई नहीं है। साम को कुछ गीला कर देना जायज था और यहाँ तो केवल स्वार्थ न था थोड़ा–सा मनोरंजन भी था। किसान पक्का स्वार्थी होता है, परन्तु दरवाजे पर गाय बाँधने की लालसा लिए होरी संकट की चाप समझता है, क्योंकि यह बात जन्म–जन्मान्तरों से उसकी आत्मा का अंश बनी हुई है। गोदान में गाँव की संरचना पात्रों के नामकरण, वेशभूषा उनकी आर्थिक सामाजिक स्थिति तथा भाषा से स्वतन्त्रता पूर्व के ग्राम जीवन के बड़े ही व्यंजक चित्र देखने को मिलते हैं। गाँवों का वर्णन पढ़ते ही पाठक को लगता है कि वह भारत के किसी गाँव में चला आया है और सारे दृश्य व घटनाएँ अपनी आँखों के सामने घटते देख रहा है।

''गाँव क्या था, पुरवा था दस–बारह घरों का, जिसमें आधे के खपड़ैल थे व आधे फूस के। द्वार पर बड़ी–सी चरनी थी जिस पर दस–बारह गाये, भैंसे, खड़ी सानी खा रही थी। ओसारे में एक बड़ा सा तख्त पड़ा था जो शायद दस–बारह आदमियों से उठ पाता। किसी खूँटी पर ढ़ोलक टैंगी थी तो किसी पर मजीरा। एक ताख पर कोई पुस्तक बस्ते में बधी हुई थी, जो शायद रामायण हो।''

गोदान में गाँव से जुड़े पात्रों के नाम गँवई है किन्तु उनमें भी वर्गभेद दिखाई देता है। होरी, गोबर, भोला, जंगी, बंसी, भविनया, दरखू, धनिया, सुरिया, मुनिया आदि नाम निम्न सामाजिक–आर्थिक स्थिति के द्योतक है, जबकि उपाधियों से जुड़े हुए नाम, जैसे– झिंगुरी सिंह, पण्डित दातादीन, दुलारी, सहुआइन आदि संयत्र आर्थिक स्थिति के द्योतक है। होरी भी जब राय साहब से बात करता पाया जाता है तो लोग उसे होरी महतो कहते है। गोबर जब शहर से ठाठ–बाट से लौटता है तो लोग उसे आदर–पूर्वक गोबरधन कहते हैं।

ग्रामीण संस्कृति में परम्परागत मूल्यों, पहनावे, अन्धविश्वास, खेत एवं पशुधन का काफी महत्व है। होरी और उसके बराबर के किसानों के पास तीन–चार बीघे से अधिक खेती नही है, परन्तु खेत से उनका लगाव जीविका के कारण नहीं–लाठी मिरजई, जूते, पगड़ी और तम्बाकू का बटुवा उनमें मिरजई, पगड़ी व जूते का इस्तेमाल बाहर जाने के लिए किया जाता है। वह भी कभी–कभार पहनावे में आर्थिक, सामाजिक स्थिति जगजाहिर होती है। ''धनियां की साड़ी में कई पैबन्द लगे हुए थे। सोना की साड़ी सिर पर फटी हुई थी और उसमें उनके बाल दिखाई दे रहे थे। रूपा की धोती में चारों तरफ झालरें–सी लटक रही थी। सभी के चेहरे रूखे, किसी की देह पर चिकनाहट नहीं जिधर देखों विपन्नता का सम्राज्य था।''

गोदान की कृषि संस्कृति भी विषमतामूलक है। इसका कारण है कि भारत की ग्रामीण संस्कृति पूँजीवादी सामन्तवादी संस्कृति की ही देन है। खेत जोतने वाले व जुतवाने वाले मं एक बड़ा फर्क है। गोदान में हम देखते है कि, खेत जोतने वाला किसान दिनों–दिन दरिद्र होता जाता है तथा खेती जुतवाने वाले के हाथ चली जाती है। धन 'धन' को खिचता है, यह बात उसी पूँजीवादी संस्कृति की ही परिचायक है।

गोदान आदर्शवाद एवं यथार्थवाद के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो हमको मिलता है कि गोदान प्रेमचंद के यथार्थवाद को समेटने वाला उपन्यास है। सामाजिक प्रगतिशील चेतना को जो प्रभाव उपन्यासकार पर पड़ा उसे उपन्यास में पूरी तल्खी और बेबाकी से चित्रित करने का प्रयास किया। उन्होंने अपने दृष्टिकोण को उद्‌घाटित करते हुए कहा कि ''मैं साहित्य को मनोरंजन की वस्तु नहीं मानता। साहित्यकार का काम केवल मनोरंजन करना नहीं है बल्कि वह काम तो चारण भांट व मक्कारों का है।''

fu"d"k % हम कह सकते हैं कि आज वर्तमान समय में भी गोदान की सार्थकता विद्यमान है, क्योंकि आप देख ही रहे है और अनुभूति भी कर हरे है कि आज भी किसान की स्थित ठीक वैसी है जैसे पहले थी, बल्कि एक परिवर्तन हुआ एक का स्थान दूसरा ग्रहण कर लिया।

i:epn d: fopkj vkj l>ko %

- ''चरित्र को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिए यह जरूरी नही कि वह निर्दोष हो, महान से महान पुरूषों में भी कुछ न कुछ कमजोरियां होती है, चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियों का दिग्दर्शन करने से हानि नही होती, बल्कि यही कमजोरियों उस चरित्र को मनुष्य बना देती है।''
- ''उपन्यास के विषय का विस्तार मानव–चरित्र से किसी कदर कम नही, उसका सम्बन्ध अपने चरित्रों के कर्म और विचार उनका देवत्व और पशुत्व उनके उत्कर्ष और अपकर्ष से है, मनोभावों के विभिन्न रूप और भिन्न–भिन्न दशाओं में उनका मुख्य विकास उपन्यास के मुख्य विषय है।''
- ''उपन्यास का विषय–विस्तार ही उपन्यासकार को बेड़ियों में जकड़ देता है।''
- ''क्यों न कुशल साहित्कार कोई विचार–प्रधान रचना भी इतनी सुन्दरता से करें जिसमें मनुष्य की मौलिक प्रवषत्तियों का संघर्ष निभाता रहे? (इसके लिए) उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि उसके विचार परोक्ष रूप से व्यक्त हो, उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार के समावेश से कोई विघ्न न पड़ने पाये, नही ंतो उपन्यास नीरस हो जायेगा।''

lUnHk %

vk/kj xUFk lph %

1. गबन (उपन्यास) – सन् 1930 ई0 मुंशी प्रेमचंद, राज्यपाल एण्ड सन्स प्रकाशन।
2. गोदान (उपन्यास) – 1936 ई0 मुंशी प्रेमचंद, डायमण्ड बुक्स, दिल्ली।
3. निर्मला (उपन्यास) – 1927 ई0

lgk;d xUFk lph %

1. प्रेमचंद और उनका युग – राम विलास शर्मा
2. गोदान, राजेश्वर गुरू, राधाकष्ष्ण प्रकाशन दिल्ली।
3. उपन्यास का पुनर्जन्म, परमानन्द श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. हिन्दी उपन्यास, पहचान और परख।
5. प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास – पहला भाग, हरियाणा साहित्य ऐकेडमी, चण्डीगढ़

i=&if=dk,¡ %

1. आज–कल, फरहत परवीन, नई दिल्ली।
2. नया ज्ञानोदय, रवीन्द्र कालिया, नई दिल्ली।
3. हंस–संजय सहाय, नई दिल्ली।
4. तद्‌भव, अखिलेश, लखनऊ।
5. आजकल विशेषांक, 1999

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 12-15

/keZ vkSj fof/k % ,d fo'ys"k.kkRed v/;;u

jes'k dqekj iztkifr*

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह प्रारम्भ से ही स्वतंत्र रहने का पक्षधर रहा है। परन्तु उसकी स्वतंत्रता कब स्वछन्दता में बदल गयी, कब व्यवस्था अव्यवस्था में बदल गयी, इसका कोई निश्चित अवधि निर्धारित नहीं किया गया है। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तिगत हित सार्वजनिक हित पर अविभावी होने लगा। ऐसे में मानवीय आचरणों को नियंत्रित करने की नितान्त आवश्यकता महसूस की गयी। मानवीय आचरणों को नियंत्रित करने और समाज में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के उद्देश्य से ही धर्म और विधि की स्थापना हुई। जैसा कि गीता के चौथे अध्याय में लिखा है–

**;nk ;nk fg /keZL; XykfuHkZofr HkkjrA
vH;qRFkkue/keZL; rnkRekua l`tkE;geA
ifj=k.kk; lk/kwuka fouk'kk; p nq"d`rkeA
/keZ laLFkkiukFkkZ; lEHkokfe ;qxs&;qxsAA**

अर्थात् जब–जब धर्म की हानि हुई है, शोषण एवं अत्याचार बढ़े हैं, तब–तब उनका दमन करने के लिए ईश्वरीय शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है और न्याय तथा धर्म की पुनर्स्थापना हुई है।

धर्म क्या है? जब तक इस प्रश्न का समाधान नहीं हो जाता, हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते। समान्यतः धर्म को Religion का पर्यायवाची माना जाता है, परन्तु इनमें अन्तर है। Religion सीमित व्यक्तियों का एक समूह मात्र है, जबकि धर्म सभी को समाहित करता है, किसी को अलग नहीं करता। 'धृ धार्यते धर्मा', अर्थात् जो सबको धारण करे वही धर्म है। बहुधा यह प्रश्न उठता है कि क्या धर्म ने समाज विभाजन का कार्य किया है। इस प्रश्न का सीधा सा यह जबाव है कि कभी नहीं। धर्म ने समाज को सदैव जोड़ा है, न कि तोड़ा है। चाहे राजा विक्रमादित्य को लिया जाय या मुगलकाल के सम्राट अकबर को, सभी ने सभी धर्मों का सम्मान किया है, सभी धर्मों को समान महत्व दिया है। हमारा विश्वास है– 'सर्वधर्म समभाव' अर्थात् सभी धर्म समान है। सभी धर्मों का उद्देश्य एक है। सभी धर्म मानवता, भ्रातृत्व एवं एकता का पाठ पढ़ाते हैं। धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं– धैर्य, क्षमा, विकारों का दमन, चोरी न करना, मन कर्म वाणी की पवित्रता, इन्द्रियों का नियंत्रण, विवेक, विद्या–अर्जन, सत्य बोलना तथा अक्रोध। जहाँ यह लक्षण पाये जाते हैं वही धर्म है, जो समाज को जोड़ता है न कि विभाजित करता है। यही कारण है कि विश्व के अधिकांश देशों के संविधान में धर्म विशेष का नहीं अपितु सभी धर्मों का संरक्षण किया गया है। यहाँ हम घाना, स्विटजरलैंड, अमेरिका, चीन और भारत के संविधान में निहित ''सर्वधर्म समभाव'' के मूल्यों का उल्लेख करेंगे।

?kkuk dk lafo/kku % लोकतंत्र किसी भी देश की रीढ़ होती है। लोकतंत्र की स्थापना में धर्म इत्यादि का विभेद किये बिना अनुच्छेद 1 में यह प्रावधान किया गया है कि– लिंग, वंश, धर्म या राजनीतिक विश्वास के कारण विभेद किये बिना प्रत्येक व्यक्ति को जो घाना का विधि सम्मत नागरिक हो, 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका हो और प्रवास, मानसिक प्रवृत्ति या अपराधिकता के आधार पर कानून द्वारा अनर्हित न हो, एक वोट देने का हक होगा जिसे वह स्वतंत्र और गुप्त रूप से दे सकेगा।

fLoVtjyS.M dk lafo/kku % स्विटजरलैंड के संविधान के अनुच्छेद 49 के अनुसार अंतर्भावना एवं धार्मिक विश्वास की स्वतंत्रता अलंघनीय है। किसी धार्मिक संस्था में भाग लेने के लिए, किसी धार्मिक शिक्षा का

*एल एल० एम०, डा० हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश

अनुयायी बनने के लिए, या कोई धार्मिक कार्य करने के लिए किसी को विवश नहीं किया जा सकता है और न तो किसी प्रकार के प्रायश्चित के लिए धार्मिक विश्वास के अनुसार विवश किया जा सकता है। अनुच्छेद 49 के अन्तर्गत ही आगे यह भी उपबन्ध किया गया है कि धार्मिक विचारों के कारण कोई व्यक्ति अपने नागरिक कर्त्तव्यों से नहीं छूट सकता है।

l;Dr jkT; vefjdk dk lafo/kku % धर्म के स्वतंत्र अंतःकरण एवं राजनीतिक स्वतंत्रता के संबंध में अनुच्छेद 1 में कांग्रेस (विधायिका) पर कतिपय निषेध अधिरोपित किये गये है। धर्म संस्थापन के विषय में या उसके स्वतंत्र अभ्यास के निषेध के लिए या भाषण की स्वतंत्रता या प्रेस की स्वतंत्रता कम करने के लिए, या शांतिपूर्ण ढंग से जनता के समवेत होने के अधिकार को कम करने के लिए और व्यथा के किसी निवारण के लिए सरकार पर याचिका देने के अधिकार का आदर करते हुए कांग्रेस कोई कानून नहीं बनायेगी।

phu dk lafo/kku % सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देते हुए अनुच्छेद 36 में प्रावधान किया गया है कि सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता की गारण्टी दी जाती है। राज्य किसी भी नागरिक को कोई भी धर्म मानने के लिए बाध्य नहीं करेगा और न ही धर्म के आधार पर कोई भेदभाव करेगा। Hkkjr dk lafo/kku % धर्म और विधि के अनोखे संगम को समाहित करते हुए भारतीय संविधान 26 नवम्बर 1949 को अधिनियमित किया गया। भारतीय संविधान पंथनिरपेक्षता का अनूठा उदाहरण है। संविधान की प्रस्तावना संविधान को पंथनिरपेक्ष गणराज्य घोषित करती है। भारतीय संविधान में 'पंथनिरपेक्ष' शब्द 42 वें संविधान संशोधन 1976 के द्वारा जोड़ा गया। एस. आर. वोम्बई बनाम भारत संघ के वाद में यह स्थापित किया गया है कि पंथनिरपेक्षता संविधान का आधारभूत ढ़ांचा है और राज्य सभी धर्मों और धार्मिक समुदायों के साथ समान व्यवहार करता है। अहमदाबाद सेंट जोवियर कॉलेज बनाम गुजरात राज्य के वाद में यह कहा गया है कि राज्य प्रत्येक धर्म को समान रूप से संरक्षण प्रदान करता है, किन्तु किसी धर्म में हस्तक्षेप नहीं करता है। धर्म–निरपेक्षता न ईश्वर विरोधी है, न ईश्वर समर्थक। यह भक्त, संशयवादी और नास्तिक सभी को समान मानती है।

अनुच्छेद 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर विभेद को प्रतिषेध करती है। मद्रास राज्य बनाम चम्पाकम दोरेराजन के वाद में जाति या धर्म के आधार पर मेडीकल और इन्जीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश का उपबन्ध करने वाले राज्य सरकार के आदेश को अनु. 29(2) और अनु. 15 का उल्लंघन माना तथा उक्त आदेश को अवैध घोषित कर दिया। इस निर्णय के पश्चात् प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 द्वारा अनु. 15(3) के बाद खण्ड (4) जोड़कर राज्य को सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के लिए या अनुसूचित जाति और अनुसूचति जनजाति के उन्नति के लिए विशेष उपबन्ध करने की शक्ति दी गयी। इसी प्रकार अभी हाल ही में संविधान (103वाँ संशोधन) अधिनियम, 2019 के द्वारा अनुच्छेद 15 में खण्ड (6) जोड़कर आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान बनाने के राज्य की शक्ति को अंतःस्थापित किया गया है।

अनुच्छेद 16 (1) राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति के संबंध में धर्म आदि के आधार पर नागरिकों के अपात्रता या विभेदीकरण का प्रतिषेध करता है। परन्तु राज्य को यह शक्ति है कि पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्ति या पदों के आरक्षण का उपबन्ध कर सकती है। संविधान (103वाँ संशोधन) अधिनियम, 2019 के द्वारा अनुच्छेद 16 में खण्ड (6) जोड़कर आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का प्रावधान करने के राज्य के शक्ति को अंतःस्थापित किया गया है। इसी प्रकार अनुच्छेद 25 (1) सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता का और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक देती है। परन्तु यह अधिकार लोक व्यवस्था सदाचार और स्वास्थ्य तथा भाग 3 के अन्य उपबन्धों के अधीन है।

स्टैनी स्लाव बनाम मध्य–प्रदेश राज्य के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि किसी व्यक्ति को बलपूर्वक धर्म परिवर्तन के लिये विवश नहीं किया जा सकता। राज्य बल–पूर्वक

धर्म परिवर्तन को रोकने के लिए अधिनियम बना सकती है। इस्माइल फारूखी बनाम भारत संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अनु0 25 और अनु0 26 केवल उन धार्मिक प्रथाओं को सुरक्षा प्रदान करते हैं जो धर्म के आवश्यक तत्व हैं। मस्जिद में नमाज पढ़ना इस्लाम धर्म का आवश्यक तत्व नहीं है। एक मुसलमान किसी भी स्थान पर नमाज पढ़ सकता है। अतः सरकार लोक व्यवस्था बनाये रखने के लिए मस्जिद का अधिग्रहण कर सकती है। इसी प्रकार मौलाना मुती सईद मोहम्मद नुरूर रहमान बरकती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य के वाद में अजान के समय माइक्रोफोन या लाउडस्पीकरों पर रोक के आदेश को अनु. 25 के उल्लंघन में नहीं माना है। इस विषय पर एक नवीन और ज्वलंत वाद–निर्णय खुर्शीद अहमद खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य उल्लेखनीय है। प्रस्तुत वाद में उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक आचरण नियमावली 1956 के नियम 29(1) के वैधानिकता को चुनौती दी गयी, जो सेवाकाल के दौरान पहली पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करने पर सेवा समाप्ति का उपबन्ध करता है। उच्चतम न्यायालय ने जावेद बनाम हरियाणा राज्य के वाद विनिश्चय का उल्लेख करते हुए निर्णय दिया कि अनु. 25 के अन्तर्गत धार्मिक विश्वास को संरक्षण प्राप्त है न कि उस आचरण को जो लोक व्यवस्था, स्वास्थ्य और नैतिकता के विपरित किया जाता है। बहुविवाह धर्म का आन्तरिक भाग नहीं है और एकल विवाह अनु0 25 के अन्तर्गत राज्य की शक्ति के भीतर एक सुधार है।

उपर्युक्त अनुच्छेदों के अलावा भी धार्मिक कार्यों के प्रबन्ध की स्वतंत्रता (अनु. 26), किसी विशिष्ट धर्म के अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय की स्वतंत्रता (अनु. 27), कुछ शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता (अनु. 28) आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

धार्मिक अपराध और दण्ड विधान–जीवन की विविधता के साथ–साथ अपराधों में भी विविधता उत्पन्न होती है। कुछ अपराध सामाजिक या नैतिक होते हैं और कुछ धार्मिक होते हैं। हमारे धर्मशास्त्रों में भी धार्मिक अपराध से सम्बन्धित दण्ड विधान देखने को मिलते हैं। उदाहरण के लिए देवालयों एवं देव प्रतिमाओं केा नष्ट करना एक गम्भीर अपराध समझा जाता है। मनु मन्दिर तोड़ने वाले का वध करवा देने को कहते हैं। याज्ञवल्क्य के अनुसार देवताओं पर आपेक्ष करना या निन्दा करने वालों को उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए। आज के इस कल्याणकारी युग में धार्मिक अपराधों के उक्त दण्ड विधानों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। विधि धर्म और विकास में संतुलन स्थापित करने का प्रयास कर रही है। यदि राज्य द्वारा कोई मन्दिर तोड़ा जाता है तो इसके पीछे उसका आशय धार्मिक भावना को ठेस पहुंचाना नहीं अपितु, पक्की सड़कें, मार्ग विस्तारीकरण, परिवहन सुविधा आदि के द्वारा राज्य का विकास करना है, जिसका उपभोग व लाभ सभी धर्मों को समान रूप से प्राप्त होगा। परन्तु यदि काई व्यक्ति किसी उपसना स्थल को नष्ट करता है, या अपवित्र करता है या धार्मिक विश्वास को अपमानित करता है या धार्मिक जमाव में विघ्न उत्पन्न करता है तो वह भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 295 से धारा 298 तक के द्वारा दण्ड का भागी होगा जो 2 वर्ष तक का कारावास या जुर्माना या दोनों हो सकता है।

राजस्थान राज्य में जैन धर्म के संलेखन या संथारा प्रथा को वर्तमान प्रकरण के रूप में उल्लिखित किया जा सकता है। संलेखन या संथारा प्रथा जैन धर्मावलम्बियों के जीवन के अंतिम पड़ाव पर स्वैच्छिक अन्न–जल त्याग कर देह त्यागने की प्रथा है जिसे राजस्थान उच्च न्यायालय ने भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 309 के अन्तर्गत आत्महत्या करने के प्रयत्न का अपराध घोषित किया है और यह कहा है कि संलेखन या संथारा प्रथा जैन धर्म का आवश्यक तत्व नहीं है। आगे यह भी कहा कि जो कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को संलेखन या संथारा करने के लिये उकसायेगा वह भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 306 के अन्तर्गत आत्महत्या का दुष्प्रेरण के अपराध का दोषी होगा। राजस्थान उच्च न्यायालय के इस निर्णय का जैन धर्मावालंबियों ने कड़ा विरोध किया और अन्ततः यह मामला उच्चतम न्यायालय जा पहुंचा। उच्चतम न्यायालय ने मामले की गंभीरता को देखते हुये राजस्थान उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय को तत्काल प्रभाव से अंतिम निर्णय आने तक प्रवर्तन कराने से स्थगित कर दिया और यह कहा कि यह

संलेखन या संथारा प्रथा भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 309 के अन्तर्गत आत्महत्या के प्रयत्न के अन्तर्गत नहीं आता। इस विषय पर माननीय उच्चतम न्यायालय का अंतिम निर्णय चाहे जो हो, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि भले ही संथारा भारतीय दण्ड संहिता 1860 के धारा 309 के अन्तर्गत अपराध नहीं है, लेकिन यह लोक व्यवस्था एवं सदाचार व स्वास्थ्य के विपरीत है। इसका दुरूपयोग भी हो सकता है। अभी इस विषय पर उच्चतम न्यायालय के मार्गदर्शन और विधायिका के उस विधि का इन्तजार है, जो मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बनायी जाय और जो उक्त समस्या का हमें संतुलित और सन्तोषजनक समाधान दे और हमें उससे ऊबार सके।

अभी हाल ही में उच्चतम न्यायालय में उस प्रावधान को चुनौती दी गयी जो सबरीमाला मन्दिर में 10 वर्ष से 50 वर्ष के महिलाओं के मन्दिर में प्रवेश पर रोक लगाता था। सुप्रीम कोर्ट ने ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए केरल के सबरीमाला मंदिर में महिलाओं को प्रवेश की अनुमति दे दी है। कोर्ट ने यह साफ कहा कि हर उम्र वर्ग की महिलाएं अब मंदिर में प्रवेश कर सकेंगी। चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा ने फैसला सुनाते हुए कहा कि ''धर्म के नाम पर पुरूषवादी सोच ठीक नहीं है। उम्र के आधार पर मंदिर में प्रवेश से रोकना धर्म का अभिन्न हिस्सा नहीं है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म और विधि का बहुत ही घनिष्ठ संबंध रहा है, यही कारण है कि विश्व के लगभग सभी देशों ने अपने संविधान में इसे समाहित किया है। धर्म के संबंध में विश्व के सभी देशों के संविधानों में उपबन्धों का सार यही है कि सभी नागरिकों को धर्म की स्वतंत्रता है। धर्म के नाम पर कोई भेदभाव नहीं है। वे किसी एक धर्म को न मानते हुये सभी धर्मों को समान महत्व देते हैं। एक दूसरा पहलू यह भी है कि उपरोक्त अधिकार आत्यांतिक नहीं है। प्रत्येक देश ने इस पर अपनी सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक, भाषायी तथा ऐसे ही अन्य आधारों पर कतिपय प्रतिबंध भी अधिरोपित किये हैं और विभेदीकरण भी किया गया है। स्वयं भारत में अनुच्छेद 25 में लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के आधार पर, अनुच्छेद 15 में स्त्रियों तथा बालकों के लिये विशेष उपबन्ध, सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछडे हुए वर्गों की उन्नति के लिये या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष उपबन्ध आदि के आधार पर विभेदीकरण किया गया है।

lUnHkZ %

1. घाना का संविधान, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार के तत्त्वावधान में हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित।
2. चीन का संविधान, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार के तत्त्वावधान में हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित।
3. डा० पाण्डेय, उमेशचन्द्र; हिन्दी व्याख्याकार, याज्ञवल्क्य स्मृतिः, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
4. डा० पाण्डेय, जे० एन०; 'भारत का संविधान'; 41वाँ संस्करण, 2008।
5. भारत का संविधान (103 वाँ) संशोधन अधिनियम, 2019
6. स्विटजरलैंड का संविधान, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार के तत्त्वाधान में हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित।
7. संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार के तत्त्वावधान में हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 16-18

egkdfoHkkjfo%

MkO 'kHkUn ikBd*

प्रायः सर्व एव सुरसरस्वतीसुधानन्दसन्दोहसम्मुग्धचेतसः साहित्यपारावारपारीणा स्तत्वविदो विपश्चितो जानन्त्येव यत् संस्कृतसाहित्यसंसृतौ समधिकप्रचारं महाकवि भारविलेखनीविगलितमतिप्राचीनं किरातार्जुनीयं नाम काव्यरत्नं विद्यमानानां पंचमहाकाव्यानां मध्येऽनुपममासनमासादयति इति।

इदानान्तानान्तेनवासिनश्च ग्रन्थानविकलमामूलमधीत्यापि तत्तत्कवि– कृति रहस्येतिहास– समय–निर्णयादिकमवगन्तुं कथमपि नो प्रभवन्तीति नाविदितं विदिवेदितव्यानां काव्यपरिशदमलङ्कुर्वतां तत्रभवताम्भवतामिति तामेव नुनमुपनिबन्धनीयामद्यतनां सरणिमनुसृत्य किंचन्निवेद्यते महाकवि भारविविषयो कोऽयं महापुरुषः कतमश्चास्य देशः–

अयः महामहिमशाली "नैक दिग्विदितिकीर्तिमाली पुरातनकविविधातृप्रसविंया भारतभूमेर्भूतिभूतो महाकविर्भारविर्दक्षिणप्रान्तान्तर्गत" अचलपुर (एलिचपुर) वास्तव्य आसीत्।

कतमद्वा कुलमनेन स्वजन्मनालङ्कृतम्–

कस्मिन् वंशेऽयं समुत्पन्न इत्यत्र यद्यपि सिद्धान्ततया किमपि प्रतिपादयितुं न शक्यते तथापि एतत्प्रबन्धनात्मकस्य नप्तृप्रणीत–

"अवन्तिसुन्दरी कथा सार" स्यालोचनया कौशिगोत्रावतंसस्य नासिक्यप्रान्त (नागपुर) अन्तर्गतस्या चलपुर (एलिचपुर) वास्तव्यस्य श्रीनारायणस्वामिनः कुलमंचकारेति सुस्पष्टं प्रतीयते।

कस्य महीपतेरास्थाने न्यवात्सीत्–

असौ प्रथमं चालुक्यवंशीयस्य राज्ञो विष्णुवर्धनस्य ततो गाङ्गेयकुलावतंसस्य श्रीमती दुर्विनीता–भिधानस्य ततश्च पल्लववंशीयस्य राज्ञः सिंहविष्णोश्च सरादमलमकरोत्।

कथमस्त्र प्रवृत्तिर्महाकाव्यरचनायाम्–

अस्य अस्यां महाकाव्यरचनायां काचिद्विशिष्टा प्रवृत्तिर्न प्रतीयते, कविकौशलख्यापनाय काव्यरचनापाटवपरीक्षणायैव वा विरचितं भवेदित्यनुमीयते। यतः रातशेखरः काव्यकारपरीक्षणावसरे कविगणनायां भारविमपि उल्लिलेख। श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकारपरीक्षा–

ßbg dkfynklesa.Bko=kej : i lqjHkko;%A
gfj'pUnzpUnzxqIrkS ijhf{krkfog fo'kkyk;keAAÞ

ततो भारविः आत्मनो विद्यागुरोज्ञया तेनैव परिशीलतां कुलशीलादिसम्पन्नां सर्वेरपि प्रकारैरात्मनोऽनुरूपां सुरूपां कामपि कन्यकामुपयेमे। अतएव हि अयं महाकविः स्वाभिलषितां कुलाङ्मानागुण सन्ततिमेव प्रथमे सर्गे–

xq.kkuqjDrkeuqjDr lk/ku%
dqykfHkekuh dqy tka ujkf/k;%A
ijSLRonU;% d bokigkj;su
eukSjekekRe o/kfeo fJ;eAA

इति श्लोक आत्मवधूदृष्टान्तव्याजेन "गुणानुरक्तां" "कुलजां" "मनोरमां" इति पदैः विशदीकुर्वन् "अनुरक्तसाधनः" कुलाभिमानी इति पदाभ्यां स्वस्य कुलाभिमानितां परिणयस्यात्मीय विद्यागुरूपुरूषकार साधनतां च निपुणमावेद यतीति अनिर्वचनायमानन्दमनु–भवन्ति रसिकावतंसा विमर्शकाः।

---

*ग्राम व पोस्ट : पोहद्दी, भाया– बेनीपुर, जिला : दरभंगा, बिहार

भारवेः कालविषयक सर्वेषां प्रामाणानां पर्यालोचनया अपि परस्परं विसंवदत्तो न कस्यचिदेकस्यापि मतं स्थिरीकर्तुं शक्यते, तथापि–

d'r r l{ef{kd ;k fopkj er eenn ifrHkkfr uueA
nkeknjk Hkkjfojkfojk lhPN"B ;k% 'krkC|k'pjek/ke/;AA

भारविः श्रीशङ्कराचार्यसम्मतं ब्रह्माऽद्वैतसिद्धान्तमेव स्वीकरोति समर्थशति च। श्रीशङ्कराचार्य ज्ञानस्यैव=आत्मज्ञानस्यैव, भवबन्धनिवर्तकत्वं कथयति। तत्र भारवेमर्ततपुष्टि सम्पादक श्रुतिप्रमाणमप्याह–

^vKkukno fg lllkjk Kkukno fou';fr*A
(योगतत्त्वोप0– 1/16)

एवम्– ^ijek}r foKkukr llkj% ifo.k';fr*A (सूतसंहिता)

तथाहि–

^ohrjktUetjl ij 'kfp&
Ckã.k% ineifrfePNrkeA
Vkxekfno rekigkfnr%&
lEHkofUr er;k vofPNn%AA* (किरातार्जुनीयम्, सर्गः–5/22)

अर्थात् वीत = निवृत्ते, जन्मजरसौ= जन्मवृद्धत्वे, यस्य तदित्यर्थः। इमे च जन्मवृद्धत्वेऽपि स्तः खल्वज्ञान विजृम्भिते। ब्रह्मणः= सच्चिदानन्देति स्वरूप लक्षण लक्षितस्य तस्य परब्रह्मपरमेश्वरस्य परमात्मनस्तादात्म्यापनं यत् परम्=सर्वोकृष्टं निरातिशायि शुचि= सर्वथा निष्कलङ्कम्। पदम्= हिमालयनामकं स्थानम्, ज्ञानलक्षणलक्षितरसस्वरूपब्रह्मतादात्मया– पन्नमित्यर्थः। मोक्षपदाधिधेयमिति त परमार्थः। उपेतुम्= प्राप्तुम्। इच्छताम् = इच्छावताम्, मोक्षविषयिणीच्छावतां भुमुक्षूणामित्यर्थः। अज्ञानस्वरूपं तमोन्धकारम्, सर्वथा निराकरोति इति यावत्। अर्थत् आगम् दर्शनशास्त्र विधानोक्तसत्कर्मानुष्ठानेनाऽज्ञानापरर्याय भूताऽविद्याजन्य कुमार्गगामित्वरूपाऽन्धकारस्वरूपस्य जगतो निवृत्तिर्जायते इति।

'सम्भवन्ति मतयो भवच्छिदः' इति पद्यघटकीभूतं 'मतय' इति पदं तत्वज्ञानरुपार्थसूचकमिति। 'मतय' तत्त्वज्ञानानि=आत्मज्ञानानि। भवच्छिदो भवन्ति।

एतावता कथनात्मकेन प्रबन्धेनेदमेव विज्ञायते यत् न केवलमयं नगाधिराजो हिमालयोऽस्ति कश्चित स्थानविशेष एव अर्थात् नास्ति केवलं भोगभूमि रेव किन्तु मोक्ष क्षेत्रमपि=मोक्षधामापीत्यर्थः।

अतश्च पारिशेष्यात् ज्ञानस्यैव= आत्म ज्ञानस्यैव! भव बन्धनिवर्तकत्वं सिद्धयति।

तथा चोक्तम्–

^Kku;KknM;uo ckã.kk ok·UR; tk·fiokA
Llkjlkxj rhRok efä ikj fg xPNfrAA* (सूत संहिता)

अपि च सच्चिदानन्दोऽपि भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रः स्वयंः ज्ञानस्य महत्त्वं वर्णितवान्। तथाहि–

bn Kkueikf J R; ee lk/kE;ekxrk%A
lxl·fi ukitk;Ur iy; u 0;FkfUrpAA (श्रीमद्भगवद्गीता–14/12)

भारविप्रभृतिभिः कविभिर्विरचितमहाकाव्यघटकीभूतदार्शनिक तत्वानां स्वरूप विषयक जिज्ञासा विषये सर्वतः प्राक्ः 'तत्त्व' शब्दादौ विचार्यते किं पुनस्तत्तम्? एवं रिणते दार्शनिकी तत्त्वविषयिणीं दुष्टिमाश्रित्य वात्स्यायनः प्रोवाच–

ßlr'p lnHkkok·lr'pk·lnHkko%AÞ (न्यायभाष्यम्–1/1)

'सत् सदिति गृहयमाणं यथा भूतमविपरीतं तत्त्वं भवति। असच्च असदिति गृहयमाणं यथा भूतमविपरीतं तत्त्वं भवति।'

अर्थात् सर्ता विद्यमानस्य धटादेः यः सद्भावः = सत्तवं = विद्यमानत्वमेव तत्त्वं विज्ञेयम्। एवम् असतः = विद्यमानस्य घटामानस्य घटादेर्नास्तीति प्रतीत्या बोध्यमानमविद्यमानत्वमेव यथाभूतमविपरीतं तत्त्वं बोध्यम्।

यथा– ßiek.kie; l'k; i;kstu---rÙoKkukfUu% J; lkf/kxe%Aþ (गौतमसूत्रम–1/1/1) इत्यादाखलु प्रमोमयादिकं तत्त्वं विज्ञेयम्।

lUnHk %

1. संस्कृतसाहित्येतिहासः पृष्ठसंख्या– 112।
2. प्रतीयते। – ततैव पृष्ठसंख्या–205।
3. श्रियम्– किरातार्जुनीयम् सर्ग–1।
4. मध्ये– संस्कृतसाहित्येतिहासः
5. विनश्यति– योगतलोपनिषद–116।
6. प्रविणश्यति– सूतसंहितायाम्।
7. अयच्छिदः–किरातार्जुनीयम् 5/22।
8. सूतसंहितायाम्।
9. सद्भावः – न्यायभाष्यम्– 1/1
10. साधिगमः– गौतमसूत्रम्–1/1/1।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 19-21

r|y lhnkl dk ;|xck/k

fdju*

महाकवि तुलसीदास जिन सामाजिक मूल्यों के उच्चादर्शों एवं मानवीय पीड़ा की मुक्ति की गाथा अपनी कृतियों में गाई है, वे सार्वभौम एवं सार्वदेशिक है। तुलसी की कृतियाँ आरक्षित तेज को निरन्तर दीप्त करती है। तुलसी ने अपने साहित्य में यथार्थ और आदर्श का सुन्दर सामंजस्य करते हुए सामाजिक दायित्व का पक्ष ग्रहण किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने युग की परिस्थितियों का यथा तथ्य चित्रण प्रस्तुत किया है। क्योंकि उनका युग मानवीय मूल्यों के संस्खलन का युग था। अपने युग की विषमताओं, विपन्नता और पीड़ा को तुलसी ने देखा ही नहीं स्वयं भोगा और सहा भी था। तुलसी युग में अनेक प्रकार की सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वास का बोलबाला था। वर्णाश्रम व्यवस्था का ढांचा सिर्फ बाह्य रुप से दिखायी देता था, परन्तु उनकी आन्तरिक उर्जा समाप्त हो चुकी थी। कर्मनिष्ठा, परस्पर सहयोग और संगठन की प्रवृत्ति का लोप हो चुका था। समाज में स्त्रियों की दशा दयनीय थी। राजमहलों से लेकर भारतीय नरेशों तक बहुपत्नीयत्व का प्रचलन था। समाज में नारी मात्र भोग्या बनकर रह गयी थी। उनकी शिक्षा–दीक्षा और व्यक्तित्व के विकास की ओर किसी का भी ध्यान नहीं था। जन साधारण के बीच भी नारी का स्थान सम्मान जनक नही था। तत्कालीन समाज आर्थिक दृष्टि से भ्रष्ट और संगठन की दृष्टि से विश्रृंखल हो गया था। समाज की इस दुरावस्था को देखकर तुलसी ने अपने युगबोध के सन्देश में सम्पूर्ण मानवता की रक्षा का भाव प्रदर्शित किया है। तुलसी ने रामचरितमानस तथा कवितावली के माध्यम से पूरे समाज को समरसता का संदेश देना चाहते थे। अतः वह समाज के सामने एक ऐसा समाज प्रतिष्ठित करना चाहते थे जो उनके सामने धर्मनीति का आदर्श रखे तथा उनके सुख–दुःख में काम आये। तुलसी के राम ऐसे ही युग पुरूष है। जिनके यहाँ न कोई छोटा है न कोई बड़ा है, न वहाँ जाति है, न वर्ण है और न किसी प्रकार के अहंकार की गुंजाइश वही राम विश्वरुप में कण–कण में व्याप्त है।

lh; jkee; lc tx tkuhA djg iuke tkfj t|x ikuhA[1]

तुलसी के राम संसार में अधर्म को मिटाकर धर्म की स्थापना करने आये थे, पुण्य की पाप पर विजय दिलाने आये थे। तुलसी के राम का अवतार ही 'बिप्र–धेनु–सुन संत हित' के लिए हुआ था। ये रावण जैसे लोक पीड़क का विनाश करके लोक–लोक में मंगल का विधान करने आये थे। जिससे सम्पूर्ण मानवता की रक्षा हो सके।

tc tc gkbl /kje dl gkuhA ck<fg v l|j v/ke vfHkekuh
rc rc iHk| /kfj fofo/k ljhjk] gjfg d'ikfuf/k lTtu ihjkA[2]

तुलसी ने राम के आदर्श चरित्र के द्वारा जिस मूल्य निष्ठ जीवन शैली का विधान किया। वह व्यापक स्तर पर मंगल साधना का उत्कृष्ट उदाहरण है। राम अपने बाल्य काल से वही करते हैं जो लोकहित साधक है–

tfg fof/k l|[kh gkfg i|j ykxk] djfg d'ik fuf/k lkbl l tkxkAA

तुलसी ने अपने राम में मानवीय छवि देखा हैं जिसमें जन्मभूमि के प्रति प्रेम, निर्धन और परित्यक्तजनों के प्रति अपार प्रेम दिखायी देता है। वह आकस्मिक नहीं है। स्वयं उनके हृदय में जो प्रेम प्रवाहित हुआ था, वही राम में साकार हो गया और उन्होंने कहा भी था–

tkdh jgh Hkkouk tlh gfj ejr nf[k rhUg rlhA

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

तुलसी ने अपनी भावना के अनुसार ही राम को राममय, अपार करूणामय देखा है। गोस्वामी जी ने श्रीराम के व्यक्तित्व को उदात्त और मंगलकारी रूप में प्रस्तुत किया है। गोस्वामी तुलसीदास जी मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने की प्रेरणा देते है। 'स्व' का त्याग और 'पर' की स्वीकृति ही मानवता है–

cM Hkkx ekuq"k ru ikok lqj nqyZHk lc xzUFkfg xkok
lk/ku /kke ek{k dj }kjk] ikb u tsfg ij ykd laokjkAA[3]

तुलसी यह मानते है कि यह संसार सुन्दर है, ग्राह्य है, भोग्य है। असत्य तथा मिथ्या होते हुए भी संग्रहणीय है– घर तथा वन दोनों का मिलाकर रहने का सुख ही संसार का सुख है।

^^?kj dhUg ?kj tkr g ?kj NkM ?kj tkfg
Rkqy lh ?kj ou ch;fg] jke ize iqj Nkb**

तुलसी का सामाजिक युग बोध समतामूलक दृष्टि पर आधारित है। तुलसी ने जिस काल्पनिक राम राज्य की सृष्टि की है, उस राम राज्य में सभी नर–नारी परस्पर प्रीति से बंधे हुये है। उनमें किसी प्रकार का दुराव या कपट नहीं है। सभी ने स्वधर्म को श्रुतिनीति से स्वीकार किया है–

nfgd nfod Hkkfrd rkikA jke jkt ufg dkgfg 0;kikAA
lc uj djfg ijLij ihfrA pyfg Lo/ke fujr Jfr uhfrAA[4]

तुलसी ने हमारे सामने जिस परिवार को आदर्शरूप में प्रतिष्ठित किया है। वह वस्तुतः सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया पर आधारित है। तुलसी ने सभी सम्प्रदायों पंथो के ग्रहणीय गुणों को समन्वित करके रामकथा का ताना–बाना बुना है। तुलसी ने जिस धर्म की स्थापना की है उसे विश्व का कोई धर्म नकार नही सकता।

ijfgr lfjl /ke ufg HkkbA ij ihMk le ufg v/kekbAA
fu.k; ldy iqjku ondjA dgq rkr tkufgdkfon ujAA[5]

तुलसी ने कर्म पर जोर देते हुये कहा है कि जीवन में आने वाली शुभ–अशुभ, सुख–दुःख की स्थितियाँ कर्मों का ही परिणाम होती है। राम धर्म के विग्रह कहे जाते हैं। जो लोक कल्याणकारी आचरण है, वही धर्म है। तुलसी के राम धर्म सेतु हैं। जो धर्म को जोड़ता है वही सेतु होता है। राम का चरित्र ऐसा ही सेतु है। जिस पर चढ़कर छोटा से छोटा प्राणी भी सफलता से जीवन–समर का महासमुद्र पार कर लेता है।

vfr vikj t lfjr oj tk ul lr djkfgA
pf< fiihfydm ije y?k fcu Je ikjfg tkfgAA

जाति का प्रश्न समाज के लिए एक जटिल समस्या बना रहा है। मध्यकालीन समाज में इसकी विसंगतिया और अधिक गहरी होती गयी है। तुलसी ने अपने समय व समाज के नब्ज को भली–भॉति टटोला था। भारतीय समाज का सामाजिक स्तर जब अपने अन्तिम पड़ाव पर था ऐसे में तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से समाज को एक उच्च आदर्श पर स्थापित करने का काम किया। वर्ण व्यवस्था के माध्यम से उन्होंने समाज के सभी वर्गों को एक साथ एक–आंगन में ला खड़ा किया। 'राम लला नहछू' में आये दशरथ के आँगन का जिक्र उनका एक स्पष्ट उदाहरण है। जिसमें नाईन, तेलिन, अहिरीन, कुम्हारिन, मालिन, चमारिन आदि एक साथ हँसी–ठिठोली करती है। वहाँ पर जाँति–पाँति का भेद आपस में नहीं टकराता बल्कि सौहार्दपूर्ण माहौल एक स्वस्थ समाज का निर्माण करता है। 'रामचरितमानस' में चित्रित वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था अक्सर लोगों के दिमाग में खटकता है किन्तु उन्हें तुलसीदास की वह दैन्य, स्थिति नहीं दिखती है जिसका जिक्र स्वयं उन्होंने कवितावली में किया है।

जाति व्यवस्था के सन्दर्भ में अधिकतर विद्वान तुलसी को इस्लाम विरोध, वर्णाश्रम धर्म समर्थक और हिन्दूवाद तथा ब्राह्मणवाद का पोषक कहते है। तुलसी काव्य में ऐसे अंश भी है, लेकिन वहीं वे इन संकीर्णताओं से आगे बढ़कर अपनी उन स्थापनाओं के विरोध में खड़े दिखते हैं। तुलसी गोरपंथियों की निन्दा करते पर इस्लाम के विरोध में कुछ नहीं बोलते। वह मांगकर खाने व मस्जिद में सोने की बात करते हैं।

ekfx d| [kbok e lhr e| lkbok
y|ck dk ,d u nok dk nkÅAA[6]

मस्जिद पर सोने वाले तुलसी को इस्लाम विरोधी कैसे कहा जा सकता है। इसी प्रकार तपस्वी ब्राह्मण परसुराम का उपहास करते है। महापण्डित लोकपीड़क ब्राह्मण रावण का वध कराते हैं तो उनके समक्ष जाति श्रेष्ठता–अश्रेष्ठता का कोई आधार नहीं है। यदि कोई कसौटी है तो आदर्श की कसौटी। यह कि तुलसी वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते हुये प्रतीत होते हैं। पर इस समर्थन के पीछे भी उनका एक बड़ा उद्‌देश्य और अनिवार्य कारण है। तुलसी का समय हिन्दू समाज के आन्तरिक विघटन का कारण है। उस समय छोटे–छोटे सम्प्रदायों के आपसी मतभेदों और कर्मकाण्डों में सारी सामाजिक व्यवस्था चरमरा रही थी। तुलसी ने इस टूटती हुयी व्यवस्था के समर्थन की बात की।

रामविलास शर्मा के शब्दों मे–''वर्ण धर्म के समर्थन को तुलसीदास के विचारों की ऐतिहासिक सीमा स्वीकार किया जा सकता है। पर इसके बावजूद तुलसी जातिगत संकीर्णता के समर्थक थे एक नहीं अनेक स्थल पर जातिवादियों को चुनौती देते हैं''

e|j| tkfr ikfr] u pgk dkg dh tkfr ikfrA
e|j| dkÅ dke dk] u gk dkg d| dke dkAA[7]
/kr dgk] vo/kr dgk] jktiir dgk] tkygk dgk dkÅ
dkg dh cVh l| cVk u 0;kgc] dkg d| tkr foxkjc u lkÅAA[8]

तुलसीदास जी स्पष्ट कहते हैं कि जो राम का गोत्र है वही मेरे गोत्र है। 'रामचरितमानस' के बाद 'कवितावली' तुलसी की दूसरी महत्वपूर्ण रचना है। इसके अनेकानेक छंद हिन्दी क्षेत्र में गूंजते है और तुलसी प्रेमियों के बीच आज भी गूंज रहे हैं। उनमें अल्पाधिक परिपक्वता सृजनात्मक कल्पनाशीलता, तज्जनिक मन को मुग्ध कर देने वाले सौन्दर्य हैं। कवितावली तुलसी के यथार्थ चित्रण का पारिवारिक दस्तावेज है। इसमें राम के चरित्र को उभारने के साथ–साथ तत्कालीन युगबोध को भी यथार्थ रूप में चित्रित करने की भरपूर कोशिश की गयी है। 'कवितावली' का उत्तरकाण्ड युगबोध की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसमें तत्कालीन समय का जो सहज अंकन किया गया है। उसे वनमार्ग में जाते हुये राम, लक्ष्मण, सीता का सहज लौकिक सौन्दर्य और अधिक प्रेरक व सुगम बना देता है। युगबोध की दृष्टि से 'कवितावली' समूचे मध्यकालीन समाज का जो चित्रण प्रस्तुत होता है। उसका सीधा सम्बन्ध आधुनिक काल से भी है यही कारण है कि कवितावली का उत्तरकाल आज के समाज से सीधा सरोकार रखता है और दुर्बुद्धि में पेड़ जीवों को राम का चरित्र सद्‌बुद्धि प्रदान करता है।

l UnHk %

1. रामचरितमानस, तुलसीदास, प्रकाशन गीता प्रेस, भाष्य–हनुमान प्रसाद पोद्‌दार, संस्करण 2067 दो सौ बयालीसवाँ पुनर्मुद्रण, बालकाण्ड दोहा–7
2. रामचरितमानस, तुलसीदास, प्रकाशन गीता प्रेस, भाष्य–हनुमान प्रसाद पोद्‌दार, संस्करण 2067 दो सौ बयालीसवाँ पुनर्मुद्रण, बालकाण्ड दोहा–120
3. रामचरितमानस, तुलसीदास, प्रकाशन गीता प्रेस, भाष्य–हनुमान प्रसाद पोद्‌दार, संस्करण 2067 दो सौ बयालीसवाँ पुनर्मुद्रण, बालकाण्ड दोहा–120
4. रामचरितमानस, तुलसीदास, प्रकाशन गीता प्रेस, भाष्य–हनुमान प्रसाद पोद्‌दार, संस्करण 2067 दो सौ बयालीसवाँ पुनर्मुद्रण, बालकाण्ड दोहा–20
5. रामचरितमानस, तुलसीदास, प्रकाशन गीता प्रेस, भाष्य–हनुमान प्रसाद पोद्‌दार, संस्करण 2067 दो सौ बयालीसवाँ पुनर्मुद्रण, उत्तरकाण्ड दोहा–40
6. कवितावली, उ0 काण्ड 106
7. कवितावली, उ0 काण्ड 107
8. कवितावली, उ0 काण्ड 108

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 22-29

eY;ijd f'k{kk % Ekkuoh; thou e eY;k d fodkl dk ,d lkFkd dne

/kut ; Hkkjrh*] MkO Nk;k lkuh**

**ukfLr fo|k le p{kukfLr lR; le ri%A
ukfLr jkx le n%[k] ukfLr R;kx le l[keAA** वृहन्ना पुराण

अर्थात् विद्या के समान नेत्र, सत्य के समान तप, राग के समान दुःख तथा त्याग के समान कोई सुख नहीं है। इस प्रकार विद्या, सत्य तथा त्याग की भावना अत्यधिक महत्वपूर्ण मूल्य है। इस प्रकार अर्वाचीन भारतीय साहित्य में भी मूल्यों को विशेष स्थान दिया गया है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि 'मानवीय जीवन मूल्य' किसी न किसी रूप में प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्णित है।

मनुष्य एक मनोशारीरिक व सामाजिक प्राणी है जो अपने प्रज्ञा और आवश्यकतानुसार परिवार, समाज तथा राष्ट्र में व्याप्त सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों की पहचान व परख कर उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करता है। जिस प्रकार शरीर की संरचना के लिए जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी तथा आकाश की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार मानव व्यक्तित्व के विकास के लिए मानवीय मूल्यों की अत्यन्त आवश्यकता है। मानव स्वयं देश काल व परिस्थिति के अनुसार मूल्यों का सृजन कर उन्हें धारण करता है और इसके अनुसार कार्य निष्पादित करता है। अतः मानव मूल्य मनुष्य को सही–गलत की पहचान करने, उन्हें नियंत्रित करने तथा उपयुक्त परिस्थिति अनुसार व्यवहार करने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मानव द्वारा किये जाने वाले सभी कार्य मूल्यों द्वारा ही प्रेरित व नियंत्रित होते हैं। मूल्य शब्द की संरचना संस्कृत शब्द के मूल धातु से ;r प्रत्यय लगाने से हुई है। जिसका अर्थ कीमत या मजदूरी से है। uhfr'kkL= के अनुसार मूल्य से आशय ऐच्छिक क्रिया या आचरण से है। Mk jk/kkdey e[kth ने मूल्यों की परिभाषा देते हुए कहा है कि ''जो कुछ भी इच्छित है, वही मूल्य है।''

मानवीय मूल्य एक अमूर्त सम्प्रत्यय है जो मनुष्य में अन्तर्निहित सद्गुणों का समुच्चय होता है जिसका सम्बन्ध मानव के भावात्मक पक्ष से होता है जो उसके आन्तरिक एवं बाह्य आचरण तथा समस्त व्यवहार को नियंत्रित व निर्देशित करता है। प्रत्येक सम्प्रदाय व समाज के लिए अलग–अलग मूल्य निर्धारित है परन्तु शाश्वत मूल्य सभी के लिए एक समान है। अन्तर्राष्ट्रीय विश्व कोष के अनुसार &^^eY; dk vFk fu;ek d ml lePp; l fy;k tkrk g] tgk 0;fDr d pfj= rFkk lekftd nyk dk fu;f=r fd;k tkrk gA^^ काने के अनुसार&^^eY; o vkn'k g] ftUg lekt d vf/kdk'k lnL;k u viuk fy;k gA^^ आलपोर्ट के अनुसार– **eY; ,d ekuo fo'okl g ftld vk/kkj ij eu"; ojh;rk inku djr g, dk;l djrk gA** फिंलक महोदय के अनुसार–**eY; ekud :ih ekun.M g ftud vk/kkj ij eu"; viu lkeu mifLFkr fØ;k fodYik e l p;u dju e iHkkfor gkr gA**

मानव जीवन में मानवीय मूल्यों का विकास करना शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है। रविन्द्रनाथ ठाकुर तथा महर्षि अरविन्द आदि विद्वानों का कहना है कि f'k{kk ekuo dk efDr dk jkLrk fn[kykrh g] ekuo dk ckf)d o HkkokRed :Ik l bruk etcr ,o nf"Voku cukrh g fd og Lo;a vkx c<u d ;kX; gk tkrk gA मूल्य आधारित शिक्षा उतनी ही पुरानी है जितनी कि मानव

*शोधछात्र, शिक्षा संकाय (क), का0हि0वि0वि0, वाराणसी

**सहायक आचार्या, शिक्षा संकाय (क), का0हि0वि0वि0, वाराणसी

सभ्यता। भारत में शिक्षा वैदिक युग से लेकर आज तक प्रकाश का स्रोत है, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सही पथ प्रदर्शन करती रही है। इस सम्बन्ध में एक विद्वान का कहना है कि ^^Kku euq"; dk rhljk u= g] tks mls leLr rÙoksa ds ey dk le>us dh {kerk inku djrk ,oa mls mfpr 0;ogkj djus dh le> iznku djrk gSA^^ शिक्षा एवं मानवीय मूल्य के आधार पर ही मनुष्य सामाजिक जानवर से ऊपर उठकर नैतिक अथवा मानवीय प्राणी कहलाता है। अच्छा, बुरा, गलत, सही के मापदण्ड पर ही व्यक्ति, वस्तु, व्यवहार व घटना की परख की जाती है। ये मापदण्ड ही मूल्य कहलाते हैं और भारतीय परम्परा में ये मूल्य ही धर्म कहलाता है अर्थात् 'धर्म' उन शाश्वत् मूल्यों का नाम है जिनके मन, वचन, कर्म की सत्य अभिव्यक्ति से ही मनुष्य, मनुष्य कहलाता है अन्यथा मानव और पशु में भला क्या अन्तर रह जायेगा। धर्म का अभिप्राय है मानवोचित आचरण संहिता, यह आचरण संहिता ही मानव मूल्य हैं। मानव मूल्य के साथ ही व्यक्ति अपना, परिवार, समाज, राज्य व राष्ट्र का विकास करता है। इसके अभाव में मानव का जीवन पशुजन्य जीवन हो जायेगा अर्थात् समाज मानवीय मूल्य रहित होगा।

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक एवं राष्ट्रीय मूल्य सभी अलग–अलग होते हैं। इन सभी मूल्यों का भारतीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। xka/kh th ने धर्म एवं राजनीति मूल्यों के सम्बन्ध को बताते हुए कहा है कि धर्म के बिना राजनीति मौत का फन्दा है तथा हमारा बाह्य जीवन हमारे आन्तरिक जीवन का प्रतिबिम्ब है। आज हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को लेकर इस भौतिकवादी जीवन में मानवीय मूल्य को निरन्तर भूलते जा रहे हैं। जिसका दुःखद परिणाम हमारे सामने है। शैक्षिक मूल्यों की बात की जाये, जो शिक्षा के सैद्धान्तिक व व्यवहारिक रूप में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से छिपा है साथ ही ये शिक्षक एवं शिक्षार्थी के बीच के सम्बन्धों को भी दर्शाता है और मूल्य शिक्षक एवं शिक्षार्थी के अवांछित कार्यों को भी नियंत्रित करता है। शैक्षिक मूल्य शिक्षक एवं शिक्षार्थी को आदर्श, प्रेरणा, अनुशासन प्रदान कर सफल बनाने में सहायक होते हैं। आज के भौतिकवादी युग में शैक्षिक मूल्यों का विलोपन बहुत तेजी से हो रहा है। अतः वर्तमान समय में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता परिलक्षित हो रही है।

आज हम एक संक्रमण काल से गुजर रहे हैं जहाँ मानवीय मूल्यों में लगातार ह्रास एवं परिवर्तन हो रहे हैं। एक समय था जब जिन मूल्यों को निकृष्ट समझा जाता था आज उन्हीं मूल्यों का मानवीय मूल्यों में बहुत तेजी से समावेश हो रहा है। जिसके परिणाम से आज हम सब भली–भाँति अवगत हैं जिससे सम्पूर्ण विश्व में उथल–पुथल मची हुई है। आज मूल्यों में नहीं बल्कि हमारे समाज में सुधार करने की जरूरत है। मूल्यों के क्रियान्वयन का मुख्य आधार परिवार है। अरस्तू के अनुसार– tUe ds le; ckyd dk efLr"d dksjh LysV gksrk gSA इसी को रोम की भाषा में *Vscqyk jklk* कहा जाता है। मनुष्य में मानवीय मूल्यों का विकास जन्म से ही शुरू हो जाता है। बालक एक परिवार में जन्म लेता है और परिवार से संस्कार, आदर, प्रेम, दया, दान, सहयोग, सहिष्णुता, सदाचार, आस्था एवं विश्वास, आचार–विचार, रहन–सहन आदि मानव मूल्यों को आत्मसात् करता है। बढ़ती उम्र के साथ–साथ वह सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों व आदर्शों आदि से अवगत होता है तथा इन्हें ग्रहण करता चला जाता है और इन्हीं मूल्यों के साथ अपने व्यवहार को प्रदर्शित करता तथा उसका आचरण भी उसी के अनुरूप करता है। समाज में साकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के मूल्य व्याप्त होते हैं। जो बालक के परिवारिक वातावरण एवं रूचि पर निर्भर करता है कि वह किस तरह के मूल्यों को अपने अन्दर धारण करता है। यदि बालक समाज के अच्छे मूल्यों को आत्मसात् कर लेता है तो वह आगे चलकर समाज का पथ–प्रदर्शक बन जाता है तथा उम्र के साथ बढ़ते अनुभवों के आधार पर सामान्य सिद्धांत का निर्माण करता है जो मानव आचरण को नियंत्रित व निर्देशित करता है, जो मानवीय मूल्य कहलाता है। रूसो का कथन है कि ** euq"; Lora= iSnk gksrk gS ijUrq og lo= cfM+;ksa ls tdMk gqvk gSA** इसका तात्पर्य है कि मनुष्य संसार में स्वतंत्र रूप से जन्म तो लेता है परन्तु वह मानवीय मूल्यों व आदर्शों से घिरा रहता है। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने ठीक कहा है कि **euq"; ,d lkekftd izk.kh gSA** समाज का सदस्य होने के नाते समाज के द्वारा निर्मित नियमों व आदर्शों का पालन करना पड़ता

है। किसी भी देश के मूल्यों का निर्धारण उस देश के दर्शन तथा वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप होता है। देश की परिस्थितियों में परिवर्तन होने से उसके मूल्य में भी परिवर्तन होता रहता है।

oreku e ekuo ,o eY; % परिवार समाज की सबसे छोटी किन्तु सबसे महत्वपूर्ण इकाई है। जिसकी अवधारणा समूचे विश्व में विद्यमान है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में परिवार के दो रूप हैं– 1. संयुक्त परिवार 2. एकल परिवार। संयुक्त परिवार का महत्व भारतीय संस्कृति में प्रचीन काल से रहा है। कुछ परिवार तो सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु भी रहे हैं। संयुक्त परिवार एक बड़ा परिवार होता है जिसके अन्तर्गत परिवार के सभी सदस्य अन्तःक्रिया करते हैं, सुरक्षित महसूस करते हैं तथा किसी भी समस्या से निपटने के लिए संयुक्त रूप से तत्पर रहते हैं। संयुक्त परिवार में दो या तीन पीढ़ी के सदस्य एक छत के नीचे रहते हैं, जहॉ प्रत्येक व्यक्ति के विकास तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सभी सदस्य मिलकर निरन्तर प्रयासरत् रहते हैं। प्रत्येक परिवार की अपनी संस्कृति, संस्कार व मूल्य होते हैं जो निरन्तर पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहते हैं। इस प्रकार संयुक्त परिवार के संदर्भ में निम्न मूल्य परिलक्षित होते हैं–

1. परिवार के सभी सदस्य एक–दूसरे से HkkokRed रूप से जुड़े रहते है।
2. एक–दूसरे के प्रति lg;kx की भावना रखते हैं।
3. एक–दूसरे के प्रति lj{kkRed दृष्टिकोण रखते हैं।
4. एक–दूसरे के प्रति ie तथा R;kx की भावना होती है।
5. एक–दूसरे के प्रति lEeku की भावना रखते हैं।
6. बच्चों में पारिवारिक संस्कृति, संस्कार, आदर्श व मूल्यों के आधार पर स्वयं अनुशासन की भावना विकसित होती है।
7. संयुक्त परिवार में बच्चों की स्वास्थ्य तथा pkfjf=d विकास का भरपूर अवसर मिलता है।
8. संयुक्त परिवार में रहने से बच्चों में lnHkko] lg;kx] lEeku] ie] R;kx आदि मूल्यों की भावना विकसित होती है।

इस प्रकार संयुक्त परिवार से ही अच्छे संस्कारों व मूल्यों का जन्म होता है, जिसे बालक समयानुसार अंगीकार करता रहता है।

सम्पूर्ण विश्व में कुछ दशक पूर्व से औद्योगिक क्रान्ति ने विश्व समाज के दृष्टिकोण में अमूलचूल परिवर्तन किया है। जिसके कारण विश्व की सभी संस्कृतियाँ एक–दूसरे में मिलने–जुलने लगी हैं। भारत में विश्व की पाश्चात्य जीवन शैली का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति भौतिक सुख, निजी स्वार्थ, पद, सोहरत और पैसा को ही अपना समृद्ध व सरल जीवन समझता है। इस प्रकार आधुनिकता एवं पश्चिमी जीवन शैली ने हमारे सामाजिक, नैतिक मूल्यों, आदर्श, संस्कृति तथा हमारी समृद्धशाली परम्परा को छिन्न–भिन्न कर दिया, जिसके फलस्वरूप भारत में एकल परिवार की संकल्पना का जन्म हुआ। एकल परिवार में व्यक्ति समाज से अलग होकर स्वयं भौतिक सुख–सुविधा की कल्पना करने लगता है जो मानवीय मूल्य सत्य, अहिंसा, दया, ममता, प्रेम, सहयोग, सदाचार, परोपकार, त्याग, मानवता, भाईचारा आदि से दूर करता है। ऐसी स्थिति में एकल परिवार के लोग एकांकी हो जाते हैं तथा अपना समय एक–दूसरे से मिलने के बजाय एक कमरे में ही टेलीविजन, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, मोबाइल आदि पर समय व्यतीत करते हैं जिसके परिणाम स्वरूप एकल परिवार में मानवीय मूल्यों का विकास सुचारू रूप से नहीं हो पाता है। जिससे आज इन मूल्यों का स्थान अहंकार, छल, कपट, असत्य, झूठ, द्वेष, मद, प्रमाद, अधर्म, घृणा, ईर्ष्या, लोभ, अन्याय, काम, क्रोध, हिंसा, आवेश, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, अत्याचार, दुराचार, अनैतिकता, कर्तव्यविमूढ़ता, आतंकवाद, नृशंस हत्यायें एवं अशान्ति... इत्यादि ले रही है। इस प्रकार आज का शिक्षित मानव; मानव के लिए विश्वबंधुत्व की भावना को छोड़कर कष्टदायक साधन बन चुका है। ऐसे परिवर्तनशील समय में मानव को मूल्यपरक शिक्षा देकर समाज का परिणात्मक एवं गुणात्मक विकास किया जा सकता है तथा मानव के नाकारात्मकयुक्त प्रवृत्ति को नियंत्रित व निर्देशित किया जा

सकता है और मानवीय मूल्यों को पुनः मूल्यपरक शिक्षा के माध्यम से मानव जीवन में स्थापित कर मानव व्यवहार में परिवर्तन लाया जा सकता है।

eY;ijd f'k{kk % मूल्यपरक शिक्षा की अवधारणा आधुनिक एवं नवीन है। मूल्यपरक शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा से है जिसके अन्तर्गत नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा दी जाती है। विभिन्न विषयों को मूल्यपरक बनाकर शिक्षार्थियों को शिक्षा दी जा सकती है तथा उनके व्यक्तित्व को संतुलित एवं सर्वतोन्मुखी विकास के लिए प्रेरित भी किया जा सकता है। संस्कृत में एक श्लोक है– *Kkurrh; euTkL; u=e leLr inkFk foykd n{;%* अर्थात् दोनों नेत्रों के देखने से जो अपूर्ण रह जाता है वह विद्या रूपी तृतीय नेत्र से देखा जा सकता है। शिक्षा मानव के विकास एवं चरित्र निर्माण का प्रमुख आधार स्तम्भ है जो उसे कुशल एवं प्रशिक्षित कर प्रगति के पथ पर ले जाती है। मानवीय जीवन मूल्यों का विकास मानव जन्म से ही प्रारम्भ हो जाता है। ये मूल्य मानव समाज में सकारात्मक एवं नाकारात्मक दोनों पक्षों में विद्यमान रहता है। मानव समाज ने अपने सर्वांगीण विकास के लिए साकारात्मक मूल्यों को सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा नाकारत्मक मूल्यों को अस्वीकार कर दिया। परन्तु आज भूमण्डलीकरण के दौर में वैज्ञानिक व संचार क्रान्ति के युग में जीवन मूल्यों का क्षरण अत्यधिक तीव्र गति से हो रहा है। वर्तमान समय में भौतिक संसाधनों के *;u du idkj.ku* उपलब्ध करने की मानवीय लालसा के कारण समूचे विश्व में उथल–पुथल मची हुई है, जो सम्पूर्ण विश्व के लिए एक अत्यधिक महत्वपूर्ण चुनौती है। मानवीय मूल्यों की स्थापना मूल्यपरक शिक्षा के माध्यम से ही की जा सकती है। तो प्रश्न यह है कि मूल्यपरक शिक्षा क्या है? मूल्यपरक शिक्षा से हमारा तात्पर्य उस शिक्षा से है जिसमें आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक, समाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य समाहित हो और प्रत्येक विषय को मूल्यपरक बनाकर उसके द्वारा प्राचीन व नये जीवन मूल्यों को विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में समाहित करना, ताकि विद्यार्थियों का सन्तुलित एवं सर्वांगीण विकास हो सके। प्रो0 अर्बन ने अपनी पुस्तक "A Fundamental of Ethics" में वर्णन किया है कि **eY;ijd f'k{kk og f'k{kk gS tks ekuo bPNk dh rfIr djs tks 0;fDr rFkk mldh tkfr ds lj{k.k es lgk;d gk** मूल्यपरक शिक्षा से मेरा तात्पर्य है कि ''मूल्यपरक शिक्षा शाश्वत् मूल्यों एवं सद्गुणों का समुच्चय है जिससे मनुष्य साध्य को प्राप्त करने के लिए मानदण्डों का निर्माण एवं व्यक्तित्व का विकास करता है।''

आज हम एक नाजुक संक्रान्ति के दौर से गुजर रहे हैं जिसमें मनुष्य के लोभीपन, स्वार्थीपन एवं भौतिक वस्तुओं के अधिकाधिक प्रयोग के कारण मानवीय मूल्यों का विघटन भारत में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में हो रहा है। प्रचीन काल में भारत के शाश्वत् मूल्यों एवं शैक्षिक चिंतन की प्रतिष्ठा विश्व पटल पर छायी हुई थी, जिसकी वजह से अनेक विदेशी भारत आयें और यहाँ के मूल्य व संस्कृति को सीखा। शाश्वत् मूल्यों (धर्म, सदाचार, सत्य, अहिंसा, प्रेम, शान्ति) की प्रतिष्ठा के कारण ही भारत को विश्व गुरू की उपाधि मिली। भारत में मूल्यों का स्रोत वेद है जिसमें से रामायण एवं महाभारत मूल्यों की एक अनमोल कृति है जिसमें सभी प्रकार के मूल्यों का वर्णन है। हालांकि भारतीय साकारात्मक एवं नाकारात्मक मूल्यों का विघटन सबसे अधिक अंग्रेजी शासन के दौरान हुआ क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा पद्धति धार्मिक एवं नैतिक शिक्षण पद्धति पर आधारित न होकर व्यवसायिक थी। आज हम धनोपार्जन की होड़ में शाश्वत् मूल्यों को खो रहे हैं। स्वतंत्रता पश्चात् भारत में मूल्यों को प्रतिस्थापित करने की दृष्टि से भारतीय संविधान में लोकतान्त्रिक व्यवस्था के छः (स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, न्याय, समाजवाद एवं धर्मनिरपेक्षता) मूल्यों का समावेश है। हम सभी को भारत का नागरिक होने के नाते इन मूल्यों को सम्मान के साथ व्यवहार में लाना होगा। दूसरी तरफ मूल्यों के विकास के लिए समय–समय पर भारत सरकार द्वारा विभिन्न आयोगों एवं समितियों का गठन किया गया। जैसे–मुदालियर आयोग (1952–53), मूल्यांकन समिति (1956), ध ार्मिक एवं नैतिक शिक्षा (1959), कोठारी आयोग (1964–66), संविधान की धारा 28 एवं 30 में भी सामाजिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक शिक्षा के साथ–साथ विभिनन मूल्यों को महत्व दिया गया है। एन0सी0ई0आर0टी0 शिक्षण संस्थान ने मानवीय मूल्यों के विकास के लिए शिक्षा में 83 मूल्यों की सूची

तैयार की थी, जिसे बाद में विचार–विमर्श के उपरान्त इस लम्बी सूची को पंचमूल्य सूत्र में परिवर्तित कर दिया गया। ये मूल्य इस प्रकार हैं–सफाई, सच्चाई, श्रम, समानता एवं सहयोग। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में मूल्यों के विकास के लिए नैतिक शिक्षा पाठ्यक्रम को महत्व दिया गया है। यह भी कहा गया कि शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों में शाश्वत् मूल्यों का विकास किया जाना चाहिए। पी0ओ0ए0 (प्लान ऑफ एक्शन) में धर्मनिरपेक्षता, वैज्ञानिकता, नैतिकता, समाज सेवा, श्रम के प्रति आदर, पर्यावरण संरक्षण, संस्कृति बोध, राष्ट्रीय एकता जैसे मूल्यों के विकास पर बल दिया गया है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने भारतीय संस्कृति पर अक्षुण छाप छोड़ी है जिसके कारण मानवीय मूल्यों का तीव्र गति से पतन हो रहा है। वर्तमान वातावरण ने मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता की ओर सभी का ध्यान आकृष्ट किया गया। अतः भारतीय समृद्धशाली एवं गौरवान्वित संस्कृति को बनाये रखने के मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

ekuoh; thou esa eY;ksa dk fodkl gsrq eY; ijd f'k{kk % भारतीय समाज में मानवीय मूल्यों को स्थापित करने के लिए सबसे उत्तम उपाय मूल्यपरक शिक्षा व्यवस्था है। मूल्यपरक शिक्षा के माध्यम से ही मानवीय मूल्यों को राष्ट्र व्यापी बनाया तथा स्थापित किया जा सकता है। इसके लिए जरूरी है, कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर (प्राथमिक से उच्च शिक्षा) के पाठ्यक्रमों में मानव मूल्यों से सम्बन्धित पाठ्यक्रमों को राष्ट्र व्यापी तौर पर निर्माण करके इसे प्रबल रूप से क्रियान्वित किया जाए, जिससे व्यक्ति में पुनः मानवीय मूल्यों को प्रतिस्थापित किया जा सके। इसके लिए निम्नलिखित विचारणीय बिन्दु प्रस्तुत है–

1- Ikkfjokfjd okrkoj.k % मनुष्य एक परिवार में जन्म लेता है। जन्म के समय बालक का मस्तिष्क एक कोरा स्लेट होता है। अर्थात् बालक में जन्म के समय न तो सामाजिक गुण और न ही मानवीय गुण विद्यमान रहता है। बल्कि जैसे–जैसे बालक का विकास होता है वैसे–वैसे परिवार के सदस्यों की पहचान करने लगता है तथा साथ ही साथ परिवार में व्याप्त मूल्यों व आदर्शों (सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, दया, सेवा, संस्कार ...आदि) को लोगों के सानिध्य और सम्पर्क में रहकर धारण करने की कोशिश करता है। मनुष्य के जीवन की सबसे पहली पाठशाला उसका अपना परिवार होता है तो ऐसे में परिवार का उत्तरदायित्व और बढ़ जाता है कि बालक को सही मानवीय मूल्य व आदर्शों की पहचान कराये तथा उसके महत्व को समझाये, जिससे बालक स्वेच्छा से आदर्श मानवीय मूल्यों को धारण कर सके। उदाहरण के तौर परिवार में आदर्श और मूल्य निरन्तर बनाये रखने के लिए उपस्थित बड़े या बुर्जुग के माध्यम से परिवार के सभी सदस्यों को मानवीय मूल्य व नैतिकता से सम्बन्धित पूर्व की तरह कहानियाँ सुनानी चाहिए या दृष्टांत प्रस्तुत करने चाहिए।

2- Lkekftd okrkoj.k % मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह जिस समाज में रहता है, उस समाज की अपनी एक अलग सभ्यता व संस्कृति होती है। इस सभ्यता व संस्कृति के अन्तर्गत समाज के कुछ संस्कार, नियम, कानून, मूल्य व आदर्श होते हैं। जिसका सबसे सीधा, अधिक व स्थायी प्रभाव मनुष्य के व्यक्तित्व पर पड़ता है। इसलिए समाज में उच्च मूल्यों तथा आदर्शों का समावेश होना चाहिए क्योंकि समाज में जिस प्रकार के मूल्य व आदर्श होंगे, मनुष्य उसी मूल्य व आदर्श को धारण करेंगे तथा तदनुरूप आचरण व व्यवहार भी करेंगे। अतः समाज में आदर्श एवं मानवीय मूल्यों को कायम रखते हुए ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिए जहाँ पर लोग एक–दूसरे के प्रति बिना किसी (जाति, धर्म, लिंग) भेदभाव के सम्मान की भावना रखे।

3- fo|ky; % विद्यालय शिक्षा का एक महत्वपूर्ण साधन है। विद्यालय में विद्यार्थियों को वांछित व्यवहार करने के लिए प्रेरित किया जाता है। शिक्षण का कार्य केवल पाठ्यविषयक परीक्षाओं की दृष्टि से तैयार नहीं करना है बल्कि विद्यार्थियों में सर्वांगीण विकास भी करना है। जॉन डीवी के अनुसार विद्यालय समाज का लघु रूप है। अर्थात् जिस परिवार व समाज से बालक मानवीय मूल्यों को सीखी है उन मूल्यों की विद्यालय में परख की जानी चाहिए तथा इनके महत्व से बालक को अवगत भी कराते रहना चाहिए। विद्यालय की समस्त गतिविधियाँ विद्यार्थियों में परिवार, समाज तथा देश के तदनुरूप मूल्यों एवं आदर्शों को विकसित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

4- f'k{kd % मूल्यपरक शिक्षा प्रदान करने के लिए एक निष्पक्ष व आदर्श शिक्षक की नियुक्ति की जानी चाहिए जो मानवीय मूल्यों को स्वयं अपने आचरण में धारण करता हो तभी वह विद्यार्थियों को मूल्यों को अपने आचरण में लाने के लिए प्रेरित कर सकता है क्योंकि विद्यार्थी अधिकतर शिक्षक के आचरण को धारण करते हैं। यदि शिक्षक बुरी आदतों को धारण किया है तो विद्यार्थी भी उसका अनुकरण कर बुरी आदतों को ग्रहण कर लेते हैं। इसलिए एक आदर्श शिक्षक की नियुक्ति कर मूल्यपरक शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास किया जाये ताकि विद्यार्थी, परिवार, समाज व राष्ट्र के लिए उपयोगी बन सके।

5- 'kf{kd eY; % शैक्षिक मूल्य वे मूल्य होते हैं जो शिक्षण संस्थानों में शिक्षक के माध्यम से विद्यार्थियों में विकसित किये जाते हैं। शैक्षिक मूल्य विद्यार्थियों के सर्वतोन्मुखी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शैक्षिक मूल्य शिक्षा, शिक्षक, विद्यार्थियों तथा शैक्षिक प्रबन्धन के बीच के सम्बन्धों को दर्शाते हैं। इस प्रकार शैक्षिक मूल्य के सन्दर्भ में निम्नलिखित मूल्य परिलक्षित होते हैं–

1. शिक्षण में नियमितता एवं निष्ठा,
2. मूल्यांकन में वस्तुनिष्ठता एवं निष्पक्षता,
3. स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना का विकास,
4. व्यवसाय के प्रति निष्ठा रखना,
5. विद्यार्थियों में सृजनात्मकता को प्रोत्साहन देना,
6. शिक्षण परिसर में मूल्ययुक्त वातावरण का निर्माण करना,
7. विद्यार्थियों में मौलिकता के प्रति सद्भाव एवं सम्मान की भावना का विकास करना,
8. विद्यार्थियों में मानव मूल्यों को व्यवहारिक जीवन में अनुप्रयोग करने के लिए प्रेरित करना।

इन मूल्यों के अतिरिक्त शिक्षण के माध्यम से शिक्षार्थियों में शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, भावात्मक, एवं आध्यात्मिक आदि विकास के साथ–साथ ईमानदारी, निष्ठा, उदार, उपकार, त्याग, करूणा, दया, सद्भाव, सहिष्णुता, सहयोग, सेवा, सौहार्द, प्रेम तथा उत्तरदायित्व आदि मूल्यों का भी विकास होना चाहिए है। शिक्षा का उद्देश्य शिक्षार्थी को केवल Fkh vkj (पढ़ना, लिखना व गणित में) और प्रतियोगी परीक्षाओं तक सीमित नहीं बनाना है बल्कि सर्वांगीण विकास करना है। अतः विद्यार्थियों में शिक्षा के माध्यम से आदि उपरोक्त मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

6- izcU/ku % प्रबन्धन का उत्तरदायित्व बनता है कि विद्यालय परिसर में मानव मूल्य युक्त वातावरण का निर्माण करे। विद्यालय में समय–समय पर मानवीय मूल्यों से सम्बन्धित निरन्तर निम्न गतिविधियाँ भी आयोजन की जानी चाहिए–

1. मूल्यों से सम्बन्धित खुले विचार–विमर्श की व्यवस्था,
2. विद्यालय में खेल–कूद की व्यवस्था,
3. स्काउटिंग एवं गाइडिंग की व्यवस्था,
4. एन0सी0सी0 की व्यवस्था,
5. मूल्यों से सम्बन्धित नाटक या ड्रामा की व्यवस्था,
6. सामुदायिक सेवा करने की व्यवस्था,
7. प्रदर्शनी की व्यवस्था,
8. मूल्यों से सम्बन्धित सेमीनार व वर्कशाप की व्यवस्था,
9. मूल्यों से सम्बन्धित सांस्कृतिक कार्यक्रमों की व्यवस्था।

आदि सहगामी क्रियाओं के माध्यम से विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों को विकसित किया जा सकता है।

7- ikB;Øe % डा0 जाकिर हुसैन समिति द्वारा सुझाव दिया गया है कि शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा बनाया जाये जो छात्रों में आदर्श नागरिकता, शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान, सामुदायिक कार्यों में सहभागिता आदि गुणों को विकसित कर सके। 1937 में महात्मा गॉधी द्वारा वर्धा में प्रथम शिक्षा सम्मेलन बुलाया गया जिसमें

शिक्षा में मानवीय मूल्य शिक्षा को स्वीकार किया गया। 1946 में आर0 आर0 जी0डी0 बर्ने की अध्यक्षता में केन्दीय शिक्षा सलाहकार समिति (Central Advisory Board of Education) की बैठक हुई जिसमें यह स्वीकार किया गया कि सभी धर्मों से सम्बन्धित नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों को शैक्षिक पाठ्यक्रम का अंग बनाया जाये। अतः पाठ्यक्रम का निर्माण मानव मूल्य को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं का समावेश हो जैसे–

- सभी धर्मों के शाश्वत् मूल्यों का निम्न एवं उच्च स्तर के पाठ्यक्रमों में समावेश होना चाहिए।
- आध्यात्मिक, धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों को सभी स्तर के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करना चाहिए।
- निम्न स्तर पर नैतिकता एवं सदाचार से सम्बन्धित पाठ होने चाहिए तथा पाठ के अन्त में इससे सम्बन्धित मूल्यों के महत्व का वर्णन किया जाना चाहिए।
- उच्च स्तर पर मूल्यपरक शिक्षा को पाठ्यक्रमों में एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए।
- पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में मानवीय मूल्यों से सम्बन्धित कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए तथा इसमें सभी विद्यार्थियों को प्रतिभाग के लिए प्रेरित करना चाहिए।

ekuoh; thou e eY;k d fodkl gr eY; ijd f'k{kk d vU; fcUn

- औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरौपचारिक शिक्षा के माध्यम से सरकारी तथा गैर–सरकारी शिक्षण संस्थाओं द्वारा मानवीय मूल्यों का विकास किया जाना चाहिए।
- मूल्यों के विकास के लिए सरकारी तथा गैर–सरकारी शिक्षण व अन्य संस्थाओं द्वारा समितियों का समय–समय पर गठन किया जाये तथा समिति के द्वारा लिए गये निर्णयों को ईमानदारी से क्रियान्वयन किया जाना चाहिए।
- प्रत्येक विद्यार्थियों में सदाचार, शिष्टाचार एवं स्वच्छता की आदत का विकास किया जाना चाहिए।
- मूल्यों के विकास के लिए समय–समय पर बाल संगोष्ठियों का आयोजन किया जाना चाहिए।
- शाश्वत् मूल्यों (धर्म, सदाचार, सत्य, अहिंसा, प्रेम, शान्ति) एवं सद्गुणों (सहनशीलता, प्रेम, दया, करूणा, अभय, अहिंसा, क्षमा एवं सत्य) आदि का सभी स्तर की शिक्षा एवं समाज में मूल्यों का समावेश होना चाहिए।
- रेडियों, टेलीविजन, कम्प्यूटर, मोबाइल, इन्टरनेट, प्रिन्ट मीडिया एवं अन्य संचार के साधनों द्वारा कहानी, नाटक, धारावाहिक एवं फिल्म के माध्यम से सभी प्रकार के मूल्यों का प्रचार–प्रसार व विकास किया जाना चाहिए।
- सरकारी तथा गैर–सरकारी शिक्षण संस्थाओं द्वारा मानवीय मूल्यों के विकास के लिए सार्वजनिक स्थल पर भारतीय आदर्श व मूल्यों से सम्बन्धित नाटक या कहानी के माध्यम से दृष्टांत प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
- किसी भी प्रकार के मूल्यों की अवहेलना होने पर दण्ड की व्यवस्था की जाना चाहिए।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भौतिकवादी, उपयोग्तावादी व प्रौद्योगिकी युग में मानवीय मूल्यों का ह्रास हुआ है। इन मानवीय मूल्यों को मूल्यपरक शिक्षा के माध्यम से स्थापित करने का दायित्व राज्य तथा केन्द्र सरकार, सरकारी तथा गैर–सरकारी सभी संगठनों का है। इन संगठनों के माध्यम से व्यापक स्तर पर मूल्यपरक शिक्षा प्रदान कर समाज का उर्ध्वाधर तथा क्षैतिज विकास किया जा सकता है। मानवीय मूल्यों को समाज में प्रतिस्थापित कर मानव के अवांछनीय व्यवहार को नियंत्रित व निर्देशित किया जा सकता है। जिससे मानव में मानवीय व नैतिक मूल्यों का वास हो तथा चहुँमुख अमन, चैन, शान्ति और सौहार्द का माहौल तैयार हो।

अमन, शांति के, न खिड़कियों को बन्द करो
खुशी के किरण जिन्दगी के आँगन तक आने दो।
विश्व शांति के निर्माण के बयार को मत बन्द करो

जीवन के मूल्यों की हवा मनुष्य के आचरण तक आने दो।

(हे मनुष्य अपने घरों के सभी खिड़कियों को खोल दो, जिससे मानव मूल्य रूपी हवा जिन्दगी के आँगन तक आये और अमन, शान्ति व खुशियों का निर्माण हो।)

'शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्' अर्थात् शरीर सभी धर्मों का साधन है। भारतीय संस्कृति में धर्म से तात्पर्य कर्तव्य से है। मनुष्य जो भी कार्य व विचार करता है वह सब इस शरीर द्वारा करता है। वर्तमान में मानव की नकारात्मक प्रवृत्ति की सोच ने आज विकास एवं प्रगति के दौड़ में मानवीय मूल्यों को प्रभावित किया है। संक्षिप्त रूप में कहें तो यह लोभ की पराकाष्ठा, पद और धन की लिप्सा, शक्ति लोलुप्ता, अहंकार, स्वार्थपरता, विश्वासघात, धोखाधड़ी, छलपूर्ण व्यवहार, कर्तव्यविमूढ़ता, निष्ठाहीनता, अनैतिकता, अन्याय, हिंसा, अशान्ति, अहंकार, छल, कपट, असत्य, झूठ, द्वेष, मद, प्रमाद, अधर्म, घृणा, ईर्ष्या, लोभ, अन्याय, काम, क्रोध, आवेश, व्यभिचार, दुराचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार आदि प्रवृत्तियों ने भारतीय समाज को ग्रस्त कर लिया है। ऐसी परिस्थिति में मानवीय जीवन में मूल्यों को प्रतिस्थापित करना सभ्य मानव समाज के अस्तित्व के लिए आवश्यक हो गया है। अतः मानवीय जीवन में शाश्वत् व सनातन मूल्यों को प्रतिस्थापित करने के लिए वर्तमान समय में मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता महसूस की गयी। मूल्यपरक शिक्षा देने का माध्यम प्रभावशाली एवं विनम्र होना चाहिए जो मानव के हृदय को छू सके, समझ सके, मूल्यों के अनुप्रयोग के लिए व्यवहार में वांछित परिवर्तन ला सके तथा मूल्यों के प्रति साकारात्मक दृष्टिकोण को पैदा कर सके, आदि मूल्यपरक शिक्षा का तत्कालीन उद्देश्य होना चाहिए।

lanHkZ

- कॉक्स, ई0 (1988). नैतिक शिक्षा की स्पष्ट और निहित नैतिक शिक्षा, जर्नल 17, 92–97.
- टेलर, एम0 (2006). स्कूल के पाठ्यक्रम के माध्यम से मूल्यों का विकास आर0एच0एम0 चेंग, जे0सी0के0 ली और एल0एन0के0 लो (सं).
- त्यागी, जी0डी0 (2013). शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, आगराः श्री विनोद पुस्तक मन्दिर.
- लाल, रमन बिहारी (2014). हिन्दी शिक्षण एवं विधियाँ, मेरठः रस्तोगी पब्लिकेशन्स.
- लाल, रमन बिहारी (2014). शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजशास्त्रीय सिद्धांत, मेरठः रस्तोगी पब्लिकेशन्स.
- शर्मा, कुसुम एण्ड शैरी, अनुपम, (2014). वर्तमान युग में मानवीय मूल्यों एवं नैतिकता की प्रासंगिकता, प्रतियोगिता साहित्य, सितम्बर 2014, पृ0 सं0– 103 से 105 और 164.
- नई सदी में नागरिकों के लिए शिक्षा मूल्यों, शा टिनः चीनी यूनिवर्सिटी, प्रेस पृष्ठ 107–131.
- पाठक, वी0के0 (2014). पाठकायनः मूल्य शिक्षाः अनिवार्य आवश्कता, पत्रिका.
- फर्रेर, एफ0 (2000). एक मौन क्रान्तिः हमारे बच्चे (लंदन, राइडर) में साकारात्मक मूल्यों को प्रोत्साहित करना, पृष्ठ सं0 35.
- लिपमैन, एम0 (1987). नैतिक तर्क और नैतिक अभ्यास की कला, नैतिक शिक्षा के जर्नल, वॉल्यूम 16, नम्बर 2.
- वर्मा, कीर्ति (2013). मूल्यपरक शिक्षा, कानपुरः विकास प्रकाशन.
- विकिपीडिया, मुक्त विश्वकोश
- शिक्षा और नैतिक मूल्य पर निबन्ध (2016). पत्रिका.
- http://bharatdiscovery.org/india retrived on 09.04.18
- http://www.hindikiduniya.com/essay/my-family-essay-in-hindi/ retrived on 09.04.18
- https://jarasochiye.com/2016/02/25 retrived on 09.04.18
- http://www.drishtiias.com/hindi/mains-exam-paper-explanation/role-of-family-society-and-education-in-inculcating-values retrived on 09.04.18
- https://doosariaawaz.wordpress.com/2016/05/14 retrived on 09.04.18
- http://gadyakosh.org retrived on 09.04.18
- http://literature.awgp.org/akhandjyoti/1999/October/v2.17 retrived on 09.04.18
- www.google.com

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 30-35

Hkkjrh; lkfgR; dh fofo/k çofÙk;k¡

l/khj lkg*

भारतीय साहित्य सामाजिक समरसता और उन्नति का साहित्य है। भारतीय साहित्य में समाज के सभी पहलुओं पर बल दिया गया है, इसमें एकता, अखण्डता, राष्ट्रीयता तथा स्वाधीनता जैसे पहलुओं पर भी विभिन्न भाषाओं में भी रचनाएँ लिखी गयी हैं। भारतीय साहित्य में भिन्न–भिन्न भाषाओं के बावजूद कला का विकास हुआ है, जो सर्वथा स्वाभाविक है। भारतीय इतिहास, संस्कृति, भूगोल की नियति एक है। कोई भी रचना किसी भी भाषा में हो सकती है लेकिन उसका भाव भारतीय ही रहता है। भारत की भिन्न–भिन्न भाषाओं में रचनाएँ चाहे गद्य में हो या पद्य में सभी रचनाओं में भारतीयता का यथार्थ रूप दिखाई देता है। साहित्य में जिस साम्य की सहज प्रवृत्ति दिखाई देती है, उससे भाषा विश्वास को बल मिलता है और वह समग्र भारतीय साहित्य की एक ईकाई के रूप में प्रकट होता हुआ दिखाई पड़ता है। बड़े अस्तित्व और प्रौढ़ पर सभी भाषाएँ अपने–अपने ढंग से प्रेरणाएँ और स्पंदन प्राप्त करती है। इस परंपरा से सभी भाषाओं का परिवेश भारतीय साहित्य की एकता का रूप प्रकट करती हैं। भारतीय साहित्य संघर्षमय जीवन के कठोर यथार्थ से संपृक्त है। आज हमारा भारतीय साहित्य यथार्थपरक होता जा रहा है तथा प्रमुख प्रयोजन मानवीय संवेदना का विस्तार और प्रचार–प्रसार करना है।

भारतीय साहित्य मनुष्य को मनुष्यता का पाठ सिखाता है और अंदर की मनोदशा को विस्तार देता है। 'भारतीय साहित्य को पश्चिमी मानकों पर नहीं परखा जा सकता है, क्योंकि पश्चिम द्वैत पर बल देता है; जबकि भारतीय दृष्टि समन्वयवादी है। भारतीयता को भारत की आँखों से ही देखा–समझा जा सकता है। भारतीयता की पहचान अनेकता में एकता है। भारत अनेक भाषाओं में बोलता भले ही हो लेकिन उसका सोचने वाला दिमाग एक ही है।'

सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था कि 'भारतीय साहित्य एक है यद्यपि वह बहुत सी भाषाओं में लिखा जाता है। भारत में राम और कृष्ण काव्यों की परम्परा के साथ–साथ भक्तिकाल और नवजागरण के अखिल भारतीय स्वरूप के आधार पर हम इस तथ्य की पुष्टि कर सकते हैं।' समग्र भारतीय साहित्य की पहचान एक भाषा में करना अर्थहीन रहेगा। अनेक विद्वानों ने इस पर विचार प्रकट किए है। राष्ट्रीय भाषा के स्तर पर विचार करने वाले बांग्ला साहित्य के जाने–माने इतिहासकार सुकुमार सेन ने अपने ग्रंथ 'भारतीय साहित्येत्तर इतिहास' (1962) में उन्होंने अखिल भारतीय भाषा की अपनी धारणा इस प्रकार व्यक्त किया है कि ''मेरी विषय सामग्री एक ऐसा साहित्य है जो किसी 'प्रादेशिक भाषा' में लिखा हुआ नहीं है, बल्कि एक ऐसी भाषा है, जो किसी निश्चित क्षेत्र की संपत्ति नहीं है, एक ऐसी भाषा में, जो भारत के समस्त क्षेत्रों में फैली हुई थी और जिसके साहित्य का सभी क्षेत्रों में समान जुड़ाव था, कहना होगा कि वैदिक संस्कृत, बौद्ध संस्कृत, पालि विभिन्न प्राकृत, अपभ्रंश और अवहट्ट इन सब प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का अध्ययन मैंने इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया है।''1 भारतीय साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं–

भारतीय साहित्य की प्रथम विशेषता व्यापकता है। भारतीय साहित्य बहुत विस्तृत और व्यापक है। भारतीय साहित्य में विभिन्न भाषाओं में साहित्य रचा गया है। प्रो. दिलीप सिंह के अनुसार, ''भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में जिन भाषाओं और बोलियों का उल्लेख है उनका साहित्य अत्यंत संवृद्ध

*शोध–छात्र, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

है और यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो इन सभी भाषाओं में साहित्यिक ने धाराएं समानांतर रूप में प्रवाहित मिलती है। इसके साथ ही इन सभी भाषाओं को राष्ट्रीय चेतना और उसमें आने वाले परिवर्तनों के साथ एक सा संबंध रहा है तथा ये सभी राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे परिवर्तनों से एक–साथ प्रभावित हो रही है, कहने का तात्पर्य यह है कि ''ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भारत की सभी भाषाएँ और उनका साहित्य भी एकता के सूत्र में बंधा हुआ प्रतीत होता है। इसलिए भारत की इन भिन्न भाषाओं में लिखे गए साहित्य को भारतीय साहित्य कहा गया है।''[2]

भारतीय साहित्य वर्तमान समय में भी व्यापक और समृद्ध होता रहा है, जिससे साहित्य का परिप्रेक्ष्य और पाठकों की संख्या बढ़ती जा रही है। तमाम भाषाओं में साहित्य लिखे जाने के कारण अनेक भाषाओं का ज्ञान भी प्राप्त होता जा रहा है। किसी भी भाषा में लिखे गये साहित्य को पढ़ने की इच्छा पाठक को होती है इसलिए वह साहित्य बाद में भाषा का पहले वह भारतीय है।

भारतीय साहित्य में अनेक भाषाएँ होने के कारण साहित्य में राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत साहित्य रचा गया है। भिन्न–भिन्न भाषाओं में राष्ट्रीय अभिव्यक्ति का चित्रण किया गया है। गद्य–पद्य दोनों में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति पर बल दिया गया है। भारतीय साहित्य में देश की सभी परिस्थितियां चाहे राजनैतिक हो या कोई भी समस्या हो सभी का चित्रण किया गया है। तमिल कवि सुब्रह्मयम भारती ने राष्ट्रीय चेतना ही नहीं, बल्कि व्यक्ति की स्वतंत्र चेतना का भी समर्थन किये, इनके अलावा कन्नड में श्रीकठैया, गोविंद शंकर भट्ट, मलयालम से केरल वर्मा, वेनमणि, राजराज वर्मा, राष्ट्रीय चेतना के ओजस्वी साहित्यकार थे। केरल में राष्ट्रीय चेतना के रूप में प्रख्यात कवि वल्लतोल प्रसिद्ध है। मराठी में केशव सुत, कुंते, कुसुमाग्रज प्रमुख है। गुजरात में महात्मा गांधी तथा इनके अलावा नान्हालाल, काका कालेकर। इसी प्रकार बांग्ला में रवीन्द्रनाथ टैगोर, असमी में आनन्द राय कूकन, कमलाकान्त भट्टाचार्य। उड़िया में कबीर मोहन सेनापति, उर्दू में उर्दू शायर इकवाल। पंजाबी में गुरूमुख सिंह एवं हिन्दी में मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी आदि राष्ट्रीय धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। तमिल भाषा के प्रसिद्ध कवि सुब्रह्मयम भारती का भारत देश के प्रति लगाव है। भारत की प्रकृति का मनोरम रूप से चित्रण किया है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'यह है भारत देश हमारा' में उन्होंने भारत की मनोरम प्रकृति का चित्रण करते हुए कहते हैं कि–

^^ped jgk mRrx fgeky;] ;g ukxjkt gekjk gh gA
tkM+ ogh /kjrh ij ftldk] og ukxjkt gekjk gh gA
unh gekjh gh gS xaxk] lykfor djrh e/kqj l /kkjk]
cgrh gS D;k dgha vkj Hkh] ,slh iou dy&dy /kkjk\
× × × ×
vk;k&Hkwfe mRd"kZe;h ;g] xwats xku ;g xku gekjk]
dkSu djsxk lerk bldh] efgeke; ;g ns'k gekjkA**[3]

इसी तरह गद्य साहित्य में राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत रचनाएं की गयी है। कन्नड़ भाषा में गिरीश कर्नाड, असमिया में वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य, उड़िया में फकीर मोहन सेनापति आदि लेखकों ने स्वाधीनता आंदोलन, विभाजन की समस्या आदि को लेकर रचनाएँ की है। असमिया भाषा के प्रतिनिधि रचनाकार वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य का प्रसिद्ध उपन्यास 'मृत्युंजय' है, जो सन् 1979 में प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया था। असमिया समाज की वैचारिकता को लेकर यह उपन्यास लिखा गया है। असमिया समाज की वैचारिकता और बुनावट के कारण यह उपन्यास भारतीय जगत में स्वाधीनता आंदोलन का प्रमाणिक दस्तावेज है। भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई एकोन्मुखी न होकर बहुमुखी थी। इनका जितना विरोध अंग्रेजों से था, उससे कहीं अधिक भारतीय समाज में कुरीतियों से था। 'मृंत्युंजय' उपन्यास में अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचार के ईर्ष्या का भाव है। मृत्युंजय उपन्यास में धनपुर एक जगह डिमि से कहता है कि ''उसके पहले केवल अत्याचार की दुर्गंध मिली थी। मिलटरी द्वारा सुभद्रा के साथ किये गये दुराचार के बाद उसकी जीर्ण देह को ढोकर लाते समय वही

दुर्गंध मिली थी। अब भी वह दुर्गंध नाक में बसी है।''[4] इस तरह कहा जा सकता है कि मृत्युंजय उपन्यास स्वाधीनता आंदोलन का प्रमाणिक दस्तावेज है।

भारतीय साहित्य भौगोलिक दृष्टि से भिन्न–भिन्न होते हुए भी वह एकता का पर्याय रखता है। इसका यह अस्तित्व प्राचीनकाल से बना हुआ है। भिन्न–भिन्न भाषाओं का साहित्य होने के बावजूद भी एक ईकाई के रूप में प्रस्तुत होता है। देखा जाये तो भारत के कई महत्वपूर्ण ऐसे साहित्यकार है, जो एक से अधिक भाषाओं में महत्वपूर्ण योगदान रखते थे। जैसे– गुरूनानक साहब– पंजाबी और हिन्दी, प्रेमचन्द– हिन्दी, उर्दू आदि भाषाओं में लिखते थे।

भारतीय साहित्य में भाषाओं का प्रयोग अलग–अलग भले ही हुआ हो, पर उनका संदेश एक ही है। भारतीय साहित्य की यही विशिष्टता है। डॉ. भोलाशंकर व्यास ने लिखा है कि ''भारत की जनता भले ही अनेक भाषा–भाषियों में बँटी हो, किन्तु अलग–अलग भाषाओं के लिबास में भी उनकी आत्मा एक ही दिखाई पड़ेगी और यह बात इन भाषाओं के साहित्य पर भी लागू होती है, जिसमें अभिव्यंजना शैली में कुछ कर्म भले ही मिल जाय मूल भाव और विचार तति एक सी मिलेगी।''[5]

भारतीय साहित्य में पालि एवं प्राकृत का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। इन सब का प्रभाव पड़ने के बावजूद भी इसमें एकता का रूप हमारे सामने दिखाई देता है। डॉ. राजेन्द्र यादव लिखते हैं कि ''भारत में पाली प्राकृत भाषाओं के अवसान के बाद अपभ्रंश भाषा का युग आया, अपभ्रंश भाषा पर प्राकृत का प्रभाव स्पष्ट था अपभ्रंश भाषा साहित्य के प्रारंभ से प्राकृत से मिलती–जुलती जैन धर्म की रचनाएँ अधिाक लिखी गयी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अपभ्रंश भाषा साहित्य के पूर्व पाली प्राकृत भाषा में रचित साहित्य ने भारतीय समाज को गहरे स्तर पर प्रभावित किया।''[6]

इसी तरह हिन्दी साहित्य में अपभ्रंश भाषा का प्रभाव दिखाई पड़ता है। डॉ. राजेन्द्र यादव के अनुसार ''अपभ्रंश भाषा के अन्तर्गत सिद्धो नाथों की वाणियों को और रचनाओं को हिन्दी भाषा की प्रारंभिक रचनाओं का रचनात्मक प्रारंभ माना गया है। अतः संस्कृत के बाद हिन्दी साहित्य के आदिकाल में दर्ज हिन्दी की प्रारंभिक रचनाएँ दलित वर्ग से आने वाले सिद्धो–नाथों ने लिखी। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से वीरगाथात्मक रचनाओं की संख्या अधिक है, जिसमें पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो, वीसलदेव रासो सहित अनेक रासों ग्रंथ लिखे गए। इन रासो ग्रंथों में रचनाकारों ने वर्णित राजा की वीरता का अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन किया है। इन ग्रंथों की रचना देश भाषा में होने के कारण इन्हें खूब लोकप्रियता मिली। हिन्दी साहित्य के आदिकाल या प्रारंभिक युग में ही मैथिल कोकिल विद्यापति पदावली की रचनाकार राधाकृष्ण की बहुरंगी भक्ति को अपने पदों में जीवंत कर दिया।''[7]

राष्ट्रवादी एकता तथा समाज की सुदृढ़ स्थापना के लिए भारतीय समाज की समस्त भाषाओं की सामग्री एकता का रूप प्रकट करती है। डॉ. भोलाशंकर व्यास का अभिमत है कि ''राष्ट्रीय एकता तथा समाजवादी समाज की सुदृढ़ स्थापना के लिए यह मानकर चलना होगा कि भारतीय साहित्य एक समग्र वस्तु है, जिसके विभिन्न अवयव हिन्दी, उर्दू, बांग्ला आदि भाषाओं के साहित्य है और किसी भी एक साहित्य को मूल साहित्यिक धारा से विच्छिन्न करके देखना साहित्य और भारतीय जनता दोनों के लिए अकल्याणकर होगा।''8 भारतीय साहित्य में अलग–अलग साहित्य में अलग–अलग भाषाओं का प्रभाव होने के बावजूद भी एकता को प्रकट करता है। इसी कारण भारतीय साहित्य में अनेकता में एकता का संपूर्ण रूप से प्रभाव दिखाई देता है। सचमुच भारतीय साहित्य में समस्त भाषाओं में लिखा गया साहित्य पूरे विश्व में एकता को प्रतिपादित करता है।

भारतीय साहित्य में समाज के सभी पहलुओं पर बल दिया गया है। समाज का चाहे निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग, उत्तम वर्ग इन सभी को लेकर साहित्य रचा गया है। भारतीय साहित्यकार अपने समाज के सुख–दुख के साथ जुड़े रहे हैं। अपने समाज के उत्थान की कामना उन्हें हमेशा प्रेरित करती रही। समाज में प्रचलित बाल–विवाह, स्त्री–शिक्षा, छुआ–छूत, सती–प्रथा आदि सामाजिक समस्याओं को भारतीय साहित्यकारों ने अपने साहित्य में स्थान दिया। प्रसिद्ध बाँग्ला कवि शंख घोष ने सामाजिक समस्याओं को उठाया है। समाज में आए बिखराव एवं मानवीय मूल्यों को टूटते हुए देखकर उन्होंने कविताएँ लिखी

थी। उनकी प्रसिद्ध कविता 'भस्ममुख' जो वर्तमान समय के मानवीय मूल्य एवं संवेदना शून्य रक्तहीन मनुष्यता को प्रकट करती हैं। जैसे–

^^mlds fnu rks Fks cl u"V gksa tkus ds fy,
'krks esa Hkh ugha Fkk dksbZ vkl jk
vk[ks gh Fkh mldk fHk{kkik=]
tks Hkjk Fkk ek= mDrrk ls
D;k og dksbZ ixyh Fkh ;k fQj dksbZ ifrHkkoku L=h\
mlus chp&chp esa viuh vkidks gh pkgk Fkk Hkh[k esa nuk!
mldh gjlh u rks gjlh Fkh vkj jkuk u rks jkuk
mlh nkg Hkh nkg ugha Fkh] og Hkhxh gqbZ Fkh Hkkx ls
dN lq[kh 'kk[kk,¡] mlds ekFks ij >qdh gq
vkj rHkh bZ'oj dh vfre fdj.k mlds HkLee[k ij vk iMrh gS**[9]

इस तरह भारतीय साहित्य में सामाजिक यथार्थ पहलुओं को उठाया नया है। सामाजिक विसंगतियां, कुरीतियां आदि पर भारतीय साहित्य में वर्जित है। प्राचीन से लेकर वर्तमान समय तक की सामाजिक परिस्थितियों को उजागर किया गया है।

भारतीय साहित्य में प्रेम–भावना का विकास विभिन्न रूपों में हुआ है। जैसे– प्रकृति–प्रेम, नारी–प्रेम, शिशु–प्रेम, अज्ञात–प्रियतम के प्रति प्रेम आदि भारतीय कवियों की प्रेम भावना का उल्लेख है। यद्यपि इनकी आरंभिक कविताओं में हल्की लौकिक वासना अवश्य दिखाई पड़ती है। परन्तु बाद में चलकर वह आध्यात्मिकता में परिवर्तित हुई। वह प्रेम–भावना अकेले में पड़कर करवटे नहीं बदलीं बल्कि मानवता से परिपूर्ण आध्यात्मिक प्रेम में समाहित हो गई। अपने अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रेम निवेदन के कारण ही ये कवि रहस्य मुखी हो गये। शंख घोष की कविता 'मेघ जैसा मनुष्य' में कवि ने मेघ के समान मनुष्य की तुलना की है। इस कविता कवि ने प्रकृति के माध्यम से मनुष्य के स्वरूप का चित्रण किया है–

^^xqtj tkrk gS lkeus ls esjs og e?k tSlk euq";
yxrk gS Nw nsa mls rks >j iMsxk ty
xqtj tkrk gS lkeus ls esjs og e?k tSlk euq";
yxrk gS tk cSBs ikl esa mlds] rks Nk;k mrj vk,xh
og nsxk ;k ysxk\ vkJ; gS og ,d] ;k pkgrk vkJ;\
xqtj tkrk gS lkeus ls esjs og e?k tSlk euq";
lHko gS tkÅ ;fn ikl esa mlds fdlh fnu rks esa Hkh cu tkÅ e?k**[10]

इस तरह शंख घोष कवि ने मानवीय प्रकृति का चित्रण किया है। मानवीय प्रकृति के माध्यम से कवि ने मनुष्यता और प्रकृति का अंतर सम्बन्ध भी व्यक्त किया है।

भारतीय साहित्य का प्रारंभ प्राचीन काल से माना जाता है। भारतीय साहित्य में प्राचीन काल के सभी परिस्थितियों को प्रतिपादित किया गया है। भारतीय साहित्य का प्रारंभ प्राचीनकाल के महत्वपूर्ण ग्रंथ ऋग्वेद से माना गया है। ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है। यहीं से भारतीय साहित्य का प्रस्थान बिन्दु माना जाता है। डॉ. राजेन्द्र यादव का अभिमत है कि ''भारतीय साहित्य का प्रारंभ प्रमाणिक रूप से 1500 ईसा पूर्व से माना जाता है। भारतीय साहित्य का प्रारंभ वेदों की रचना से माना गया है। प्रसिद्ध क्रांतिकारी और पत्रकार बालगंगाधर तिलक ने वेदों की रचना ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व की प्रमाणित की थी। सदियों तक वेदों ने पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक रूप से यात्रा की। तत्पश्चात् ईसा से 1500 वर्ष पहले वेदों को लिपिबद्ध करने का कार्य प्रारंभ हुआ। वेदों में चार वेदों की रचना की गई। जिसमें क्रमशः ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। इस वैदिक साहित्य में ऋग्वेद में भारतीय साहित्य के प्रस्थान बिन्दु प्राप्त होते हैं। वास्तविक रूप से भारतीय साहित्य का प्रारंभ ऋग्वेद से माना जाता है।''[11]

भारतीय साहित्य के स्पष्ट लक्षण वाल्मीक कृत 'रामायण' में मिलते हैं। साहित्य में महर्षि वाल्मीक प्रथम कवि के रूप में माने जाते हैं। इनकी प्रसिद्ध कृति 'रामायण' जो पूरे विश्व से प्रसिद्ध हुई थी। इसी कृति में बहुत से लेखकों या कवियों ने प्रेरणा लेकर रामकथाएं लिखी, जो वर्तमान में भी वेहद प्रासंगिक है। जैसे– तुलसीदास का 'रामचरित मानस' की प्रेरणा, वाल्मीक कृत 'रामायण' से मिली है। अतः स्पष्ट है कि ''भारतीय साहित्य की भूमिका वाल्मीकिकृत रामायण से ही प्रारंभ होती है। इस कृति का अनुकरण इसलिए भी सर्वाधिक किया गया कि विश्व में कविता का प्रारंभ वाल्मीकि से ही माना जाता है और कविता ने हमेशा समाज को अपनी ओर आकर्षित किया। कविता का प्रारंभ वाल्मीकि से है, और कविता से ही साहित्य को लोकप्रियता मिली। आज भी भारतीय समाज अपने ह्रदय की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम कविता को ही मानता है। कविता ने सैकड़ों वर्षों की यात्रा करने के बाद भी अपना आकर्षकण बचाकर रखा है।''[12]

मध्यकाल में भारतीय साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मध्यकाल में तमाम भाषाओं में साहित्य लिखा जा रहा था। मध्यकाल की संस्कृति, परिस्थिति आदि सभी का चित्रण किया गया है। मध्यकाल तमाम भाषाओं के आंदोलनों का जिक्र किया गया है। डॉ. भोलाशंकर व्यास ने लिखा है ''आधुनिक भारतीय भाषाओं का मध्ययुगीन साहित्य जिस नई सामाजिक क्रान्ति को लेकर उत्पन्न हुआ, उसे भारत के सांस्कृतिक इतिहास में भक्ति आन्दोलन कहा गया है। यह पुनरुथानवादी आंदोलन हिन्दी में कबीर जैसे निर्गुण सन्तों, जायसी जैसे सूफी प्रेममार्गियों, सूर और मीरा जैसे कृष्ण भक्तों, तुलसी जैसे सगुण रामभक्त कवियों में परिलक्षित होता है। बांग्ला, उड़िया और असमिया में भी वैष्णव भक्ति का यह आन्दोलन चण्डीदास, सरलदास और महाप्रभुशंकर देव की रचनाओं में प्रतिबिम्बित है। बाद में तो इन तीनों भाषाओं का साहित्य राधाकृष्णपाल अनेक वैष्णव पदों से भरा पूरा दिखाई पड़ता है। गुजराती में नरसी मेहता और मीराबाई की भक्तिपरक रचनायें और मराठी में महानुभाव कवियों, सन्त ज्ञानेश्वर, तुकाराम और समर्थ गुरूरामदास की कृतियां इसी भक्तिधारा की विविध लहरे हैं।''[13]

इस तरह मध्यकाल में तमाम भाषाओं को लेकर भक्तिकालीन आंदोलन चल रहे थे। इन भाषाओं के अलावा भी चाहे तमिल, कन्नड, तेलगू आदि भक्तिकालीन आंदोलनों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। मध्ययुगीन में पौराणिक साहित्य में भारतीय साहित्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ''मध्ययुगीन भारतीय साहित्य की दूसरी विशेषता, संस्कृत के पौराणिक साहित्य के प्रति अनुराग है। इन प्रायः सभी भाषाओं में तेजी से रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत के अनुवाद होते हुए मिलते हैं। तमिल और कन्नड़ में इस प्रकार के अनुवादों की परम्परा कुछ और पुरानी है। कम्वन ने वाल्मीकि रामायण का अनुवाद कर तमिल साहित्य को समृद्ध बनाया। तेलुगू में भी तिक्कन ने महाभारत का अनुवाद किया और भास्कर ने रामायण अनुदित की। कन्नड़ में जैन साहित्य के प्रभाव के कारण जैन परम्परा में अनेक पुराण मिलते हैं, जिनमें पम्प, रन्न और पोन्न की रचनायें प्रसिद्ध हैं।''[14]

भारतीय साहित्य, भारत देश ही नहीं बल्कि पूरे विश्व का वैविधपूर्ण तारतम्य रखता है। भारतीय साहित्य व उसके स्वरूप की जानकारी पाने के लिए उसकी भाषा का स्वरूप जानना आवश्यक होगा। भारत की विभिन्न भाषाओं के माध्यम से ही भारतीय साहित्य के स्वरूप अथवा उसकी विशेषताओं से परिचय स्पष्ट हो जाता है। यह सर्वविदित है कि भारत एक बहुभाषा–भाषी राष्ट्र है, जहाँ पर भाषाओं के आधार पर प्रान्तों के गठन होने से भारत को यह बल मिला है तथा सभी प्रान्तों की भाषाऐं अपने–अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है। भारतीय साहित्य में विभिन्न भाषाओं का साहित्य होने के बावजूद भी वह एकता का परिचय देती हैं। भारतीय साहित्य की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है, इसी कारण भारतीय भाषाएं अधिक निकट हैं। भारतीय मूल्यों में संस्कृति का अधिक महत्व है, जो भारतीय भाषाओं के माध्यम से अभिव्यक्त की गयी हैं।

lUnHkZ %

1. हनुमान प्रसाद शुक्ल संपा., तुलनात्मक साहित्य : सैद्धांतिक प्ररिप्रेक्ष्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 160
2. सागरिका : भारतीय साहित्य की... `हंतपांण्इसवहचवेजण्बवउझइसवह.चवेज
3. ज्ञंअपजांवीण्वतहधा सुब्रह्ययम भारती
4. वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य, मृत्युंजय, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980, पृ.114
5. डॉ. भोलाशंकर व्यास, भारतीय साहित्य की रूपरेखा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ. 3
6. डॉ. राजेन्द्र यादव संपा., भारतीय भाषा साहित्य, विजया बुक्स, दिल्ली, पृ.27
7. वही, पृ.29
8. डॉ. भोलाशंकर व्यास, भारतीय साहित्य की रूपरेखा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ.4
9. समकालीन भारतीय साहित्य, साहित्य अकादमी, द्वैमासिक पत्रिका, नई दिल्ली, अंक 190, मार्च–अप्रैल 2017, पृ.09
10. वही, पृ.69
11. डॉ. राजेन्द्र यादव संपा., भारतीय भाषा साहित्य, विजया बुक्स, दिल्ली, पृ.24
12. वही, पृ.31
13. डॉ. भोलाशंकर व्यास, भारतीय साहित्य की रूपरेखा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ.10–11
14. वही, पृ.14

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 36-38

flU/kh] xqtjkrh vkSj fgUnh esa izxfr'khy dkO;

Mkfyh e/?kukuh*

भारत एक ऐसा देश है जहाँ अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं और प्रत्येक भाषा का अपना विशिष्ट साहित्य भी उपलब्ध है। इन भारतीय भाषाओं के साहित्य में भाषा लिपि के स्तर पर विभिन्नता होते हुए भी कई प्रवृतियाँ समान देखने को मिलती हैं। जैसे कि दरबारी काव्य, भक्तिकाव्य, प्रगतिशील काव्य, नई कविता आदि प्रायः सभी भाषाओं में देख सकते हैं। ठीक इसी प्रकार से हमें सिंधी, गुजराती और हिन्दी काव्य में भी प्रगतिशील चेतना स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। शोषितों के प्रति संवेदना और शोषकों के प्रति घृणा–भाव का चित्रण प्रगतिशील काव्य की प्रमुख विशेषता है जिसका वर्णन सिन्धी, गुजराती और हिन्दी तीनों में देखने को मिलता है। सिन्धी में प्रगतिशील काव्य का प्रारम्भ हम सिन्धी कवि किशिनचन्द बेबस (1885–1947 ई0) से मान सकते हैं। इनके काव्य में राष्ट्र के प्रति प्रेम, किसान–मजदूरों के प्रति सहानुभूति का चित्रण मिलता है। इनकी रचनाएँ सूफीवादी दर्शन से प्रभावित हैं। इनकी प्रमुख प्रगतिवादी रचनाएँ है– 'शेर बेबस', 'शीरीं शेर'। इन्होंने 'बेबस की परिहियत' (मजदूर), 'शाहूकार' और 'गरीबन की झोपड़ी' कविताओं में वर्ग–विषमता के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है। 'शाहूकार' कविता में बेबस लिखते हैं–

fdv u jr pyls tkSj [kSykSdly;k lkbl lns
[kku [kkps p djs nnhl fnYyFkkS [kkyh NnsA[1]

गुजरात के प्रमुख कवि उमाशंकर जोशी की कविताओं में भी प्रगतिशील चेतना, वर्ग–वैषम्य के प्रति आक्रोश और जन के प्रति संवेदना का चित्रण मिलता है। इनके अनुसार वर्ग–वैषम्य पर आधारित यह पूँजीवादी व्यवस्था समाज के लिए एक अभिशाप है। वे अपनी 'बसन्त वर्षा' कविता में कहते हैं कि यह शोषक वर्ग जीर्ण जगत के प्रतिरूप हैं, भले ही ये फूलों से ढ़के रूप में विचर रहे हैं। वास्तव में ये समाज के शिखरों पर शव विचर रहे हैं–

eus enkuh cs lrko] Hkys us Qy Fkh <dk;ys :is fogjrke
'kok lektuk f'k[kjs Fkh f'k[kj fopjrkeA[2]

ठीक इसी प्रकार हिन्दी में भी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने अपनी लम्बी कविता 'कुकुरमुत्ता' में गुलाब के माध्यम से शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है–

vcs] lqu cs xqykc] Hkwy er tks ikbZ [kq'kcw jaxksvkc
[kwu pwlk [kkn dk rwus vf'k"V] Mky ij brjk jgk gS dSfiVfyLV!

प्रगतिशील कविता की एक प्रमुख विशेषता है– पुरानी जीर्ण–शीर्ण रूढ़िवादी व्यवस्थाओं का खण्डन करना और नव युग का स्वागत करना। यह प्रवृत्ति भी सिन्धी के प्रगतिशील काव्य में देखने को मिलती है। सिन्धी के प्रगतिशील कवि गोवर्धन मेहबूबानी 'भारती' (1929 ई0) 'सुबह आयो' कविता के माध्यम से कहते हैं कि नये समाज का आगमन हो चुका है, पुरानी जीर्ण–शीर्ण परम्पराएँ अब दफन हो चुकी है। अब समय आ गया है कि हम देवताओं की पूजा के स्थान पर किसानों की पूजा प्रारम्भ करें–

rgthc dqguhv [kS fc nQuk;kS lqcg vk;kA
o/kkS fofgqth Fkh fgd tfgMk ubZ nqfu;k ts efnj MkAA

*शोध छात्रा, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

u ift;k gkf'k iRFkj [k dk;k i|tk fdlkufu th]
fdlkufu ikfjárfu etnj egurd'k tokufu thA[3]

गुजराती के प्रगतिशील काव्य पर गाँधीदर्शन और रूसी क्रान्ति दोनों का समन्वित प्रभाव परिलक्षित होता है। गुजराती कविता में समाजवादी विचारधारा गाँधीवादी से ही जन्मी है। कवि उमाशंकर जोशी, मेधाणी, मनसुखलाल झवेरी और सुंदरम पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव दिखाई देता है। क्रान्ति व परिवर्तन के स्वर को निम्न गुजराती कविता में देखा जा सकता है जिसमें शोषण मुक्त समाज के निर्माण के लिए प्रलय का आह्वान किया गया है। धरती के हृदय में अब तक मूर्छित होकर जो भयंकर ज्वालाएँ छिपी हुई हैं, वे बाहर आ जाएँ–

/kjk mj nVkb efPNr i|p.M Tokykeq[kh]
cfgxr cuk jgk foylh jkn QRdkjFkhA[4]

वर्गहीन समाज की स्थापना करना प्रगतिशील कविता का लक्ष्य है। इसके लिए आवश्यक है कि पुरानी जीर्ण–शीर्ण रूढ़ियों और परम्पराओं का खण्डन किया जाए। आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों के साथ नवयुग का निर्माण किया जाए। नये वर्गहीन समाज व्यवस्था का आह्वान करते हुए बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' लिखते हैं–

dfo d|N ,slh rku lqukvks] ftlls mFky&iqFky ep tk;s
,d ygj b/kj ls vk;s ,d ygj m/kj ls vk;s
tx es mFky&iqFky ep tk;sA[5]

इसी तरह हिन्दी कवि सुमित्रानंदन पंत भी शोषण मुक्त समाज के निर्माण हेतु प्राचीन रूढ़िवादियों का विनाश अनिवार्य मानते हैं। इस सन्दर्भ में 'युगवाणी' की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

ये जीर्ण–शीर्ण चिर दीर्ण पर्ण, जो स्रस्त ध्वस्त श्रीहत विवर्ण, क्षय हो समस्त युग सूर्य अस्त

सिन्धी, गुजराती और हिन्दी तीनों के प्रगतिशील कवियों ने अपने काव्य में श्रमजीवी किसान–मजदूरों की दयनीय दशा, अभावग्रस्तता, गरीबी, भूख एवं दरिद्रता का यथार्थ चित्रण किया है। सिन्धी कवि अजीज की कविताओं में हम राष्ट्रीय भावना का चित्रण देख सकते हैं। इनका प्रमुख काव्यसंग्रह है– 'कुलियात अजीज'। कवि अजीज समाज की दुर्व्यवस्था का चित्रण करते हुए शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं कि किसान–मजदूरों को भरपेट खाना तक नसीब नहीं होता है, बच्चे परेशान है, लोग बेजार और दुखी है और जहाँ खुशियों का नामोनिशाँ तक नहीं है–

Hkjs u iVq Fkk [kkbu etqj ,s gkjh]
cpk , ckj d;k frfutk dk bnu csrko
e iN| vtht [kq'khv tks rq e[kks ukekfu'kkA[6]

गुजराती के प्रगतिशील कवि सुन्दरम ने 'कोया भगतनी कड़वी वाणी' में समाजवाद के सन्दर्भ में तत्कालीन समाज पर व्यंग्य कसते हैं। शोषितों की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सौ–सौ मिलें नगर में चल रही हैं किन्तु रामराज्य में भारत के गाँवों के लोगों को कपड़े का एक टुकड़ा भी नहीं मिल पाता–

'kfB;k ykduh e.Myh Hkkb lks lks fey pykos
Hkkjr dsjk xkeMk ek| Hkkb
jke uk jkt ek ek.kl u Hkkb phFk: gkFk u vkoA[7]

इसी प्रकार हिन्दी में कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' वर्ण वैषम्य का चित्रण करते हुए समाज के शोषित व निर्धनों की दशा का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि कठिन श्रम के बाद भी लोगों को खाने को रोटी और पहनने के लिए वस्त्र तक नहीं मिल पाते। इस कठोर विडम्बना का चित्रण करते हुए दिनकर जी लिखते हैं–

'okuks dks feyrs n/k] oL=] Hkw[ks ckyd vdqykrs gS
ek| dh gMMh ls fpid] fBBqj tkMks dh jkr fcrkrs gSA[8]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिंधी, गुजराती और हिन्दी तीनों में प्रगतिशील काव्यधारा प्रवाहमान् थी। सिंधी में जहां किशिनचंद बेबस, लेखराज अजीज, 'हरि' दिलगीर, हुँदराज दुखायल, नारायण श्याम, गोवर्धन भारती आदि प्रगतिशील कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से वर्ग–वैषम्य के प्रति आक्रोश व्यक्त किया वहीं गुजराती के प्रमुख प्रगतिशील कवि सुंदरम मेधाणी, उमाशंकर जोशी आदि ने भी आर्थिक असमानता पर चोट की है तथा हिन्दी में कवि सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, रामाधारी सिंह दिनकर आदि ने अपने काव्य में शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति घृणा भाव व्यक्त करते हुए समाज की दयनीय दशा का यथार्थ चित्रण किया है। निःसन्देह इन तीनों ही भारतीय भाषाओं ने अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक विषमता को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

I UnHk %

1. भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, सम्पादक– डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, संस्करण–1989 ई0, पृ0 488
2. वही, पृष्ठ 488
3. वही, पृष्ठ 492
4. वही, पृष्ठ 465
5. हिन्दी साहित्य का नवीन इतिहास, लाल साहब सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 2005, पृ0 153
6. वही, पृष्ठ 485
7. वही, पृष्ठ 485–486
8. हुंकार, दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2009, पृ0 89

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 39-41

lelkef;d fgUnh dgkfu;ksa esa r`rh;fyaxh foe'kZ

_f"kdk pk/kjh*

आज का समय विमर्शों का समय है। बहुकेन्द्रीयता का समय है। स्त्री, दलित अल्पसंख्यक, वृद्ध आदिवासी समुदाय परिधि को छोड़कर केन्द्र की और बढ़ रहे हैं और अपने भूलभूत मानवाधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं इन्हीं की भांति एक और वर्ग है जो अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है वह न स्त्री है न पुरूष है किन्तु सदैव से समाज का हिस्सा रहा है। जिसे समाज तीसरी दुनिया 'थर्ड जेंडर', 'किन्नर', 'हिजड़ा' आदि शब्दों से सम्बोधित करना है।

कहा जाता है भारतीय समाज और संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता 'समन्वयशीलता' है पर यह कटु सत्य है कि यह बात सभी संदर्भों में समान रूप से लागू नहीं होती। बहुवर्गीय सामाजिक संरचना के आवरण के पीछे मूल संरचना में हमारा समाज दो वर्गों में बँटा है। स्त्री और पुरूष दो वर्ग ही मुख्य धारा में हैं। जन्म से ही इनका वर्ग निर्धारण हो जाता है। जबकि वहीं समाज का यह तीसरा वर्ग जो समाज में तो सदैव से ही विद्यमान रहा है, लेकिन किसी भी काल में इनके अधिकारों की बात कभी नहीं उठाई गई।

हिन्दी साहित्य को ध्यान से देखेंगे तो स्पष्ट होता है कि संवेदनशील रचनाकारों ने कविता, कहानी और उपन्यास के माध्यम से किन्नरों से प्रति सहानुभूति व्यक्ति की है और आगे भी कर रहे हैं जबकि लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी ने अपनी आत्मकथा 'मै हिजड़ा मैं लक्ष्मी' (2015) में स्वानुभूति के माध्यम से किन्नर समुदाय के सच को उजागर किया है।

बात करें हिन्दी साहित्य में किन्नरों पर लिखी गई कहानियाँ उनकी कथा–व्यथा कहती नजर आती है। हिन्दी साहित्य में अभी उतनी मात्रा में किन्नर कहानियाँ नहीं लिखीं गई हैं लेकिन हिन्दी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श पर चर्चायें हो रही हैं उसी के परिणाम स्वारूप हिन्दी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श की कहानियाँ लिखी और पढ़ी जा रही हैं। प्रमुख कहानियों में 'बिन्दा महाराज', 'बहाव वृत्ति', 'किन्नर', 'इज्जत के रहबर', 'नेग', बीच के लोगे, त्रासदी, ई मुर्दन का गांव, हिजड़ा आदि में किन्नर व्यथा का यथार्थ परिलक्षित होता है।

किन्नर विमर्श की कहानियाँ विस्तार से चर्चा करें तो शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'बिन्दा महाराज' एक महत्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी में तृतीय लिंग की समस्याएं और उनका यथार्थ चित्रित हुआ है। शिवप्रसाद जी किन्नरों के दुःख, दर्द, संताप, मोह अंधविश्वास, उनकी विडंबना आदि को उजागर किया है। कहानी के मुख्य पात्र बिन्दा के माध्यम से पिता द्वारा तिरस्कार, पति का सुख, पत्नी की प्रतीक्षा, बेटा–बेटी का मोह आदि से वंचित होने की मानसिक पीड़ा को कहानी में उकेरने का प्रयास किया है। बिन्दा कहानी में इन सभी समस्याओं से लड़ना, भिड़ता और संघर्ष करता हुआ अपने अस्तित्व को स्थापित करने का प्रयास करता है कि मैं भी इस समाज का अंग हूँ, एक इंसान हूँ।

गरिमा संजय दुबे की कहानी 'पन्ना बा' किन्नर विमर्श की एक मजबूत कहानी है। इसमें किन्नर की दारूण स्थिति का चित्रण किया गया है। किन्नरों को समाज से जीते हुए नकार, अपमान का सामना करना पड़ता है। लेकिन मरने के बाद भी उसे दर्द के सिवाय और कुछ भी नहीं मिलता उसकी लाश को जूतों से पीटा जाता है। 'किन्नर की मौत पर उसकी लाश की जूतों से पिटाई की खबर पढ़ ही रही थी कि पता चला पन्ना बा मर गया। इस प्रकार कहानी में किन्नर की उस स्थिति का भी जिक्र

*निकट ब्लाक फरेन्दा, आनन्द नगर, महराजगंज–273155 (उ0प्र0)

किया गया है जिसमें वह समाज से वंचित रहा है। इसे व्यक्त करते हुए गरिमा जी कहानी में लिखती हैं, 'कोई काम पर रखे नहीं, कोई माता पिता इस अभिशाप को साथ रखने को राजी नहीं, कोई नौकरी नहीं, कोई पढ़ाई नहीं, बेचारा मनुष्य जिएं भी तो कैसे? कैसे देह से परे हो, फिर भी जीता है एक किन्नर।

'पन्ना बा' कहानी केवल किन्नर व्यथा को गढ़ती ही नहीं बल्कि वह मानव के मन–मस्तिष्क पर प्रभाव भी डालती है। संसार में किन्नर को लेकर मान्यताएँ हैं कि उसकी दुआओं में असर होता हैं। 'किन्नर की दुआ की कोई होड़ नहीं और उसकी बद्दुआ का कोई तोड़ नहीं।

लेकिन विडंबना यह है कि समाज केवल उन्हें दुआओं के लिए याद करता है। उन्हें इंसान के रूप में आज भी बहुत कम लोग देखते हैं।

पूनम पाठक की 'किन्नर' कहानी लघु कहानी होते हुए भी महत्वपूर्ण है। यह कहानी एक और किन्नरों के प्रति सभ्य कहलाने वाले समाज की मानसिकता–सोच को उजागर करती है तो दूसरी और किन्नरों की मानवीयता को भी व्यक्त करती है। बस में बैठे किन्नर के बगल सीट पर मानसी बैठना नहीं चाहती। अपनी सीट के बगल में बैठे हुए किन्नर को देखकर कुछ झिझकते हुए वह कंडक्टर को दूसरा सीट मागती है। सीट न मिलने पर वह खड़ी हो जाती है। लेकिन बस में जब उसे लड़के छेड़ने लगते हैं तब किन्नर ही उसकी रक्षा करता है। बस के बाकी लोग केवल तमाशा देखते हैं। किन्नर मानसी की रक्षा करता है किन्तु तमाशा देखनेवाले उसे अपमानित करते हुए'हिजडा़' कहते हैं। इसपर मानसी व्यंग्य से कहती है, ''हिजड़ा ये नहीं बल्कि आप सभी हो, जो अभी तक सारा तमाशा देख रहे थे, किसी हिन्दी फिल्म की तरह कुछ देर और चलता तो शायद एम.एम.एस. भी बनने लगते, पर मद्द को एक हाथ भी आगे नहीं आता।'' ''मानसी को किन्नर देवदूत लगता है। वह नम आँखों से किन्नर को धन्यवाद कहती है। इस प्रकार किन्नरों के प्रति सामाजिक धारणा और किन्नरों की मानवीयता का यथार्थ इस कहानी में चित्रित हुआ है।[3]

किन्नर विमर्श की दृष्टि से श्रीकृष्ण सैनी की 'हिजड़ा' एक मार्मिक कहानी है इसमें किन्नरों की दया, ममता और मानवीयता की अभिव्यक्ति हुई है। किन्नरों की मानसिक पीड़ाओं को भी इस कहानी में चित्रित किया गया है। कहानी में बस दुर्घटना में राघव और उसकी पत्नी निर्मला की मृत्यु हो जाती है। परिवार में तीन–चार साल का बेटा सुनील एक मात्र सदस्य रह जाता है। राघव के दूर के रिश्ते का भाई सुमेर उनके मकान का दावेदार बन जाता है लेकिन वह सुनील की बात को हमेशा टाल देता है। ऐसे में रजिया जो कि एक हिजड़ा है यह जिम्मेदारी खुद लेती है। निर्मला से अपनापन होने के कारण रजिया सुनील का सारा भार अपने ऊपर लेती है। सुनील पढ़–लिखकर बड़ा अधिकारी बन जाता है। सभ्य कहलाने वाले समाज की आलोचना से सुनील को बचाने के लिए रजिया अपनी पहचान छिपाकर रखने के लिए हेडमास्टर को कहती है। अपना खून देकर वह सुनील की जान भी बचाती है। लेकिन विडम्बना यह होती है कि वह अपनी पहचान उजागर नहीं कर सकती। ''आखिर इस मानसिक रूप से हिजड़ा हो चुकी दुनियाँ में वह किस–किस को जवाब देती।''[4]

'नेग' कहानी किन्नर विमर्श की उल्लेखनीय कहानी है। जो उनके परम्परागत रहन–सहन और विवाहों में उनकी नेग मांगने की कथा पर आधारित है। किन्नरों का किसी के विवाह में या किसी के घर बेटा होने पर नाचना–गाना और नेग मांगना आदि का यथार्थ इस कहानी में चित्रित हुआ है। इस कहानी में लड़की होने की विडम्बना को भी दर्शाया गया है। बेटा होने पर किन्नरों को गवाना और नेग देना आदि मान्यताएं भी इसमें प्रकट हुई हैं। लेकिन बेटी होने पर उन्हीं किन्नरों को प्रताड़ित किया जाता है। इस प्रकार यह कहानी बेटा–बेटी के भेदभाव के साथ ही साथ किन्नरों की समस्याओं को व्यक्त करती है। ''अगर इसके जन्म का नेग नहीं दे सकते तो इसी को ले जाओ..... इसने यह अपराध किया है कि यह लड़की बनकर पैदा हुई है। इसके साथ ऐसा व्यवहार किया जा रहा है जैसे यह खुद मेरी कोख में आ गई।'' इस तरह समाज में मानव–मानव के साथ भेदभाव कर रहा है। किन्नर समाज इस भेदभाव को मिटाने का प्रयास कर रहा है। वंचित होते हुए भी खुद माँ की ममता से अछूता

रह कर, पिता के प्रेम से वंचित, भाई के दुलार से दूर रह कर भी इस तरह के भेदभाव को भूल कर सबको आपस में मिलकर रहने की बात भी किन्नर कहता है। 'नेग' कहानी में भी बताया गया है कि किन्नर बेटी के जन्म पर भी खुशी से नाचना चाहता है–''लो चाची........ हमारी तरफ से नेग.. ..... तुम्हारे घर में लक्ष्मी आई है...... यह बताने में शर्म कैसी?'' इस तरह तृतीय लिंग समाज अछूत रह कर भी समाज में उस अछूतेपन को दूर करने का प्रयास कर रहा है। समाज में अपने प्रति हो रहे अत्याचारों, शोषण, हीन–भावनाओं से ग्रसित समाज के प्रति अपने व्यथाओं को वह प्रदर्शित करने की कोशिश कर रहा है।[5]

विविध दृष्टियों से उन पर चर्चा/विमर्श भी किया जा रहा है, तब भी 'तीसरे लिंग' पर उतनी बात नहीं हो रही है, जितनी अब तक हो जानी चाहिए थी। साहित्य में भी उंगलियों पर गिनने लायक प्रयास ही हुए हैं।

फिर भी यह संतोषजनक है कि यह विषय वर्तमान साहित्य में अपनी पैठ बना चुका है। यह अल्पसंख्यक अस्मिताओं पर विमर्श का दौर है। दशकों पहले से दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और आदिवासी विमर्श से आच्छादित सहित्य का फलक आज तीसरी सत्ता पर कलम उठाने के लिए बाध्य हो गया है। बाध्यता इस बात की कही जा सकती है कि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, वह सामाजिकता से इतर हो ही नहीं सकता। उसकी सदा से सामाजिक संबद्धताएं औार सरोकार रहे हैं। साहित्य का उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन करना भले न हो, फिर भी वह संकीर्ण मानसिकता को बदलने में सहायक की भूमिका निभाता ही है।

lUnHkZ%

1. 'पन्ना बा'– गरिमा संजय दुबे, वांग्मय (त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका) संपादक–एम0 फिरोज अहमद, जनवरी–मार्च 2017, पृ0 120
2. वही, पृ0 121
3. 'किन्नर'' पूनम पाठक, वांग्मय (त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका) संपादक–एम0फिरोज अहमद जनवरी–मार्च 2017, पृ0 149
4. हिजड़ा–श्रीकृष्ण सैनी, वांग्मय पत्रिका, जनवरी–मार्च 2017, पृ0 124
5. नेग–डॉ0 लवलेश दत्त, वांग्मय पत्रिका, जनवरी–मार्च 2017, पृ0 117

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 42-45

Hkkjrh; jktuhfr e: jktuhfrd nyk dh Hkfedk

Mk0 l:t; dqekj ek;*

प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में राजनीतिक दलों की भूमिका का अध्ययन अवश्यंभावी होती है बिना राजनीतिक दलों के न तो सिद्धान्तों की राजनीतिक अभिव्यक्ति हो सकती है और न नीतियों की व्यवस्थित विकास, न संसदीय निर्वाचन के संवैधानिक साधन का अथवा अन्य किसी मान्यता प्राप्त ऐसी संस्था का नियमित प्रयोग जिसके द्वारा दल सत्ता प्राप्त करते हैं और उसे बनाये रखते है।[1] विभिन्न जनतंत्री देशों में दल प्राणाली स्वरूप सम्बन्धित देश के राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक परिस्थितियों की देन होती है। यही कारण है कि संसार के विभिन्न शासन व्यवस्थाओं में दल प्रणाली का स्वरूप और उनका कार्यभार भिन्न–भिन्न दिखाई देता है। नार्मन डी पामर का कहना है कि– जापान, फिलीपाइन और इजराईल को छोड़कर ऐशिया के किसी भी देश में पश्चिमी ढंग की सुसंगठित तथा प्रभावशाली जनतंत्री दल प्रणाली का विकास नहीं हुआ है। भारत में दल प्रणाली का उद्भव राष्ट्रीय आन्दोलन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से देखा जा सकता है। राष्ट्रीय आन्दोलन को संस्थागत रूप देने वाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस धीरे–धीरे एक ऐसी जनसंगठन के रूप में परिवर्तित हो गयी। जिसमें सभी हितों का प्रतिनिधित्व देखा जा सकता है। इस संगठन में पूँजीपति और साम्यवादी सामन्ती तत्व और समाजवादी, प्रतिक्रियावादी और क्रान्तिकारी, अनुदानवादी, उग्रवादी, धर्मानुयायी और नास्तिक जातिवादी और जाति से परे सभी ही शामिल थे।[3]

भारत में 1841 पंजीकृत दल हैं जिसमें 7 राष्ट्रीय दल, 51 क्षेत्रीय दल और 1785असंगठित दल चुनाव आयोग में पंजीकृत दल हैं।[4] भाजपा और कांग्रेस पूरे देश में है। तृणमूल कांग्रेस 1988, बसपा 1984 व राष्ट्रवादी कांग्रेस 1885, भारतीय जनता पार्टी 1980, कम्यूनिष्ट पार्टी ऑफ इण्डिया 1925, कम्प्यूनिष्ट पार्टी ऑफ इण्डिया मार्कसिस्ट 1964 है।5,6,7,8 माकपा व भाकपा तीन छोटे राज्यों तक सीमित है। तृणमूल व राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी कांग्रेस से टूटकर ही बनी। शेष अधिकांश दलों का जनम और विस्तार गैरकांग्रेसवाद से हुआ। राष्ट्रीय दलों के अतिरिक्त विभिन्न प्रदेशों में राजनीतिक दलों की भी स्थापना हुई, उसमें समाजवादी पार्टी, तृणमूल कांग्रेस, राष्ट्रीय जनता दल, शिरोमणि अकालीदल, राष्ट्रीय लोक समता पार्टी, अपना दल, जनतादल, जनतादल सेक्यूलर, बिजूजनतादल, शिवसेना, आमआदमी पार्टी, वाई0आर0एस0 कांग्रेस पार्टी, नेश्नल डेमोक्रेटिव प्रोगेसिव पार्टी, आदि क्षेत्रीय दल अपने छोटे–छोटे क्षेत्रीय हितों को लेकर स्थापित हुए।

1934 में कांग्रेस में से ही एक नए राजनीतिक दल का उदय हुआ जिसे समाजवादी दल कहा गया। 1948 तक यह समाजवादी दल कांग्रेस के अन्तर्गत उसकी एक शाखा के रूप में कार्य करता रहा, उसके बाद कांग्रेस ने एक प्रस्ताव के द्वारा यह निश्चिय किया कि कांग्रेस के अन्तर्गत रहकर किसी राजनीतिक दल का निर्माण नहीं किया जा सकता। इस निर्णय के फलस्वरूप समाजवादी दल ने कांग्रेस से अलग होकर एक पृथक् राजनीतिक दल का रूप धारण किया। कांग्रेस समाजवादी दल औक्र कांग्रेस के बीच देश की स्वतंत्रता प्राप्त करने के उद्देश्य पर मतैक्य था, लेकिन इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए क्या साधन अपनाए जाएँ, इस विषय पर उनके बीच मतभेद था समाजवादी दल काफी दिनों तक कांग्रेस के अन्तर्गत ही कार्य करता रहा, लेकिन स्वतंत्रताके पश्चात् कांग्रेस समाजवादी दल अपने मूल संगठन से अलग हो गया। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गाँधी जी ने यह सुझाव दिया कि कांग्रेस

*लपरी, काईरीडिहाँ, पोस्ट–लपरी, जिला–जौनपुर, उ0प्र0

को भंग कर दिया जाय, लेकिन उनकी इस बात को स्वयं उनके अनुयायियों ने नहीं माना और देश की शासन सत्ता कांग्रेस के हाथों में पहुँच गयी। वास्तविक रूप में कांग्रेस एक राजनीतिक दल का रूप धारण किया।

भारत एक लोकतांत्रिक देश है अतः यहाँ दलीयसंगठन भी लोकतांत्रित पद्धति पर ही आधारित है, परन्तु दलीय प्रणाली के अवलोकन पर मिचेल्स का तर्क है कि आधुनिक संसार में प्रजातंत्र असम्भव है। उसके शब्दों में प्रजातंत्र जो किसी समय में बुद्धिजीवी सिद्धान्त था और व्यवहार में एक आन्दोलन है, अब एक आलोचनात्मक चरण में प्रवेश कर चुका है, इससे बाहर निकलना बहुत कठिन है। अपनी पुस्तक पोलिटिकल पार्टी में उसने रूसों के सामाजिक समझौते से उद्धरण लेते हुए कहा, इस शब्द का सही मायने में अर्थ किया जाय तो सच्चा प्रजातंत्र कभी था ही नहीं और न कभी होगा। यह प्राकृतिक नियम के विरूद्ध कि बहुसंख्यक शासन करे।[9]

भारत का संविधान नागरिकों को भी राजनीतिक दल का निर्माण करने का अधिकार देता है। संविधान के द्वारा नागरिकों को संघ बनाने, चुनाव में भाग लेने का व्यापक अधिकार प्राप्त करता है। इसलिए भारतीय दल व्यवस्था को खुला राजनीतिक दल कहा जाता है।

1952 के प्रथम आम चुनाव में 77 राजनीतिक दलों ने भाग लिया था। आशा यह की जा रही थी कि धीरे–धीरे राजनीतिक दलों का ध्रुवीकरण हो जायेगा, लेकिन 2009, 2014 के लोक सभा चुनाव में दलों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती रही। दलों की संख्या की दृष्टि से भारत मे प्रारम्भ से ही बहुदलीय पद्धति रही है, लेकिन लगभग 30 वर्षों तक केन्द्र और राज्य की राजनीति में कांग्रेस दल का आधिपत्य बना रहा। भारतीय में राष्ट्रीय स्तर पर आधे दर्जन से ज्यादा राजनीतिक दल अस्तित्व में रहे और प्रादेशिक व राजनीतिक दलों की संख्या कई दर्जन तक रही है। 1952 से लेकर 1989 तक (1977–80 के अतिरिक्त) केन्द्र और अधिकांश राज्यों में कांग्रेस दल सत्ता में रहा। 1989–90 के चुनाव के बाद इस प्रकार एकदलीय प्रभुत्व का अंत होता दिखायी दिया, क्योंकि केन्द्र में जनतादल की मिली हुई सरकार तथा राज्यों विभिन्न राजनैतिक दलों की सरकारें गठित हुई।

1990 के दशक में क्षेत्रीय दलों का तेजी से हो रहे विकास के फलस्वरूप राज्यों की राजनीति में क्षेत्रीय राजनीतिक दल प्रभावशाली हो रहे हैं। राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सरकारें बन रही है और राष्ट्रीय दलों का प्रभाव कम हो रहा है। दूसरी ओर राष्ट्रीय स्तर पर कोई भी राजनीतिक दल अकेले सरकार बनाने की स्थिति में नहीं है। फलस्वरूप साझा सरकारें गठित हो रही है, जिसका अपना कोई ठोस सैद्धांतिक और वैचारिक आधार नहीं है। केन्द्रीय सरकार का बनना और टूटना क्षेत्रीय राजनैतिक दलों के समर्थन पर निर्भर करता है, ऐसी स्थिति में केन्द्र सरकार का क्षेत्रीय दलों पर निर्भरता बढ़ती जा रही है।[10]

नवीं लोकसभा चुनाव में कांग्रेस पार्टी को मिले कुल स्थानों का प्रतिशत उसे मिले कुल मतों के प्रतिशत से कम रहा। इस चुनाव में साम्प्रदायिक राजनीतिक दल भारतीय जनता पार्टी का सशक्त रूप से उभर कर आना इसे लोक सभा में 85 स्थान प्राप्त हुआ। 1989 के बाद से राष्ट्रीय राजनीति में साम्प्रदायिक शक्तियों को बहुत ज्यादा बल मिला। भाजपा अयोध्या जैसे विवादास्पद धार्मिक मुद्दों के उठाकर भावनात्मक उत्तेजना पैदा करके धर्म के नाम पर जनसमर्थन जुटाने में सफल हुई। इस चुनाव में किसी भी राजनैतिक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं प्राप्त हुआ और क्षेत्रीय दलों के सहयोग से बी0पी0 सिंह के नेतृत्व में सरकार का गठन किया गया।

1991 में दसवीं लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस का मत प्रतिशत घटा लेकिन उसे सीटों में 7 प्रतिशत अधिक स्थान मिले, भाजपा को लोकसभा में दूसरा स्थान मिला 120 सीटें प्राप्त कर सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी बनी। इस चुनाव में राज्य स्तरीय दलों को भी लाभ पहुँचा और इन्हें कुल 50 सीटे मिली, यह स्थिति राज्य राजनीतिक दलों के बढ़ते हुए प्रभाव को प्रकट करती है।[11]

1996 के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी लोक सभा में सबसे बड़ी राजनीतिक दल के रूप में उभर कर सामने आयी उसे 120 के मुकाबले 161 स्थान प्राप्त हुआ। कांग्रेस 141 स्थान प्राप्त करके दूसरे स्थान पर रही। इस संसदीय चुनाव से भारतीय राजनीति में एक नया मोड आया, क्षेत्रीय दलों का प्रभावी रूप

से उभरना। इस चुनाव में राज्यस्तर राजनैतिक दलों को 127 तथा रजिस्टर्ड राजनैतिक दलों के 4 स्थान मिले। यूनाइटेट फ्रन्ट को प्राप्त 176 स्थानों में 117 स्थान इसके घटक क्षेत्रीय दलों को मिले। परिणाम यह हुआ कि केन्द्र सरकार के बनाने व गिराने में क्षेत्रीय राजनैतिक दलों ने निर्णायक भूमिका अदा की।[12]

1999 के चुनाव में भाजपा के कुछ क्षेत्रीय दलों के साथ चुनावी समझौते करके नेशनल डेमोक्रेटिव अलायन्स के मेनीफेस्टों पर चुनाव लड़ा और सबसे बड़े दल के रूप में उभर कर सरकार का निर्माण किया।[13]

14वीं लोकसभा में कांग्रेस सबसे बड़े दल के रूप में उभरी और चुनाव के बाद बामपंथी दलों के अतिरिक्त कुछ अन्य पंथनिरपेक्ष्य राजनीतिक दलों जैसे–समाजवादी पार्टी, बहुजन समाजपार्टी आदि ने भी कांग्रेस पार्टी को बाहर से समर्थन देने की घोषणा की। इन दलों के सहयोग से एक नया गठन संयुक्त प्रगतिशील गठबन्ध अस्तित्व में आया और 2004 में एवं 2009 में कांग्रेस समर्थित सरकार बनी।

16वीं लोकसभा चुनाव में एन0डी0ए0 (नेश्नल डेमोक्रेटिव एलांयन्स) को कुल 337 सीटों पर विजय प्राप्त हुई और कांग्रेस समर्थित यू0पी0ए0 को कुल 60 सीटों पर ही संतोष करना पड़ा। इस चुनाव में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों ने बहुत अच्छा प्रदर्शन नहीं किया, जो भी प्रदर्शन रहा है उन लोगों का किसी न किसी बड़े राजनैतिक दलों के साथ चुनावपूर्व एलांयन्स में सम्मिलित होकर सशक्त भागीदारी को प्रस्तुत करना।

14वीं लोकसभा के चुनाव से लेकर 16वीं लोकसभा चुनाव तक राजनीतिक दलों तथा उनके संगठक दलों का प्रदर्शन निम्नवत है–

राजनीतिक दल	2004[14]	2009[15]	2014[16]
एन0डी0ए0	187	159	336
यू0पी0ए0	218	262	60
अन्य	136	122	147

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन का जनाधार दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और यू0पी0ए0 गठबन्धन जो की 2004 और 2009 में सशक्त राजनीतिक दल थी जो 2014 के आम चुनाव में घट कर मत प्रतिशत 19.3 प्रतिशत हुआ जबकि वहीं राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन का मत प्रतिशत 31 है। यू0पी0ए0 को वर्तमान में जो अप्रत्याशित लोकप्रियता प्राप्त हो रही है वो यू0पी0ए0 में व्याप्त भ्रष्टाचार, गुटबंधी, तोड़–फोड़ या अन्य किसी कारण से हुई जबकि एन0डी0ए0 की लोकप्रियता साम्प्रदायिक, धार्मिक, संगठन में एकता जिम्मेदार है या दल का नेतृत्व महत्वपूर्ण है। 2014 का चुनाव दल व्यक्तित्व पर प्रभावित होकर जीता गया। जिसमें, विकास और भ्रष्टाचार को मुद्दा बनाकर अपनी भूमिका का निर्वहन किया और 30 वर्षों के बाद किसी दल को ऐतिहासिक बहुमत प्राप्त हुआ।

fu"d"k% राजनीतिक दल जनतंत्रीय व्यवस्था के अभिन्न अंग हैं, इन्हें अदृश्य सरकार तथा सरकार का चतुर्थ अंग भी कहा जाता है, जनतंत्रीय शासन जनस्वीकृति एवं बहुमत पर आधारित होता है। जनता एक निश्चित अवधि के लिए निर्वाचन के माध्यम से अपने प्रतिनिधियों को चुनती है। लोकतंत्र में निर्वाचन आवश्यक है और निर्वाचन के लिए राजनीतिक दल अनिवार्य है राजनीतिक दल जनता की आशाओं और आकांक्षाओं के पालन हेतु निर्वाचन में भाग लेते हैं और बहुमत की स्थिति में सत्तारूढ होकर कार्य करते हैं।

भारत की राजनीति में राजनीतिक दलों की स्थिति परिवर्तनशील रही है यहाँ पर बहुदलीय व्यवस्था को तो अपनाया गया लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से 1989 तक (कुछ समय को छोड़कर 1977–80) एकदलीय प्रभुता दिखी है। 1989 से लेकर 2009 तक के निर्वाचन में क्षेत्रीय दलों ने भारतीय राजनीति की दिशा एवं दशा का निर्धारण किया है तथा क्षेत्रीय दल यहाँ तक निर्धारण करते हैं कि कौन सा व्यक्ति प्रधानमंत्री होगा और किस दल को कौन सा मंत्रालय मिलेगा। ये भारत की राष्ट्रीय राजनीति के लिए दुर्भाग्य कहा जा सकता है, क्योंकि क्षेत्रीय दल अपने क्षेत्र के हितों को लेकर भारतीय राजनीति

में तुष्टीकरण नीति का पालन करते हैं। इस प्रकार भारतीय राजनीति में राजनीति दलों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

lUnHkZ %

1. आर0एम0 मैकाइवर, दि माडर्न स्टेट (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी) प्रेस 1926, पृ0–316
2. नार्मन डी पामरः दि इंडियन पोलिटिकल सिस्टम/जार्न एलेन एण्ड अनविल, लंदन 1963, पृ0–182.
3. एस0एन0 सदाशिवन पार्टी एण्ड डेमोक्रेसी इन इण्डिया टाटा मैम्ग्राहिल्स पब्लिशिंग, कम्पनी लि0 नई दिल्ली। 1977, पृ0–50
4. State party lest PDF ECI 13 December 2016.
5. PDF E.C.I 5 May 2017 Retrieved 19 May, 2017.
6. T.M.C. recognized as national Party
7. The Hindu. The Hindu Retrieved 3 September
8. Recognition of All India Trinamoll congress as national party PDF ECI 17 Sep 2016.
9. विजयलक्ष्मी पण्डित राजनीति अभिजन, भारतीय संदर्भ द मैकैनिकल कम्पनी इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली 1978 पृ0 16
10. प्रो0 एस0एम0 सईद–भारतीय राजनीतिक व्यवस्था संशोधित संकरण 2009, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ–2009, पृ0 226
11. वही, पृ0 290
12. वही, पृ0 292
13. वही, पृ0 297
14. वही, पृ0 296
15. वही, पृ0 297
16. GEC 2014, PDF 16 May 2014.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 46-49

Hkkjr dh /keZfujis{krk dh n'kk vkSj fn'kk

MkO jkts'k dqekj ik.Ms;*

lkjka'k % *यह अध्ययन भारत की धर्मनिरपेक्षता की दशा और दिशा को रेखांकित करता है। यह शोध पत्र अन्वेषणात्मक एवं विवरणात्मक शोध प्रणाली पर आधारित है। इस अध्ययन में द्वितीयक स्त्रोतों का प्रयोग किया गया है। जो पूर्व के अध्ययनों से अलग है तथा समाज के लिए महत्वपूर्ण है।*

eq[; 'kCn : धर्मनिरपेक्षवाद, स्वकर्तव्य पालन, धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र, मानवतावादी, कर्मकाण्डों और विश्वासों, अल्पसंख्यक वर्गों आदि।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र नहीं है यह आम आदमी से लेकर बुद्धिजीवियों के गले से शीघ्र उतरने वाली बात बिल्कुल प्रतीत नहीं होती है, लेकिन भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है अथवा नहीं, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। इस प्रश्न के उत्तर ढूँढ़ने से पूर्व हमें धर्मनिरपेक्षवाद के अर्थ स्वरुप एवं विशेषताओं को स्पष्ट करना होगा। यदि अर्थ और विशेषता के दृष्टिकोण से भारत की धर्मनिरपेक्षता अपनी कसौटी पर खरी उतरती है, तो भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की संज्ञा दी जा सकती है। यदि नहीं तो भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र नहीं कहा जा सकता है। अब सर्वप्रथम यह समझें कि आखिर धर्मनिरपेक्षवाद है क्या? इस परिप्रेक्ष्य में यह समझ लेना लाजिमी है कि धर्मनिरपेक्षवाद में 'धर्म' शब्द का इस्तेमाल इसके सामान्य प्रचलित अर्थ में ही किया जाता है, जिसके मुताबिक हम हिन्दू ईसाई पारसी, जैन बौद्ध इस्लाम आदि को धर्म कहते हैं, यहाँ 'धर्म' शब्द का मतबल 'अभ्युदय' या 'स्वकर्तव्य पालन' नहीं है जिसे प्राचीन भारतीय विद्वानों ने अंगीकार किया है। इसका अर्थ यह है कि यह धर्म का प्रतिरोध नहीं करता यह सिद्धान्त 'धर्म' शब्द के उस अर्थ में इसका प्रतिरोध करता है जिस अर्थ में 'धर्म' के लिए मजहब एवं 'रिलिजियन' शब्दों का इस्तेमाल किया जाता है। धर्मनिरपेक्षवाद के मानने वालों के अनुसार, इस सामान्य व्यावहारिक अर्थ में धर्म का छोड़ना या कम–से–कम उसके प्रति तटस्थ अथवा उदासीन रहना ही मनुष्य के लिए सर्वोत्तम होगा। इसकी वजह यह है कि उक्त सामान्य अर्थ में धर्म आवश्यक रुप से किसी अलौकिक अथवा प्राकृतिक सत्ता या शक्ति पर आधारित रहता है जिसे तस्लिम करने के परिणामस्वरुप मानव अक्सर इस विश्व तथा अपने वर्तमान जीवन के प्रति उदासीन हो जाता है।

जैसा कि उपर्युक्त अनुच्छेद में ही यह बात कह दी गई है कि धर्मनिरपेक्षवाद 'धर्म' के व्यावहारिक अर्थ में इसका प्रतिरोध करता है। इसका मतलब यह है कि इस सिद्धान्त के अनुसार राजनीति, कानून, अर्थव्यवस्था, शिक्षा, नैतिकता, प्रशासन इत्यादि में धर्म का हस्तक्षेप नहीं होता है। इन सभी क्षेत्रों से जुड़ी समस्याओं पर धार्मिक विचार से नहीं प्रत्युक्त मानव कल्याण की दृष्टि से विचार किया जाना लाजमी है, लेकिन यह तभी मुमकिन है जब राष्ट्र की मुकम्मल प्रशासन–व्यवस्था, शिक्षा, नेतिकता, आर्थिक–व्यवस्था उनके द्वारा निर्मित कानूनों एवं इन कानूनों के क्रियान्वयन को धर्म गुरुओं के हस्तक्षेप से स्वतंत्र रखा जाना चाहिए यही वजह है कि धर्मनिरपेक्षवाद के हिमायती मानव जवीन के इन सभी क्षेत्रों को धर्म से अलग एवं स्वतंत्र समझते हैं तथा धर्म के हस्तक्षेप को पूर्णरुपेण निरस्त कर देते हैं उनके अनुसार, धर्म प्रत्येक मुनष्य का व्यक्तिगत मामला है, इसलिए उसे मानव के सामाजिक जीवन से अलग रखना जरुरी है। अपने सामाजिक जीवन से जुड़ी समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में मनुष्य का कोइ भी फैसला किसी भी रुप में धार्मिक सिद्धान्तों, मान्यताओं या विश्वासों के जरिए प्रभावित नहीं होना चाहिए। इसी अर्थ में धर्मनिरपेक्षवाद मानव–जीवन में धर्म का पूर्णरुपेण प्रतिरोध करता है एवं यही इस सिद्धान्त का नकारात्मक पक्ष भी है, लेकिन यहाँ साफ कर देना लाजिमी है कि धर्म–निरपेक्षवाद सिर्फ नकारात्मक सिद्धान्त कतई नहीं है। इसका सकारात्मक पक्ष भी है जिसकों नकारना न्यायोचित नहीं होना।

*एसो0 प्रो0, समाजशास्त्र विभाग, जी0 डी0 बिनानी पी0 जी0 कालेज, मीरजापुर, उ0प्र0

सिद्धान्त मनुष्य के जीवन में सिर्फ धर्म का ही प्रतिरोध नहीं करता है, बल्कि बौद्धिक और वैज्ञानिक उपायों से व्याप्त अर्थ में मानव कल्याण एक सुमार्ग तैयार करता है। इसके हिमायतियों का स्पष्ट विचार है कि हमें अपने जीवन की हर एक समस्या पर तार्किक रुप से विचार करना चाहिए और केवल बौद्धिक उपायों एवं वैज्ञानिक तरीकों से उसका यथोचित हल ढूँढने की कोशिश करनी चाहिए इस विचार से धर्मनिरपेक्षवाद मनुष्य के स्वतंत्र बौद्धिक चिन्तन और निष्पक्ष वैज्ञानिक अनुसंधान को विशेष अहमियत प्रदान करते हैं। इस सिद्धान्त के पक्षधरों का मत है कि मानव का समस्त ज्ञान मूलरुप से उसके अनुभव एवं उसके तर्कबुद्धि पर ही आधृत है। इन दोनों स्रोतों के अलावा, जीवन और जगत् के परिप्रेक्ष्य में वह किसी अलौकिक स्रोत से ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता कुल मिलाकर धर्मनिरपेक्षवाद के सन्दर्भ में सर्वमान्य यही है, ''धर्म–निरपेक्षवाद एक विशेष प्रकार का मानवतावादी जीवन–दर्शन है, जो धर्म तथा अध्यात्मवाद का विरोध करते हुए नैतिकता, शिक्षा, राजनीति, प्रषासन, कानून आदि को इन दोनों से पूर्णतः स्वतंत्र मानता है और जो मनुष्य को अलौकिक या दैवी शक्तियों पर आश्रित रहने के स्थान पर पूर्णतः आत्मनिर्भर बानने की प्रेरणा देकर उसके वैयक्तिक एवं सामाजिक कल्याण के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

अब यदि कोई राष्ट्र धर्मनिरपेक्ष है, तो उसे इन शर्तों को पूरा करना उसके लिए अपेक्षित है तथा वह (राष्ट्र) धर्म को मनुष्य का व्यक्तिगत मामला मानकर व्यक्ति तथा समुदाय को धर्म के विषय में समुचित आजादी देता है धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा के मुताबिक किसी भी धर्म को अपना सकता है तथा उसकी पूजन–पद्धति के स्वरुप उपासना कर सकता है। इसी प्रकार वह अपना धर्म परिवर्तन करने या किसी भी धर्म में विश्वास न करने के लिए भी स्वतंत्र है वह खुद अपने–अपने एवं अन्य धर्मों के विषय में दूसरे के साथ शांतिपूर्वक विचार विमर्श कर सकता है। धर्म निरपेक्ष राष्ट्र में किसी व्यक्ति को धर्म में विश्वास करने किसी विशेष धर्म विशेष धर्म को अंगीकार अथवा परित्याग करने या उसका प्रचार–प्रसार करने के वास्ते किसी भी रुप में आर्थिक सहायता देने हेतु विवष नहीं किया जा सकता है। ऐसे राष्ट्र में धर्म के विषय में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ–साथ सामूहिक आजादी भी दी जाती है इसका मतलब यह है कि अनेक व्यक्ति मिलकर अपनी इच्छानुकूल धार्मिक और आर्थिक दृष्टि से स्वयं इस ओर धार्मिकता भी प्रदान कर सकते धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र हस्तक्षेप नहीं करता लेकिन यहाँ नहीं करता लेकिन यहाँ साफ कर देना लाजमी है कि इस धर्मिक आजादी की कुछ आवश्यक सीमाएँ भी निर्देशित है जिन्हें दरकिनार नहीं किया जा सकता। किसी भी व्यक्ति तथा समुदाय को यह धार्मिक आजादी उस सीमा तथा समुदाय को यह धार्मिक आजादी उस सीमा तक प्रदान की जा सकती है जिस सीमा तक यह राष्ट्र में कानून, शान्ति एवं व्यवस्था, जनस्वास्थ्य, राष्ट्रीय सुरक्षा, नैतिकता, अन्य व्यक्तियों के अधिकारों एवं उनकी धार्मिक आजादी में अवरुद्ध न साबित हो, अगर कोई धर्मपरायण व्यक्ति या समुदाय किसी भी रुप में अन्य व्यक्तियों के अधिकारों का दमन करता है, तो उसकी धार्मिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करना राष्ट्र का आवश्यक कर्त्तव्य हो जाता है। इस प्रकार धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय को कुछ विशेष सीमाओं के तहत् यथोचित धार्मिक आजादी दी जाती है।

धर्मनिरपेक्षवाद की दूसरी खूबी यह है कि इसमें धर्म के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव किए बिना प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र का नागरिक समझा जाता है। नागरिक के रुप में उनका कर्तव्य उत्तरदायित्व एवं अधिकार किसी भी रुप में उनके धार्मिक विश्वासों द्वारा अप्रभावित होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि नागरिकों के धार्मिक विश्वासों पर विचार किए बिना धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र अपने सम्पूर्ण कानून उन पर एकसमान रुप से लगाता है। धर्म के आधार पर विभिन्न नागरिकों हेतु भिन्न–भिन्न कानूनों को अस्वीकार किया जाता। इसके अलावा, धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र अपने प्रत्येक नागरिक से यह भी अपेक्षा करता है कि वह सिर्फ राष्ट्र के प्रति ही पूर्ण निष्ठा एवं प्रतिबद्धता रखेगा तथा इसमें धर्म को किसी भी रुप में अवरोधक नहीं बनने देगा इस तरह धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र अपने अन्दर निवास करने वाले सभी व्यक्तियों को किसी धर्म के अनुयायी के रुप में नहीं प्रत्युत्त एक ऐसे नागरिक के रुप में देखता है जिसके कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों और अधिकारों पर उसके धर्मिक विश्वासों तथ विचारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त,एक अहम विशेषता यह भी है कि यह स्वयं को धर्म से मुकम्मल तौर पर अलग रखता है। इसका मतलब यह है कि राष्ट्र एवं धर्म के क्रियाकलाप से एक–दूसरे का कोई सरोकार नहीं होता अर्थात् कोई एक दूसरे के आंतरिक मामले में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र से सम्बद्ध उपर्युक्त विशेषताओं के आलोक में यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है कि किसी भी राष्ट्र को एक 'धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र' की उपाधि तभी दी जाती है जब वह उक्त विशेषताओं का अनुसरण करता है। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र को डी. ई. स्थिम ने इस प्रकार परिभाषित किया है कि ''धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र वह राष्ट्र है जो व्यक्ति तथा समुदाय को धर्म की स्वतंत्रता का आश्वासन देता है, जो व्यक्ति के धर्म पर विचार बिना नागरिक के रुप में उसके साथ व्यवहार करता है, जो संवैधानिक दृष्टि से किसी विशेष धर्म के सम्बद्ध नहीं होता जो धर्म को न तो प्रोत्साहित करता है और न उसमें हस्तक्षेप करता हैं।'' स्मिथ की यह परिभाषा बिल्कुल सटीक, प्रासंगिक एवं न्यायोचित है, क्योंकि इस परिभाषा में एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की उपर्यक्त सभी विशेषताएं निहित हैं, जो एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की अन्य परिभाषा में दुर्लभ हैं।

अब हम धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की विशेषताओं एवं डी.ई. स्मिथ द्वारा प्रदत्त परिभाषा को भारत के परिप्रेक्ष्य में सिंहावलोकन करके देखेंगे कि भारत दरअसल में उक्त बातों को अनुपालन करता है या नहीं, उसके पश्चात् ही हम यह निर्णय ले पाएंगे कि वास्तविक रुप में भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है अथवा नहीं यह एक सच्चाई अवश्य है कि भारत का कोई राजकीय धर्म नहीं है तथा इसका संविधान किसी विशेष धर्म को तरजीह देने एवं धर्म के आधार पर नागरिकों में भेदभाव करने का पूर्णरुपेण प्रतिरोध करता है। इस लिहाज से भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान, सऊदी अरब इत्यादि देशों से बिल्कुल भिन्न है, जो इस्लाम धर्म को राजकीय धर्म रुप में घोषित किए हुए है, लेकिन इन्हीं तथ्यों के आधार पर भारत को 'धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र का दर्जा देना किसी भी तरह न्यायोचित नहीं होगा, क्योंकि उपर्युक्त डी.ई. स्मिथ द्वारा प्रदत्त धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की पारिभाषा भारत के सन्दर्भ में बिल्कुल सटीक नहीं बैठता है। उस परिभाषा को यहाँ पर दुहराना अनावश्यक होगा। वैसे यहाँ अल्पसंख्यक बौद्ध, जैन, सिख ईसाई, पारसी धर्मावलम्बी भी हैं, लेकिन मुसलमानों पर विशेष ध्यान जाता है, क्योंकि इनकी संख्या इन सबो में बहुत ही ज्यादा है जो 'वोट बैंक' के दृष्टिकोण से राजनेताओं के लिए बहुत ही अहम् है। इस सहायता के पक्ष में तर्क दिया जाता है कि इसके बिना धार्मिक शैक्षणिक संस्थाओं को चलाया नहीं जा सकता उनका यह तर्क उचित हो या अनुचित, लेकिन इतना तो सत्य है कि किसी खास धर्मावलम्बियों को सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान करना, एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के खिलाफ अवश्य है, क्योंकि इसका मतलब है कि सरकार किसी विशेष समुदाय की और जरुर झुकी हुई है।

जैसा कि ऊपर में ही वर्णित है कि भारत में धर्म के आधार पर कानून का निर्माण किया गया है। परिणामस्वरुप धार्मिक दृष्टि से अल्पसंख्यक वर्गों के नागरिकों पर विवाह, उत्तराधिकार आदि से सम्बन्धित उनके प्राचीन परम्परागत धार्मिक कानून संहिता का निर्माण नहीं की सके जो अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड इत्यादि देशों मे आज भी मौजूद हैं इसका कारण यह है कि कुछ खास धर्मों के अनुयायीगण इसका कड़ा प्रतिरोध करते हैं, इसका दुष्परिणाम यह है कि इन क्षेत्रों में विभिन्न नागरिकों के लिए पृथक्–पृथक् धार्मिक कानूनों को अंगीकार किया जा रहा है। इससे तो निश्चित तौर पर भारत को एक 'धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र नहीं कहा जा सकता इसके अलावा, भारत में अनुसूचित जातियों के लिए संविधान द्वारा विशेष आरक्षण की जो व्यवस्था की गई है, वह मौलिक रुप से धर्म पर ही आधृत है कुछ विशेष धर्मों के अनुयायियों को अनुसूचित जातियों के तहत् मान कर यह आरक्षण दिया जा रहा है जिसके फलस्वरुप कुछ अल्पसंख्यक वर्ग भी यथा इस्लाम, सिख इत्यादि धर्म के मानने वाले धर्म के आधार पर आरक्षण की माँग कर रहे हैं और इन्हें तुष्ट करने के लिए कुछ दलों के नेतागण इसकी वकालत भी कर रहे हैं ताकि उनका वोट अपनी ओर खींच सके। इससे तो यह पूर्णतः प्रमाणित होता है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र नहीं है।

शिक्षा और कानूनों की तरह भारत का राजनीतिक जीवन प्रमुख रुप से धर्म से ही गतिमान है। करीब–करीब प्रत्येक राजनीतिक दल चुनावों में वोट हासिल करने के लिए किसी न किसी रुप में धर्म का ही आधार बनाता है। विभिन्न दलों के प्रमुख धर्म के आधार पर चुनाव लड़ने के लिए अधिकांश मामलों में प्रत्याशियों के नाम का फैसला करते है उसके बाद ये प्रत्याशियों के नाम को फैसला करते हैं। उसके बाद ये प्रत्याशिगण भी अक्सर धर्म के आधार पर मतदाताओं से अपना मत माँगते हैं। उदाहरणार्थ एक हिन्दू

प्रत्याशी हिन्दुओं से हिन्दुत्व के नाम पर उनका मत प्राप्त करने की कोशिश करता है उसी प्रकार अपने को धर्मनिरपेक्ष दल है, उसी प्रकार अपने को धर्मनिरपेक्ष दल कहे जाने वाले दलों के नेता मुस्लिम बहुल वाले लोक सभा या विधान सभा क्षेत्रों मुस्लिम प्रत्याशियों को टिकट देते हैं और ये प्रत्याशी एक मुसलमान होने के नाते अपने मुस्लिम मतदाता से अपना मत माँगते हैं। ज्यादातर मतदाता भी अपना मत देते समय प्रत्याशियों के धर्म का ध्यान रखते हैं सत्ता प्राप्ति के उपरांत अधिकतर मंत्री, प्रशासक और राजनीतिक धार्मिक समारोह में शिरकत करते है भारत में कुछ ऐसे राजनीतिक दल भी हैं जिनका निर्माण ही धर्म के आधार पर ही हुआ है ये दल धर्म के बिना राजनीति की कल्पना कर ही नहीं सकते ये दल राजनीतिक उद्देश्यों की सिद्धि हेतु उपासना स्थलों का खुलेआम इस्तेमाल करते हैं उसके लिए धर्म एक साधन बनकर रह गया है। ऐसे दलों को भारत के चुनाव आयोग ने मान्यता दे दी है, जो एक धर्मनिर्पेक्ष राष्ट्र के सिद्धान्तों का बिल्कुल उल्लंघन करता ही हैं। इससे प्रमाणित होता है कि भारतीय राजनीतिक पर धर्म का पूर्णतः वर्चस्व प्रतीत होता है और इस दृष्टि से भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होने की अर्हता को पूरा नहीं करता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि भारत के समस्त सामाजिक एव सांस्कृतिक जीवन पर भी धर्म का बहुत बड़ा असर हो चुका है। भारत में जन्म से मृत्यु तक हर एक व्यक्ति का जीवन मुख्यतः धार्मिक संस्कारों, कर्मकाण्डों और विश्वासों द्वारा ही चलता रहता है। व्यक्ति के जन्म नामकरण, शिक्षा की शुरुआत, शादी मृत्यु इत्यादि जीवन के सभी अहम् मौकों पर धर्म के आधिपत्थ को स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है बचपन से ही प्रत्येक मनुष्य को अपने धर्म के सभी सिद्धान्तों और विश्वासों में पूर्ण निष्ठा तथा उन्हीं के मुताबिक व्यावहारिक व्यवहार करने की सदैव शिक्षा दी जाती है यही वजह है कि बड़ा होने पर धर्म उसके जीवन का अहम् अंग बन जाता है तथा वह उसके प्रभाव में आजीवन रहता है। वह अपने धर्म के सम्पूर्ण विश्वासों तथा सिद्धान्तों को बिना किसी सबूत के कभी भी आनन्दपूर्वक अंगीकार कर लेता है। उसके जीवन में धर्म प्राणवायु बन जाता है जितने देवी–देवताएं और मंदिर–मस्जिद हमारे देश में है उतने शायद दुनिया में कहीं नहीं होंगे।

हमारे देश की संस्कृति और कला भी धर्म से अछूती नहीं है यहाँ सम्पूर्ण ललित कलाओं पर धर्म का बड़ा प्रभाव रहता है। भारत के प्रत्येक सांस्कृतिक और सामाजिक उत्सव मौलिक रुप से धार्मिक त्योहार हैं जिनमें शिरकत करना व्यक्ति का अपरिहार्य कर्त्तव्य माना जाता है। इससे साफ जाहिर होता है, यहाँ का समस्त सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन धर्म के प्रभाव में है जिससे मुक्त होना किसी के लिए भी नामुमकिन है। यही कारण है कि हमारे देश की शिक्षा, राजनीति एवं उसके कानूनों पर धर्म हावी है।

उपर्युक्त विवेचनाओं के आलोक में, यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र कतई नहीं है और न ही निकट भविष्य में इसके एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होने की कोई सम्भावना है। अब एक प्रश्न उठता है कि हमारे राजनेता धर्मनिरपेक्षता की इतनी रट क्यों लगाते हैं? इस प्रश्न का सीधा उत्तर है धर्मनिरपेक्षता की रट लगाने के पीछे उनके निहित स्वार्थ हैं वे इसके माध्यम से किसी खास अल्पसंख्यक वर्गों के वोटों को किसी भी तरह हासिल करना चाहते हैं अथवा कुछ नहीं व्यवहार में तो यह साफ तौर पर देखा जाता है कि अपने को धर्मनिरपेक्ष दल कहे जाने वाले नेताओं ने भी तुष्टीकरण की निति अपनायी है और सम्प्रदायी कहे जाने वाले दल भी मुसलमानों को तरजीह देने से चुनाव के समय बाज नहीं आते हैं और अंत मे सच्चाई यही है कि यदि भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र कहा जाता है, तो यहाँ के धार्मिक अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लग जायेगा।

lUnHkZ %

1. एस. एल. दोशी; भारतीय समाजःसंरचना एवं परिवर्तन, रावत पब्लि0, जयपुर
2. सिंह, डॉ0 जे0पी0 1999; सामाजिक परिवर्तनः स्वरुप एवं सिद्धान्त, प्रेंटिस हाल आफ इंडिया प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
3. गुप्ता, एम.एल. एवं शर्मा, डी.डी.; समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
4. राय, सुरेन्द्र; सवाल भारत की धर्मनिरपेक्षता का, प्रतियोगिता, दर्पण, फरवरी, पृ0 1224–1225, 2009

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 50-54

Hkkfexr ty lalk/ku % ,d HkkSxksfyd v/;;u

MkW0 xfjek jkt*

lkjka'k % *बढ़ती जनसंख्या और जल संसाधन की बढ़ती माँग के अति उपयोग एवं सीमित आपूर्ति से आज विश्व के विभिन्न भाग जल संकट की स्थिति से गुजर रहे हैं। किसी क्षेत्र का विकास उस भाग के भूमिगत जल पर काफी निर्भर करता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कृषि एवं अन्य कार्य नहरों, तालाबों एवं भूमिगत जल पर निर्भर करते हैं। भूमिगत जल की बढ़ती माँग ने नियोजकों एवं वैज्ञानिकों का ध्यान इस संसाधन के नियोजन और प्रबन्धन के लिए आकर्षित किया है।*

भूमि जल संसाधन का आंकलन एवं विश्लेषण के लिए कौशाम्बी जिला उ०प्र० का चयन किया गया है। जिला के मानसून पूर्व एवं मानसून पश्चात काल में भूमिगत जल स्तर तथा इस काल में भूमिगत जल स्तर में होने वाले परिवर्तन की सकारण व्याख्या की गई है। भू–गर्भ जल स्तर निर्धारण हेतु जिले के विभिन्न विकास खण्डों में कुछ कुओं का प्रतिचयन किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के भौम जल संसाधन के विश्लेषण के लिए केन्द्रीय भूगर्भ जल संस्थान के आंकड़ों का प्रयोग किया गया है।

izeq[k 'kCn % मानसून, भूमिगत जल, प्रौद्योगिकी, नगरीकरण आदी।

Hkwfedk % किसी प्रदेश का विकास वहाँ भूमिगत जल पर काफी निर्भर होती है क्योंकि वर्षा रहित काल में कृषि व अन्य कार्य नहरों, तालाबों के साथ ही वहाँ के भूमिगत जल पर निर्भर रहते हैं। भूमिगत जल को संसाधनों की कुंजी कहा जाता है क्योंकि इसका उपयोग कृषि, उद्योग तथा नगरीय आवश्यकताओं में नियमित जलापूर्ति के लिए प्रदूषण रहित मानकर किया जाता है। भूमिगत जल के बढ़ते हुए माँग ने नियोजकों और वैज्ञानिकों का ध्यान इस संसाधन के नियोजन और प्रबन्धन के लिए आकृष्ट किया है।

वर्षा का जल जो धरातल पर पड़ता है उसका कुछ भाग तो वाष्पीकृत हो जाता है किन्तु काफी भाग धरातल सोख लिया जाता है। एक अनुमान के अनुसार वर्षा जल का एक तिहाई भाग तो प्रवाही जल के रूप में नदी नालों में बह जाता है। भूमि द्वारा सोखा गया थोड़ा जल पौधों की जड़ों को प्राप्त होता है। किन्तु इसका अधिकांश भाग नीचे का परतों में जाकर भूमिगत जल में मिल जाता है। जो पीने, अन्य घरेलू कार्यों सिंचाई तथा उद्योगों में काम आता है। भूमिगत जल की स्थिति धरातल पर वर्षा की मात्रा, सतह पर जल की उपलब्धता तालाब तथा पोखरों की संख्या एवं चट्टानों की रन्ध्रता एवं संरचना आदि पर निर्भर करती है। यह धरातल के नीचे जल जलभरों (ुनपमिते) में संचित रहता है। जब इन जलभरों में कुआँ खोदा जाता है या छेद किया जाता है तो इससे शुद्ध जल प्राप्त होता है। भूमिगत जल का संचयन बालू का पत्थर, बजरी, सेलखड़ी, जैसी प्रवेश्य शैलों में होता है।

भूमिगत जल विभिन्न स्तरों से, विभिन्न गहराई से प्राप्त होते हैं। कभी–कभी यह धरातल के निकट सहज ही प्राप्त हो जाते हैं और कभी इसे प्राप्त करने के लिए गहराई से वेधन करना पड़ता है। अध्ययन क्षेत्र में भूमिगत जल मानव की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रमुख स्रोत हैं। प्रारम्भ में कम गहरे कुओं द्वारा सीमित क्षेत्र की सिंचाई में इस जल का उपयोग किया जाता था, किन्तु प्रौद्योगिकी एवं विद्युतीकरण के विकास के साथ ही स्थायी रूप से काफी गहराई तक नलकूप खोदकर आवश्यकताओं की पूर्ति की जाने लगी है। अध्ययन क्षेत्र के भूमि जल संसाधन के विश्लेषण के लिए 'केन्द्रीय भूगर्भ जल संस्थान' के आंकड़ों का तथा 'भारतीय भूगर्भीय सर्वेक्षण' के मानचित्र का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र में ऊपर सतहों में भूजल भूमि जलस्तर परिस्थितियों (Under Water table conditions) में तथा निचली सतहों में परिरूद्ध जलभृत अवस्था (Confined conditions) में पाया जाता

*डी0फिल0, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद, उ0प्र0

है। पथरीली जमीन में भूमिगत जल द्वितीयक सरध्रता से युक्त, अपरदित, विभंगति अवशिष्ट पदार्थों में सीमित रहता है। जनपद में चौड़े और विस्तृत जलभरे 300 मीटर की गहराई तक पाये जाते हैं। जनपद के अधिकांश भाग का जलभृत–तंत्र 150 धन मीटर प्रतिघंटा से ज्यादा जल उपलब्ध कराता है। दक्षिणी भाग का जलभृत तंत्र 50–150 धनमीटर प्रतिघंटा जल उपलब्ध कराता है। मानचित्र में 90 मीटर का जलतल कन्टूर दिखाया गया है अर्थात यहाँ पर 90मी0 की गहराई तक के कुएं खोदे जा सकते हैं।

v/; ;u {k= e Hkfexr t y ry dh fLFkfr % संरचना के दृष्टिकोण से अध्ययन क्षेत्र उत्तर के विशाल उपजाऊ मैदान में स्थित है। यह गंगा–यमुना दोआब का भाग है। यह जलोढ़ मैदान हिमालय पर्वतीय क्षेत्र से निकली नदियों द्वारा बहाकर लाये गये अवसाद से निर्मित है। यह लगभग समतल मैदान हैं जिसमें कहीं कहीं आनाच्छादन हुआ है। इसलिए अवतलन या ऊँची नीची भूमि दिखाई पड़ती हैं। मैदानों की विशेषतायें जैसे– सिल्ट, चीका तथा बलुई के बेड्स विशेषकर नदियों के निकटवर्ती क्षेत्रों में दिखाई पड़ते हैं। पुराना जलोढ़ जो गाढ़े रंग का होता है और जिसमें कैल्शिम कार्बोनेट के टुकड़े (कंकड़) मिलते हैं। इन्हें गंगा के किनारे बांगर कहते हैं। पुरातन जलोढ़ बाढ़ के मैदान से ऊपर होते हैं। नूतन जलोढ़ हल्के रंग के तथा चुनायुक्त पदार्थों से रहित होते हैं। इन्हें खादर कहते है। जलोढ़ के जमाव की गहराई सर्वत्र समान नहीं है लेकिन (Bore Chart) से स्पष्ट पता चलता है कि गहराई 100 मीटर से ज्यादा है।

विभिन्न मौसमों के अनुसार यथा मानसून पूर्व एवं मानसून पश्चात काल में भूमिगत जल स्तर तथा इस दौरान भूमिजल स्तर में होने वाले परिवर्तन की सकारण व्याख्या की गई है। भू–गर्भ जल स्तर के निर्धारण हेतु जिले के विभिन्न विकासखण्डों में कुछ कुओं का प्रतिचयन किया गया है। अध्ययन क्षेत्र में औसतन मानसून पूर्व एवं मानसून पश्चात काल में भूगर्भ जल स्तर क्रमशः चायल विकासखण्ड में 19 मीटर एवं 18.40 मीटर, कड़ा ब्लाक में 13.96 सी0 एवं 11.34 मी0, कौशाम्बी ब्लाक में 12.69 एवं 10.64, मंझनपुर ब्लाक में 11.19 एवं 8.63, मूरतगंज ब्लाक में 14.06 एवं 12.20 मी0, नेवादा में 15.29 एवं 14.44 सरसावाँ में 11.06 एवं 7.50 मी0 तथा सिराथू में 12.01 एवं 11.54 मी0 है।

lkj.kh u0& 2-1

fodkl [k.M	ifrpf;r dq,a dk uke	Hkfe ty Lrj dh lrg ls uhps xgjkbZ ehVj esa ¼2004 esa½	
		ekulu iwo	ekulu i'pkr
कौशाम्बी	बमरौली	11.62	9.67
मंझनपुर	करारी	13.40	10.80
	मंझनपुर	9.2	7.80
मूरतगंज	भरवारी	17.05	16.50
चायल	चायल	21.90	21.20
कड़ा	अजुहा	11.95	9.05
	कड़ा	13.90	12.65
नेवादा	पुरखास	10.47	11.20
	सराई अकिल	10.90	7.20
सरसावाँ	हिनौटा	8.95	3.40
	म्हेवा	16.84	15.39
सिराथू	कोखराज	15.70	15.20
	कोराई	14.10	13.60

सारणी नं0–2.1 से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक केन्द्र पर भूमिगत जलस्तर में पर्याप्त अन्तर है एवं मानसून पूर्व तथा मानसून पश्चात काल में भी पर्याप्त अन्तर आ जाता है। वर्षा काल में पर्याप्त भूमिगत जलस्तर बढ़ जाता है क्योंकि भारी वर्ष का जल सतह से रिसकर भूमिगत जलस्तर को इस काल में बढ़ा देता है। यह सामयिक भूमिगत जलस्तर में वृद्धि कुछ समय तक बनी रहती है और लगभग नवम्बर माह तक स्थिर रहती है। केन्द्रीय भूमिगत जल विभाग के द्वारा लिए गये विभिन्न माह के आंकड़े में से केवल अप्रैल तथा नवम्बर महा को अध्ययन के लिए चुना गया है क्योंकि भूमिगत जल तल इन्हीं महीनों में अधिकतम गहराई तथा न्यूनतम गहराई रखता है।

ekulu iwo ¼vizSy dk½ Hkwfexr ty Lrj ½ जिले में भूमिगत जल स्तर की पूर्व मानसून (अप्रैल माह) में स्थिति को दिखा रहा है। भूमिगत जल स्तर की समान रेखाओं का गहन अध्ययन करने से पता चलता है कि पश्चिमी भाग में भूमिगत जलस्तर धरातल से 8–14 मीटर तक है। इसमें सिराथू, मंझनपुर, सरसावाँ तथा कड़ा के भाग आते हैं। भूमिगत जल स्तर की गहराई पश्चिम से उत्तर मध्य की ओर बढ़ रही है। उत्तरी भाग में 16 से 18 मीटर तक धरातल में भूमिगत जल स्तर पाया गया है। इसके अन्तर्गत कड़ा तथा सिराथू का उत्तरतम भाग मूरतगंज एवं चायल तथा नेवादा का उत्तर पूर्वी भाग सम्मिलित है।

ekulu i'pkr ¼uoEcj eg½ Hkwfexr ty Lrj ½ जिले में भूमिगत जलस्तर के मानसून पश्चात (नवम्बर माह) की स्थिति को प्रदर्शित कर रहा है। वर्षा की पर्याप्तता और वर्षा जल के रिचार्ज के कारण भूमिगत जल स्तर में प्राकृतिक रूप से अन्तर आ जाता है और धरातल से जल स्तर काफी निकट हो जाता है। सममान रेखाएँ जो मानचित्र में प्रदर्शित है वह काफी सीमा तक मानसून पूर्व (अप्रैल) सममान रेखाओं का अनुसरण कर रही हैं। भूमिगत जल स्तर पश्चिम से पूर्व की ओर धरातल से गहरा हो रहा है। सर्वाधिक धरातल से भूमिगत जल तल की गहराई लगभग 14 से 16 मी0 उत्तर मध्य में चायल तथा मूरतगंज विकास खण्डों में परिलक्षित हो रही है। जिसका कारण इन भागों में नगरीकरण का बढ़ता स्वरूप है। जबकि उत्तर पश्चिम भाग में जल स्तर धरातल के काफी निकट आ जाता है। लगभग 4 मी0 तक। जो उस क्षेत्र में मृदा लवणता का कारण बनता है। पूर्व में भूमिगत जल स्तर धरातल से 10 मी0 तक पाया जाता है जो बढ़ती जनसंख्या द्वारा विभिन्न कार्यों में उपयोग किया जाता है। जनपद में ब्लाक वार भूगर्भ जल–तल में मानसून पूर्व व मानसून पश्चात् काल में उतार चढ़ाव को ग्राफ संख्या 2.1–2.8 तक में प्रदर्शित किया गया है। इसका स्रोत केन्द्रीय भूगर्भ जल संस्थान के आंकड़े हैं।

केन्द्रीय भूगर्भ जल संस्थान के आँकड़ों के अनुसार अध्ययन क्षेत्र में पूरे वर्ष में जल से फैले क्षेत्र का तथा विभिन्न ब्लाकों का क्षेत्रफल को सारणी नं0– 2.2 में बताया गया है।

lkj.kh u0& 2-2

क्र0सं0	ब्लाक	पूरे वर्ष में जल से फैले क्षेत्र (हेक्ट0 में)	ब्लाक का क्षेत्रफल (हेक्टे0 में)
1.	चायल	25.50	10856
2.	कड़ा	126.63	25455
3.	कौशाम्बी	161.23	21883
4.	मंझनपुर	163.18	19919
5.	मूरतगंज	40.450	20891
6.	नेवादा	65.500	21704
7.	सरसवाँ	118.45	26582
8.	सिराथू	122.26	32024

स्रोत केन्द्रीय भूगर्भ जल संस्थान

सारणी नम्बर 2.2 से स्पष्ट है कि पूरे वर्ष में जल से फैले क्षेत्र का सर्वाधिक विस्तार मंझनपुर और कौशाम्बी ब्लाक में है जो क्रमशः 163.18 एवं 161.23 हेक्टेअर है। कौशाम्बी जिले में सामाज्य वर्षा मानसून तथा मानसून रहित काल में सारणी नं0 2.3 बताया गया है।

lkj.kh uEcj& 2-3 lkekU; o"kk& fe0eh e

Ø0l0	fodkl[k.M	ekulu dky	ekulu jfgr dky	okf"kd lkekU; o"kk
1.	चायल	738.00	71.38	8.9.38
2.	कड़ा	696.24	66.85	763.09
3.	कौशाम्बी	712.86	86.08	798.94
4.	मंझनपुर	712.86	86.08	798.94
5.	मूरतगंज	738.00	71.38	8.9.38
6.	नेवादा	738.00	71.38	8.9.38
7.	सरसवाँ	712.86	86.08	798.94
8.	सिराथू	696.24	66.85	763.09

स्रोत केन्द्रीय भूगर्भ जल संस्थान

सारणी नम्बर 2.3 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र ब्लाकार में पूरब से पश्चिम की तरफ वर्षा की मात्रा घटती जा रही है। वर्षा के आधार पर रिचार्ज की स्थिति को RIF विधि (Rainffal Infiltration Factor in Hectare Metres) से गणना की गई है। जो सारणी नं0 2.4 में प्रदर्शित है।

lkj.kh u0& 2-4 ty lalk/ku dk lkr

Ø0l0	fodkl[k.M uke	fodkl[k.M {k=Qy gDV0eh0	ugj gDV0eh0	rkykc vkj ik[kj gDV0eh0
1.	चायल	10856	0.00	1.59
2.	कड़ा	25455	0.00	7.88
3.	कौशाम्बी	21883	1505.30	10.03
4.	मंझनपुर	19919	35.76	10.15
5.	मूरतगंज	20891	0.00	2.25
6.	नेवादा	21704	387.86	4.07
7.	सरसवाँ	26582	1991.29	7.37
8.	सिराथू	32024	0.00	7.61

स्रोत– केन्द्रीय भूगर्भ जल संस्थान

जिले में नहरों की स्थिति केवल कौशाम्बी, मंझनपुर, नेवादा और सरसवाँ विकासखण्ड में है। जिसमें सर्वाधिक विस्तार सरसवाँ तथा कौशाम्बी विकासखण्डों में क्रमशः 1991.29 तथा 1505.30 हेक्टेअर मीटर है। तालाब और टंकियां (Ponds & tanks) का विस्तार मुख्यतः कौशाम्बी, मंझनपुर, सरसावाँ, सिराथू एवं कड़ा विकासखण्डों में है। चायल, मूरतगंज तथा नेवादा में बहुत कम विस्तार है।

ty lalk/ku dk mi;ksx % जल एक ऐसा प्राकृतिक संसाधन है जिस पर समस्त जीवमण्डल का अस्तित्व निर्भर करता है। जीव–जन्तुओं और पौधों के पैदा होने एवं पोषण हेतु जल एक अपरिहार्य संसाधन है। जल का विस्तार अन्य संसाधनों की अपेक्षा ज्यादा है। जल संसाधन का विभिन्न मानवीय क्रियाओं में आवश्यकताओं को देखते हुए इसकी यथोचित आपूर्ति एवं प्रबन्धन आवश्यक है।

कौशाम्बी जिले की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है और इसकी आबादी का अधिकांश भाग कृषि पर निर्भर है। यहाँ पर जल की माँग सिंचाई के लिए सर्वाधिक मात्रा में है। धरातलीय और भौम जल का सबसे अधिक उपयोग कृषि में होता है। वर्षा वर्ष के कुछ ही महीनों में होने के कारण सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। चावल, गन्ना आदि की खेती के लिए जल की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। सिंचाई की व्यवस्था बहुफसलीकरण को संभव बनाती है।

जनपद में ब्लाकवार विभिन्न साधनों द्वारा स्रोतानुसार वास्तविक सिंचित क्षेत्रफल सारणी नम्बर 2.5 में बताई गई है।सारणी से स्पष्ट है कि नहरों द्वारा सिंचाई में सरसवाँ अग्रणी है। यहाँ सिंचाई का मुख्य साधन नहरें हैं। यहाँ 10760 हेक्टेअर क्षेत्र नहरों द्वारा सिंचित है। इसके बाद कौशाम्बी में 5802 हेक्टेअर क्षेत्र नहरों द्वारा सिंचित है। मूरतगंज, चायल, कड़ा, सिराथू में नहरों द्वारा कीं भी सिचाई नहीं हो रही है। सिंचाई में कुओं का प्रयोग केवल कौशाम्बी ब्लाक में हो रहा है। यहाँ पर 31 हेक्टेअर क्षेत्र कुओं द्वारा सिंचित है। सिंचाई के लिए तालाबों का प्रयोग कौशाम्बी, मझनपुर तथा सरसावाँ ब्लाक में हो रहा है। कौशाम्बी में 60 हेक्टेअर, मंझनपुर में 10 हेक्टअर तथा सरसावाँ में 7 हेक्टेअर क्षेत्र तालाबों द्वारा सिंचित है। अन्य ब्लाकों में कहीं भी तालाबों द्वारा सिंचाई नहीं हो रही है।

सिंचाई के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन नलकूप का सरसावाँ ब्लाक को छोड़ अन्य सभी ब्लाकों में पहला स्थान है।

सिंचाई के अलावा जल संसाधन पर घरेलू जरूरतों को पूरा करने के लिए भी काफी दबाव है क्योंकि अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या पर्याप्त मात्रा में मौजूद है। मानव को पीने, कपड़े धोने, बनाने, नहाने आदि के लिए जल की आवश्यकता होती है।

lkj.kh u0& 2-10
tuin esa fodkl[k.Mokj fofHkUu lk/kuksa }kjk lkrkuqlkj okLrfod flafpr {ks=Qy
¼gDVs0 esa½

o"k@ fodkl[k.M	ugj		jktdh;	uydwi	futh	dq,a	rkykc	vU;	;ksx
2005–06	14157		4782		71797	32	78	2	90848
2006–07	15844		3099		73058	94	6	79	92180
2007–08	17206		3342		72722	31	77	2	93380
विकासखण्डवार 2007–08									
1.	कड़ा		0	195	11277	0	0	0	11472
2.	सिराथू		0	624	15604	0	0	0	16228
3.	सरसावां		10760	99	4693	0	7	0	15559
4.	मंझनपुर		367	429	8555	0	10	0	9361
5.	कौशाम्बी		5802	227	5664	31	60	2	11786
6.	मूरतगंज		0	501	9402	0	0	0	9903
7.	चायल		0	590	5419	0	0	0	6009
8.	नेवादा		277	575	10788	0	0	0	11640
योग ग्रामीण		17206	3240	71402	7311402	77	2	91958	
योग नगरीय		0	102	1320	13200	0	0	1422	
योग जनपद		17206	3342	72722	31	77	2	93380	

lUnHkZ %

1. गौतम, एम०एस० : Rainwaler harvesting and Related water quality Aspects.
2. मजूमदार, एस०सी० (1942) : Rivers of Bengal Delta कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस कलकत्ता,
3. पाल, ओ०पी० : उत्तर प्रदेश में भू जल समस्या की स्थिति का परिदृश्य।
4. व्यागी, एन० के० एवं ध्रुवनारायण (1982) : V.V. Ground water recharge under alkali soils during reclamation Agric, water Management.
5. सने, पी० के० (1985) : The genesis of floods in the Lower Damodar catchment.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 55-57

Hkkjr e efgyk pruk dk fodkl % ,d foe'k

MkO c tUn flg*

lkjk'k % *समकालीन समाज में स्त्रियों की प्ररिस्थिति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि स्त्रियाँ सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनैतिक रूप से सशक्त हुई हैं। संसद, विधान सभा, एवं प्रशासनिक सेवाओं में भी इनका प्रतिनिधित्व बढ़ा है। किन्तु ग्रामीण स्त्रियाँ अभी भी पारम्परिक तथा अत्यधिक संस्कारिक व्यवहार में रूढ़िवादी है। व शहरी क्षेत्रों में निम्न मध्यम वर्गीय स्त्रियाँ तथा निम्न वर्गीय स्त्रियों के लिए भी जीवन अधिक नहीं बदला है। वे आज भी समाज में हीन है। आर्थिक दृष्टि से आज भी पुरूषों से मुक्ति नहीं हो पायी हैं। सामाजिक, नैतिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी उनकी स्थिति पुरूषों के समरूप नहीं है। प्रौढ़ावस्था में जब वे अपना जीवन क्रम शुरू करती हैं तो समाज के द्वारा उन्हें भिन्न परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। क्योंकि बहुत कम स्त्रियाँ स्त्रियोचित दायरे से निकल पाती है और ठोस रूप से पुरूष के बराबर होने के लिए आवश्यक मदद न तो समाज और न परिवार से मिल पाती है। इसलिए वे सफल भूमिका निर्वाहक के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं कर पाती है।*

e[; 'kCn % महिला चेतना, सशक्तिकरण, मातृत्व, उदारवादी, उग्रवादी, प्रस्थिति, समन्वित आदि।

प्रारम्भ में अर्थात ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों को ज्ञान शक्ति एवं सम्पत्ति का प्रतीक माना जाता था व सरस्वती, दुर्गा, तथा लक्ष्मी की तरह इनकी पूजा की जाती थी अर्थात स्त्रियों की प्रस्थिति समाज में उच्च थी किन्तु उत्तर वैदिक काल से ही इनकी प्रस्थिति में गिरावट प्रारम्भ हो गयी। मध्यकाल तक तो इनकी स्थिति अत्यन्त दैयनीय हो गयी। 18वीं सदी के अन्त तक स्त्रियों के प्रति अन्याय एवं शोषण पराकाष्ठा पर पहुँच गया। जिसके विरूद्ध 19वीं सदी के प्रारम्भ में अनेक आन्दोलन हुए। इन आन्दोलनों ने परम्परागत निर्योग्यताओं, जो कि स्त्रियों पर लाद दी गयी थी को चुनौती दी।

इन आन्दोलनों का सूत्रपात 1828 में सर्वप्रथम राजा राम माहेन राय ने सती प्रथा के विरूद्ध आन्दोलन छेड़ कर किया। इनके प्रयास से ही 1829 में सती प्रथा निषेध अधिनियम द्वारा सती प्रथा पर कानूनन प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इन्होंने स्त्रियों को सम्पत्ति के अधिकार देने, बाल विवाह समाप्त करने एवं स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार करने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। इस संस्था ने स्त्री शिक्षा का प्रचार करने, पर्दा प्रथा तथा बाल विवाह रोकने के क्षेत्र में अच्छा प्रयास किया। इनके समकालीन ईश्वर चन्द विद्या सागर ने व्यक्तिगत स्तर पर विधवा विवाह व बहु विवाह सम्बन्धी परम्परागत नियमों का विरोध किया। इनके प्रयास से ही 1856 में विधवा विवाह कानून बना। इन्होने 1855 से 1858 के मध्य स्त्री शिक्षा हेतु अनेक विद्यालय खोले। 19वीं सदी के अन्त में प्रो0 कर्वे ने पूना में स्त्रियों की शिक्षा के प्रसार के लिए विधवा आश्रम खोले अनेक प्रगतिशील महिलाओं यथा दुर्गाबाई देशमुख, रमाबाई और रूखमाबाई ने भी इस शताब्दी में पुरानी रूढ़ियों की चिन्ता किये बिना स्त्रियों को अपने अधिकार मांगने और समाज में महत्वपूर्ण पद प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया।

बीसवीं शताब्दी में हुए महिला सुधार आन्दोलनों को निम्नलिखित तीन भागों में बाटा जा सकता है : 1- महात्मा गांधी द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत प्रयत्न। 2- स्त्री संगठनों द्वारा सुधार कार्य। 3- संवैधानिक व्यवस्थायें।

महात्मा गांधी ने सर्वप्रथम संगठित आधार पर स्त्रियों के अधिकारों का स्पष्ट किया। इन्होंने स्त्री शिक्षा के प्रसार, दहेज व कुलीन विवाह पर नियंत्रण अन्तर्राज्यीय विवाह के प्रसार तथा कानून द्वारा बाल विवाह की समाप्ति पर विशेष जोर दिया। गांधी जी ने स्त्रियों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए

*एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पट्टी, प्रतापगढ़

प्रेरित किया जिसके फलस्वरूप पहली बार लाखों स्त्रियाँ घर की चहारदीवारी से निकलकर स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़ी।

20वीं शताब्दी के महिला आन्दोलन का दूसरा चरण 1917 के बाद प्रारम्भ हुआ। प्रथम बार महिला सुधार हेतु 'महिलाओं की भारतीय समिति' मद्रास में स्थापित हुई जिसमें डॉ0 एनी बेसेण्ट सभापति के रूप में चुनी गयी। इस तरह के अन्य महिला संगठनों में 'भारतीय स्त्री मण्डक' 'पूना सेवा सदन' 'सरोजनी दत्त महिला समाज' आदि का विकास हुआ। इन विभिन्न संघो ने मिलकर 1929 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का गठन किया जिसका प्रथम अधिवेशन पूना में सम्पन्न हुआ। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे–

1- स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए सक्रिय कार्य करना। 2- दहेज, बाल–विवाह, बहु–विवाह और विवाह से सम्बन्धित अन्य कुरीतियों को दूर करना। 3- स्त्रियों के लिए समान अधिकारों और अवसरों को प्राप्त करना। 4- स्त्रियों को नागरिकता की शिक्षा देना और उनके नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने की कोशिश करना। 5- अर्न्तराष्ट्रीय सद्भावना एवं विश्व शान्ति के लिए कार्य करना।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् महिला आन्दोलन को एक नई दिशा मिली। इस समय जहाँ एक ओर संवैधानिक प्रावधानों यथा अनु0 14,15,16,21,24,330,332,334 आदि के द्वारा स्त्रियों की प्ररिस्थिति को उठाने का प्रयास किया गया वहीं सामाजिक विधानों यथा– हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, हिन्दू नाबालिग और संरक्षकता अधिनियम 1956, विशेष विवाह अधिनियम 1961 समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 आदि के द्वारा स्त्रियों के प्रति किये जा रहे अन्याय एवं शोषण का दमन किया गया।

60 के दशक में सम्पूर्ण विश्व में नारी उत्थान के लिए विभिन्न प्रकार के आन्दोलन प्रारम्भ किये गये जैसे– समाजवादी, उदारवादी, उत्तर आधुनिकतावादी एवं उग्रवादी आन्दोलन। उग्रवादी आन्दोलन केवल कानूनी समानता नहीं चाहता था। इसकी प्रबल समर्थक फायर स्टोने ने जैविक अन्तर को ही समाप्त करने की बात करती है। इनका मत है कि प्रजनन एवं मातष्त्व के बोझ के कारण ही पुरूष स्त्रियों शोषण एवं दमन करते हैं। अब उत्तर आधुनिकतावादी नारियाँ पुरूषों से हर तरह से मुक्ति चाहती हैं। इन आन्दोलनों का भारतीय नारी आन्दोलन पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। इसके प्रभाव के परिणाम स्वरूप 1960 एवं 70 में नारी आन्दोलन ने नया स्वरूप ग्रहण किया। कुछ नये मंच हमारे सामने आये इनमें सहेली, सहीवार, मानुषी, स्त्री–शक्ति, नारी समता मंच, विमोचन, चिंगारी महिला संघर्ष समिति आदि सम्मिलित हैं। इन मंचो का नेतृत्व कुछ ऐसी स्त्रियों के हाथ में हैं जो जुझारू है। इस आन्दोलन का विरोध स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार, बलात्कार, मद्यपान कर स्त्रियों की पिटाई, दहेज हत्या, परिवार में मारपीट, कामकाजी महिलाओं की समस्यायें, वैश्यावृत्ति, निम्न जाति को स्त्री का शोषण तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से है।

समय–समय पर निर्मित एवं क्रियान्वित की गयी नीतियों तथा सरकार द्वारा चलाये गये कार्यक्रम को इस आन्दोलन से अलग नहीं किया जा सकता है। पिछले पचास वर्षों में नीति–निर्माण में कई परिवर्तन आये हैं, जिसमें 70 के दशक तक कल्याण की संकल्पना से 80 के दशक तक विकास की नीति और 90 के दशक में अधिकार/सशक्तिकरण पर जोर दिया गया। सरकार द्वारा नारी के शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक रूप से सबक बनाने के लिए अनेक कार्यक्रम चलाये गये। यथा– समान्वित बाल विकास सेवा योजना (1974), स्वशक्ति परियोजना (1998), इंदिरा महिला योजना (1995), बालिका समृद्धि योजना (1977) आदि।

नारी आन्दोलन नारी की सामाजिक प्रस्थिति को ऊँचा उठाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जिसको हम निम्नलिखित रूप में देख सकते है : 1- स्त्रियों ने आधुनिकता एवं परम्परा के मध्य सन्तुलन बना दिया है। 2- पुरूषों से अपने बराबरी का हक मांगने लगी है एवं स्वयं को पुरूषों के बराबर समझती हैं। 3- स्त्रियाँ अब अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाने लगी है। अब उनकी उपग्रह वाली स्थिति नहीं रही। अब इनको किसी की पुत्री, पत्नी या माँ के रूप में नहीं पहचाना जाता है। 4- अब स्त्रियों के विश्वास रूढ़िवादी नहीं है। वे अपने क्षमताओं व गुणों का लाभ उठा रही है और अपने लिए एक नया रास्ता बना रही है जो पहले समाज द्वारा उनके लिए निषिद्ध था। 5- स्त्रियों ने पत्नि एवं माता की भूमिका निर्वाह करने के

साथ–साथ अपने जीवन के उत्तरदायित्व उठाने व निर्णय स्वयं लेना भी शुरू कर दिया है। 6- स्त्रियों में अब स्वरूप परिवर्तन हो रहा है। 1940 और 1950 के दशकों की 'रूढ़िवादी' स्त्री से अब 1960 व 1970 के दशकों की 'नारीवादी प्रतिक्रियावादी' स्त्री 1980 की उदारवादी महिला, माँ, पत्नि, कामकाजी वाली स्त्री, और 1990 के दशक और 2000 की स्त्री धीरे–धीरे सशक्त स्त्री बन रही है जिनकी अपनी मांगे होती है, जो अपने अधिकारों का भोग कर रही है। वे स्वीकारती है 'मैं यही हूँ, यह मैं नहीं हूँ, और यह मुझे होना है।' 7- वे अपने निर्णय स्वयं लेती हैं तथा वे अब पैर पोछने की चटाई के समान नहीं है। वे किसी भी प्रकार का अन्याय सहने करने को तैयार नहीं है। वे स्वयं सोच सकती है अपना जीवन स्वयं बनाती हैं और अपने बच्चों में भी महत्वपूर्ण मूल्यों का समावेश करती है। 8- नयी स्त्री पुरानी स्त्री का ही एक हिस्सा है अर्थात् अपने अधिकारों की मांग करने लगी है किन्तु इनके संस्कारों एवं मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं आया है। 9- वह आक्रामक, कठोर और दृढ़ होने से डरती नहीं है। साथ ही वह सुलभ, सज्जन, भावुक, ममता, पूर्ण और समझदारी में भी पीछे नहीं है। वह कामकाजी स्त्री हो सकती है साथ ही घर में माँ भी है। वह अपने आस–पास के लोगों, परिवारों, मित्रों, काम के सहयोगियों आदि के साथ स्नेह भी करती हैं। 10- वह अपेक्षाओं, आकांक्षाओं एवं इच्छाओं से परिपूर्ण है लेकिन असफल होने पर वह कमजोर स्त्रियों की तरह दबी नहीं रहती हैं।

समकालीन समाज में स्त्रियों की प्ररिस्थिति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि स्त्रियाँ सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं राजनैतिक रूप से सशक्त हुई हैं। संसद, विधान सभा, एवं प्रशासनिक सेवाओं में भी इनका प्रतिनिधित्व बढ़ा है। किन्तु ग्रामीण स्त्रियाँ अभी भी पारम्परिक तथा अत्यधिक संस्कारिक व्यवहार में रूढ़िवादी है व शहरी क्षेत्रों में निम्न मध्यम वर्गीय स्त्रियाँ तथा निम्न वर्गीय स्त्रियों के लिए भी जीवन अधिक नहीं बदला है। वे आज भी समाज में हीन है। आर्थिक दृष्टि से आज भी पुरूषों से मुक्ति नहीं पायी है। सामाजिक, नैतिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी उनकी स्थिति पुरूषों के समरूप नहीं है। प्रौढावस्था में ज बवे अपना जीवन क्रम शुरू करती है तो समाज के द्वारा उन्हें भिन्न परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। क्योंकि बहुत कम स्त्रियाँ स्त्रियोचित दायरे से निबद्ध पाती है और ठोस रूप से पुरूष के बराबर होने के लिए आवश्यक मदद न तो समाज और न परिवार से मिल पाती है। इसलिए वे सफल भूमिका निर्वाहक के रूप में मान्यता प्राप्त नही ंकर पाती है। संक्षेप में कह सकते हैं कि नारी–वादी आन्दोलनों ने नारी की प्रस्थिति को ऊँचा उठाने में योगदान दिया है किन्तु यह परिवर्तन मात्र उच्च वर्गीय या उच्च मध्यम परिवारों त ही सीमित है।

lUnHkZ %

1. आल पोर्ट जी0डब्लू0 जॅल (1931) स्टडी ऑफ वैल्यूज, वेस्टन नाघटन मिफिन कम्पनी।
2. स्प्रेन्गर इडवर्ड (1914) टाइप्स ऑफ मेन ''हाल (साले) : न्यू मेयर''
3. खरे (1968) एक्यूपेंशन्ल डिफरेंस इन लाइफ वैल्यूज : इंडियन साइकोलाजिकल रिव्यू।
4. राधा कमल मुकर्जी (1949) दी सोशल स्ट्रेक्चर ऑफ वैल्यूज, मैक्मिलन क0, लन्दन।
5. राधा कमल मुकर्जी (1964) डायमेंशन ऑफ वैल्यूज (एडि0 मदान), लखनऊ।
6. मेरिस चेरिस (1957) ''वैराइटीज इल हुमन वैल्यूज, दी यूनिवर्सिटी आफ शिकागो, शिकागो प्रेस।
7. लीला दूबे, 2001, एंथ्रोपोलॉजिकल एक्प्लोरेशन इन जेंडर, इंटरसेक्टिंग फील्ड, सेग पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
8. नीरा देसाई, 1997, जेंडर डाईमेंशन इन फैमिली स्टडीज : इन सोशन ट्रासफारमेशन आफ इण्डिया, खण्ड 2 घनश्याम शाह, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
9. रत्ना कपूर और बेंन्द्रा कॉसमेन (1993) ऑन वूमेन, इक्विलिटी एंड द कांस्टीट्यूशन : नेशनल लॉ स्कूल जर्नल।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 58-60

fofHkUu lLÑr&:idk esa ikIr lSU; foKku dk Lo:i ,oa egÙo

MkO vkjrh ljkst*

सैन्य विज्ञान से तात्पर्य सेना एवं विज्ञान से है। सेना किसी राष्ट्र का सुसंगठित समूह है, जिसका कार्य रक्षा एवं सुरक्षा हेतु युद्ध करना तथा विज्ञान से तात्पर्य किसी ज्ञान को क्रमबद्ध कर उसका विधिपूर्वक अध्ययन करना है। इस प्रकार सैन्य विज्ञान का अर्थ हुआ–किसी राष्ट्र की सुसंगठित सेना तथा उससे सम्बन्धित क्रमबद्ध ज्ञान। सैन्य विज्ञान सम्प्रति एक विषय के रूप में भी प्रचलित है। भारत सहित दुनिया के विभिन्न राष्ट्र इसे अंगीकृत कर चुके हैं। सैन्य विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। आधुनिक समय में वैज्ञानिक प्रगति और आविष्कारों ने इसके क्षेत्र को और अधिक विस्तृत एवं व्यापक कर दिया है। साधारणतः इसके अन्तर्गत युद्ध एवं सशस्त्र संघर्ष से सम्बन्धित मनोविज्ञान एवं कार्यविधि, सैन्य संगठन, सैन्य शिक्षण एवं प्रशिक्षण, रक्षा तथा सुरक्षा आदि होते हैं।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों से इस सम्बन्ध में बृहद् जानकारी प्राप्त होती है। मनुस्मृति इस सम्बन्ध में विशद व्याख्या प्रस्तुत करती है। मनुस्मृति का मत है कि जिस माह में राजा की शक्ति बढ़ जाती है अथवा अगहन, फाल्गुन एवं चैत्र माह में शुभ मुहुर्त में शत्र राजा के विरूद्ध अभियान करने पर सफलता प्राप्त होती है।[1] इसके अतिरिक्त जब भी उसे अपनी विजय का निश्चय प्रतीत हो अभियान करना चाहिए। इसके लिए विभिन्न प्रकार के व्यूहों की रचना को महत्त्व दिया गया है। यथा–दण्ड व्यूह, शकट व्यूह, पद्म व्यूह, वराह व्यूह, मकर व्यूह, सूची व्यूह तथा गरूड़ व्यूह इत्यादि।

n.M0;gu rUekxZ ;k;kRrq 'kdVu okA okjkgedjkH;ka ok lP;k o x:Msu okAA
;r'p e;ek'k³dRRkrks foLrkj;sn cyeA ineu pO0;gu fufo'ksr Ink Lo;eAA[2]

मनुस्मृति के अनुसार राजा को अपने चारों ओर सेना फैलाकर रखना चाहिए तथा राजा पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे इसके लिए उसे पद्म व्यूह में रहना चाहिए। रथों, घोड़ों, हाथियों, नदियों, समतल जमीन तथा वृक्षों एवं लताओं से युक्त जमीन पर अस्त्र–शस्त्रों से युद्ध करना चाहिए।[3] मनुस्मृति का सैन्य विज्ञान विषयक मत अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का था। इसका मत है कि–

dq:{ks=a'p eRL;ka'p ipkykU'kjlsutkuA nh?kkZYyi'pSo ujkuxzuhds"kq ;kst;srAA[4]

अर्थात् सेना के अग्रभाग में कुरूक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल तथा शूरसेन देशों के सैनिकों तथा आवश्यकता से अधिक लम्बे और नाटे सैनिकों को रखना चाहिए क्योंकि वे रणकर्कश वीर होने के कारण शत्रु से लम्बे समय तक लड़ते हैं।

इसके अतिरिक्त सैन्य विज्ञान के अन्तर्गत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि व्यूह–रचना के बाद उन्हें अत्यधिक उत्साहित करते रहना चाहिए तथा युद्ध के दौरान सैनिकों की मनःस्थिति एवं रणनीति का निर्धारण करते रहना चाहिए। राजा को प्रामाणिक एवं कुशल योद्धाओं को नियुक्त करना चाहिए। सब प्रकार के पर्यालोचन से मनुस्मृतिकालीन सैन्य विज्ञान अत्यन्त उत्कृष्ट एवं वर्तमान भारत के लिए उपादेय है।

कौटिलीय अर्थशास्त्र से भी सैन्य विज्ञान से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। वास्तव में सैन्य–व्यवस्था किसी राष्ट्र के जय–पराजय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अर्थशास्त्र में युद्ध के दौरान छावनी निर्माण से लेकर उनकी वेश–भूषा, लम्बाई एवं ऊँचाई के क्रम से व्यवस्थित व्यूह–रचना आदि का

*एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पट्टी प्रतापगढ़

विवरण प्राप्त होता है। राजभवन इत्यादि को इस प्रकार से निर्मित करने का उपदेश है, जिससे वहाँ आक्रमण का भय न हो तथा ऐसी स्थिति में लम्बे समय तक टिके रहने की सम्भावना हो। यथा–

okLrdi'kLr okLrfu uk;do/kfdekgfrdk LdU/kokj oUk nh?k prjl ok] Hkfeo'ku ok] pr}kj "kV~iFk uo lLFkkueki;;A [kkroil y}kjkVVydlEiUu Hk; LFkku pA[5]

व्यूह–रचना के विषय में चाणक्य विशद जानकारी प्रदान करते हैं। इसमें मकरव्यूह, शकटव्यूह, चक्रव्यूह, सर्वतोभद्रव्यूह, सूचीव्यूह प्रमुख है।[6] इसके अतिरिक्त समव्यूह, विषमव्यूह, प्रकृतिव्यूह, विकृतिव्यूह, प्रतिव्यूह, भोगव्यूह, मण्डलव्यूह, असंहतव्यूह, सर्पव्यूह, गोमूत्रिकाव्यूह इत्यादि व्यूह–रचना से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त होती है।[7]

संस्कृत–नाट्य रूपकों से भी सैन्य विज्ञान से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। भासकृत 'दूतघटात्कच' से व्यूह–रचना से सम्बन्धित संकेत प्राप्त होता है।

nk.kkin'ku ;Fkk rFkkg] l;kt;0;geHk| :ieA
f[kUuk'k;kLr lxtk l;k/kk vikIrdkek Toyu fo'k;AA[8]

'अभिषेकनाटकम' से सैन्य विज्ञान से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इसमें सेना की पहचान के लिए अथवा सुविधा की दृष्टि से सम्पूर्ण सेना को छोटे–छोटे समूहों में विभक्त कर दिया जाता था और सैनिकों की गणना के लिए एक पुस्तक या सूची बना ली जाती थी–

ØekfUuo';ekukl lukl oUnifjxg"k ijh{;ek.k"k
iLrdiek.;kr drf'pnl;foKk;ekuk }k oukd lk xghrkA[9]

इस नाटक से यह भी ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय में सेनापति को बलाध्यक्ष कहा जाता था। वह सेना में सैनिकों की नियुक्ति करता था और समराभियान के लिए सेना को तैयार करता था–

Hkk Hkk cyk/;{k! lUukgekKki; okujokfguhe[10]

इस वाक्य से प्रतीत होता है कि युद्ध प्रयाण से पूर्व सेना को एक विशेष प्रकार के वस्त्र तथा एक विशेष ढंग से समलंकृत कर युद्ध स्थान में भेजा जाता था, जो सैन्य विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंक था।

श्रीविशाखदत्तकृत 'मुद्राराक्षसम्' में सैन्य विज्ञान से सम्बन्धित जानकारी उपलब्ध होती है, जो इस प्रकार है–

iLFkkr0; ijLrkR[k'kex/kx.kekeu0;< lU;&
xkU/kkje/;;ku l;ouifrfHk lfo/k; i;RuA
i'pkfRr"BUr ohjk 'kdujir;% lHkrk'phug.k]
dkyrk|'p f'k"V % ifFk ifFk o.k;knktykd % dekje[11]

(अर्थात् अग्रभाग में व्यूह बनाकर (विजययात्रा) में मेरे पीछे खश और मगध के समूहों वाली सेनाओं को चलना चाहिए। (प्रयाण) के मध्य भाग में यवन राजाओं के साथ गान्धार देश की सेनाओं को प्रयत्न करना चाहिए (अर्थात् जागरूक होकर चलना चाहिए) अन्त में चीन और हूणों से परिपुष्ट वीर शकराजा लोग रहें और अवशिष्ट कौलूतादि राजाओं का समूह मार्ग में कुमार मलयकेतु को घेरे रहें)।

इस श्लोक से प्रतीत होता है कि व्यूह–रचना युद्ध की विजय के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम होता था 'जिसमें प्रशिक्षित सैनिकों को नियुक्त किया जाता था। तदनन्तर देश–विशेष को उनकी वीरता, अवस्था, गुण, लम्बाई, ऊँचाई के अनुसार राजा के आगे–पीछे रक्षा हेतु नियुक्त किया जाता था। प्रतीत होता है कि देश–विशेष के सैनिकों को आगे–पीछे नियुक्त करने का उद्देश्य उनका स्थानीय वातावरण तथा जनश्रुति भी रहा होगा। इस प्रकार सैन्य विज्ञान से सम्बन्धित यह ज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जो कहीं न कहीं मनुस्मृति आधारित सैन्य व्यवस्था को ही व्याख्यायित कर रही है।

श्री हर्षदेवकृत 'रत्नावली' से भी सैन्यविज्ञान के अन्तर्गत व्यूह–रचना से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त होती है–

;k)fuxR; foU/;knHkonfHke[kLrR{k.k fnfXoHkkxk[12]
fUoU/;uokij.k f}iifriruki·cU/ku :U/kuA

(अर्थात्– उसी क्षण दूसरे विन्ध्याचल के समान गजेन्द्रों की सेना की घनी व्यूह–रचना से दिशाओं के मण्डल को घेरता हुआ विन्ध्य (दुर्ग) से निकलकर युद्ध करने के लिए सामने आ गया।)

इस उद्धरण से प्रतीत होता है, मात्र गजों की एक विशेष व्यूह–रचना की जाती थी। इसी आधार पर सम्भव है कि अश्व सेना की अलग व्यूह–रचना, रथारोही सैनिकों की अलग तथा पदाति सेना की अलग–अलग व्यूह–रचना की जाती रही हो। यह भी सम्भव है कि इन सभी सेनाओं को मिलाकर भी एक विशेष व्यूह–रचना का निर्माण किया जाता रहा हो, जो शत्रुसेना के लिए अजेय होती रही होगी।

सैन्य विज्ञान का एक सुन्दर दृश्य 'उत्तररामचरितम्' में उद्घाटित होता है। षष्ठ अंक में जब कुमार चन्द्रकेतु आग्नेयास्त्र का प्रयोग करते हैं,[13] तब कुमार लव वारूणास्त्र का प्रयोग करते हैं। तत्पश्चात् चन्द्रकेतु वायव्यास्त्र का प्रयोग करते हैं।[14] इस प्रकार एक–दूसरे के अस्त्र–शस्त्रों का प्रतीकार करना भी एक कुशल योद्धा का परिचायक है, जो सैन्य विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंक है क्योंकि पक्षी–प्रतिपक्षी का एक–दूसरे के अस्त्र–शस्त्रों, दाँव–पेचों का प्रतीकार ही उनकी विजयश्री को निश्चित करता है।

अनंगहर्ष मातृराजकृत 'तापसवत्सराज' से सैन्यविज्ञान के अन्तर्गत व्यूह–रचना से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त होती है। इस नाटक के पंचम अंक के पृ0 187 से हाथियों के द्वारा गोल घेरा बनाने की सूचना मिलती है, जो हस्तिनिर्मित व्यूहरचना की ओर संकेत करती है।[15] जिस प्रकार विभिन्न प्रकार के सैन्य–समूहों से व्यूह निर्मित किये जाते थे, बहुत सम्भव है कि गज सेना का पृथक् रूप से व्यूह–रचना में उपयोग किया जाता रहा हो। इसी की सूचना इस नाटक से प्राप्त होती है।

जयसिंहसूरिविरचित 'हम्मीरमदमर्दनम्' से सैन्यविज्ञान के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनाकर युद्धप्रयाण में व्यूह–रचना का उल्लेख प्राप्त होता है–

'kd% idfufuf/k;%'kke;i;%fl U/k% i/kkoUegk&okg0;g[kj{krkf{kfrjt'pØ.k pØ% fpjkrA[16]

इससे यह स्पष्ट होता है कि युद्धादि विषयों में विशेष प्रकार की नीतियों का अवलम्बन किया जाता था, जो सैन्य विज्ञान के अन्तर्गत आता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन समय में भी युद्धादि की स्थिति, राजा, अमात्यों तथा सेनानायकों द्वारा वैज्ञानिक ढंग से सैन्य संगठन, प्रशिक्षण, रक्षा एवं सुरक्षा की विभिन्न विधियाँ, अस्त्र–शस्त्रों का प्रभावपूर्ण प्रयोग, सुनियोजित ढंग से युद्धादि की नीतियाँ तैयार करना, व्यूह रचना, शत्रुओं की गुप्त मन्त्रणा का प्रतीकार करने आदि अन्य अनेक स्थितियों का परिज्ञान होता है, जो उन्नत सैन्य विज्ञान का द्योतक है। वर्तमान समय में यह सूचना, संचार एवं वैज्ञानिक तकनीकि की उन्नति के कारण अत्यधिक उपादेय एवं गुणग्राही हो गयी है। सैन्य विज्ञान के द्वारा इतनी उन्नति की जा चुकी है कि शत्रुओं की प्रत्येक सामरिक अभियानों एवं कपटपूर्ण प्रयोगों के विषय में जाना जा सकता है। सैन्य विज्ञान सम्प्रति अस्त्र–शस्त्रों के क्रान्ति के युग में किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा एवं सम्प्रभुता को स्थिर रखने में महत्वपूर्ण कारक है।

lUnHkZ %

1. मनुस्मृति 7/182
2. मनुस्मृति 7/182, 288
3. मनुस्मृति 7/192
4. मनुस्मृति 7/293
5. अर्थ0/दशम अथि0/अध्याय 1, पृ0 637
6. अर्थ0/दशम अधि0/अध्याय 2, पृ0 641
7. अर्थ0/दशम अधि0/अध्याय 6/ पृ0 662
8. दूतघटोत्कच 1/30 पृ027
9. अभिषेक0 चतुर्थ अंक पु0 74
10. अभिषेक0 चतुर्थ अंक पृ0 61
11. मुद्राराक्षसम् 5/11
12. रत्नावली चतुर्थ अंक
13. उत्तरराम0 (भवभूति ग्रन्थावली) षष्ठ अंक, पृ0 135.
14. उत्तरराम0 (भवभूति ग्रन्थावली) षष्ठ अंक, पृ0 137.
15. तापसवत्सराज पंचम अंक पृ0 187.
16. हम्मीरमद 02/37/पृ0 23.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 61-63

vejdkUr d dFkk lkfgR; e ykd thou

MkO l/kk flg*

नयी कहानी के कथाकारों में अमरकान्त जनवादी कहानी आन्दोलन से प्रेरित हैं। उन्होंने अपने कथा साहित्य में मध्यवर्गीय लोकजीवन को व्यक्त किया है। यही कारण है कि अपनी पीढ़ी के कथाकारों में अमरकान्त का विशिष्ट स्थान है। कथाकार जब अपने पात्रों को लोक जीवन की गहन संवेदना के साथ प्रस्तुत करता है, तो वह कथा पात्र लेखक द्वारा नही गढ़े जाते बल्कि परिस्थितियों द्वारा गढ़े जाते हैं। जो जीवंत हो उठते हैं। यही कारण है कि अमरकान्त अपने युग के विशिष्ट कथाकार हैं। विशिष्टता इस अर्थ में कि उन्होंने आधुनिकता के दौर में भी अमरकान्त देशी परिवेश से जुड़े रहे। उनके लिए आधुनिकता एक नयी समझ, सूक्ष्म विवेक और शोषित अभिशप्त वर्ग के प्रति मानवीय लगाव के रूप में थी।

अमरकान्त की कहानियों में जो वर्ण्य विषय था वह मूल रूप से शिक्षा, बेरोजगारी, अभावग्रस्तता, गरीबी, अन्धविश्वास, भ्रष्टाचार, आर्थिक शोषण, कुरीतियाँ आदि। किसी भी साहित्यिक विधा के नवीन होने का प्रमाण यही हैं कि वह परम्परा से हटकर पूर्ववर्ती साहित्य के सामने एक ज्वलन्त प्रश्न चिह्न लगा दे। इस आधार पर अमरकान्त के कथा साहित्य में लोकजीवन की ज्वलन्त समस्याएँ हैं। जिसे उन्होंने अपने कथा साहित्य में खरी दृष्टि से प्रकट किया है। प्रेमचन्द की कहानियों में ईदगाह, बड़े घर की बेटी, पंच परमेश्वर आदि उतनी चर्चित नहीं है जितनी कफन, और पूस की रात, आदि। बदलते साहित्यिक चेतना के नये प्ररिप्रेक्ष्य में कथा साहित्य में नई दृष्टि और प्रयोग के प्रति सहज ही लोगों का आकर्षण बढ़ता गया।

अमरकान्त 1942 के स्वतंन्त्रता संग्राम में सम्मिलित हुए। 1948 में इनकी प्रथम कहानी 'इण्टरव्यू' प्रकाशित हुई। मार्क्सवादी पार्टी के सदस्य होते हुए भी इन्होंने मार्क्सवादी फार्मूले को अपनी रचना पर हावी नहीं होने दिया।

अमरकान्त हिन्दी कथा साहित्य के अप्रतिम हस्ताक्षर हैं। उन्होनें कहानियाँ, उपन्यासों, संस्मरण, बाल साहित्य द्वारा हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध किया। उनकी प्रमुख कहानियाँ – जिन्दगी और जोंक, देश के लोग, मौत का नगर, मित्र मिलन, कुहासा, तूफान, कला प्रेमी, प्रतिनिधि कहानियाँ (संग्रह) इत्यादि हैं। इनके उपन्यासों में सूखा पत्ता, आकाश पक्षी, काले उजले दिन, कँटीली राह के फूल, ग्राम सेविका, सुखजीवी, बीच की दीवार, सुन्नर पाण्डेय की पतोहू, इन्हीं हधियारों से है।
कुछ प्रकीर्ण साहित्य भी रचे जिसमें कुछ यादें, कुछ बातें, दोस्ती, नेहरू भाई, बानर सेना, खूँटा में दाल है, सुग्गी चाची का गाँव, झगरूलाल का फैसला, एक स्त्री का सफर आदि उल्लेखनीय है।

अमरकान्त ने वर्तमान समाज की सबसे बड़ी समस्या मानव के अन्तर्मन की अपवित्रता का रहस्योद्घाटन करने में अपनी कहानियों में महारत हासिल की है। कहानीकार मानव मन के भीतरी गाँठों को खोलने में पारंगत हैं। उन्हें मानव अन्तर्मन की गहरी पकड़ है। लोकजीवन के चरित्रों के साथ मानो की उनका उठना–बैठना है। उनके झूठ, फरेब, स्वार्थ, काइयाँपन से वे पूर्व परिचित हैं। 'मरूस्थल' कहानी में आदमी का स्वार्थी चरित्र सामने आता है। गाँव की बहन, भोलेपन के साथ बृज की मदद करती है और बृज अवसर पड़ने पर रूपये रहते हुए भी बहन की मदद नहीं करता है। बदले में पत्नी की गर्भावस्था में मालती से ही सहयोग लेता है। जब घर वापस आता है तो उसके मुख पर विजय भाव की स्वप्निल मुस्कुराहट होती है। यह विजय भाव की मुस्कुराहट उसके स्वार्थी काइयाँपन झूठे चरित्र का संकेत है।

*एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, आर0एस0के0डी0पी0जी0 कॉलेज, जौनपुर

'जिन्दगी और जोंक' भूख से संघर्ष करने वाले रजुआ की कहानी है जो अति शोषित पशुवत् जीवन व्यतीत करता है। 'मूस' कहानी भी गरीबी से उत्पन्न संघर्ष में औरतों को दोहरी मार झेलनी पड़ती है जिसमे मुनरी दिन–रात खटती है। मूस उसका पति उस पर फिर भी जुल्म करता है। यहाँ तक कि उसके चरित्र पर शक करता है।

अमरकान्त के उपन्यासों में 'ग्राम सेविका' गाँव के परिवेश पर आधारित है जिसमें कथाकार ने गाँव की समस्याओं को उजागर किया है और वहीं ग्रामीण योजनाओं के नाम पर अधिकारियों और गाँव के मठाधीशों की मिली भगत से लूट–खसोट का यथार्थ चित्रण किया है। गाँव में न कोई स्कूल था न अस्पताल, पूरा गाँव रूढ़िवादी संस्कारों और अंधविश्वासों की चपेट में था। जिसमें दमयन्ती नामक महिला पात्र ग्राम सेविका जो गाँव को सुधारने के लिए संघर्ष करती है यह नायिका प्रधान लोकजीवन पर आधारित उपन्यास है।

'सुन्नर पाण्डेय की पतोहू' भी नायिका प्रधान उपन्यास है। जिसमें कथाकार अमरकान्त नें स्त्री की पहचान, उसका वजूद क्या है? इस पर प्रश्न उठाया है। कहानी की नायिका जिसे विवाहित होते हुए भी दाम्पत्य सुख नहीं मिला। उसका नाम राजलक्ष्मी है जो जीवन भर भगोड़े पति का इन्तजार करती है और ससुर की कुदृष्टि से बचने के लिए शहर भाग जाती है। शादी और गौने के बाद उसकी खूसट सास पति–पत्नी को मिलने नहीं देती है। माँ के कोप से बचने के लिए झुल्लन पाण्डेय पत्नी की कोख में जुड़वे बच्चे छोड़कर भाग जाते हैं। किशोरावस्था में मौसा माहेश्वर पाण्डे और युवावस्था में ननदोई रामजस तिवारी साथ में ससुर सुन्नर पाण्डेय से यौन प्रताड़ित राजलक्ष्मी आजीवन अपनी इज्जत–आबरू के खतरे को झेलती हुई वृद्धावस्था तक पहुँचती है। बाल–विवाह और पति द्वारा परित्यक्त स्त्रियों का समाज में क्या हाल होता है। यह इस उपन्यास में बखूबी दर्शाया गया है।

'सुग्गी चाची का गाँव' यह अमरकान्त जी द्वारा रचित लघु उपन्यास है। अशिक्षा और अंधविश्वासों के खिलाफ एक संघर्ष की कहानी है। जो कथाकार ने ग्रामीण और अशिक्षित समाज के लिए लिखा है। सुग्गी चाची एक छोटे से गाँव में रहती हैं। जहाँ लोग अंधविश्वास और कुरीतियों से ग्रसित हैं। गाँव में कोई सुविधा नहीं है। सुग्गी चाची सबको यह बात समझाने का प्रयास करती हैं।

'खूँटा में दाल है।' एक लघु बाल उपन्यास है जो धीरा नाम की छोटी सी चिड़िया की कहानी है जो एक दाने दाल के लिए संघर्ष करती है। इस कथा को लेखक ने बड़े ही रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है।

साहित्य सृजन अमरकान्त के लिए कभी बैठे ठाले का खेल या मनोरंजन नहीं रहा। वे अपने रचना कर्म, सामाजिक दायित्व, यथार्थ का विविध आयाम लेकर अपनी वैयक्तिक अनुभूति को चेतना के धरातल पर सार्वभौमिक बना देते हैं। कोई रचना यदि व्यापक कल्याण लेकर नहीं रची जाती तो वह रचनाकर्म में बाधक होगी इसलिए रचनाकार को आन्तरिक ईमानदारी और मानवीय मूल्यों को ध्यान में रखकर ही लिखना चाहिए। अमरकान्त ने मानवीय लोक जीवन को गहराई से अनुभूति किया था इसलिए उसे बड़ी सहजता से व्यक्त कर सके हैं।

'आकाश पंक्षी' उपन्यास में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय समाज के लोक जीवन में अन्तर्विरोधों को प्रदर्शित किया गया है।

'सूखा पत्ता' में प्रेम की असफलता में नायक की दशा को दर्शाया गया है। जो अपने जीवन की असफलता से निराश नहीं होता बल्कि समाज बदलने के लिए कृतसंकल्प होता है।

'बीच की दीवार' उपन्यास में स्वच्छंदता का पूर्ण परिपाक है जिसमें दीप्ति मोहन के प्रेम में जातिगत बन्धनों को तोड़कर प्रेम विवाह कर लेती है।

साहित्यकारों द्वारा समकालीन कथाकार अमरकान्त का नाम कथा साहित्य सम्राट प्रेमचन्द के उत्तराधिकारी के रूप में लिया जाता है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग के लोक जीवन की गहन संवेदना देखी जा सकती है।

अमरकान्त एक स्वतन्त्रता सेनानी भी रहे हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व और स्वतन्त्रता के बाद भारतीय समाज में जो परिवर्तन हुआ उसके सजग प्रहरी भी रहे। अमरकान्त के कथा साहित्य में लोक जीवन का क्षेत्र विस्तृत है। वे लोक जीवन के विभिन्न मानदण्डों को ध्यान में रखकर उसे यथार्थ की कसौटी पर कसते हैं। उनकी कहानियों में देशज भाव बोध लोक जीवन की अभिव्यक्ति को बड़े ही सरल और सहज ढ़ंग से व्यक्त किया है। अमरकान्त ने तत्कालीन समय में मानव के विभिन्न सम्बन्धों क्रिया–कलापों, आचार–विचार, व्यवहार, वेश–भूषा, रहन–सहन आदि का विशद वर्णन किया है।

lUnHk %

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास–रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. लोक साहित्य का सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन–डॉ0 श्री राम शर्मा
3. साहित्य और सामाजिक परिवर्तन–अनन्त राम मिश्र बद्रीनारायण (सं0)
4. हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन–विवेकी राय
5. अमरकान्त सम्पूर्ण कहानियाँ–राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2015
6. 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास–राजकमल चौधरी प्रकाशन नई दिल्ली
7. 'कुछ कहानियाँ कुछ विचार'–विश्वनाथ त्रिपाठी

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 64-68

Hkkjr esa cky Je dk lkekftd ifjn`';

MkW0 ftrsUnz dqekj frokjh*

iz Lrkouk % समकालीन भारतीय समाज में बाल–श्रम एक सामाजिक एव आर्थिक समस्या है। भारत में स्वतंत्रता काल से लेकर अब तक बाल श्रम को एक प्रगतिशील भारत के लिए गम्भीर समस्या मानते हुए इसके निराकरण के तमाम प्रयास हुए हैं। परन्तु स्वतंत्रता के 7 दशक व्यतीत हो जाने के बाद भी अब तक इस पर पूर्ण विराम नहीं लग पाया है। बाल श्रम की प्रारम्भिक स्थिति पर प्रकाश डालें तो प्राचीनकाल में समाज कृषि व्यवस्था पर निर्भर था। पुरूष और महिला दोनों खेतों में काम करते थे। शिक्षण संस्थायें न्यूनतम संख्या में थीं। माता–पिता दोनों का खेतों में काम करने के कारण बच्चे उनके साथ होते थे। धीरे–धीरे ये बच्चे अपने माता–पिता के काम में उनका सहयोग करने लगे। अतः यह कहें कि वयस्क कृषक अपने बच्चों को साथ रखकर कृषि के तरीके अपने अवयस्क बच्चों को सिखाते थे। अतः वयस्क माता–पिता जिस कार्य में संलग्न थे उनके अवयस्क बच्चे उनका सहयोग करते थे। वैश्विक औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव भारत पर भी पड़ा और भारत में उद्योगों की स्थापना की जाने लगी। यहां भी माता–पिता के साथ उनके अवयस्क बच्चे उद्योगों में कार्य करने लगे। सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में बाल श्रमिकों के रोजगार का इतिहास सबसे खराब रहा। उन पर बड़े–बड़े अत्याचार किये जाते थे। बालक अपने माँ–पिता को छोड़कर उद्योगों में काम करने जाने लगे। धीरे–धीरे बाल श्रम की स्थिति विकट होती गयी और खतरनाक कार्यों से बालकों को जोड़ा जाने लगा। इनको कार्य देते समय यह भी ध्यान नहीं रखा गया कि इनका स्वास्थ्य एवं इनके जीवन पर क्या प्रभाव होगा। काम की अवधि एक निर्धारित अवधि से अधिक रखी जाती थी। बालकों को कार्य के बदले वेतन कम दिया जाता था। अर्थात् बालश्रम में न केवल वृद्धि हुई बल्कि शोषण भी बढ़ा। शोषण की प्रथा विश्व के उन सभी देशों में फैल गयी जहां–जहां उद्योगों की स्थापना हुई थी। विश्व के विकसित देशों में फ्रांस, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा रूस में बाल श्रमिकों का भरपूर शोषण किया गया। भारत भी बाल श्रम एवं शोषण के प्रभाव से बच नहीं सका। 19वीं शताब्दी के मध्य में औद्योगिक प्रगति के साथ–साथ कारखानों में बाल श्रमिकों की संख्या बढ़ने लगी। यद्यपि विभिन्न देशों में उद्योगों की स्थापना से उत्पन्न दुष्प्रभावों की समीक्षा कर भारत में इसको दूर करने का प्रयास करना चाहिए था। परन्तु स्थिति के विपरीत उद्योगों में बाल–श्रमिकों को अत्यधिक संख्या में लगाया गया। सर्वप्रथम काटन उ़द्योगों में बाल श्रमिकों को रखा गया। इसके पश्चात् कोयले के खानों में काम करने के लिए रखा जाने लगा। इन स्थानों पर कार्य की दशाऐं बेहद खतरनाक थीं। कार्य अवधि भी अधिक थी। इनके स्वास्थ्य पर ध्यान देने की कोई व्यवस्था नहीं थी। सर्वप्रथम सत्र 1881 में बाल श्रमिकों से सम्बन्धित अधिनियम बनाये गये जिसमें यह प्रावधान रखा गया कि जहाँ 100 से अधिक श्रमिक एक साथ काम करते हैं, वहीं बाल श्रमिक कार्य करेंगे कानून के लागू होने एवं निरीक्षण की समुचित व्यवस्था न होने के कारण बाल श्रमिक अधिनियम का सही–तरीके से पालन नहीं किया जा सका। इस प्रकार अधिनियम बनाये जाने के बावजूद बाल श्रमिकों की दशा सुधारने की ओर मालिकों ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। असंगठित उद्योग और कृषि क्षेत्र में संलग्न बाल श्रमिकों की दशाएँ और अधिक खराब स्थिति में रही। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि मैं देश के हर बच्चे की आंखों में हिन्दुस्तान के भविष्य की तस्वीर देखता हूँ। आज के बच्चे कल के जिम्मेदार नागरिक होंगे। भारत के भाग्य विधाता होंगें। परन्तु इनका कथन व्यवहारिक रूप नहीं ले सका। आश्चर्य तब होता है जब

*एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झांसी

जिम्मेदार लोग ऐसी बातें करें और समस्या के समाधान का प्रयास भी हो, परन्तु यह प्रयास लिखित व्यवस्था तक ही सीमित रह जाय। आज भी करोड़ों बालक श्रमिक जीवन जीने को मजबूर हैं। निर्धन परिवारों के बच्चों को आर्थिक कारणों से बाध्य होकर बाल श्रम में सहभागिता देनी पड़ रही है। विश्व की आबादी में श्रम बाल का एक चौथाई हिस्सा भारत में है। एक अनुमान के अनुसार भारत में बाल श्रम विश्व के बाल श्रम का 5.5 प्रतिशत हिस्सेदारी कर रहा है। (दी हिन्दुस्तान टाइम्स : 1989)

v/;;u dh ifjdYiuk % वर्तमान अध्ययन में यह परिकल्पना प्रतिज्ञापित किया गया है कि भारत अपनी स्वतंत्रता के सात दशक बाद भी विकास सम्बन्धी विविध प्रयासों के बावजूद उस स्थिति को प्राप्त नहीं कर पाया है जहां उसे होना चाहिए था। आज भी भारत में बाल श्रम विद्यमान है, जो भारत का विकृत स्वरूप प्रदर्शित कर रहा है। अतः बाल श्रम की वास्तविक स्थिति को जानना एवं उसके रोकथाम के प्रयास करने महती आवश्यकता है।

ckyJe dh vo/kkj.kk % बाल श्रम का तात्पर्य यह है कि जब कोई बच्चा जो शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से समर्थ न होने के बावजूद भी उस कार्य को करता है जो अभी उसके लिए उपयुक्त न हो। फिर चाहे उसके ऐसा करने का कोई भी अन्य कारण क्यों न हो।

बाल श्रम निषेध अधिनियम के अनुसार, चौदह वर्ष की आयु से कम उम्र के बालकों द्वारा किसी खतरनाक उद्योग, खान–कारखाने आदि में किया जाने वाला कार्य (जोखिमपूर्ण) बाल श्रम कहलाता है।

भारतीय जनगणना रिपोर्ट के अनुसार, एक बाल श्रमिक वह है जो दिन का बड़ा हिस्सा शारीरिक श्रम में लगाता है तथा चौदह वर्ष से कम आयु का होता है।

यूनिसेफ के अनुसार बाल श्रम को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है– 1. परिवार के साथ– वह बच्चे जो अपने परिवार में अवैतनिक सहयोग करते हैं। 2. परिवार के साथ दूसरे स्थान पर–इसमें बच्चे परिवार के साथ कृषि–मजदूरी, घरेलू–मजदूरी एवं सीमांत– मजदूरी का कार्य करते हैं। 3. परिवार के बाहर–वह बाल श्रम जो परिवार के बाहर किसी तीसरे के पास या कोई अलग जगह में जैसे–होटल, दूकान आदि में काम करते हैं।

Hkkjr esa cky Jfedksa dh fLFkfr % भारत के पाँच बड़े राज्यों में सर्वाधिक बाल श्रमिकों की जनसंख्यानुसार क्रमवार स्थिति निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया है –

Øe l0	jkT;	tux.kuk ¼1991½	tux.kuk ¼2001½
1.	उत्तर प्रदेश	1410086	1927997
2.	आंध्र प्रदेश	1661940	1363339
3.	राजस्थान	774199	1262570
4.	बिहार	942245	1117400
5.	मध्य प्रदेश	1352563	1065259

उक्त आंकड़े विगत 19 वर्ष पूर्व के हैं। ऐसा नहीं है कि इसमें सुधार आया है। भारत की बढ़ती जनसंख्या दर के साथ–साथ बाल श्रमिक की जनसंख्या में भी बढ़ोत्तरी हो रही है। 2011 की जनगणना का अवलोकन करें तो पाते हैं कि भारत का जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य उत्तर प्रदेश में 2176706 बाल श्रमिक थे। इनमें से करीब 60 प्रतिशत सीमान्त मजदूर थे जो कि साल में 6 माह से कम समय के लिए मजदूरी करते हैं। शेष बच्चे मुख्य मजदूर थे जो 6 माह से ज्यादा समय तक मजदूरी करते थे। विस्तृत अध्ययन के तथ्य चौकाने वाले प्राप्त होते हैं। 7–14 वर्ष आयु समूह के लगभग तीन लाख मुख्य मजदूर पढ़ना–लिखना नहीं जानते हैं। उत्तर प्रदेश में बाल श्रमिकों की संख्या 2001 के अनुपात में 2011 में 13 प्रतिशत बढ़ी है। वर्ष 2011 की जनगणना में बाल–मजदूरी के आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि भारत में 5 से 14 वर्ष आयु समूह के अन्तर्गत आने वाले 65 लाख बच्चे कृषि और घरेलू उद्योगों में काम करते हैं। जो इस आयु वर्ग के बाल श्रमिकों की 64 प्रतिशत है। जिस उम्र में बच्चों को शिक्षा की सीढ़ियों पर चढ़ना चाहिए उस उम्र में राष्ट्रीय स्तर पर पिछले 10 वर्ष में 5–9 आयु वर्ग के बाल मजदूरों में 37

प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। बच्चों को आर्थिक भूमिका निभाने के लिए मजबूर करना शिक्षा के अधिकार की मूल भावना के प्रतिकूल है।

cky Je d dkj.k % बाल श्रम के मुख्य कारण निम्नवत् हैं –

1- vf'k{kk % बाल श्रम वर्तमान आधुनिक समाज में ही न होकर प्राचीन काल से चली आ रही व्यवस्था है। इसका मुख्य कारण अशिक्षा को माना जाता है। इस कार्य को कराने वाला भले ही पुस्तकीय शिक्षा प्राप्त हो परन्तु सामाजिक शिक्षा में वह अशिक्षित ही है। उसे नहीं पता कि जिस बच्चे से वह अपने निहित स्वाथों की सिद्धि के लिए काम ले रहा है उसके इस कार्य से वह भावी पीढ़ी को भी प्रभावित कर रहा है। अशिक्षित बालक श्रम कर रहा है यह चिंतनीय है परन्तु उससे भी चिंतनीय स्थिति यह है कि उससे काम लेने वाला अथवा बच्चे की ऐसी स्थिति का जिम्मेदार व्यक्ति के प्रति तमाम कानूनी प्रावधान होने के बावजूद नियंत्रण नहीं है। उससे काम लेने वाला व्यक्ति यह सोचता है कि वह पढ़ लिख कर क्या कर लेगा। इससे तो अच्छा है कि उसे किसी काम पर लगा दें, जिससे उसकी और उसके परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी हो जायेगी। क्या ऐसा उचित है। अगर वह बच्चा पढ़ाई कर पाता तो उसका और उसकी पीढ़ी का बेहतर भविष्य बन सकता था। इससे सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति में भी वह अपना योगदान कर पाता। अतः अशिक्षा केवल बच्चे में ही नहीं बल्कि स्वार्थी लोगों में भी है जिससे बाल श्रम में लगातार वृद्धि हो रही है।

2- :f<okfnrk % समाज में रूढ़िवादी सोच बाल श्रम के होने एवं इसके तीव्र बढ़ोत्तरी के कारण हैं। सबसे पहले समाज के परम्परागत रूढ़िवादी सोच में बदलाव लाने की आवश्यकता है। समाज के एक वर्ग की सोच यह रहती है कि जब तक पढ़ लिख कर कुछ करने लायक बालक होगा तब तक तो वह बहुत ज्यादा आमदनी कर लेगा। निश्चित रूप से यह सोच एक खराब व्यवस्था की ओर संकेत कर रहा है। वह शिक्षा से अधिक आय को प्रधानता दे रहा है। शिक्षा पाकर कितना आय कर पायेगा अनिश्चित है। शिक्षा भी महंगी है। शिक्षा के बाद नौकरी की अनिश्चितता है। वह अपने आस–पास के शिक्षित लोगों को बेरोजगार होते देख रहा है। तब उसके मन में यह प्रश्न बना है कि इससे तो अच्छा है कि प्रारम्भ से ही बच्चे में कुछ कार्य अथवा श्रम करने की सीख दी जाये। इस सोच को दरकिनार नहीं किया जा सकता। इस सोच के बनने के कारणों पर गहराई से अध्ययन की आवश्यकता है।

3- cjkstxkjh % बाल श्रम की बढ़ोत्तरी का एक कारण बेरोजगारी भी है। जब कोई व्यक्ति बेरोजगार होता है तो अधिक से अधिक कार्य के बदले आय चाहता है उसके लिए वह अपने परिवार के सभी सदस्यों को श्रम अथवा काम में लगा देता है। यहाँ तक कि जिन बच्चों को स्कूल एवं परिवार के प्यार की आवश्यकता होती है वे भी आय करने के लिए श्रम पर लगा दिये जाते हैं। उनका मानना होता है कि परिवार के सभी सदस्यों के काम करने से गरीबी दूर हो जायेगी। परन्तु वे यह नहीं सोच पाते कि जिन बच्चों को वे अपनी गरीबी दूर करने के लिए श्रम में लगा दिये हैं वे बच्चे आजीवन गरीब हो रहे हैं। बेरोजगारी वह अभिशाप है जो व्यक्ति को उचित और अनुचित का अन्तर नहीं होने दे रहा है। बेरोजगारी का प्रभाव केवल व्यक्ति और उसके परिवार तक ही सीमित नहीं है। इसका प्रभाव उसकी भावी पीढ़ी पर भी पड़ रहा है।

Hkkjr d fofHkUu m|kxksa e lyXu cky Jfed % बाल श्रमिक भारत के विभिन्न उद्योगों में संलग्न पाये जाते हैं। साथ ही स्थानीय स्तर के छोटे–छोटे स्थानों, दुकानों आदि में भी पाये जाते हैं। अर्थात् कारखानों, खानों एवं बगानों के साथ–साथ अनियंत्रित उद्योगों में बाल श्रमिक कार्य कर रहे हैं। बाल श्रमिकों के संलग्नता की स्थिति को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है।

1- dkj[kkuksa e lyXurk % औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप अधिक संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता पड़ने लगी। फलस्वरूप इसकी पूर्ति के लिए बालकों को जो अभी 10 से 16 वर्ष के बीच थे उन्हें काम पर लगा दिया गया। कुछ समय व्यतीत हो जाने के बाद बाल के के रोकथाम के लिए कारखाना अधिनियम 1881 पारित किया गया। 1948 में कारखाना अधिनियम के अनुसार केवल 14 वर्ष से ऊपर उम्र के बालकों को काम पर लगाया जा सकता था। इसमें यह भी प्रावधान था कि 17 वर्ष से कम उम्र

के बालकों को काम पर नहीं लगाया जा सकता। इनके कार्य की अवधि 04:30 घंटा निर्धारित की गयी। भारत के लगभग सभी राज्यों में बाल श्रम पाया जाता है। जांच एजेंसियों का इसको रोकने में सकारात्मक सहयोग न्यूनतम रहा है। छोटे उद्योगों में बाल श्रमिकों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं होता है। निरीक्षण की समुचित व्यवस्था का अभाव पाया जाता है।

2- [kkuksa esa lyXurk % कारखानों के साथ–साथ बाल श्रमिकों को खानों–खदानों में संलग्न किया गया है। 1901 में कुल बाल श्रमिकों का 4.9 प्रतिशत खानों एवं खदानों में सहभागिता थी। 1909 में सर्वप्रथम भारतीय खान अधिनियम बनाये जाने के बाद से मुख्य निरीक्षकों को यह अधिकार दिया गया कि 13 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को खानों में काम करने पर रोक लगायें। इसका प्रभाव यह हुआ कि 1921 में खानों में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या घटकर 3.5 हो गयी । खान अधिनियम संशोधन 1923 का प्रभाव यह हुआ कि खान में सम्मिलित बाल श्रमिकों की संख्या 1.6 रह गयी। खान अधिनियम 1935 में पुनः संशोधन कर बाल श्रमिकों की न्यूनतम आयु 15 वर्ष,1958 में 16 वर्ष करने के साथ–साथ रात्रि में काम कराने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। 1954 में श्रमिक ब्यूरो की रिपोर्ट चौंकाने वाली थी जो उक्त अधिनियमों की अवहेलना पायी गयी। इसका कारण जानने पर ज्ञात हुआ कि गरीबी इसका मुख्य कारण है। बच्चों की आय से परिवार की आय में बढ़ोत्तरी हो जाती है, जो उनका दैनिक जीवन यापन के लिए आवश्यक माना गया। यह स्थिति आज भी बनी हुई है। गरीबी की आढ़ में कुछ परिवार ऐसे हैं जो बाल श्रम कराते हैं तथा वयस्क श्रमिक उनका इस कार्य में सहयोग करते हैं। कम मजदूरी पर बाल श्रमिक उपलब्ध हो जाने से खान में मालिक अथवा ठेकेदार इसका लाभ ले रहे हैं।

3- ckxkuksa esa lyXurk % भारत के बागानों में बाल श्रम पाया जाता है। गरीब परिवार का वयस्क सदस्य अपने साथ बच्चों को भी बागानों के कामों में संलग्न कर देता है। बागान अधिनियम 1951 के अनुकूल 12 वर्ष से कम उम्र के बालकों को बागानों में काम पर नहीं रखा जाता है। इसमें 15–18 वर्ष की उम्र को किशोर कहा गया है। 12 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को काम पर लगाना दण्डनीय है। किशोरों को प्रति सप्ताह 40 घंटे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता तथा रात्रिकालीन अवधि में काम लेने पर प्रतिबंध है। तमाम वैधानिक प्रावधान होने के बावजूद बालकों से श्रम कराया जाना जारी है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 21 प्रतिशत दार्जिलिंग, 25.75 प्रतिशत बंगाल, 14.5 प्रतिशत असम तथा 11 प्रतिशत दक्षिण भारत के राज्यों में बाल श्रम पाया जाता है।

4- Ñf"k {k= esa lyXurk % भारत अपनी आबादी को सर्वाधिक रोजगार कृषि क्षेत्र से उपलब्ध कराता है। जिसके कारण इसे कृषि प्रधान देश कहा जाता है। कृषक अपने पूरे परिवार सहित खेती के कामों में संलग्न होता है। इसमें स्त्री–पुरूष अथवा उम्र का कोई भेद नहीं रखा जाता है। कृषि में लगभग 4. 6 प्रतिशत बालक 15 से कम उम्र में ही काम करने लगते हैं। स्वतंत्रता के प्रथम दशक में 15 वर्ष से कम उम्र की संख्या 30 लाख थी। इनमें से अधिकांश अपने परिवार के बड़े सदस्यों के साथ खेती में सहयोग करते थे। श्रम मंत्रालय के अनुसार इनकी संख्या 09 प्रतिशत मानी गयी है।

5- vlaxfBr m|kxksa esa lyXurk % सरकार द्वारा निर्मित कानून असंगठित उद्योगों पर प्रभावी नहीं हो पाता है। इन उद्योगों के लिए अलग से अधिनियम बनाये जाते हैं। ऐसा अधिनियम सर्वप्रथम 1938 में बनाया गया था इसमें 14 वर्ष से कम उम्र के बालकों को श्रम पर लगाने के लिए प्रतिबंधित किया गया। इनमें बीड़ी, कपड़े, कालीन, साबून, चमड़ा, ऊन एवं सीमेंट आदि मुख्य उद्योग हैं। सन् 1954 में श्रमिक ब्यूरो द्वारा जो तथ्य संकलित किये गये उनमें असम और बिहार राज्य में बीड़ी, अभ्रक एवं कांच में बालक श्रम कर रहे थे। उत्तर प्रदेश में बीड़ी, कपड़ा, जूता तथा बुनाई आदि कामों में बाल श्रमिक संलग्न है। अन्य राज्यों में लगभग यही स्थिति बनी हुई है।

cky Jfedksa dh fy, oS/kkfud lqj{k.k % भारत में बाल श्रमिकों के लिए अलग–अलग दो अधिनियम बनाये गये हैं

1. बाल श्रम अनुबंध अधिनियम 1933 एवं
2. बाल श्रमिक रोजगार अधिनियम 1939

बालश्रम अनुबंध अधिनियम 1933, रायल श्रम कमीशन की सिफारिशों के आधार पर बनाया गया था। असंगठित क्षेत्र में संलग्न बाल–श्रमिकों के माता–पिता मालिकों से बच्चों के आय का बड़ा भाग कार्य से पूर्व अर्थात् एडवांस ले लेते थे। इसे रोकने हेतु यह अधिनियम लागू किया गया। इसमें यह प्रावधान था कि 15 वर्ष से कम उम्र के बालक को उसके माता–पिता किसी अनुबंध के तहत काम पर नहीं लगा सकते हैं।

बाल श्रमिक रोजगार अधिनियम 1939, जिन उद्योगों में कारखाना अधिनियम लागू नहीं होता, उनमें बाल–श्रमिक रोजगार सम्बन्धी पाये जाने वाले दोषों को दूर करने के लिए बनाया गया। इस अधिनियम की निम्न विशेषता थी।

- यात्री व माल के यातायात, बन्दरगाहों आदि में काम करने वाले श्रमिकों की न्यूनतम आयु 15 वर्ष निर्धारित की गयी।
- 15 से 17 वर्ष उम्र के बीच के श्रमिक को रात्रिकालीन में श्रम नहीं कराया जा सकता है।
- छोटे उद्योगों जिनमें बीड़ी, रंगाई, बुनाई, साबुन, चमड़ा, अभ्रक, दियासलाई आदि कार्यों में श्रमिकों की न्यूनतम आयु 14 वर्ष निर्धारित कर दी गयी।
- इस अधिनियम को लागू करवाने एवं पालन करवाने की जिम्मेदारी मुख्य निरीक्षकों को दिया गया।

उक्त संरक्षण अधिनियम में व्याप्त जटिलताओं को ध्यान में रखते हुए बाल श्रम निषेध एवं नियमन कानून 1986 लागू किया गया।

fu"d"k% बाल श्रमिक जिनके कार्य का केवल तत्कालिक लाभ होता है। इनके कार्य करने से न केवल उस बच्चे का, बल्कि उसके परिवार समाज अथवा राष्ट्र की क्षति होती है। बाल अवस्था में श्रम करने से उसकी प्रगति रूक जाती है उसके सोचने समझने और आकलन करने की क्षमता अवरूद्ध हो जाती है। बाल श्रम गरीबी के प्रभाव से प्रारम्भ होती है जो कालान्तर से चली आ रही है। इस विषय पर तमाम शोध संगोष्ठियां, बड़े–बड़े प्रोजेक्ट, नियोजन एवं रोकथाम के प्रयास हुए हैं। सरकार द्वारा निर्मित अधिनियमों का प्रभाव पड़ा है। जिससे बाल श्रमिकों की संख्या में गिरावट आयी है, परन्तु जनसंख्या के तेजी से बढ़ने, बेरोजगारी एवं गरीबी ने तमाम प्रयासों को कमजोर कर दिया है। बाल श्रमिकों को कानूनी प्रभाव से रोकना तर्क संगत नहीं है इसके लिए सामाजिक कानून बनाने की आवश्यकता है जिसमें यह प्रावधान हो कि जिस परिवार का बालक जो 15 वर्ष से कम उम्र का है यदि वह कहीं नौकरी अथवा श्रम करता है तो उसे तिरस्कृत किया जाये। विडम्बना यह भी है कि गरीब का बच्चा यदि नौकरी नहीं करेगा तो खायेगा क्या। इस पर विस्तृत विचार एवं बाल श्रम के रोकथाम के प्रयास की नितांत आवश्यकता है।

lUnHk%

1. वर्मा, ओ.पी. (2004) भारतीय सामाजिक समस्याएँ, विकास प्रकाशन, कानपुर
2. पाठक, रामचन्द्र (2008) सामाजिक समस्याएँ विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी
3. सिंह, जी.पी. आर (2015) भारत में सामाजिक व्याधिकी, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
4. आहूजा, राम (2000) सामाजिक समस्याऐं, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
5. आहूजा, राम (1995) भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
6. Sloan, Irving, child Abuse (1983) Governing law and Legislation, Oceana Publication, New yark.
7. Wolfe, D.A. (1987) Child Abuse, Sage Publication, Beverly Hills.
8. Joshi, Uma (1986) child Abuse; A Disgrace in Our Sociey, " The Hindustan Times, June 25".

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 69-71

Hkkjrh; lekt e lLdkj % ,d fo'ys"k.kkRed v/;;u

MkO lk/kuk*

आश्रम व्यवस्था का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन का उसकी शारीरिक आवश्यकता, मानसिक योग्यता,नैतिकदायित्व के अनुरुप विभिन्नकालों में विभाजन है संस्कारों का सम्बन्ध भी व्यक्ति के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं से है आश्रम व्यवस्था व्यक्ति को क्रमशः मनुष्य की पूर्णता की और ले जाने की पद्धति है इसी प्रकार संस्कारों के द्वारा ही व्यक्ति के स्तर की स्वीकृति, उसके कार्यों का निर्धारण तथा सामाजीकरण की प्रक्रिया है।

वस्तुतः संस्कारों की उत्पति के मूल में मानवीय प्रवृत्तियों का हाथ है यह आख्यानों के निर्माण की प्रवृति' का ही रुप है।[1]

इन संस्कारों की उत्पत्ति के पीछे मनुष्य के प्रतीक निर्माण की क्षमता तथा प्रत्ययों की सृष्टि की शक्ति है। प्रतीकों की रचना तथा प्रत्ययों के सृजन में केवल मनुष्य की विशेषताएँ है। प्रत्ययों के सृजन की शक्ति के कारण मनुष्य पवित्र तथा अपवित्र में भेद कर पाता है। और संस्कारों के साथ पवित्रता की भावना जुड़ी है इनके साथ नैतिक दायित्व तथा कर्तव्य पूर्ति की भी भावना है पवित्रता की इसी भावना के कारण ये संस्कार समाज में इतने मान्य है यहाँ पर कथन विशेष महत्वपूर्ण है 'क्योंकि ये संस्कार चेतन रुप से मृत्यु तथा जीवन के माने जाते है बल्कि यह जीवनदाता तथा मृत्यु से सम्बन्ध रखने वाले है इसलिये केवल इनकी प्रतिष्ठा ही नही होती है बल्कि लोग इन पर विश्वास करते करते है इनके पूर्ण करने वालों का विश्वास है कि इनसे हमें मुक्ति मिलेगी।[2] कुछ लोगों का ऐसा विश्वास है कि इन धार्मिक कृत्यों तथा संस्कार को मनुष्य केवल कार्य करने के आनन्द के लिये स्वीकार करते है इनमें एक प्रकार की अनुकरण की प्रवृत्ति पायी जाती है और पुनः वे हमारी आदत का अंग माने जाते है तो उपयोगिता के नाम पर इन्हें प्रतिष्ठा प्रदान की जाती है देवी का मत है कि पद्धति तथा धार्मिक क्रिया के साथ जो भक्ति है उसके मूल में किसी प्रकार की अन्तरात्मा तथा विश्वास का प्रश्न नहीं है बल्कि इनकी मान्यता के पीछे अनुकरण पुनरावृति तथा कार्य करने के आनन्द की प्रतीति है।[3]

परन्तु यदि ध्यानपूर्वक इस बात पर विचार किया जाये तो ये तर्क तथ्यरहित प्रतीत होते है आदिम समाज में आज भी ऐसे बहुत से संस्कार पाये जाते है जिसमें व्यक्ति को अपने जीवन को संकट में डाल देना पड़ता है । ऐसे कार्यों को करने के पीछे किसी प्रकार भी आनन्द की प्राप्ति नहीं हो पाती।

fgUnw lLdkj % संस्कार शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है समुचित रुप से किये गये कार्य को संस्कार कहते है। संस्कारों का प्रयोग ऐसी परम्परा के रुप में किया जाता है जो हमारे जीवन को प्रभावित करने है परन्तु मनु स्मृति संस्कारों का अर्थ का उन पवित्र अनुष्ठानों से है जो शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक एक आध्यात्मिक परिष्कार के लिये किये जाते हैं जैसा डॉ0 राजबली पाण्डेय ने स्पष्ट किया है हिन्दू संस्कारों में 'अनेक आरंभिक धार्मिक विधि विधान उनके नियम तथा अनुष्ठान भी समाविष्ट है जिनका उद्देश्य केवल औपचारिक दैहिक संस्कार ही ने होकर व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिष्कार शुद्धि एवं पूर्णता भी है।[4]

हिन्दुओं का सम्पूर्ण जीवन इन्हीं संस्कारों में आबद्ध है संस्कार की पूर्ति के बिना जीवन पूर्ण ही नहीं माना जाता था हिन्दू संस्कारों के साथ भी ऐसे बहुत से तत्व है जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि ये संस्कार आदिम प्रवृत्ति के विशेष रुप है। आरंभिक युग में जब प्रकृति तथा अपने जन्म एवं जीवन

*मकान नं0 SH 15/182 बाईपास रोड, शिवपुर,वाराणसी,उ0प्र0

के प्रति व्यक्ति में कौतूहल की मात्रा अधिक थी वह घटनाओं का व्याख्या ''कार्य कारण के प्रसंग में नहीं कर पाता था उसके जीवन में अनेक बाधाएँ व्याधियाँ तथा प्रकृति के प्रकार आया करते थे। विशेष रुप से बाल्यकाल में जीवन की रक्षा के लिये अनेक प्रयत्न करने पड़ते जीवन रक्षा के इन्हीं प्रयत्नों ने अनेक विश्वास तथा क्रियाओं को जन्म दिया।

मीमांसा दर्शन के भाष्यकार 'शबर स्वामी' के अनुसार संस्कार का लक्षण है जिसमें कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिये योग्य हो जाता है।[5]

^r= ;kfrd* d vulkj lLdkj % ये क्रियाएँ तथा रीतियाँ है, जो योग्यता प्रदान करती है।[6] इस प्रकार संस्कार का अभिप्राय उन क्रियाओं से है जिससे मनुष्य की शारीरिक और मानसिक पवित्रता होती है। क्योंकि संस्कार का शाब्दिक अर्थ भी है 'परष्किार या संस्करण' अर्थात् अशुद्ध या अपवित्र को शुद्ध और पवित्र बनाना। वहाँ यह बात और दर्शनीय है कि आरंभिक काल में किये जाने वाले संस्कार जहाँ शरीर अथवा जीवन वहाँ यह बात और दर्शनीय है कि आरंभिक काल में किये जाने वाले संस्कार जहाँ शरीर अथवा जीवन रक्षा के उद्देश्य प्रेरित है, बाद के संस्कारों का उद्देश्य सामाजिकरण एवं कार्य तथा स्तर की प्रक्रिया में क्रमशः प्रगति है संस्कारों के द्वारा ही सुसंस्कृत मनुष्य का निर्माण हो सकता है। हिन्दू शास्त्रों को ऐसी मान्यता है।

lLdkjk d mnn'; % संस्कारों के उद्देश्य को हम कई श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं सर्वप्रथम तो इन संस्कारों के पीछे कुछ मनोवैज्ञानिक कारण है वे मानवीय प्रवृत्तियों के अभिव्यक्ति है। पुनः इन संस्कारों के मूल में प्राणिशास्त्रीय आवश्यकताएँ भी है और इस दृष्टि से यह संस्कार शुद्ध शारीरिक सुरक्षा की दृष्टि से संपादित किये जाते है। भौतिक समृद्धि सामाजीकरण तथा आध्यात्मिक उत्थान के कार्य भी इन सस्कारों के द्वारा ही पूर्ण होते है।

irhdkRed vfHkO;fä % इन संस्कारों का प्रथम उद्देश्य प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। जैसा लैगर ने स्पष्ट किया है कि प्रतीक निर्माण की प्रवृत्ति के ही ये अंग है।[7] मनुष्य के जीवन में अनेक प्रकार की घृणा, भय, आनन्द तथा अनुराग की स्थितियाँ आती है यदि इन स्थितियों को सामान्य रुप से न स्वीकार किया जाय। तो बड़ी समस्या उठ खड़ी हो। कुछ समस्याएँ सबके जीवन मे सामान्य रुप से सम्बन्धित है जैसे जन्म नामकरण तथा मृत्यु की समस्या। प्रत्येक समाज में इन अवसरों के लिये कुछ प्रतिमान निर्धारित है। किसी भी मनुष्य का जब नामकरण हो जाता है तो प्रतीकात्मक रुप से उसके नाम के साथ हम उसी व्यक्ति को सम्बोधित करते है मृत्यु के पश्चात् शव को किस प्रकार ले जाया जाय उसके प्रतीकात्मक रुप से धर्म के साथ सम्बन्ध कर देने से उनकी मान्यता और प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। हिन्दुओं के संस्कारों में मृत्यु को छोड़कर सभी संस्कार हर्ष आनन्द की ही अभिव्यक्ति है।

foifÙk l j{kk % आरंभिक काल में जब मानवीय मस्तिष्क पूर्ण विकसित नहीं था तो वह अपनी शारीरिक सुरक्षा के लिये अनेक उपायों का आश्रय लेता है। हमारे जीवन के साथ चेतन अधवा अचेतन रुप में बहुत सी आदिम प्रवृतियाँ एवं मान्यताएँ अभी भी शेष है और उन्हीं की अभिव्यक्ति इन संस्कारों के रुप में होती है। अशुभ प्रभावों एवं विपदाओं से जीवन की रक्षा के लिये मनुष्य ने अनेक क्रियाकलापों को अपनाया। हिन्दुओं में अंत्येष्टि के पश्चात् राख को प्रवाहित कर दिया जाता है इसके पीछे स्वास्थ्य के पूर्व विध्नहरण के लिये गणेश की स्तुति भी इसका प्रमाण है।

lekthdj.k % संस्कारों के द्वारा समाजीकरण की प्रक्रिया भी होती है समाज में व्यक्ति की स्वीकृति हिन्दू मान्यताओं में संस्कारों के द्वारा ही होती है द्विज वही माना जायेगा जिसका उपनयन संस्कार पूर्ण हो चुका है उसके पूर्ण सभी शूद्र है। स्त्रियों का उपनयन संस्कार नहीं होता। इन संस्कारों के द्वारा व्यक्ति दूसरे कार्यों को ग्रहण करने के योग्य बनता है। जैसे उपनयन संस्कार के बाद एक बालक गुरुकुल में प्रवेश कर शिक्षा ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त कर सकता था। विवाह संस्कार के बाद ही व्यक्ति पति बन सकता था। संस्कारों के द्वारा इस प्रकार की स्वीकृति जहाँ व्यक्ति के लिये एक अनुष्ठान एवं नैतिक दायित्व के रुप में थी वही समाज की दृष्टि में उसे एक भिन्न स्तर प्राप्त होता था ।

उसी के साथ–साथ ये मनुष्य के सामाजिक भी बनाते थे इन संस्कार के द्वारा व्यक्ति एक स्थिति से दूसरी उच्च स्थिति तथा व्यापाक परिवेश का सदस्य बनता था जिसको हम क्रमिक उत्थान की संज्ञा दे सकते है।

vk/;kfRed mRFkku % शारीरिक एवं सांसारिक सफलता से आरंभ कर संस्कार आध्यात्मिकता की ओर हो जाते है। वस्तुत इन संस्कारों के द्वारा भौतिक समृद्धि एवं आध्यात्मिक उत्थान इन दोनों में समन्वय स्थापित हुआ हैं। संस्कार दोनों पक्षों पर समान रुप से बल देते हैं। डॉ0 राजबली पाण्डेय का कथन है कि 'संस्कार एक प्रकार से आध्यात्मिक शिक्षा के लिये क्रमिक सीढ़ियों का काम है' उनके द्वारा सांस्कारीक व्यक्ति अनुभव कर सकता है कि सम्पूर्ण जीवन संस्कारमय है और सम्पूर्ण दैहिक कियाएँ आध्यात्मिक ध्येय से अनुप्राणित है। यही वह मार्ग था जिसके द्वारा क्रियाशील सांसारिक जीवन का समन्वय आध्यात्मिक तत्वों के साथ स्थापित किया जाता था। इसके द्वारा शरीर मन तथा आत्मा के पूर्ण विकास पर यथेष्ट ध्यान दिया गया है।

laLdkjksa dh la[;k ,oa Hksn % स्मृतिकारों ने संस्कारों की संख्या भिन्न–भिन्न बतायी है। सभी स्मृतिकारों का मत भिन्न–भिन्न है गौतम के अनुसार चालीस संस्कार है। नाम इस प्रकार है– (1) गर्माधान (2) पुंसवन (3) सीमान्तोन्नयन (4) जातकर्म (5) नामकरण (6) अन्नप्राशन (7) मुण्डन (8) उपनयन (9) ऋग्वेद का आरम्भ (10) सामावेद का आरम्भ (11) आथर्ववेद का आरम्भ (12) सामावर्तन (13) विवाह (14) देवयज्ञ (15) पितृयज्ञ (16) अतिथि यज्ञ या मनुष्य यज्ञ (17) बलिवैश्वदेव यज्ञ या भूतयज्ञ (18) ब्रह्मयज्ञ (19) अष्टका (अगहन वदी अष्टमी का श्राद्ध) (20) पावर्ण (पूसवदी 7 का श्राद्ध) (22) श्राद्ध (23) श्रावणी (24) अगृहाणी (25) चैत्री (26) अश्वयुजी (27) अगन्याधान (28) अग्निहोत्र (29) दर्शधौर्गमास यज्ञ (30) आग्रयण (नयान्नेष्टि) (31) चातुर्मास्य (32) निरुण पशुबन्ध (33) सौत्रानणी (ये सात हर्वि यज्ञ है) (34) अग्निष्टोम (35) अत्यग्निहोम (36) उवथ्य (37) षोडशी (38) बाजपेय (39) अतिरोग (40) अष्तोर्याम (ये सात स्रोम यज्ञ है)।[8] ब्रह्म स्मृति भी इन 40 संस्कारों को गिनाया गया है।

व्यास स्मृति में 16 संस्कार गिनाये गये है।[9]

ब्रह्मोक्त याज्ञवल्क्य संहिता में भी 16 संस्कार गिनाये गये है।

lUnHkZ %

1. नागेन्द्र एस0 पी0; द नेचर सिग्राफिकेन्स ऑफ रिचुयल' द ईस्टर्न एन्थ्रोपोलाजिस्ट
2. लैगर; फिलासॉफी इन ए न्यू, पृ0 124
3. जॉन डेवी; इक्सपेरियन्स एण्ड नेचर, पृ078–79
4. पाण्डे, डॉ0 राजबली, हिन्दू संस्कार, पृ019
5. संस्कारों नाम स भकति यरिनन जाते पदार्थी भदति योग्य कस्यानिदर्शस्य मीमांसा शबर 313
6. मनु0 227
7. लैगर : लाइफ सिम्बल दि रुट्स ऑफ सैक्रामेण्ट्स''।
8. गौतम0 83
9. व्यास 1.13–14

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 72-76

ujæ eknh ;x e Hkkjrh; fon'k uhfr

MkO fcfiu pUæ dkf'kd*

विदेश नीति अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा और बढ़ावा देने के लिए किसी देश के निर्माण का एक साधन है। राष्ट्रीय हित का मूल उद्देश्य राष्ट्र की अखंडता और संप्रभुता की रक्षा करना है, लोगों की आर्थिक और सामाजिक भलाई को बढ़ाना है, अन्य देशों के साथ लाभदायक व्यापारिक संबंधों के अवसरों को बढ़ावा देना है और सांस्कृतिक संबंधों के प्रसार के माध्यम से सहयोगी राष्ट्रों का फायदा उठाना है। यद्यपि राष्ट्रीय हित हमेशा के लिए स्थायी होगा, किन्तु इसके उद्देश्य एवं विषय–वस्तु समय और परिस्थितियों के साथ अलग–अलग होंगे। यह इस प्रकार है कि अन्तर्राष्ट्रीय नीति को लचीला होना चाहिए और बदलते अन्तर्राष्ट्रीय, साथ ही साथ राष्ट्रीय पर्यावरण के अनुरूप होना चाहिए। मोदी की पहली विदेश नीति का दृष्टिकोण 2013 में उनकी पार्टी में प्रधान मंत्री पद की उम्मीदवारी के दौरान सामने आया था जब उन्होंने 'थिंक इंडिया, संवाद मंच' नामक एक नेटवर्क 18 कार्यक्रम में निम्नलिखित बिंदुओं को रेखांकित किया था :

♦ तत्काल पड़ोसियों के साथ संबंधों में सुधार उनकी प्राथमिकता होगी क्योंकि दक्षिण एशिया में शांति भारत विकास के एजेंडे को पूरा करने के लिए आवश्यक है। ♦ गौरतलब है कि उन्होंने भारत में पैरा डिप्लोमेसी की अवधारणा शुरू करने का संकल्प लिया, जहाँ प्रत्येक राज्यों और शहरों को देशों या संघीय राज्यों या यहां तक कि उनकी रुचि के शहरों के साथ विशेष संबंध बनाने की स्वतंत्रता होगी। ♦ कुछ महत्वपूर्ण वैश्विक शक्तियों को छोड़कर अधिकांश देशों के साथ संबंधों पर प्रभावी होने वाला द्विपक्षीय व्यापार को प्रोत्साहित किया जाएगा, जिसके साथ भारत एक रणनीतिक साझेदारी करता है।

मोदी ने ऐतिहासिक चुनावी जीत के बाद कई बधाई संदेश और अधिकांश विश्व नेताओं के फोन कॉल का जवाब दिया।[1] सत्ता संभालने से पूर्व नरेन्द्र मोदी ने अपने शपथ ग्रहण समारोह में अपने सभी पड़ोसी देशों के राष्ट्राध्यक्षों एवं शासनाध्यक्षों को आमंत्रित किया। जिससे अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उनकी एक उदार शासनाध्यक्ष की छवि विकसित हुई। मोदी के शपथ ग्रहण समारोह में लगभग सभी सार्क नेताओं के साथ–साथ मारिशस के राष्ट्रपति नवीन रामगुलाम शामिल थे, जो समूह में एक पर्यवेक्षक का दर्जा रखते हैं। मेहमानों की सूची में अफगानिस्तान के हामिद करजई, भूटान के तशेरिंग तोबगे, मालदीव के अब्दुल्ला यामीन, नेपाल के सुशील कोईराला, पाकिस्तान के नवाज शरीफ, श्रीलंका के महिंदा राजपक्षे, मॉरीशस के नवीन रामगुलाम शामिल हैं। बांग्लादेशी प्रधान मंत्री शेख हसीना की जगह संसदीय अध्यक्ष शिरीन शरमिन चौधरी के इस समारोह में आए थे। गौरतलब है कि तिब्बती सरकार के निर्वासन के प्रधान मंत्री लोबसांग सांगे को भी दर्शक दीर्घा में बैठे देखा गया था।[2] मीडिया ने उनकी विदेश नीति की अपनी आलोचना के जवाब में इस पर सकारात्मक प्रतिक्रिया दी।[3] पूर्व राष्ट्रीय सलाहकार और विदेश सचिव शिवशंकर मेनन ने कहा कि मोदी सरकार की विदेश नीति ''रणनीतिक असंगतता'' में से एक है, जिसे वैचारिक ढाँचे के बिना निष्पादित किया जाता है।[4] मोदी की भारतीय विदेश नीति भारत को एक मजबूत नेतृत्व द्वारा विकसित एक सार्थक मोड़ रही है। नई सरकार ने भारत की विदेश नीति की प्राथमिकताओं को फिर से परिभाषित किया है, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय जुड़ाव का स्तर भी बढ़ा है। यद्यपि लोकतंत्र, मानवाधिकार जैसे क्षेत्रों में अपनी नीति को बरकरार नहीं रखा है, और सरकार की क्षेत्रीय नीति उन अवसरों का उपयोग करने में विफल रही है जो इसके कार्यकाल शुरू होने पर उपलब्ध थे। इसके अलावा, नई सरकार के तहत विदेश नीति में बदलाव को एक बड़ा बदलाव नहीं माना जा सकता है क्योंकि भारतीय विदेश नीति के लक्ष्य और रणनीति में कोई बदलाव नहीं हुआ है। इस प्रकार की कई नीतियाँ पहले से हैं जो तब से सुर्खियां बटोर रही हैं। मोदी ने चीन और पाकिस्तान के साथ संबंधों को बदलने की उम्मीद

*एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी0बी0एस0 कालेज, गोविन्द नगर, कानपुर, उ0प्र0

करते हुए कार्यालय में प्रवेश किया, भारत के अहिंसात्मक प्रतिबद्धता के साथ हाथ फैलाया, और दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय प्रभाव का विस्तार किया। फिर भी अपने बेहतरीन प्रयासों के बावजूद, वह अपने देश की विदेश नीति को मौलिक रूप से बदलने में विफल रहे हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की विदेश नीति में महान ऊर्जा, अतीत के सांचे को तोड़ने की इच्छा और जोखिम उठाने की एक विशेषता है। उन्होंने जो दृढ़ता प्रदान की है, उसे देखते हुए, विदेशी संबंधों को अधिक महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त करने चाहिए। किन्तु इस लक्ष्य को प्राप्त करने वाले सारे चर आन्तरिक नहीं होते बल्कि बाहरी चरों की भूमिका भी प्रभावी होती है, जो कि आपके नियंत्रण के बाहर है। मोदी एक साहसिक अभियान के साथ आए। 2014 में जब वह सात महीने में ही उन्होंने नौ विदेशी दौरे किए थे। अपने पाँच वर्ष के कार्यकाल में वह 96 देशों का दौरा कर चुके हैं, उनमें से 9 बार संयुक्त राज्य अमेरिका में गये। उनकी यात्राओं का एक उल्लेखनीय पहलू यह था कि, कई उदाहरणों में, किसी देश, यहां तक कि प्रमुख पड़ोसियों की यात्रा करने वाले वे पहले पी0एम0 थे, 17 साल में नेपाल, 28 में श्रीलंका, 34 वर्ष में यूएई और पहली बार वे मंगोलिया तक गये।

मोदी ''पड़ोस पहले'' एजेंडे के साथ सत्ता में आए। उन्होंने प्रधानमंत्री के रूप में अपने उद्घाटन के लिए सार्क देशों के सभी नेताओं को आमंत्रित करके अपनी प्रतिबद्धता का संकेत दिया। जून 2014 में उनकी पहली द्विपक्षीय यात्रा भारत के ''सबसे अच्छे दोस्त'' भूटान और अगस्त में दूसरी नेपाल की थी। वह नवंबर में 18 वें सार्क सम्मेलन में भाग लेने के लिए काठमांडू गये, जहाँ उन्होंने पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ के साथ कार्यक्रम किया। पड़ोस का पैटर्न 2015 में दोहराया गया था, लेकिन इस बार हिंद महासागर पर ध्यान केंद्रित करते हुए जब सेशेल्स, मॉरीशस और श्रीलंका के साथ–साथ बांग्लादेश और अफगानिस्तान का दौरा किया गया। एक दूसरा महत्वपूर्ण परिक्षेत्र जुलाई 2015 में सभी पांच मध्य एशियाई देश थे, जिन्होंने भारत के प्रति मुस्लिम देशों के पूर्वाग्रह को परिवर्तित करने में मदद किया। जापान और विभिन्न यूरोपीय देशों की यात्राएँ निवेशकों को लुभाने और सहायता देने के उद्देश्य से किया गया था। अमेरिका की यात्राएँ एक विशेष श्रेणी की थी, जिसका एकमात्र उद्देश्य इस देश के साथ संबंध बनाना था जो भारत को चीनी शक्ति को नष्ट करने में मदद कर सकता था, और जिसकी दोस्ती ने कई अन्य देशों और संस्थानों के लिए दरवाजे खोल दिए। सऊदी अरब, ईरान और कतर की 2016 की मोदी यात्राओं के माध्यम से प्राथमिकताओं का एक तीसरा स्वरूप दिखाई दिया। वह अगस्त 2016 में पहले ही यूएई का दौरा कर चुके थे और क्राउन प्रिंस मोहम्मद बिन जायद अल नाहयान 2017 में गणतंत्र दिवस परेड में मुख्य अतिथि बने थे।

,DV bLV i,fyh % शुरुआत से ही मोदी के नेतृत्व वाली सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत पूर्व की विदेश नीति के अनुसार आसियान और अन्य पूर्व एशियाई देशों के साथ संबंधों को बेहतर बनाने पर ध्यान केंद्रित करेगा, जो 1992 में बेहतर आर्थिक भागीदारी के लिए पीएम नरसिम्हा राव की सरकार के दौरान बनाई गई थी। इसके बाद पूर्वी पड़ोसी लेकिन उत्तरवर्ती सरकार ने बाद में इसे उस क्षेत्र के देशों के साथ रणनीतिक साझेदारी और सुरक्षा सहयोग बनाने के लिए एक अभिकरण में बदल दिया और व्यक्तिगत स्तर पर वियतनाम और जापान ने इसे बेहतर बनाया। वियतनाम हनोई की अपनी यात्रा में सुषमा स्वराज ने एक ''एक्ट ईस्ट पॉलिसी''[6] की आवश्यकता पर जोर दिया है, जिसमें उन्होंने कहा है कि इस क्षेत्र में भारत के लिए अधिक सक्रिय भूमिका की आवश्यकता है जो भारत की दो दशक पुरानी ''लुक ईस्ट पॉलिसी'' को प्रतिस्थापित करना चाहिए।[7]

iMkslh izFke uhfr % मोदी सरकार द्वारा की गई प्रमुख नीतिगत पहलों में से एक दक्षिण एशिया में अपने निकटवर्ती पड़ोसियों पर ध्यान केंद्रित करना है। प्रधानमंत्री बनने से पहले ही नरेंद्र मोदी ने संकेत दिया कि उनकी विदेश नीति सक्रिय रूप से भारत के तत्काल पड़ोसियों के साथ संबंधों को सुधारने पर ध्यान केंद्रित करेगी जिसे ''पड़ोस पहलेः मीडिया में नीति''[8] कहा जा रहा है उन्होंने सभी राष्ट्राध्यक्षों, प्रमुखों को आमंत्रित करके इसकी अच्छी शुरुआत की। दक्षिण एशियाई देशों की नरेन्द्र मोदी सरकार ने अपने उद्घाटन और दूसरे दिन कार्यालय में देशों के राष्ट्राध्यक्षों एवं शासनाध्यक्षों ने सभी के साथ व्यक्तिगत रूप से द्विपक्षीय वार्ता की, जिसे मीडिया द्वारा मिनी सार्क सम्मेलन के रूप में करार दिया गया था।[9] बाद

में इसरो में एक लॉन्च कार्यक्रम के दौरान उन्होंने भारतीय वैज्ञानिकों से पूछा इस क्षेत्र में वर्तमान में संचालित भारतीय तकनीकी और आर्थिक सहयोग कार्यक्रम को पूर्ण करने के लिए दक्षिण एशिया के लोगों के साथ टेली मेडिसिन, ई–लर्निंग आदि जैसी प्रौद्योगिकी के परिणाम साझा करने के लिए एक समर्पित सार्क सैटेलाइट[10] विकसित करने का प्रयास करना चाहिए।

fgn egklkxj e foLrkj % हिंद महासागर क्षेत्र (आईओआर), जिसे लंबे समय से भारत का समुद्री क्षेत्र माना जाता है, तेजी से विवादास्पद में बदल रहा है, जो इस क्षेत्र की रणनीतिक रूप से स्थित कई द्वीपसमूह में बढ़ती चीनी रणनीतिक उपस्थिति के कारण उत्पन्न हुआ। राष्ट्रपति शिनपिंग द्वारा हाल ही में हिन्द महासागर क्षेत्र में उठाये गये कदमों के प्रतिक्रियास्वरूप भारत ने सिल्क रोड परियोजना के तहत अपने आर्थिक और सुरक्षा सहयोग के प्रस्तावों के साथ अपने समुद्री पड़ोसियों तक पहुंचना शुरू कर दिया।[11] हिन्दी महासागर क्षेत्र के प्रति नीति फरवरी 2015 की शुरुआत श्रीलंका के राष्ट्रपति की नई दिल्ली यात्रा के दौरान प्रकट हुई। मोदी ने मॉरीशस, सेशेल्स और श्रीलंका के लिए तीन देशों की यात्रा शुरू की, हालांकि मालदीव भी शुरू में इस पहल का हिस्सा था, लेकिन उस देश में हालिया राजनीतिक उथल–पुथल से निर्धारित यात्रा को अंतिम रूप से रद्द कर दिया गया।

मई 2015 में मोदी की बीजिंग की यात्रा के बाद, भारत ने परियोजना के लिए आईओआर पर एक रणनीतिक वर्चस्व कायम करने की इच्छा जताई थी और अपने समुद्री पड़ोसियों के साथ उसके संबंध चीन की तुलना में कहीं अधिक सौहार्दपूर्ण थे, विशेष रूप से दक्षिण चीन सागर के संदर्भ में।[12]

çkstDV eklle % हिंद महासागर क्षेत्र में बढ़ती चीनी नौसैनिक गतिविधि को देखते हुए[13] भारत ने इसे अपनी जिम्मेदारी का क्षेत्र माना है, मोदी प्रशासन ने प्रोजेक्ट मौसम[14] पेश किया है, जिसे चीनी समुद्री सिल्क रोड पहल के लिए माना जाता है।[15] मौसम का अर्थ है कि कई दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशियाई भाषाईं देशों में सांस्कृतिक एवं व्यापारिक आदान–प्रदान में गहन भूमिका उजागर होता है क्योंकि प्राचीन समय में समुद्री व्यापार मौसमी हवाओं पर निर्भर करता था। परियोजना अभी भी विकास के चरण में है, सांस्कृतिक मंत्रालय के साथ काम किया जा रहा है। यह परियोजना प्राचीन व्यापार और सांस्कृतिक संबंधों पर ध्यान केंद्रित करेगा और दक्षिण–पूर्व एशिया से पूर्वी अफ्रीका तक फैले हिंद महासागर क्षेत्र में भविष्य के समुद्री सहयोग पर जोर देगा। भारत का केंद्रीय स्थान, जहाँ से महासागर ने अपने नाम की व्युत्पत्ति की।[16]

ç'kkr }hi leg dk lkFk lg;kx % मोदी ने 8 साल बाद द्वीप देश में लोकतंत्र को फिर से स्थापित करने के बाद फिजी का दौरा करने का निश्चय किया। द्विपक्षीय बैठक के अलावा, उन्होंने इस क्षेत्र में भारत की व्यस्तता बढ़ाने के लिए 14 प्रशांत द्वीपीय राज्यों के राष्ट्राध्यक्षों, सरकार के प्रमुखों से मुलाकात की और 'फोरम फॉर इंडिया–पेसिफिक आइलैंड्स कोऑपरेशन' (FIPIC) का प्रस्ताव नियमित आधार पर रखा।[17] इस बात से अवगत कराया कि प्रशांत द्वीप देशों के साथ मिलकर काम करने की भारत की उत्सुकता इस दिशा में उनकी विकास प्राथमिकताओं को आगे बढ़ाने के लिए है। इस क्षेत्र में भारत की साझेदारी को मजबूत करने के लिए कई उपाय प्रस्तावित किए गए हैं जिनमें जलवायु परिवर्तन को बदलने के लिए '1 बिलियन डॉलर का विशेष कोष' स्थापित करना शामिल है। कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रम निम्नवत हैं। एक स्वच्छ ऊर्जा, भारत में 'व्यापार कार्यालय' की स्थापना, डिजिटल कनेक्टिविटी में सुधार करके द्वीपों के बीच भौतिक दूरी को बंद करने के लिए 'पान पैसिफिक आइलैंड्स ई–नेटवर्क' की स्थापना, सभी चौदह प्रशांत द्वीपों के लिए भारतीय हवाई अड्डों पर आगमन पर वीजा का विस्तार देशों, द्वीपों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी अनुप्रयोगों में अंतरिक्ष सहयोग', मटन को बढ़ाने के लिए प्रशांत द्वीप देशों से राजनयिकों को प्रशिक्षण'।[18] उन्होंने 2015 में अगले शिखर सम्मेलन के लिए भारत के किसी भी तटीय शहर में नेताओं की मेजबानी करने की इच्छा व्यक्त की। चीनी राष्ट्रपति शी का मोदी की यात्रा के 21 दिन बाद फिजी का दौरा करना काफी महत्वपूर्ण था। दक्षिण प्रशांत द्वीप के देशों में दो एशियाई दिग्गजों के बीच प्रभाव के लिए संघर्ष का संकेत देने वाले नेताओं की एक समान सभा को पूरा करने के लिए यह संवाद अत्यन्त प्रभावषाली था।[19]

QkLV&Vd fMIykel h % मोदी सरकार के पहले 100 दिन पूरे होने पर विदेश मंत्रालय ने ''फास्ट ट्रैक डिप्लोमेसी'' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की, जो विदेश नीति क्षेत्र में की गई उपलब्धि को दर्शाती है।

अपने पहले मीडिया संवाद कार्यक्रम में विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने कहा कि उनके कार्यकाल का सूल वाक्य ''फास्ट–ट्रैक डिप्लोमेसी'' था और उन्होंने कहा कि उनके तीन चेहरे थे – सक्रिय, मजबूत और संवेदनशील।[20] पद संभालने के बाद से विदेश मंत्री ने सभी के साथ गोलमेज बैठक की सार्क क्षेत्र, आसियान क्षेत्र और मध्य पूर्व के अभियानों के भारतीय प्रमुखों को हाई–प्रोफाइल यात्राओं और एक्सचेंजों द्वारा प्राप्त नेतृत्व को आगे बढ़ाने के लिए एक उपाय के रूप में अलग से प्रयोग किया।

i;jk fMIykeSlh % मोदी सरकार के नवीन विचारों में से एक भारत की विदेश नीति में पैरा डिप्लोमेसी के तत्वों का परिचय है, जहां प्रत्येक राज्य और शहरों को दूसरे देश या संघीय राज्यों के साथ विशेष संबंध बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग द्वारा किया गया टाउनटीनिंग समझौता मुंबई और शंघाई, अहमदाबाद और गुआंगझोउ की आगामी यात्रा के दौरान और गुजरात और चीन के गुआंगडोंग प्रांत के बीच इसी तरह के 'बहन राज्यों' समझौते पर हस्ताक्षर किए गये हैं।[21] इससे पहले वाराणसी ने क्योटो, जापान के साथ साझेदारी समझौते पर हस्ताक्षर किए।

vkradokn dk f[kykQ uhfr % आज के समय में वैश्विक आतंक के बदलते स्वरूप से किसी भी देश के नागरिकों की सुरक्षा के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय स्थिरता और समृद्धि को सीधा खतरा है। भारत के गृह मंत्रालय, भारत सरकार, हरियाणा सरकार और पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो के सहयोग से गुरुग्राम, हरियाणा में इंडिया फाउंडेशन द्वारा 4 वां काउंटर टेररिज्म कॉन्फ्रेंस (CTC) आयोजित किया गया था। भारत को आतंकवाद के राज्य–प्रायोजक के रूप में पाकिस्तान को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अलग–थलग करने के अपने प्रयासों में व्यापक सफलता मिली है। भारतीय विचार विदेशों में गूंजता नहीं है क्योंकि यह विशिष्ट राष्ट्रीय हितों के पालन के बजाय अस्पष्ट वैश्विक मानदंडों के सम्मान पर बहुत अधिक निर्भर करता है, जो विदेशी सरकारों द्वारा अधिक आसानी से समझे जाते हैं। नरेंद्र मोदी ने राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजीत डोभाल के मार्गदर्शन में, इस ऐतिहासिक कमी को ठीक करने के प्रयास शुरू किए हैं। हालांकि, इसे अकादमिक और पत्रकार टिप्पणीकारों के माध्यम से लॉन्च किए गए पाकिस्तानी डीप स्टेट पर एक बौद्धिक हमले का समर्थन करने की आवश्यकता है। अमेरिका, यूरोपीय संघ और यहां तक कि ब्रिक्स (बाद वाले समूह में चीन भी शामिल है) को पाकिस्तान स्थित आतंकवादी समूहों को अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा के लिए चिंता का विषय बनाने के लिए तैयार किया गया है जो भारत के लिए एक छोटी जीत का प्रतिनिधित्व करता है। वास्तविक लड़ाई हालांकि, कूटनीतिक नहीं बल्कि सैन्य है। जैसा कि प्रधान मंत्री मोदी और एनएसए डोभाल ने सितंबर 2016 में प्रदर्शित किया, भारतीय धैर्य की अपनी सीमाएं हैं। सर्जिकल स्ट्राइक से पता चलता है कि जब तक परमाणु युद्ध का खतरा दक्षिण एशिया, पश्चिमी शक्तियों पर भारी नहीं पड़ता है और तब तक सम्पूर्ण विश्व यहां तक कि चीन भी भारत–पाकिस्तान सीमा संघर्ष को एक अपरिहार्य वास्तविकता मानने के लिए तैयार नहीं है। इसने अंततः एक बड़ी भारतीय प्रतिक्रिया के लिए राजनीतिक स्थान बनाया है, कि क्या पाकिस्तानी डीप स्टेट को एक भारतीय शहर पर फिर से हमला करने के लिए जिहादियों का उपयोग करना चाहिए।

एक पुनरुत्थानवादी भारत एक ऐसी विदेश नीति की माँग करता है जो विश्व खिलाड़ी के लिए उपयुक्त हो। नेहरू के समय में भी राष्ट्रीय हित भारत की विदेश नीति का स्थायी सिद्धांत रहा है, जो विश्व शांति, आदर्श और राष्ट्रों के बीच परस्पर सम्मान के आदर्श से प्रेरित था। संचालन के अनुपात में हम वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ अपनी जगह लेने की प्रक्रिया में हैं और दुनिया की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था की स्थिति में पहुंचकर, हम उस सीढ़ी को ऊपर ले जाने के लिए तैयार हैं। अंतर्राष्ट्रीय मामलों में, इसका मतलब है कि पहले प्रतिक्रियाशील मानसिकता से एक भरोसेमंद व्यक्ति की ओर बढ़ना, यह पहचानना कि हमारे अपने कार्य इस भविष्य को आकार देने में कितना योगदान करते हैं। हमारी राज्य एजेंसियों को गहन अनुभूति चाहिए, और घर की जनता से अधिक समझ और समर्थन चाहिए। विदेशी आक्रामकता से राष्ट्रीय सीमाओं की क्षेत्रीय अखंडता और सुरक्षा एक राष्ट्र का मूल हित है। भारत ने लंबे संघर्ष के बाद विदेशी शासन से स्वतंत्रता प्राप्त की थी। इसलिए विदेश नीति की स्वतंत्रता पर उचित बल देना उसके लिए स्वाभाविक था। एक विकासशील देश के रूप में भारत ने सही रूप से महसूस किया कि अंतर्राष्ट्रीय शांति और विकास परस्पर अर्न्तसंबंधित हैं। निरस्त्रीकरण और सैन्य गठजोड़ से दूर रखने की नीति पर उनका जोर वैश्विक शांति को बढ़ावा देना है। आजादी के समय देश का तेजी से विकास भारत की मूलभूत आवश्यकता थी। देश में लोकतंत्र और स्वतंत्रता को मजबूत करने के लिए भी आवश्यक था कि दोनों

ध्रुवों से वित्तीय संसाधन और प्रौद्योगिकी हासिल की जाए और विकास पर अपनी ऊर्जा को केंद्रित करने के लिए भारत को शक्ति संघर्ष की राजनीति से दूर रखा जाय, जो शीत युद्ध की निर्णायक विशेषता थी। अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में भारत एक शांतिपूर्ण परिक्षेत्र चाहता है और अपने विस्तारित पड़ोस में अच्छे पड़ोसी संबंधों के लिए काम करता है। भारत की विदेश नीति यह भी मानती है कि जलवायु परिवर्तन, ऊर्जा और खाद्य सुरक्षा जैसे मुद्दे भारत के परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण हैं। चूंकि ये मुद्दे प्रकृति में वैश्विक हैं, इसलिए उन्हें वैश्विक समाधान की आवश्यकता है।

lUnHk %

1. असवस्थी (17 मई 2014)। ''विश्व के नेताओं, मीडिया ने नरेंद्र मोदी की प्रतिक्रिया के कारण भाजपा की चुनावी जीत का नेतृत्व किया''। वन इण्डिया इन। 23 जून 2014
2. कृष्णा उप्पुलुरी (25 मई 2014)। ''नरेंद्र मोदी का शपथ ग्रहण समारोह सार्क को जीवन का एक नया आयाम प्रदान करता है''। डेली न्यूज एण्ड एनालिसिस 15 जून 2014 को लिया गया।
3. ''पीएम शपथ ग्रहणः अमेरिकी मीडिया सभी सार्क नेताओं को आमंत्रित करने के लिए मोदी की प्रशंसा करता है''। फर्स्ट पोस्ट, 27 मई 2014. 5 अगस्त 2014
4. रवी कुमार पिल्लई कंदमथ द जर्नल ऑफ द रॉयल सोसाइटी फॉर एशियन अफेयर्स, विकल्पः भारत की विदेश नीति के निर्माण के अंदर, एशियाई मामले, 4 9 : 1, 151–154,
5. ''भारत की पूर्व की ओर देखो'' नीति के आधार पर वियतनाम। इंगलिष वियतनाम विन, वियतनाम समाचार एजेंसी, 18 नवंबर 2013.
6. ''मोदी सरकार ने भारत की पूर्व की ओर देखो नीति को अधिक बढ़ावा दिया,'' सुषमा स्वराज, फर्स्ट पोस्ट 2014–08–25 एवं 2014–09–10
7. ''सुषमा स्वराज ने भारतीय दूतों को एक्ट ईस्ट और लुक ईस्ट के बारे में बताया।'' द इकोनॉमिक टाइम्स, 26 अगस्त 2014
8. ''भारत, मोदी और पड़ोस'', 25 अगस्त 2014।
9. ''भारत के प्रधान मंत्री के दौरे से उत्साहित नेपाल, जो 'राइट नोट्स' हिट करता है'', न्यूयॉर्क टाइम्स, 7 जून 2014.
10. ''मिनी सार्क सम्मेलन'', द संडे टाइम्स (श्रीलंका), 1 जून 2014।
11. ''सार्क उपग्रह पड़ोसी के साथ संबंध मजबूत करने के लिए'', सेन्टर फार लैण्ड एण्ड वारफेस स्टडीज, 3 सितंबर 2014, ''द स्मॉल आइलैंड्स होल्डिंग कीज टू द इण्डियन ओषियन, दि डिप्लोमैट, 24 फरवरी 2015
12. ''भारतः विदेशी तटों में दलदल'' मिड डे, 3 मार्च 2015
13. ''महासागर कूटनीतिः चीन की समुद्री रेशम मार्ग की महत्वाकांक्षाओं से निपटने के लिए सिरिसेना का भारत की यात्रा महत्वपूर्ण है''। फर्स्ट पोस्ट 17 फरवरी 2015
14. ''भारतीय महासागरः मोदी का समुद्री तीर्थ – विश्लेषण''। यूरेशिया रिव्यू। 3 मार्च 2015 ''पीएम मोदी मालदीव की यात्रा रद्द करते हैंः क्या यह मालदीव मामले में यामीन सरकार के खंडन का कारण है?'' फर्स्ट पोस्ट 7 मार्च 2015
15. ''सरकार की हिंद महासागर में गति बढ़ी है'', द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 18 फरवरी 2015
16. ''हिंद महासागर के लिए एक सुरक्षा वास्तुकला का निर्माण'', दि डिप्लोमैट, 25 फरवरी 2015
17. ''नई दिल्ली हिंद महासागर देशों के साथ संबंधों का विस्तार करने के लिए'', डेक्कन हेराल्ड। 24 फरवरी 2015
18. ''श्रीलंका ने भारत को दरकिनार कर चीनी पनडुब्बी के लिए फिर से बंदरगाह खोला''। द इकोनॉमिक टाइम्स, 2 नवंबर 2014.
19. ''मौसमः समुद्री मार्ग और सांस्ंतिक परिश्य'', संस्ंति मंत्रालय (भारत)। 9 दिसंबर 2014 को लिया गया।
20. ''प्रोजेक्ट मौसम, भारत का चीन की समुद्री क्षमता का जवाब, समझा जा सकता है''। वन इण्डियन इन, 16 सितंबर 2014.
21. ''प्रोजेक्ट मौसमः भारत का चीन के 'समुद्री रेशम मार्ग' का उत्तर'', दि डिप्लोमैट, 18 सितंबर 2014।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 77-83

Ukkjh vkUnkyu dk bfrgkl

MkO fi;;dk jkuh*

स्वतंत्रता के बाद संविधान ने स्त्री समर्थन वाले अनेक प्रावधानों को पोषित किया है। तथा विभिन्न प्रकार के सरकारी प्रयासों के कारण आज की स्त्रियों की स्थिति में गुणात्मक सुधार हुआ है। बदलते हुए सामाजिक जीवन और बदलते जीवन मूल्यों के कारण रचनात्मक अभिव्यक्ति का अनुभव जगत भी बदल गया। लेखिकाओं ने स्त्री समस्या तथा स्त्री जीवन की जटिलताओं को सामाजिक व्यवस्था के कारण समाज में उनके निर्धारित स्थान को लेकर उठाये गये सवालों में जुझते सृजनात्मक साहित्य का परिचय दिया। महिला शक्ति को उजागर करने के लिए सबसे पहले मशहूर फ्रेंच लेखिका प्रभा खेतान ने 'स्त्री उपेक्षिता' के नाम से लिखकर हिन्दी साहित्य को मजबूती प्रदान की। स्त्री आन्दोलन की परम्परा में यह पुस्तक स्त्री आन्दोलन को अहम् भूमिका प्रदान करती है। स्त्री आन्दोलन की परम्परा में पश्चिमी लेखिकाओं का महत्तवपूर्ण योगदान रहा है जिसमें कैट मिलेट, बेट्टी फ्रायडन, मेरी स्टोन क्राफ्ट, जर्मेन गीअर, प्रमुख है।

स्त्री आन्दोलन एक ऐसा आन्दोलन है जिससे हर महत्वाकांक्षी युवती का आकर्षित हो जाना स्वाभाविक है। यह आन्दोलन स्त्री की प्रगति और मुक्ति का आन्दोलन है। स्त्री का उत्पीड़न हर समाज और हर युग का कटु यथार्थ है। स्त्री भी पुरूषों के समान अपनी प्रगति और मुक्ति चाहती थी। वास्तव में ऐसा कौन है? जो प्रगति और मुक्ति नहीं चाहता लेकिन प्रगति की दिशा क्या हो? मुक्ति किससे? पाश्चात्य समाज में स्त्री मुक्ति के आन्दोलन का एक विशेष स्वरूप रहा है। प्राचीन काल से शोषित स्त्री, प्रेयसी व पत्नी पहले है, माँ बाद में है और माँ के रूप में भी वह पूजनीय नहीं रही। पत्नी व प्रेयसी के रूप में भी पुरूष ने उसे एक भोग्या के रूप में देखा। दोनों रूपों में ही वह पुरूष को आकर्षित करने के लिए अपने शरीर को अत्याचार करके भी अपने शरीर को सजाती–संवारती है। देह साधन और देह भोग के इस अतिरेक के फलस्वरूप आयी सामाजिक विकृतियों के प्रति विद्रोह के रूप में और स्वतंत्र अस्तित्व की मान्यता के लिए पश्चिम में स्त्री आन्दोलन ने जन्म लिया।

पश्चिमी देशों में स्त्री आन्दोलन का एक लम्बा इतिहास रहा है–''सर्वप्रथम अठाहरवीं शताब्दी में मेरी वुलस्टोन क्राफ्ट ने इंग्लैण्ड में नारी अधिकारों के लिए आवाज उठायी थी और उसे कटु आलोचनाओं तथा अपमानजनक उक्तियों के वार झेलने पड़े थे। मेरी स्टोन क्राफ्ट ने स्त्रियों में जागृति लाने एवं उनके अधिकारों के लिए ''स्त्रियों के अधिकारों का औचित्य'' पुस्तक की रचना की। पुस्तक प्रकाशित होने के बाद ये अधिक दिन जीवित नहीं रही। परन्तु विपरीत परिस्थितियों में अदम्य साहस दिखाने के कारण आज भी उसे स्त्री मुक्ति आन्दोलन की पितामही कहा जाता है।[1]

1862 ई0 में तलाक की प्रथा खत्म कर दी गई। स्त्री का जीवन केवल परिवार तक ही सीमित माना गया। स्त्री की नैतिकता और प्रेम सम्बन्धी गुणों के कारण पुरूषों से आगे माना गया, किन्तु पुरूष कर्ता है और समाज में वह अधिक सक्रिय है जबकि स्त्री घर में पराश्रित। बाल्जाक के शब्दों में–''औरत की नियति और सम्पूर्ण महत्ता इस बात में निहित है कि वह पुरूष जहाँ चाहे, हांककर ले जा सकता है।''[2]

8 मार्च 1857 को न्यूयार्क की सडकों पर कपड़ा मिलो की कामगर स्त्रियों ने अधिक वेतन और काम के घंटे घटाने की मांग को लेकर एक असफल प्रदर्शन किया था, जिसे उस समय की ट्रेड यूनियनों ने भी पसंद नहीं किया। पर इसके तीन साल बाद ही कपड़ा मिलों की महिला–कर्मचारियों को अलग

*सहायक प्रोफेसर, हिन्दी, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिन्दकी, फतेहपुर

यूनियन बनानें में सफलता मिल गई थी और अब उस संघर्ष की याद में 8 मार्च के दिन सारे संसार में 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला संघर्ष दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

अंग्रेज स्त्रियों को काफी संघर्ष के बाद मतदान का अधिकार मिला क्योंकि उन्होंने प्रथम महायुद्ध में काफी सहयोग दिया था। फ्रांसीसी स्त्रियों को 1945 में मतदान का अधिकार मिल गया। अमेरिका में स्त्रियों को वोट डालने का अधिकार 1933 में मिला लेकिन इतालवी सरकार ने स्त्री को हमेशा दमित रखा। सोवियत रूस में स्त्री–मुक्ति आन्दोलन काफी जोरों से बढ़ा। पहले यह बौद्धिक छात्राओं से शुरू हुआ, उसने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तराल में और उसके बाद काफी क्रांतिकारी और हिंसक रूप पकड़ लिया। महान् नेता लेनिन ने स्त्री और मजदूर–वर्ग, दोनों की मुक्ति का आह्वान किया।

सन् 1865 में लूसी स्टोन ने स्त्री आन्दोलन शुरू किया। जर्मनी और फ्रांस में भी लगभग इसी समय आन्दोलन शुरू हुआ। इस तरह संघर्ष प्रारम्भ हो चुका था। स्त्रियों के अधिकारों की स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन तब आया जब संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार आयोग ने मानवीय अधिकारों का घोषणा–पत्र स्वीकार किया। इस घोषणा–पत्र के बाद संसार भर की स्त्रियों में नई आशा का संचार हुआ और वे अपनी भेदभावहीन वैधानिक स्थिति को सामाजिक स्थिति में बदलने के लिए कटिबद्ध हो गई। सरसरी तौर पर देखने में यह जरूर समझ में आता है कि स्त्री–मुक्ति आंदोलन का इतिहास पुरूषों ने लिखा है–''यह पुरूष की समस्या है कि वह स्त्री को समानाधिकार से वंचित रखना चाहता है। पुरूष ने सभ्यता के आदिकाल से अपनी शारीरिक शक्ति के कारण अपनी श्रेष्ठता स्थापित की। उसने जो धर्म बनाए, जिन मूल्यों को गढ़ा, जिन आचरणों को मान्यता दी, वे सब उसकी सुविधा के लिए थे। उसके इस एकछत्र राज्य को औरत ने पहले कभी चुनौती नहीं दी। कहीं–कहीं कुछ महिलाओं ने व्यक्ति के रूप में विरोध में आवाज उठाई। कुछ आन्दोलन भी हुए किन्तु पुरूष ने उतनी ही मांगे स्वीकारी जितनी वह देना चाहता था।''[3]

पश्चिम के स्त्री आन्दोलन में तत्कालीन स्त्री लेखन का गहरा प्रभाव पड़ा। सीमोन द बोउवार की 'द सैकेण्ड सेक्स' बेट्टी फ्राइडन की 'द फेमिनिन मिस्टिक' या 'नारी रहस्य' आदि पुस्तकों ने यह सिद्ध किया कि पुरूष प्रधान समाज ने मनोवैज्ञानिक दबाव डालकर स्त्रियों को वासना–पूर्ति का साधन बनने, माँ और गृहिणी तथा रमणी की भूमिकाएं स्वीकार करने के लिए विवश किया गया इस कारण स्त्रियों की मौलिक प्रतिभा कुंठित हुई।

आन्दोलन की अग्रणी संस्था 'नेशनल आर्गेनाइजेशन ऑफ वीमैन' (नाउ) की स्थापना 1966 में बेट्टी फ्राइडन ने ही की थी। अपनी पुस्तक में उन्होनें विचारोत्तेजक मुद्दे उठाये थे और उन पर आधारित आन्दोलन बुनियादी मानवीय अधिकारों को लेकर चला था कि स्त्रियों को अपने बारे में निर्णय लेने की जीवन पद्धति चुनने की स्वतंत्रता हो। आन्दोलन में उग्रवाद बढ़ने से दुखी होकर बेट्टी ने इसका नेतृत्व छोड़ दिया और उससे अपना हाथ खींच लिया। आन्दोलन में इस उग्रवाद का कारण थी बाद में आने वाली केट मिलेट की 'सैक्सुअल पालिटिक्स' और जर्मेन ग्रीअर की 'फीमेल यूनक' जैसी पुस्तकें। केट मिलेट ने पुरूष प्रधान समाज के उग्र विरोध के साथ यौन क्रांति का आह्वान किया और 'फ्री सेक्स' और लेस्बियन का समर्थन किया। जर्मेन ग्रीअर ने अपनी पुस्तक का प्रारम्भ नारी के शारीरिक सर्वेक्षण से करके अवयव सम्बंधी मिथकों को तोड़ने का प्रयास किया और कहा कि–''हमें क्रांति लानी है, कोई सुधारवादी आन्दोलन नहीं चलाना है।''[4]

जर्मेन ग्रीअर की यह पुस्तक स्त्रीवादी आन्दोलन के इतिहास में मील का पत्थर मानी जाती है। इतिहास, साहित्य, लोकधारणाओं से उदाहरण चुन–चुनकर लेखिका इसको स्त्री–विमर्श का एक अनूठा और समग्र दस्तावेज बना देती है। संयुक्त राष्ट्र संध की स्थापना के बाद ही एक गरिमामयी जीवन, जो मानवाधिकार का दूसरा नाम है कि चाह में स्त्री आन्दोलनों एवं अधिकारों को नई दिशा मिली। 10 दिसम्बर 1948 को मानवाधिकारों का नैतिक दस्तावेज अस्तित्व में आया। इस सार्वभौमिक घोषणा–पत्र में बिना लैंगिक भेदभाव के मानवाधिकार को सम्पूर्ण मानव जाति का अधिकार कहा गया।

प्रथम विश्व महिला सम्मेलन सैनफ्रांसिसको, न्यूयार्क, अमेरिका में आयोजित हुआ। इसमें यह घोषणा की गयी कि सभी स्त्रियाँ और पुरूष समान बनाये गये है, जिनमें जीवन, स्वतंत्रता एवं प्रसन्न रहने

के अधिकार शामिल हैं। 1945–62 के मध्य संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा स्त्री अधिकारों को विधिक मान्यता प्रदान करने का प्रयास और स्त्रियों की भूमिका रेखांकित करने हेतु 'कमीशन आन द स्टेट्स ऑफ वीमेन' का गठन किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया गया। स्त्री–विमर्श से सम्बन्धित इन पुस्तकों ने सारे अमेरिका में खलबली मचा दी और स्त्री आन्दोलन को पुरूष विरोधी उग्र मोर्चे में बदल दिया जिसने 'सोसाइटी फार कटिंग अपमैन' जैसी संस्थाओं को जन्म दिया। आन्दोलन के जोश में केट मिलेट को स्त्री मुक्ति आन्दोलन की माओत्सेतुंग कहा तो पुरूषों ने उसे पुरूषों को बधिया करने वाली संज्ञा दी। आन्दोलनकारी स्त्रियो ने मनोविश्लेषक सिग्मन फ्रायड, नेतृत्वशास्त्री लाइनर टाइगर, डी.एच. लॉरेन्स और नार्मन मेलर के साहित्य की कटु आलोचना की, टाइगर ने स्त्री आन्दोलन को पार्नोग्राफी पर आधारित एक कल्पना कह डाला। इस प्रकार अतिवाद, प्रतिक्रियावाद व फूहड सैक्सी मोर्चे पर यह आन्दोलन अपने मूल उद्देश्य से भटक गया अन्यथा आधुनिक संसार पर फ्रायडवाद के दुष्प्रभाव के विश्लेषण में एक सार्थक बहस की शुरूआत की गई थी। परस्पर विरोधी धाराणाओं से अलग फ्रेन्च वकील गिलेल हलीमी ने 'औरत का मुकदमा' नामक पुस्तक लिखकर स्त्री आन्दोलनकारी गुस्से नफरत और इसके विरोधी तर्कों की धारा को जैसे विवके की ओर मोडने का प्रयास किया। हलीमी का कहना था कि स्त्री, स्त्री को निचला दर्जा देने वाले प्रचलित मिथकों को तोड़े। स्वयं में विश्वास पैदा करे। यह आत्मविश्वास और जिम्मेदारी बौद्धिक उत्थान से ही संभव है, इससे वह कतराये नहीं। वास्तव में स्त्रियों की मुक्ति स्त्रियों से ही, स्वयं से ही संभव है। इसी भाव को आई डब्ल्यू–डब्ल्यू अपने गीत 'स्त्री की लड़ाई' में व्यक्त करते हैं–

**vkjr] vk vkjr viuh cfM;k r NkM
mB] viuk gd oly vkj gk tk r vktkn
, ek] chch] cVh] rj gkFkk e "kfDr vikj
nj ior dh pkVh ij QV jgk g mtkyk
vku oky fnu dk n vktknh] etcrh] dckuh
cyk jgh tx r>dk
mB tk jkg i fudy viuhA[5]

कुछ मध्यमवर्गीय स्त्रियों ने बड़ी लगन से स्त्री की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया। इनमें मदाम शेला तथा लुसिल देसमा के नाम प्रमुख है। इस समय स्त्री–मुक्ति आन्दोलन जोरों पर था, कई अल्पकालीन पत्रिकाएं भी निकली। पश्चिमी स्त्रियों का भी कोई अलग वर्ग स्थापित नहीं हो सका और आर्थिक रूप से उनका अस्तित्व परजीवी ही रहा। क्रांति के वक्त स्त्रियों को मिली स्वतंत्रता को पूर्ण स्वंतत्रता नहीं कहा जा सकता वह एक अराजक स्वतंत्रता थी। जैसे ही परिवार का पुनर्गठन शुरू हुआ। परिवार की संरचना में स्त्री को पुनः बंदी बना दिया गया। स्त्री स्वाधीनता की दृष्टि से फ्रांस दूसरे देशो से आगे था–''किन्तु दुर्भाग्यवश आधुनिक फ्रांसीसी महिलाओं की स्थिति पर सबसे बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण असर पड़ा को नेपोलियन का XXX उसने पितृसात्तामक समाज को सारे अधिकार दिये XXX लड़की और पत्नी नागरिक अधिकारों से वंचित रहने के कारण किसी की अभिभावक नहीं बन सकती थी। दूसरी ओर ब्रह्मचारिणी और अविवाहित स्त्री को पूर्ण नागरिक अधिकार प्राप्त थे। विवाहित स्त्री के लिए तो पति की आज्ञा ही सर्वोपरि थी। विवाहेत्तर सम्बन्ध कायम करने पर पति स्त्री को कमरें में बंदिनी बना सकता था, तलाक दे सकता था। यदि वह क्रोध में उसकी जान भी ले लेता तो कानून उसको माफ करता था।[6]

प्राचीनकाल से आज तक विश्व में जितने भी युद्ध हुए उसका एक दुर्भाग्यपूर्ण पहलू विजेता सैनिकों द्वारा विजित देश या क्षेत्र की स्त्रियों के साथ व्यक्तिगत सामूहिक बलात्कार भी है। पुराने जमाने में कुछ देशों की युद्ध नियमावली में इस अधिकार को सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। गुलाम स्त्रियाँ अपने मालिकों की सम्पत्ति समझी जाती थी और बेगार में काम लेने के लिए मालिको को गुलाम संतानो की जरूरत थी। ''प्लांटेशन कानूर के अनुसार, किसी दूसरे की गुलाम स्त्री से किसी अन्य गोरे मालिक द्वारा बलात्कार अपराध था, जबकि अपनी गुलाम स्त्री से जबरदस्ती संतान पैदा करना उनका मालिकाना

अधिकार था। मालिक की इच्छा का वे लोग जरा भी विरोध नहीं कर सकती थी, क्योंकि इनसे सहवास और बच्चे पैदा करना मालिकों का कानूनी अधिकार था। बच्चा पैदा कर सकने वाली स्त्रियाँ बच्चे पालने वाली स्त्रियाँ और इसके अयोग्य स्त्रियाँ यही मात्र उनका वर्गीकरण था। भरण पोषण की सुविधाएँ भी उन्हें इसी के अनुसार मिलती थी। उनकी खरीद–बिक्री का अधिकार भी मालिकों के पास था और विरोध का अर्थ था कोडों की मार, चाकू से गोदना या फिर गोली से उड़ा देना। सर्वप्रथम बेवल ने बलात्कार के इतिहास पर ध्यान दिया और 'वीमेन अंडर सोशालिज्म' में इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा : ''सत्ता और धन–सम्पत्ति के संघर्ष में पहले स्त्रियों के साथ बलात्कार करके उनके पुरूषों को झुकाया गया, फिर पराजित पुरूषों को गुलाम बनाया गया।'' ये सब विवरण देते हुए सुसन ब्राउन मिलर आश्चर्य व अफसोस जाहिर करती हैं–'' इससे स्पष्ट है कि प्राचीनकाल की स्त्रियों ने अपने साथ हुए बलात्कारों के विरूद्ध कोई आवाज नहीं उठाई। उन्हें न्याय मांगने का हक ही शायद दिया नहीं गया और मानवता के विरूद्ध इतने बड़े अपराध की उपेक्षा कर दी गई। स्त्री तब पुरूष की सम्पत्ति थी उसका अपमान उसके पुरूष का अपमान समझा जाता था। शायद इसीलिए पुरूष ही आवाज उठा सकता था, स्त्री नहीं।''[8]

दो देशों का आपसी युद्ध हुआ या दो व्यक्तियों का हमेशा शिकार स्त्री ही हुई है। अपना सर्वस्व त्याग करके भी स्त्री कभी पुरूष मित्र न बन सकी। क्योंकि पुरूष ने स्त्री को कभी इस लायक समझा ही नहीं कि वह उसे दासी या सम्पत्ति के अलावा उसे कुछ और समझ सकें। स्त्री का अस्तित्व केवल आधी दुनिया तक ही सिमटा नहीं है अपितु समूची दुनिया उसी के गर्भ में जन्मती और उसी के हाथों पोषित होती है उसमे प्रतिभा, कौशल, सौन्दर्य, शौर्य, बलिदान एवं तप–त्याग की कमी नहीं है फिर भी उसने अपना हक प्राप्त करने के लिए समाज से लड़ाई लड़ी। अपने अधिकारों के लिए लड़ाई लड़कर, कटु आलोचनाओं का अपमान झेलकर, अपने लेखन के माध्यम से पुरूष व स्त्री दोनो में जागृति लाने का प्रयास किया। अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए आन्दोलन किए और अपने आपको उन्होंने पुरूष क समान ही सिद्ध किया। कुछ विद्वानों के अनुसार स्त्री आन्दोलन की भारतीय परम्परा का स्त्रोत पश्चिमी आन्दोलन ही रहा है। एक तरफ तो स्त्रीवाद अपने पश्चिमी मूल के कारण विवादग्रस्त हुआ है और दूसरी तरफ राष्ट्रीय स्वंतत्रता और पहचान की उसकी विचारधारा रणनीति और परियोजना विशिष्ट किस्म की है। इस विशिष्टता के कारण यह भी मान लिया जाता है कि नारीवाद अराजक मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है। और इस विचारधारा से प्रभावित स्त्रियाँ पुरूषों से नफरत करने लगती है। जबकि ये सभी धारणाएं भ्रामक हैं।

भारतीय स्त्री का विरोध सदा संयत रहा है। उसने अपने अस्तित्व की पहचान, स्वतंत्रता की सुरक्षा और अधिकारों की मांग मर्यादित तरीके से की है। वही कभी उग्र एवं उच्छृंखल नहीं रही। ढाई हजार वर्ष पूर्व सामाजिक परम्परागत पाशों से मुक्त बौद्ध भिक्षुणी ने लिखा है–

**fdruh vkt kn g e
fdruh vuk[kh g vkt knh
rhu rPN oLr vk l e Dr
eDRk vk[kyh] e l y
vkj viu V<+ ekfyd l
iut Ue vkj eR; l e Dr g e
ft lu nck; j[kk Fkk e>
ok lc vc nj fQd p dk gA**[9]

महाभारत में कुन्ती, गांधारी, द्रौपदी जैसी स्त्रियाँ हैं जिन्होंने समाज की बनी बनायी लीक पर चलने से इंकार किया। द्रौपदी ने भरी सभा में चीरहरण के पश्चात् लज्जा के कारण अपना मुख नहीं छिपाया अपितु सभा में बैठे पितामह आदि पुरूषों को धिक्कारा। द्रौपदी ने महान पुरूषों को पाखण्डों पर प्रहार किया था। उसने कौरवों और पाण्डवों की नैतिकता को बेनकाब कर दिया था। पितामह भीष्म जब मृत्यु शैय्या पर नीति शिक्षा दे रहे थे–''तो व्यंग्य करते हुए द्रौपदी ने पूछा था कि जिन नीतियों के खिलाफ

जीवन भर चलते रहे, उन्हें आखिरी समय याद करने की क्या जरूरत है? अर्जुन की नाराजगी के बावजूद स्वयं भीष्म और कृष्ण ने उसकी सच्चाई को स्वीकार किया था।''[10]

मध्यकाल में मीरा, सहजोबाई, जनबाई, अक्क महादेवी, सुलेसनकवा गंगासती, रतनबाई, आतुकरी मौल्ला बहिनाबाई आदि स्त्रियाँ है जिन्होनें स्त्रियों के प्रति सामाजिक अवधारणाओं का विरोध किया। और संस्कृति की जकड़न से बेचैन स्त्री स्वर की मुखर अभिव्यक्ति मीराबाई को कविताओं में देखी जा सकती है। मीरबाई पहले एक भक्त है, लेकिन वे स्त्री मुक्ति की सशक्त पक्षधर भी हैं। उनकी मुक्ति की आकांक्षा जितनी आध्यात्मिक है उतनी ही सामाजिक भी है। मीराबाई भक्तिकाल की चर्चित कवयित्री है उन्होंने अपने जीवन में सम्बन्धों की कटुता को काफी नजदीक से देखा। प्रणय सम्बंधों का भी दंश झेला था। उस समय एक स्त्री के लिए प्रेम संबंधों पर लिखना एक कठिन कार्य था। उनक सामने भाव गत की चुनौतियाँ तथा कठिनाइयाँ थीं। मीराबाई भयावह धर्म के विरूद्ध खुला विरोध करती हैः–

**ykdykt dy dkfu txr dh] nb cgk; tjk ikuhA
viu ?kj dk ink dj yh] e vcyk ckjkuhA**[11]

चन्द्रबौती नामक स्त्री ने बंगला भाषा में रामायण की रचना की थी जिसमें सीता को बहुत ही स्वाभिमानी और राम को कमजोर पति तथा डरपोक बेटा कहा, सीताजी के साथ अन्याय हुआ तभी तो राजाराम के एक पत्नीनिष्ठ होने पर भी लड़कियाँ शिव जैसे पति की कामना करती हैं, शिव की उपासना करके, लेकिन राम जैसा पति पाकर सीता नहीं बनना चाहती। अठाहरवीं–उन्न्सवीं सदी में दुर्गावती, चाँदबीबी, रानी चेपम्मा, लक्ष्मीबाई, जीनत महल, अवंतिका बाई लोधी, ईस्वरी कुमारी, तेजाबाई आदि ऐसी स्त्रियाँ हैं जो रानियाँ थी, लेकिन आत्मसम्मान के लिए संघर्ष में कूद पड़ी इनके साथ हजारों, लाखों महिलाएँ वे हैं जिनके नाम इतिहास के पन्नों में तो दर्ज है, मगर जिन्हें हम कम जानते हैं।

नवजागरण की सुधारवादी लहर में बहुत स्त्रियाँ शामिल थी, सावित्री बाई फुले, पंडिता रमाबाई, राना डे इत्यादि। सन् 1848 में फुले दम्पति ने लड़कियों के लिए पहला स्कूल खोला। पंडिता रमाबाई ने सन् 1880 में एक दलित से विवाह किया तथा विधवाओं के लिए एक आश्रम खोला। रमाबाई ने हिन्दू धर्म की रूढ़ियों का कड़ा विरोध किया। नवजागरण काल में पुरूष स्त्री के अधिकारों की बात तो करते थे लेकिन वे उन्हें सीमित स्वतंत्रता देना चाहते थे।

आजादी की लड़ाई में भारत–भर की स्त्रियों ने चन्दा एकत्रित किया, भाषण दिए, लोगों को संगठित किया, भूमिगत कार्यवाहियों में सक्रिय रही और आत्म बलिदान दिया। मैडम भीकाजी ने सन् 1907 में जर्मनी में हुए अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में भारत का प्रथम राष्ट्रध्वज फहराया। नीनबाला, सरला देवी चौधरी, कल्पनादत्ता, उज्ज्वला मजूमदार, दुर्गा भाभी, सुशीला देवी आदि न जाने कितनी स्त्रियाँ थीं जिन्होंने अंग्रेजों के विरूद्ध खुलकर संघर्ष किया। सन् 1926 में 'अखिल भारतीय महिला संगठन' बना। सरोजनी नायडू स्त्री अधिकारों की प्रबल पक्षधर थी। कस्तूरबा गांधी, राजकुमारी अमृतकौर, कमला देवी चट्टोपाध्याय, अनुसूया साराभाई आदि ने भी स्त्रियों के उत्थान के लिए काम किया। अम्मन बाई ने हिन्दू–मुस्लिम एकता की बात जोर–शोर से कही। उनका कहना था कि हिन्दू–मुस्लिमों के आपस में विवाह होने चाहिए तभी साम्प्रदायिकता की समस्या सुलझ सकती है। सन् 1928–29 में शारदा बिल के समर्थन में बहुत सी स्त्रियाँ थी उन्होंने स्त्री सुधार सम्बन्धी मुद्दों को बड़ी सिद्दत से उठाया। सन् 1942 में मातांगिनी हाजरा को अंग्रेजों ने गोली से उड़ा दिया। आजादी ने बाद हिन्दू कोड बिल पारित होने पर हिन्दू समाज में बहुपत्नी प्रथा पर प्रतिबंध लगा। बाल–विवाह पर रोक लगाई गई, विवाह की न्यूनतम उम्र बढ़ा दी गई। सन् 1961 में दहेज लेने और दहेज देने पर रोक लगा दी गई।

आजादी के बाद स्त्रियों की स्थिति काफी बिगड़ गई, उनके लिए काम करने वाली संस्थाओं में एक ठहराव सा आ गया। लेकिन सत्तर के दशक में स्त्री मुद्दे फिर जोर मारने लगे। सामाजिक मुद्दों से स्त्रियाँ फिर से खुद को जोड़ने लगी। उत्तराखण्ड के ''चिपको आन्दोलन'' में भी स्त्रियों की अगुवाई से शुरू हुए।

सन् 1975 में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष से पूर्व '' स्टेट्स ऑफ वूमेन इन इण्डिया'' नाम रिर्पोट भी आ चुकी थी इस दौरान बहुत सी स्त्रीवादी संगठन बने।

बीसवीं शताब्दी को स्त्री जागरण का युग कहा जाता है। क्योंकि इसमें स्त्री अस्तित्व, स्वंतत्रता और गरिमा जैसे विषयों पर गम्भीर चिन्तन और विमर्श हुआ है। इक्कीसवीं सदी को स्त्रियों की सदी कहा जा सकता है। नई सदी का पहला वर्ष महिला सशक्तिकरण के रूप में मनाया गया। राजस्थान में यह वर्ष 'महिला सशक्तिकरण' के रूप में चर्चित रहा। स्त्री आन्दोलन को तब बल मिला जब स्त्री आन्दोलन और दलित आन्दोलन एक छतरी के नीचे आ गये। आज स्त्रियों के संगठित आन्दोलन हर दिशा में रहे हैं। अपने नागरिक अधिकारों के लिए वह लड़ रही है। राजकिशोर कहते हैं–''पिछले एक दशक से भारतीय स्त्री चुप नहीं है। वह न केवल सवाल उठा रही है, बल्कि जवाब भी ढूँढ़ रही है। महादेवी वर्मा, आशापूर्णा देवी, अमृता प्रीतम, मधु किश्वर, मणिमाला कात्यायनी आदि इस रचनात्मक बेचैनी के कुछ प्रतीक भर हैं।''[12]

स्त्री समाज और परिवार में सुरक्षित स्थिति के लिए रोजगार और आत्मनिर्भरता के लिए वे निरन्तर संघर्ष कर रही है। जिसके फलस्वरूप आज का शासन, राजनीति विज्ञान, शिक्षा कम्प्यूटर, समाज कल्याण, संस्कृति, उद्योग, व्यापार, नौकरियाँ ट्रेड यूनियन तक सभी जगह न केवल स्त्रियों की पहुँच है, अपितु वे महत्वपूर्ण और जिम्मेदारी पूर्ण पदों पर आसीन हैं। ''बह्म समाजियों और पादरियों में पर्दे का अधिक चाल न रहने के कारण स्त्रियाँ प्रायः शिक्षित होती हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कम से कम घर से विद्यालय तक जाने और अध्यापकों से पाठ लेने या उनके पास परीक्षा देने की स्वाधीनता की बड़ी जरूरत है। मेरी समझ में हिन्दू परिवार की कुल–वधुओं को ये दोनों अधिकार मिलना बहुत कठिन है।''[13]

उस समय का समाज स्त्री को चरित्र–सुरक्षा के नाम पर शिक्षा के रास्ते पर नहीं जाने देता था ऐसे में बंग महिला ने अशिक्षा से आक्रान्त स्त्रियों को जगाने की पुरजोर कोशिश की उन्होंने कहा–'' शिक्षित हो जाने से लज्जाहीन हो जाने का कोई कारण नहीं है। इस बात को उन्होंने तमाम पौराणिक आख्यानों और शास्त्रीय सन्दर्भों से सिद्ध किया।''[14]

भारत की गुलामी और स्त्रियों की गुलामी दो पृथक मुद्दे नहीं रहे। आजादी से पहले पुनर्जागरणकाल में ही चलाए गए सुधार–आंदोलनों के कारण राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के आह्वान पर भारत की शिक्षित–अशिक्षित हजारों–हजार स्त्रियों ने आजादी की लड़ाई में भाग लिया। उनकी यह लड़ाई पुरूषों के खिलाफ अपनी आजादी के लिए नहीं थी, पुरूषों के साथ मिलकर देश की आजादी के लिए थी। देश को आजाद कराने के बाद स्वाधीन भारत के विधान–निर्माण में भी विदुषी स्त्रियों की भागीदारी रही तो यह कैसे संभव था कि आजादी के बाद भारतीय संविधान में उन्हें समानधिकारों से वंचित रखा जाता। भारतीय गणतंत्र की स्थापना के साथ ही भारतीय स्त्रियों को इतिहास में एक लम्बे समय तक लड़ाई लड़नी पड़ी थी। कोई बड़े से बड़ा पद ऐसा नहीं है जो स्त्री को न दिया जा सके अथवा उसे अपनी योग्यता से स्वयं हासिल न कर सके। सवाल उठता है कि प्रतियोगिता में आगे बढ़ने के लिए रूकावट कहाँ है? स्पष्ट है कि बराबरी के वैधानिक अधिकार हमें प्राप्त हैं लेकिन समाज में उनका कार्यान्वयन अभी ठीक से नहीं हो पाया है। सामाजिक मान्यता उन्हें नहीं मिली है इसलिए पद, सुविधा से सम्पन्न मुट्ठीभर स्त्रियों को छोड़कर औसत स्त्रियों के साथ सामाजिक भेदभाव और सामाजिक अन्याय अभी बरकरार हैं। कानूनी अधिकारों को सामाजिक अधिकारों में बदलने में समय लगता है। कुचर्चाओं से मुक्ति। यही हमारा मुक्ति आन्दोलन हो, पश्चिम के किसी 'वीमेन लिब' की नकल नहीं।

यह एक कटु सत्य है कि स्त्री ही स्त्री के रास्ते का रोड़ा है, वह एक–दूसरी के प्रति ईर्ष्यालु हो अपनी प्रगति में रूकावट न डाले, अपना संकुचित दृष्टिकोण बदले और एक दूसरी को बांटे तो कोई कारण नहीं कि वह समाज में अपना सम्माननीय स्थान न बना सके। 'नीर भरी दुख की बदली' या 'अबला जीवन हायकृकृकृकृ' वाले पुरूष की शक्ति बनकर दिखाना होगा। औरत की आजादी के आन्दोलन को नाना प्रकार की प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ रहा है–''चिली, नामीबिया, पेरू, बांग्लादेश, केन्या, रूस, पूर्वी यूरोप के देशों, कैथोलिक चर्च और हिन्दू परम्परावादियों की नजर में नारीवाद अनैतिक आचरण का पर्याय है। पूर्वी यूरोप के वामपंथियों के अनुसार नारीवाद मात्र एक बुर्जुवा विचार है।''[15]

लेखिका सावित्री देवी ने भी स्त्रियों की स्वतंत्रता का सर्मथन करते हुए कहा–''हम लोगों को वैसी ही स्वतंत्रता मिलनी चाहिए जैसी कि प्रताप के समय में क्षत्राणियों को तथा पूर्व समय में ऋषि–पत्नियों तथा राजपुत्रियों या राजकुमारियों को मिलती थी, जो कि अपना कर्तव्यपालन भली–भाँति करती थी। याद रहे जब इसी प्रकार की स्वतंत्रता और ऐसी ही शिक्षा हमारी ललनाओं को मिलेगी तभी कुछ बातों का सुधार होगा।''[16]

अक्क महादेवी से लेकर मीरा, रजिया, सावित्रीबाई, राजेन्द्र बाला घोष, सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा इत्यादि अनेक महिलाएँ हुई हैं जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से न सिर्फ स्त्रियों में अपितु सम्पूर्ण समाज में जागृति लाने का प्रयास किया। तत्कालीन लेखन के प्रभाव से ही उन्होंने इस समझ को प्राप्त किया कि वे भी पुरूषों के समान शिक्षा प्राप्त कर सकती है, उनकी तरह स्वतंत्र जीवनयापन कर सकती हैं। आगे बढने की कुछ हिम्मत दिखाई तो पाश्चात्य देशों से प्रभावित होकर पुरूष समाज ने स्त्रियों का साथ दिया। संविधान द्वारा स्त्रियों को उनके अधिकार प्रदान किए गये और उन्हें भी पुरूषों के समान जीवन में आगे बढ़ने के अवसर मिले। स्त्रियाँ उच्च्य शिक्षा को प्राप्त कर पुरूषों के समान ही बड़े–बड़े पदों की शोभा बढ़ा रही है। स्त्रियाँ आज किसी भी क्षेत्र में पुरूष से कम नही हैं। कल्पना चावला के रूप में अन्तरिक्ष पर विजय प्राप्त की है तो बछेन्द्रीपाल, संतोष यादव के रूप में एवरेस्ट को फतह किया। सुर साम्राज्ञी लता के रूप में न सिर्फ भारतियों के अपितु विदेशियों के हृदय पर भी राज कर रही हैं तो फिर स्त्री पुरूष से कहाँ कम है? न तो आज स्त्री किसी भी क्षेत्र में पुरूष से कम हैं और न पहले स्त्री–पुरूष से कम थी। पहले भी गार्गी, मैत्रेयी जैसी अनेक विदुषी स्त्रियाँ हुई जिन्होंने पुरूष प्रधान समाज में अपनी विद्वता को मनवाया। स्त्रियों को आगे बढ़ने के लिए अपनी प्रतिभा को प्रकट करने के लिए अवसर और अनुकूल वातावरण मिले तो ये पुरूष से कहीं भी कम नहीं है। आगे बढ़ने के लिए अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए एक क्रान्ति की आग स्त्रियों के सीनें में जलनी चाहिए और दूसरी दुष्यन्त कुमार के शब्दों में कहे तों :–

**ej; lhu es u lgh] rj; lhu es lgh]
gk dgh Hkh vkx yfdu vkx tyuh pkfg,A**

lUnHk %

1. नारी शोषण : आइने और आयाम, आशा रानी ब्होरा, पृ0 205।
2. स्त्री उपेक्षिता : प्रभा खेतान, पृ0 66।
3. स्त्री उपेक्षिता : प्रभा खेतान पृ0 68।
4. विद्रोही स्त्री : जर्मेन ग्रीअर, अनुवादक मधुवी जोशी, पष0 285।
5. वही : पृ0–287।
6. स्त्री उपेक्षिता, प्रभा खेतान, पृ0–66।
7. नारी शोषण : आइने और आयाम, आशा रानी ब्होरा, पृ0 193–194।
8. वही, पृ0–193।
9. स्त्रीत्ववादी विमर्श : समाज और साहित्य, क्षमा शर्मा, पृ0–117।
10. स्त्री मुक्ति के सपने की हकीकत, अच्यूतानंद मिश्र (लेख) पृ0–408।
11. नयी सहस्त्राब्दी में स्त्री–विमर्श के विविध आयाम, स्मषतिका पृ0–09।
12. स्त्री–पुरूष : कुछ पुनर्विचार, राजकिशोर, पृ0–09।
13. नारी मुक्ति का संधर्ष, अवदेय पाण्डेय, पृ0–19।
14. वही, पृ0–10।
15. उपनिवेश में स्त्री : प्रभा खेतान, पृ0–10।
16. नारी मुक्ति का संघर्ष : अवदेय पाण्डेय, पृ0–13।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 84-88

dQu % xkeh.k Hkkjrh; L=h d\ ^lk'ky&lokboy* dk loky ck;k cf/k;k dh i\lo&ihMk

MkW0 foU/;kpy ;kno*

सपाट तौर पर 'कफन' एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की कहानी है जो श्रम के प्रति आदमी में हतोत्साह पैदा करती व्यवस्था है क्योंकि वहाँ उस श्रम की सार्थकता या उसका फल अनुपलब्ध रहता है। क्या इसी मोड़ पर 'कफन' कहानी 'पूस की रात' कहानी का अग्रिम पड़ाव नजर नहीं आती ? यह काम के प्रति हतोत्साह हल्कू के यहाँ उभर चुका है, रही–सही कसर घीसू–माधव की कामचोरी और निकम्मेपन से पूरी हो जाती है। लक्ष्य करने वाली बात यह है कि 'पूस की रात' में भी हल्कू की शिथिलता और उभरती अकर्मण्यता के बीच घर–गृहस्थी का फिक्र लिए उसकी पत्नी मुन्नी इस बात के लिए चिंतित हो उठती है कि ''लगता है अब मजदूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।'' (गौरतलब है प्रेमचंद के यहाँ किसान से मजदूर बनने की प्रक्रिया 'मरजाद' विरुद्ध एवं त्रासदी की तरह रही है। गोदान का होरी इसका सबूत है।) और यहाँ 'कफन' में भी माधव–घीसू की परजीविता व निकम्मेपन का बोझ वही गृहस्थ भारतीय स्त्री बुधिया उठाती है। मुन्नी और बुधिया उन तमाम ग्रामीण भारतीय स्त्रियों का 'टाइप' हैं जो पुरुष प्रधान सामन्ती समाज का हर सितम सहकर गृहस्थी में खुद को खपा देती हैं, और फिर भी उनका सामाजिक–आर्थिक योगदान गिनती के लायक कभी नहीं समझा गया है।

'कफन' कहानी को बुधिया की प्रसव–पीड़ा के परिप्रेक्ष्य से पढ़ा जाना या तो अभी बाकी है या अत्यन्त क्षीण। यह प्रसव–पीड़ा पुरुष प्रधान सामन्ती सामाजिक संरचना में अपनी ग्राहस्थिक व सामाजिक भूमिका की नींव में कंकण–पत्थर की तरह चिनी जाती हुई ग्रामीण स्त्री की जद्दोजहद का हृदय–विदारक बयान है। यह कहानी सामन्तवादी–महाजनी सभ्यता और पुरुषवादी वर्चस्व के दोहरे पाटों के बीच पिसती ग्रामीण भारतीय स्त्री की संघर्षपूर्ण निर्मम 'ट्रैजडी' है। इसी 'ट्रैजडी' का शिकार होती है बुधिया, आखिरकार बुझ चुके अलाव की तरह बुझ जाती है, ठण्डी पड़ जाती है, पथरा जाती हैं उसकी आँखें, आँखों के साथ सपने और सम्भावना पेट में मर जाती है। इस कहानी को अब तक या तो जमींदार, साहूकार और महाजनी सभ्यता के शोषण, उत्पीड़न व तिरस्कार से पैदा हुए एक ऐसे वर्ग की कहानी के तौर पर पढ़ा गया जिसका श्रम संघर्ष से कुछ हासिल कर सकने का भरोसा टूट चुका है, जो निट्ठलेपन, कामचोरी, परजीविता या हठध ार्मिता को ही व्यवस्था–विरोध का एक ढंग मान कर जिये जा रहा है। दूसरा पाठ इस कहानी को चमारों या दलित जातियों की गरीबी और उनकी संवेदनशीलता का मखौल उड़ाता हुआ पाता है, तो वहीं कुछ आलोचक इसे ब्राह्मणवाद या सवर्णवाद के खिलाफ लिखी कहानी के तौर पर पढ़ने की अपील करते पाये जाते हैं। मधुरेश ने माधव–घीसू की संवेदनहीनता, मूल्यहीनता व आत्मीयता में गिरावट को पूँजीवादी व्यवस्था के प्रगाढ़ होते प्रभाव के तौर पर व्याख्यायित करने की कोशिश की है तो शिवकुमार मिश्र ने साफ कहा है कि –''माधो–घीसू दलित वर्ग के टाइप नहीं, परजीविता के टाइप हैं, ये परजीवी किसी भी वर्ग से हो सकते हैं।'' कुछ लोगों ने इसे घनघोर यर्थाथवादी कहानी माना है, कुछ ने इस कहानी को प्रेमचंद का काल्पनिकतापूर्ण गल्प कहा है और इसके यथार्थवाद को यूटोपियाई माना है। इन्द्रनाथ मदान ने कहा है कि ''कहानी जिस सत्य को उजागर करती है वह जीवन के तथ्य से मेल नहीं खाता।'' डॉ0 धर्मवीर जैसे दलित चिंतक ने प्रेमचंद को 'सामन्तों का मुंशी' तक कह डाला, जिसकी पृष्ठभूमि में इस कहानी के भी संदर्भ हैं। तो वहीं डॉ0 बच्चन सिंह ने 'कफन' को आधुनिकताबोध की पहली कहानी माना है और इसकी व्याख्या

*असि0 प्रोफेसर, हिन्दी, श्रीमती इन्दिरा गांधी राजकीय पी0जी0 कालेज, लालगंज, मीरजापुर

अनगिनत माधव–घीसूओं की जिन्दगी के 'डी–ह्यूमनाइज्ड' तथा व्यर्थताबोध की चरम परिणति के रुप में किया है, और इस 'डी–ह्यूमनाइजेशन' का कारण उन्होंने प्रेमचंद की तरह ही महाजनी सभ्यता को माना है।

सच पूछिए तो इस 'डी–ह्यूमनाइजेशन' का कारण अकेले महाजनी सभ्यता या पूँजीवादी दबाव नहीं रहा है, सामन्ती सामाजिक संरचना भी इसके लिए बराबर जिम्मेदार है जिसमें पुरुष और उच्चवर्णीयता का वर्चस्व रहा है। स्त्री और दलित समाजव्यवस्था के सबसे घृणित निचले स्तर पर रहे हैं। यहाँ आकर हम कह सकते हैं कि माधव–घीसू के वर्ग के 'डी–ह्यूमनाइजेशन' (जो उनका चुनाव नहीं था, बल्कि निर्मम समाजव्यवस्था के 'एल्युमिनेशन' का मजबूर परिणाम था) का सारा बोझ, सारा दर्द अन्ततः स्त्री बुधिया को सहना पड़ा। एक बात यह जोड़ना पड़ेगा जो प्रेमचंद से भी छूट गई और बच्चन सिंह से भी छूटी है कि 'महाजनी सभ्यता' ने एक ओर जहाँ माधव–घीसू के टाइप वर्ग को 'डी–ह्यूमनाइज्ड' किया वहीं, सामन्तवादी समाज व्यवस्था के ब्राह्मणवादी व पुरुषवादी तत्वों ने माधव–घीसू में यह भावना संस्कारबद्ध की है कि महज 'पुरुष' होने के नाते ही वे बुधिया के भगवान हैं, श्रेष्ठ हैं, सम्राट हैं, और बुधिया उनकी सेविका बनकर पैदा ही हुई है, उसका दर्द, उसकी वेदना सबके प्रति उदासीन होने का हक है उन्हें। बुधिया पिसाई करके, घास छील कर इनका 'दोजख भरती' है और ये इतने बेगैरत व कृतघ्न हैं कि– ''मरना है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती''– जैसी बात कहते हैं। ऐसी जघन्य कृतघ्नता महज गरीबी या महाजनी सभ्यता के दबाव में नहीं उग सकती, इसके पीछे सदियों से स्त्री के प्रति दोयम दृष्टि रखने वाली ब्राह्मणवादी सामंती समाज व्यवस्था के प्रदत्त संस्कार भी घनघोर रुप से हैं। यह यूँ ही नहीं है कि पूरी कहानी में माधो–घीसू की अमानवीयता केवल स्त्री के प्रति ही मुखर होती पायी गयी है। और वो भी अपनी परिवार की स्त्री के प्रति। क्योंकि हिन्दू भारतीय समाज में विवाह परम्परा स्त्री की गुलामी का सबसे मजबूत आधार रचती है जिसमें पति का स्वामी और परमेश्वर का दर्जा सामाजिक रुप से वैध कर दिया जाता है और पुरुष दम्भ स्त्री रुपी सबसे नरम चारे का शिकार बड़े सुविधाजनक व सामाजिक वैधता के साथ करता है।

'कफन' कहानी इस बद्धमूल मानसिकता के खिलाफ है कि उत्पादन एवं आर्थिक संरचना में स्त्री की भूमिका नगण्य या कमजोर है। वह पुरुषों पर परजीवी है। यहाँ तो बल्कि उल्टी स्थिति है– माधव–घीसू परजीवी हैं बुधिया पर। खेती–किसानी में मेहनत–मजदूरी से लेकर शिल्पकारी और सारी सामाजिक–सांस्कृतिक पेशेवर क्रियाओं–में धोबी–नाई–कोइरी–कोहार–खटीक–अहीर–धरिकार इत्यादि जातियों की महिलाएँ कपड़ा धोने, पानी भरने, मिट्‌टी के बर्तन बनाने, बाँस की तमाम शिल्पकारी की कठोर मेहनतकश प्रक्रिया के अलावा जन्म–मरण, शादी–विवाह, कथा–पूजा जैसे समस्त परम्परागत गतिविधियों में गंभीर व अलग से रेखांकित की जा सकने वाली भूमिका निभाती हैं। ये वे औरतें हैं जो इन सारे कामों के अलावा रोजमर्रा के घरेलू कामों जैसे साफ–सफाई, कुटाई–पिसाई, निराई–गुड़ाई–सिंचाई–रोपनी–कटाई–मड़ाई, पशुओं की सानी–पानी, कोयर–गोबर के साथ–साथ बूढ़–पुरनिया, गदेला–गदेली–सब कुछ को सम्हालते–सम्हालते खुद को पहचानना भूल चुकी होती हैं, यही उनका जीवन है जहाँ कभी भोर नहीं। जो यह प्रश्न उठाते हैं कि आर्थिक संरचना में स्त्री की कमजोर भूमिका की वजह से उसका शोषण है, उसको यह कहानी खारिज करती है और प्रतिप्रश्न करती है, कि विशेषकर निचली जातियों–वर्गों व सामाजिक श्रेणियों की स्त्रियों–का उत्पादन की पूरी प्रक्रिया में भागीदार होने के बावजूद शोषण क्यों ? यहाँ तक कि नौकरी–पेशा और कमाने वाली मध्यवर्गीय व उच्चवर्णीय महिलाओं तक की स्थिति इस मर्दवादी समाज व्यवस्था में कुछ खास अच्छी नहीं है। उसके शोषण के मुद्‌दे और रुप भिन्न भले हो गये हों, पर वह बदस्तूर जारी हैं। इसका जवाब सिर्फ आर्थिक संरचना में नहीं ढूढ़ा जा सकता। 'कफन' कहानी यह निर्देश करती है कि इस शोषण का जवाब सामाजिक श्रेणियों और संरचना में पुरुष वर्चस्व के भीतर निहित है। उसके सामंती श्रेष्ठताबोध में निहित है। जब माधव चिढ़कर कहता है कि– ''मरना है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती !'' तो यह चिढ़ बुधिया से छुटकारा पाने के लिए नहीं, वे तो उसका जिन्दा रहना पसन्द करते प्यार के कारण नहीं, अपितु वह उनकी सुविधाजीविता एवं परजीविता का आधार थी इसलिए, ये जो चिढ़ है एक खास पुरुषवादी मानसिकता है जिसमें अपने बाप आदि के सामने अक्सर ग्रामीण युवक यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि वह मर्द हैं उसे अपनी पत्नी से बहुत लगाव नहीं, वह एक पुरुषोचित बेपरवाही दिखाता है जिससे उस तथाकथित समाज

में उसे 'जोरु के गुलाम' का दर्जा न मिले। हमने इस ग्रामीण सामाजिक संरचना में यहाँ तक देखा है कि आड़ में पति अपनी स्त्री के तलवे चाटता हो, खुशामद करता हो और नाम में 'हो' लगाकर बुलाता हो, लेकिन सबके सामने अपने मर्दवाद को उच्च करके दिखाता है और पत्नी के नाम से अनिवार्यतः 'रे' प्रत्यय लगाकर ही उसको पुकारता है, बल्कि एकाध गालियों का विशेषण उसके पौरुष व सामाजिक सम्मान को और दीप्त कर देता है। इसके बाद माधव के डायलॉग की एक पंक्ति आती है – ''तो मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ–पाँव पटकना नहीं देखा जाता!'' यह शुद्ध भावनात्मक बहानेबाजी है जिसमें पुरुष 'इमोशन' के नाम पर अपनी जिम्मेदारियों से भागता है। यदि कोई यह प्रश्न उठाये कि बुधिया के पेट में जो बच्चा था क्या वह माधव के प्रेम का सबूत नहीं है ? तब यह कहना पड़ेगा निश्चित रुप से हैं, किन्तु इसमें यौवन की उमंग और दैहिक आकर्षण के आवेश की क्षणिकता अधिक होती है, रिश्तों के प्रति गंभीर उत्तरदायित्व की चेतना नगण्य! गाँवो में ऐसे सात–सात बच्चों के अनगिनत पिता आज भी मिलते हैं जो अपनी स्त्री को रोज मारते–पीटते हैं, शराब पीकर बिस्तर पर उल्टियाँ करते हैं, पेशाब करते हैं जिसे पत्नी रोज सुबह धोती है उन्हें पत्नी–बच्चों की कोई परवाह नहीं, फिर भी बच्चे होने बंद नहीं होते, यह भी स्त्री पर एक किस्म का अत्याचार ही है जिस पर अक्सर कोई बातचीत नहीं हो पाती।

ज्यादातर देखा गया है कि इस तरह की समाजव्यवस्था में पुरुष आरामतलब ठाट–बाट–पंसद होकर अड़ीबाजी, ताश–अखबार में भिड़े रहते हैं जबकि स्त्रियाँ पुरुषों से पहले जागकर उनसे बाद में सोने के बीच गृहणी की जिम्मेदारियों के अलावा पशुओं के लिए पुआल–बाजरा बालने, घास काटने, गन्ना छीलने, गोबर फेंकने से लेकर निराई–गुड़ाई–सिंचाई तक के काम रोज निपटाती हैं फिर भी ये नाकारा पुरुष इन महिलाओं के प्रति हिंसक व सामन्ती मर्दवादी व्यवहारों से नहीं हिचकते। उन्हें अपनी मिल्कियत समझने की भारी समस्या है जो बुधिया के सम्बन्ध में भी जस का तस सच है। यह भी कि किसान–मजदूर ग्रामीण स्त्रियाँ पुरुषों की तुलना में अधिक जुझारु हैं, परिवार के प्रति अधिक जिम्मेदार व संवेदनशील भी हैं और भी सच है कि ग्रामीण समाजों में आज भी अशिक्षा और घनघोर आर्थिक अभावों के बीच सामंती मानसिकता अधिक प्रचुर है। यहाँ उस सवाल का जवाब मिलता है कि घीसू–माधव के भीतर जो 'डी–ह्यूमनाइजेशन' की प्रवृत्ति पैदा होती है उसका कारण वास्तव में क्या है। यह केवल पूँजीवादी महाजनी सभ्यता का दबाव नहीं हैं बल्कि घनघोर अशिक्षा और अज्ञानता तथा अभावग्रस्ता व गरीबी के कारण किये जा सकने वाले कार्य विकल्पों की नाजानकारी भी इस प्रकार की दिखाई पड़ने वाली संवेदनहीनता का कारण हैं। असल में जब माधव कहता है कि ये कफन के पैसे अगर पहले मिलते तो कुछ दवा–दारु कर लेते। तब यह प्रकट होता है कि सारे निकम्मेपन व बहानेबाजी के बावजूद संसाधनों की मौजूदगी में वे कुछ न कुछ तो जरुर करते। आज के ग्रामीण समाजों में यह देखा जा रहा है कि अपनी अशिक्षा और अभावग्रस्तता में किसान–मजदूर वर्ग के लोग अपनी सारी भावुक हाय–हाय के बावजूद संकट परिस्थितियों में कुछ 'ठोस एक्शन' नहीं ले पाते क्योंकि उन्हें ठीक से जानकारी नहीं है और संसाधन नहीं हैं, और पुनः उनकी सामन्ती–धार्मिक आस्थावादी मानसिक बनावट जिसमें सबकुछ भगवान पर छोड़कर बड़े इत्मीनान से तटस्थ होने की प्रवृत्ति पायी जाती है; और फिर वे सारी प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ेगी जो घीसू–माधव के यहाँ प्रकट होती हैं जैसे अपनी संवेदनशीलता का प्रचार, 'विक्टिम' की महानता के गान, पूरी समस्या से खुद को काटकर नींद और शराब, फिर एक ढर्रे की जिन्दगी जैसे कुछ खास हुआ ही न हो या जो हुआ उसमें वे कर ही क्या सकते थे की बेपरवाही। इस लेख के लेखक का यह व्यक्तिगत अध्ययन है कि यदि शिक्षा हो, जानकारी हो कि क्या किया जा सकता है अमुक परिस्थिति में, और संसाधन हों तो ग्रामीण इतने संवेदनहीन न हों, इन चीजों के अभाव में एक खास मनोवृत्ति पैदा होती है और फिर खुद को स्वयं ही समझा लेने व 'क्लीन चिट' देने की एक 'डिफेन्सिव मनोवृत्ति' अपने इर्द–गिर्द आदमी बुन लेता है। ऐसा लगता है कि संवेदनशीलता का ज्ञान और संसाधन उपलब्धता से धनात्मक सम्बन्ध है। अज्ञानता और गरीबी खोखली भावुकता को ठोस संवेदनशीलता में परिणत नहीं होने देती। माधव–घीसू के वैसा बनने में इन चीजों का भी हाथ निश्चित रुप से रहा होगा जिसे प्रेमचंद कहानी में दर्ज नहीं कर सके हैं। वे माधव–घीसू की अमानवीयता का कारण सीधे तौर पर जमींदारी व महाजनी व्यवस्था को मानते हैं :

^^ftl lekt e jkr fnu egur dju okyk dh gkyr mudh gkyr l dN cgr vPNh u Fkh] vkj fdlkuk d e|dkcy e o ykx] tk fdlkuk dh nc|yrkvk l ykHk mBkuk tkur Fk] dgh T;knk lEiUu Fk] ogk bl rjg dh eukofRr dk ink gk tkuk dkbZ vpjt dh ckr u FkhA**

एक गौर करने वाली बात यह है कि प्रेमचंद माधव–घीसू को निहायत चतुर व दुनियांदारी की गंभीर समझ वाले किरदार की तरह कहानी में चित्रित करते है। वे अशिक्षित होंगे पर मूर्ख नहीं –

''हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान था और किसानों के विचारशून्य समाज में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था। हाँ, उसमें यह शक्ति न थी कि बैठकबाजों की नीति और नियम का पालन करता। इसीलिए जहाँ उसकी मण्डली के और लोग गाँव के सरगना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गॉव ऊँगली उठाता था। फिर भी उसको यह तस्कीन तो थी ही कि अगर वह फटे हाल है तो कम से कम उसे किसानों की सी जी–तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फायदा तो नहीं उठाते।''

उसकी इस समझदारी के बाद भी बुधिया के प्रति उपेक्षा और संवेदनहीनता एक बड़ा सवाल छोड़ती है। जिसका जवाब ऊपर लेख में माधव–घीसू की अशिक्षा, अभावग्रस्तता, सामन्ती समाज व्यवस्था में पुरुष वर्चस्व तथा महाजनी सभ्यता के आर्थिक संदर्भों में ढूँढ़ने की कोशिश की गयी है।

इतना तो तय है कि इतनी समझदारी और नेतागिरी करने वालों के बीच बैठकबाजी करने के कारण उनमें अपना आर्थिक शोषण करने वाली ताकतों व व्यवस्था के खिलाफ एक 'डिनाई–स्टैण्ड' तो है, लेकिन इसमें स्त्री के प्रति उनकी गैर जिम्मेदाराना सोंच व व्यवहार का अन्तर्विरोध बराबर मौजूद रहता है। व्यवस्था–विरोध की उनकी खास–विधि और स्त्री के प्रति असंवेदनशीलता का दोहरापन हमें हमेशा खटकना चाहिए। जबकि कहानी में प्रेमचंद स्त्री के प्रति अमानवीय उपेक्षा को असल में उस व्यवस्था विरोध की प्रक्रिया में ही देखते हैं जो ठीक नहीं, जैसे माधो–घीसू के व्यवस्था–विरोध के दायरे में जमींदार–महाजन–साहूकार आदि के क्रम में बुधिया भी आती हो। निश्चय ही उनके निकम्मेपन में जमींदार और बुधिया के वर्ग के बीच एक 'डिस्क्रीमीनेशन' होना ही चाहिए था। यदि माधव–घीसू महाजनी सभ्यता के शोषण से उपजे वर्ग थे तो क्या बुधिया या मुन्नी उस यातनाकारी व्यवस्था के दंश से मुक्त थीं तब फिर भी उनमें मनुष्यता क्यों बची रह जाती है ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस प्रश्न से टकरायें तथा कुछ और प्रश्न इनके साथ नत्थी करें उससे पहले कहानी में आये उन त्रासद विडम्बनापूर्ण दृश्यों की ओर एक दृष्टिपात कर लेते हैं जहाँ एक ओर बुधिया की अपार वेदना व संघर्ष है और दूसरी ओर गेडुलियाँ मारे अजगर की तरह माधव और घीसू नींद में पड़े हैं :

''झोंपड़े के द्वारा पर बाप–बेटे दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने
चुपचाप बैठे हुए हैं और अन्दर बेटे की जवान बीवी बुधिया प्रसव–वेदना
से पछाड़ खा रही थी।''

''जब से यह औरत आयी थी, उसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव
डाली थी और इन दोनों बेगैरतों का दोजख भरती थी। जब से वह
आई, यह दोनों और भी आराम–तलब हो गये थे, बल्कि कुछ अकड़ने भी
लगे थे। ....
वह औरत आज प्रसव–वेदना से मर रही थी और यह दोनों
शायद इसी इन्तजार में थे कि वह मर जय तो आराम से सोयें।
आलू खाकर दोनों ने पानी पिया और वहीं अलाव के सामने अपनी
धोतियाँ ओढ़कर पॉव पेट में डाले सो रहे। जैसे दो बड़े–बड़े अजगर
गेंडुलियाँ मारे पड़े हों।
और बुधिया अभी तक कराह रही थी।''

इस पूरे परिदृश्य में उपर्युक्त सवालों को रखकर देखें तो उन सवालों से कुछ और सवालों के कल्ले फूटते हैं। सवाल यह है कि ऐसे बेगैरतों का दोजख वह क्यों भरती रही, हर अपमान–यातना सहकर,

और चुपचाप। उनकी आरामतलबी और परजीविता के खिलाफ बुधिया बोली क्यों नहीं ? क्यों बुधिया और उसका पूरा वर्ग अपनी जिंदगी की आखिरी कराह तक अपना परिवार बचान की जद्दोजहद में खप जाता रहा है? जहाँ उसकी किसी प्रकार की अस्मिता को कभी कोई आकार नहीं मिल पाता, संभवतः वह (अस्मिता की चाह) उनकी कोख में मरे हुए बच्चे की तरह खत्म हो जाती है।

इन सवालों के जवाब का एक सूत्र प्रेमचंद के ऊपर उद्धृत कथनों में ही ढूँढ़ा जा सकता है। जरा 'दो बड़े–बड़े अजगर गेडुलियाँ मारे पड़े हों, को 'और बुधिया अभी तक कराह रही थी' के साथ जोड़कर पढ़े, तो अजगर की गेडुलियों में किसी के हक को दबोचने–दबाने की ध्वनि साफतौर पर सुनी जा सकेगी और जिसका हक–अस्मिता दबायी गई उसकी 'कराह' आप भीतर तक हलकती सिहरन की तरह अनुभूत कर सकते हैं। बात साफ है कि माधव–घीसू का वर्ग महाजनी व सामन्ती व्यवस्था के तले लाख दबे होने के बावजूद बुधिया के पूरे वर्ग को यानी अपढ़–गँवार भारतीय स्त्री को आज तक अपनी पुरुषवादी अजगरी गेडुलियों में कसकर दबोचे है, जहाँ से कराह और सिसकियाँ तो सदियों से उठती रही हैं लेकिन उनको सुनकर आग बबूला हो उठने वाली सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था के कान बेदर्द बने हुए हैं। अपनी सुविधाजीविता और आरामतलबी को पुरुषोचित अधिकार की तरह मानने वाला सामंती मर्दवादी मानसिकता का पूरा हुजूम अभी हमारे ग्रामीण समाजों में मौजूद है, जिसकी तरफ हमारा ध्यान 'कफन' कहानी खींचती है। पूरी कहानी में अपनी अनुपस्थिति के बावजूद बुधिया मौजूद है – व्यवस्था के 'फाइनल विक्टिम' के रुप में; उस व्यवस्था के शिकार के रुप में; जिसका उत्पाद माधव–घीसू हैं, उनकी संवेदनहीनता है। जमींदार, महाजन तथा साहूकार के शोषण और उत्पीड़न का पहला शिकार माधव–घीसू या उनका पूरा वर्ग होता है लेकिन उस शोषण व सामाजिक–संरचना की सोपानिक व्यवस्था का अन्तिम विषपात बुधिया और उसके वर्ग पर होता है।

बुधिया, असल में उस सामाजिक संरचना को 'फेस' करती है जहाँ पुरुष के बिना स्त्री की न तो कोई हैसियत है न सामाजिक अस्मिता। अस्मिता तो छोड़िए उसके अस्तित्व तक के लाले पड़ जाते है, ऐसी सामाजिक हालत में पुरुषविहीन स्त्री का 'सोशल सर्वाइवल' ही बेहद मुश्किल रहा है। घास छीलकर, बर्तन माँजकर या किसी भी तरह की मजूरी–धतूरी करके वह कदाचित् माधव–घीसू जैसे बेगैरतों का दोजख इसीलिए भरती है क्योंकि उनका होना स्त्री के 'प्वाइन्ट ऑफ ब्यू' से उसके 'सोशल–सर्वाइवल' का एक आधार था। यह अपने आपमें कम बड़ी त्रासदी नहीं है कि हम एक ऐसे तथाकथित सभ्य समाज में रहते है जहाँ आज भी बुधिया जैसी तमाम स्त्रियाँ अपनी सामाजिक उत्तरजीविता के लिए शराबी, जुआखोर, रोज–पिटाई करने वाले निकम्मे पुरुषों के साथ न जाने कितने अजाब और अपमान का घूँट पीकर अपने होंठ सिले हुए कराह रही हैं जहाँ विरोध या शिकायत करने की भी गुंजाइश नहीं है। इस तरह के परतंत्र व नारकीय जीवन को अपना मुकद्दर मानकर जीती जा रही उन तमाम स्त्रियों के पथरायें और ठंढ़े पड़ चुके शरीर पर पड़े हमारी संवेदनहीनता व सामन्ती–विद्रूप के कफन को एक हवा के झोंके की तरह उघाड़ देती है यह 'कफन' कहानी।

lUnHk%

1. भूमिका, एक दुनिया समानांतर, राजेन्द्र यादव (संपा0), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
2. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, अमृतराय (संपा0), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. कहानीकार प्रेमचंद रचनादृष्टि और रचना–शिल्प, शिवकुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. आधुनिकता के आईने में दलित, अभय कुमार दुबे (संपा0), वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
5. कहानी नई कहानी, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
6. हिंदू परंपराओं का राष्ट्रीयकरण, वसुधा डालमिया, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
7. हिन्दी का लोकवृत्त, फ्रांचेस्का ऑर्सीनी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
8. शब्द घड़ी में समय, राजेन्द्र कुमार, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद।
9. भारतीय नवजागरण और पुनरुत्थानवादी चेतना, मोहित कुमार हालदार, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली।
10. उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता, वीरेन्द्र यादव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 89-92

शुक्रनीति और मनुस्मृति के राजनैतिक सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन

सतरुद्र प्रकाश*

शोधसार – भारत की अक्षुण्ण राजनैतिक चिन्तनधारा से शुक्रनीति को प्रायः उपेक्षित रखा गया है। इसे दैत्यगुरु शुक्राचार्य की रचना कहकर या तो विद्वज्जन इतिश्री कर लेते हैं या फिर परवर्त्ती रचना मानकर दूर से प्रणाम कर लेते हैं। परन्तु इस उपेक्षा का कारण न तो इस ग्रन्थ का दैत्यगुरु के नाम से प्रचारित होना है और ना ही इसकी कालगत स्थिति। असल में शुक्रनीति के सिद्धांत ही ऐसे क्रान्तिकारी हैं कि उस दौर में इसका उपेक्षित होना स्वाभाविक था। मनुस्मृति डूबते हुए सनातन चिन्तन के लिए नाव के समान थी जिस कारण इसे "मानवधर्मशास्त्र" जैसी भारी–भरकम उपाधि से विभूषित किया गया और सारा परवर्त्ती दर्शन, साहित्य, राजनीति इत्यादि इस पर केन्द्रित हो गया। शुक्रनीति और मनुस्मृति, दोनों क्रमशः नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र के आधारभूत प्रतिनिधि ग्रन्थ हैं। तत्कालीन राजनीति की खूबियों–खामियों को समझने तथा वर्तमान भारतीय राजनीतिक मार्ग के कण्टक–शोधन में दोनों ग्रन्थों का राजनैतिक अध्ययन एक नवीन अवधारणा की सृष्टि करेगा।

कूटशब्द – शुक्रनीति, मनुस्मृति, राजनीति, तुलनात्मक अध्ययन, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि।

प्रस्तावना – प्राचीन भारतीय राजनीति की चिन्तनधारा वैदिक काल से चली आ रही है। परन्तु संस्कृत साहित्य एवं अन्य भाषा के साहित्य में तत्कालीन समाज ने राजनीति को स्वतंत्र शास्त्र के रूप में स्थापित न करके इसे सामाजिक चिन्तन के एक अङ्ग के रूप में अधिगृहीत किया था। संस्ृत के शास्त्रों में इसका स्वतंत्र अस्तित्व प्रायः धर्मशास्त्रों तक देखने को नहीं मिलता। आपस्तम्बधर्मसूत्र, गौतमधर्मसूत्र, बौधायनधर्मसूत्र, वशिष्ठ धर्मसूत्र आदि सूत्रकालीन साहित्य तक राजनीति का पृथक् अस्तित्व देखने को नहीं मिलता। यहां तक कि स्मृति साहित्य में भी "राजधर्म" को सामाजिक आवश्यकता के तौर पर शामिल किया गया था। यद्यपि यह सत्य है कि राज्य, राजा की शक्ति, शासनतंत्र इस काल तक पूर्णतः व्यवस्थित हो चुके थे परन्तु धर्मशास्त्रों में इसकी मान्यता अब भी स्वतंत्र रूप से स्वीकार नहीं की गयी थी। "राजधर्म प्रकरण" स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में स्थापित न हो पाया था। यहाँ तक कि 18 पर्वों में विभक्त संस्ृत के सबसे बड़े महाकाव्य, महाभारत में भी "राजधर्म" वर्णन 12वें पर्व के कुछ अध्यायों तक सीमित है। मनुस्मृति में यही "राजधर्म" सप्तम अध्याय में समाहित किया गया। याज्ञवल्क्य स्मृति तीन अध्यायों में विभक्त है; आचाराध्याय, व्यवहाराध्याय तथा प्रायश्चित्ताध्याय। "राजधर्म" प्रकरण इसमें भी आचाराध्याय के अन्त में आया है। धर्मशास्त्रों में राजनीति की इस दोयम स्थिति का मूल कारण ब्राह्मण नामक प्रथम वर्ण की उच्चता और शास्त्र रचना में उसका एकाधिकार था। धर्मशास्त्रों ने ब्राह्मण को राजा से भी उच्च स्थान प्रदान किया और उस तत्कालीन विधि–व्यवस्था और राजव्यवस्था में सबसे ऊपर रखा। वर्ण–व्यवस्था की उच्चावचता और उसमें क्षत्रियों की दोयम स्थिति ने राजनीति को भी दोयम दर्जे पर रखा। कालान्तर में इसी सामाजिक दर्शन की नींव पर राजनीति का भवन खड़ा किया गया।

कालक्रम की दृष्टि से नीतिशास्त्र की परम्परा धर्मशास्त्र व अर्थशास्त्र के बाद आती है। नीतिशास्त्र का स्वतंत्र अस्तित्व प्रायः किसी भी धर्मशास्त्री ने स्वीकार नहीं किया, यहाँ तक कि यदि आवश्यकता न हुई तो उन ग्रन्थों तक का उल्लेख आवश्यक नहीं समझा गया। यही कारण है कि नीतिशास्त्र को या तो धर्मशास्त्र में अन्तर्भूत कर दिया गया या फिर स्वीकार ही नहीं किया गया। नीतिशास्त्रीय ग्रन्थोंकी परम्परा अत्यन्त

*वरिष्ठ शोधच्छात्र, संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्राचीन है। महाभारत में वर्णन आता है कि जब मनुष्यों की आयु का ह्रास होने लगा और वे अनाचार में प्रवृत्त होकर अराजकता फैलाने लगे तो देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने नीतिशास्त्र का निर्माण किया। इसी निर्मित शास्त्र में लोक के नियंत्रण की हर नीति का समावेश ब्रह्मा के द्वारा हुआ। अन्त में यह ज्ञान शुक्राचार्य को मिला जिन्होंने एक हजार श्लोकों में इस नीतिशास्त्र को संक्षिप्त करके लोक में स्थापित किया। यद्यपि महाभारत में वर्णित ये आख्यान नीतिशास्त्र को दैवीय रूप देने के लिए स्थापित किया गया था, तथापि महाभारत में नीतिशास्त्र के जो विषय दिये गये हैं, वे सभी आज उपलब्ध शुक्रनीति में यथावत् प्राप्त होते हैं। शुक्रनीति के अतिरिक्त कामन्दक का नीतिसार, वैशम्पायन की नीतिप्रकाशिका, विदुरनीति, कणिकनीति (दोनों महाभारत के अन्तर्गत), चाणक्यनीति, सोमदेव विरचित नीतिवाक्यामृत, भोज.त युक्तिकल्पतरु, चण्डेश्वर .त नीतिरत्नाकर आदि प्रधान ग्रन्थ हैं। इतना ही नहीं, महामहोपाध्याय पाण्डुरंग वामन काणे ने चौबीस नीतिशास्त्रीय ग्रन्थों की सूची दी है। नीतिशास्त्र का विपुल साहित्य और उसकी एक समृद्ध परम्परा है।

jktRo dk fl)kUr % मनुस्मृति के राजत्व का सिद्धान्त पूर्णतः दैवीय सिद्धान्त है। लेकिन उसके पहले यह उल्लेखनीय है कि मनुस्मृति केवल क्षत्रिय को ही राजत्व का अधिकार देती है। क्षत्रियों में भी जिसका विधिवत् यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हुआ हो, केवल वही राजा होने का अधिकारी है। धर्मशास्त्रीय विधानों को न मानने वाले राजाओं को "अशास्त्रवर्त्ती" की संज्ञा देते हुए मनुस्मृति ब्राह्मण को ऐसे राजा से दान लेने से वर्जित करती है। इतना ही नहीं, यदि किसी राज्य में "शूद्रराजा" शासन करता हो, नास्तिक वेद–निन्दक लोगों से भरा हो, वहाँ निवास करने से भी वर्जित करती है।

शुक्रनीति राजा की जाति के विषय में मौन है। हालांकि शासन व्यवस्था में कई महत्त्वपूर्ण पदों पर वर्णानुक्रम में अधिकारियों की नियुक्ति का पक्ष शुक्रनीति भी लेती है। परन्तु राजा की जाति या वर्ण पर शुक्रनीति की कोई स्थापना प्राप्त नहीं होती। शुक्रनीति के लिए राजा होने की मुख्यतः दो ही शर्त है कि वह शुक्राचार्य द्वारा स्थापित नीतिसार का निरन्तर चिन्तन करने वाला हो तथा उसमें "राज्यभार को वहन करने की क्षमता" हो। सम्पूर्ण राजधर्मों का विधिवत पालन करता हुआ(जन्मना) नीच राजा भी श्रेष्ठता को प्राप्त कर सकता है। यदि वह नीति व धर्म के विपरीत आचरण करे तो विशाल साम्राज्य का उत्तम स्वामी होते हुए भी वह शीघ्र ही राज्यसहित विनाश को प्राप्त होता है।

बात यदि राजत्व की उत्पत्ति की करें तो मनुस्मृति पूरी मजबूती से स्थापित करती है कि ब्रह्मा ने "लोक में व्याप्त अराजकता" से रक्षा के निमित्त राजा की सृष्टि की तथा आठ देवताओं के गुणों को राजा में स्थापित किया। शुक्रनीति भी राजत्व की उत्पत्ति का यही सिद्धांत मानती है। लेकिन दोनों शास्त्रकारों में फर्क उस जगह से होता है जब मनुस्मृति कहती है कि "राजा यदि बालक हो तब भी उसका अपमान या अवमानना लोक या किसी अधिकारी को नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह नर रूप में विद्यमान साक्षात् देवता ही होता है। इसके विपरीत शुक्रनीति यह कहती है कि यदि कोई राजा उत्तम है, कल्याणकारी है तभी माना जाएगा कि उसमें देवांश है। और यदि वह विपरीत आचरण करता है तो यह माना जाए कि अमुक राजा में दानवांश है। देवत्व गुणों के अतिरिक्त शुक्रनीति राजा में पिता, माता, भाई, मित्र, गुरु, कुबेर और यम इनका पृथक्तः आधान करते हुए राजा को निर्देशित देती है कि एक राजा को इन गुणों से युक्त होकर ही प्रजा का पालन करना चाहिए और किसी भी स्थिति में इन गुणों का परित्याग नहीं करना चाहिए। शुक्रनीति राजा को मात्र दैवीय पुरुष बनाकर छोड़ नहीं देती बल्कि स्पष्टतः कहती है कि राजा ही अपनी प्रजा को धर्म और अधर्म की शिक्षा अपने आचरण से देता है। यदि उसका आचरण अशुद्ध और कलुषित है तो प्रजा भी उसका अनुसरण करते हुए भ्रष्ट हो जाती है। यदि प्रजा और राज्य ऐसी विपन्न स्थिति में पहुंच जाते हैं तो इसमें ना तो युग अर्थात् उस काल विशेष का दोष है और ना ही भ्रष्ट हुई प्रजा का कोई दोष है, बल्कि इसमें सारा दोष राजा का है। इसलिए एक आदर्श शासक को चाहिए कि वह सबसे पहले स्वयं को विनयशील बनाए, स्वयं को सच्चरित्र एवं ईमानदार बनाए। उसके बाद अपने पुत्रों (भावी राजा) को विनयशील बनाए। इसके बाद क्रमशः सचिवों, राजकर्मचारियों, और सबसे अन्त में प्रजा को विनयशील बनाए। शुक्रनीति और मनुस्मृति के राजत्व सिद्धांत में मौलिक भेद यही है कि शुक्रनीति राजा को निरंकुश नहीं छोड़ती और ना ही देवत्व के नाम पर उसे स्वच्छंद आचरण की स्वतंत्रता प्रदान करती है।

jktk dh efU=ifj"kn~ % जैसे आज हर राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार में कैबिनेट यानि केन्द्रीय मंत्री होते हैं, ठीक वैसे ही प्राचीन काल से ही राजा की सहायता के लिए केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् का विधान किया गया था। अन्तर इतना है कि वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था में नियुक्त मन्त्रियों की संख्या घट या बढ़ सकती है लेकिन प्राचीन काल में यह संख्या निश्चित होती थी। मनुस्मृति राजा को निर्देश देती है कि वह अपनी सहायता व परामर्श के लिए 7 या फिर 8 सचिवों (मन्त्रियों) की नियुक्ति करे। इनमें भी जो ब्राह्मण हो, राजा उस पर अन्य मन्त्रियों की अपेक्षा अधिक विश्वास करे और उसके साथ गूढ़तम विषयों पर विचार–मंथन करे। बाकी अन्य मन्त्रियों को उनके स्वभाव के अनुसार कार्यों में लगाए।

शुक्रनीति, राजा की केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् में दस सदस्यों की व्यवस्था करती है। मन्त्रिपरिषद् के ये दस सदस्य राजा की "दशप्र.ति" कहे जाते हैं। अर्थात् राजा को दश मन्त्रियों को नियुक्त करना ही है, न कम न ज्यादा। ये दस मन्त्रिपद हैं; पुरोहित, प्रतिनिधि, प्रधान, सचिव, मन्त्री, प्राड्विवाक, पण्डित, सुमन्त्र, अमात्य, और दूत। ये मन्त्रिपद जिस क्रम में हैं, उसी क्रम में ये परस्पर वरिष्ठ और कनिष्ठ होते हैं। यानि वरीयता क्रम में पुरोहित का ओहदा सबसे उच्च होता है। फिर उससे एक रैंक कम पर प्रतिनिधि होता है। इसी प्रकार क्रमशः ये दूत पर्यन्त तक चलता है और दूत को मन्त्रिपरिषद् में सबसे नीचे रखा गया है। इनका वेतन भी इसी क्रम में निर्धारित किया गया है। सबसे नीचे की रैंक का सदस्य जितना पारिश्रमिक राजा द्वारा प्राप्त करेगा, उसका दसवां हिस्सा अधिक वेतन उसके ठीक एक पद ऊँचे सदस्य का होगा। अन्ततः पुरोहित सर्वाधिक वेतन पाने वाला मन्त्री होता है। प्रत्येक सदस्य का कार्य भी निर्धारित था। पुरोहित हर शास्त्र व विद्या का ज्ञाता एक सम्पूर्ण विद्वान् होता था। पुरोहित का चरित्र व आचरण इतना शुद्ध होना चाहिए कि राजा भी उसके निश्छल व्यवहार व सत्यपरायणता के डर से कुछ भी गलत करने की सोच भी ना सके। पुरोहित को वैदिक यज्ञों का अनुष्ठाता, शस्त्र–संचालन, व्यूहरचना आदि में प्रवीण, शाप और वरदान देने में सक्षम होना चाहिए।

राजा के लिए कौन से कार्य करणीय हैं और किन कार्यों को उसके लिए वर्जित किया गया है, इसका ज्ञान रखना 'प्रतिनिधि' का कार्य होता था। 'प्रधान' हर विषय और वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षणकर्ता होता था। सैन्य विज्ञान में निपुण तथा सैन्य क्षेत्र का मुखिया 'सचिव' होता था। नीतिशास्त्र का सम्पूर्ण ज्ञान रखने वाला सदस्य 'मन्त्री' होता था तथा समाज में प्रचलित धर्माधर्म का विशद् ज्ञाता तथा उनकी सारी सूचना राजा तक पहुँचाने का कार्य 'पण्डित' करता था। 'प्राड्विवाक' उसे बनाया जाता था जो न्यायशास्त्र और विधिसंहिता का पूर्ण विशेषज्ञ होता था। राजा को विधिक सलाह देना तथा मुकदमे की सुनवाई के दौरान विधिक प्रक्रिया का संचालन इसकी जिम्मेदारी होती थी। अमात्य देश काल का ज्ञाता होता था। यानि राजा के राज्य में कितने गाँव, नगर, उपनगर, जंगल, वन, नदी इत्यादि हैं, इन सबकी जानकारी राजा को देना, साथ ही भूमि व अन्य माध्यमों से प्राप्त राजस्व का ब्योरा रखना भी इसी का कार्य था। 'सुमन्त्र' राजा का वित्तमंत्री होता था। यह राजदरबार में व शासकीय कार्यों में व्यय हो रहे धन का विवरण तथ सरकारी खजाने में आने वाले धन का विस्तृत ब्योरा रखता था। 'दूत' शारीरिक संकेतों को समझने में दक्ष, याददाश्त का पक्का, देश और काल की परिस्थियों की सटीक पहचान करने में सक्षम तथा विदेशनीति के छः सिद्धांतों का विशेषज्ञ होता था।

मनुस्मृति व शुक्रनीति द्वारा निर्मित मन्त्रिपरिषद् में इतना फर्क है। अन्य अधिकारियों में मनुस्मृति सभासदों की नियुक्ति की व्यवस्था करती है, जबकि शुक्रनीति द्वारा निर्मित प्रशासनिक अधिकारियों का ओहदा तीन स्तर का है। केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् के अतिरिक्त दो और आधिकारिक संगठन होते थे। इनका भी विस्तृत वर्णन शुक्रनीति में मिलता है।

U;k; O;oLFkk dh fLFkfr % अपराध की प्रकृति व दण्डविधान प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था में अपराधी और पीड़ित दोनों की वर्णगत और जातिगत स्थिति के आधार पर तय होती थी। ष्नंसपजल इमवितम सूं जैसी आधुनिक विधिक अवधारणा का अभाव पूरी भारतीय राजव्यवस्था में देखने को मिलता है। प्राचीन न्याय–व्यवस्था में मृत्युदण्ड ब्राह्मण के लिए आदेशित नहीं था। खासकर धर्मशास्त्रों ने इस पर ज्यादा जोर

दिया। यहाँ तक कि महाभारत में भी ब्राह्मण को विधि के समक्ष अवध्य कहा गया है। मनुस्मृति स्पष्ट करती है कि जघन्य अपराध करने वाले ब्राह्मण को भी राजा मृत्युदण्ड नहीं दे सकता। ब्राह्मण का धनहरण अथवा शारीरिक यातना का भी प्रावधान नहीं है। उसे केवल देश से निकाला जा सकता है।

शुक्रनीति के दण्डविधान का दर्शन इससे उन्नत है। यह अपराधी को कारावास में रखने, नीच कर्म कराने आदि की सजा का प्रावधान करते हुए राजा को निर्देश देती है कि (केवल ब्राह्मण को ही नहीं बल्कि) किसी भी अपराधी को मृत्युदण्ड नहीं देना चाहिए। इसका तात्पर्य ये है कि एक राजा को अपने राज्य में विधि का ऐसा शासन स्थापित करना चाहिए जिसमें कोई भी व्यक्ति ऐसा अपराध ही ना करे कि उसे मृत्युदण्ड देने की नौबत आए। शुक्रनीति कहती है कि चूंकि ये वेदवाक्य है कि किसी भी जीव की हत्या नहीं की जानी चाहिए, इसलिए राजा को यह प्रयास करना चाहिए कि वह किसी को मृत्युदण्ड ना दे।

मनुस्मृति और शुक्रनीति के राजनैतिक सिद्धांतों व दर्शन में इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी हमें मत–वैभिन्न्य देखने को मिलता है। स्मृति और नीतिशास्त्र की परम्परा के पृथक् होने का मूल कारण यही था। पहला प्रधान कारण यह रहा कि स्मृति, सूत्र व अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में राजनीति को केवल सहायिका के तौर पर रखा गया जबकि नीतिशास्त्र का प्रधान विषय ही राजनीति है। दूसरा कारण रहा वार्णिक–व्यवस्था में कुछ विशेष वर्णों की उच्चता को किसी भी अवस्था में बनाए रखना, जबकि नीतिशास्त्र ने दण्डविधान ही नहीं, अपितु अन्य प्रसंगों में भी इस असमानता को तोड़ने का कार्य किया। शुक्रनीति ने स्पष्ट उद्घोष किया कि मात्र जाति से ही कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या फिर म्लेच्छ नहीं होता। मनुष्य के स्वभावगत गुण और कर्म ही उसके वर्ण का निर्धारण करते हैं। चूंकि शुक्रनीति का प्रधान उद्देश्य राज्य के हर व्यक्ति को राज्य के कल्याणकारी कार्य में भागीदार बनाना था, इसलिए उसकी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और विदेश नीति में समावेशी मूल्यों का दिग्दर्शन बहुधा होता है। शुक्रनीति में वर्णित ये सिद्धांत हमारे आज के लोकतांत्रिक राष्ट्र में भी प्रासंगिक और अनुसरणीय हैं। राजा के लिए जो दिशा निर्देश शुक्रनीति में आए हैं, उनका पालन आज विधायी पदों पर विराजमान मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री, मंत्री आदि हर व्यक्ति के लिए, कार्यपालिका के सदस्य, स्थानीय प्रशासन में जिलाधिकारी जैसे महत्त्वपूर्ण पदों के वाहक लोगों के लिए इन मूल्यों का अनुकरण वरदान साबित हो सकता है।

lUnHk %

1. राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जम्।
दृगौतमधर्मसूत्र, 2.2.1
2. महाभारत, शान्तिपर्व, 59.81.85
3. महाभारत, शान्तिपर्व, 59.85
4. धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ0 575
5. मनुस्मृति, 7.2
6. मनुस्मृति, 4.87
7. मनुस्मृति, 4.61
8. शुक्रनीति, 4.7.424
9. शुक्रनीति, 4.7.421
10. मनुस्मृति, 7.3.4
11. शुक्रनीति, 1.71.72
12. मनुस्मृति, 7.8
13. शुक्रनीति, 1.70
14. शुक्रनीति, 1.78
15. शुक्रनीति, 1.82
16. शुक्रनीति, 4.1.60
17. शुक्रनीति, 1.93
18. मनुस्मृति, 7.54
19. मनुस्मृति, 7.58.59
20. शुक्रनीति, 2.69.70
21. शुक्रनीति, 2.71
22. शुक्रनीति, 2.78.80
23. शुक्रनीति, 2.84
24. शुक्रनीति, 2.85
25. शुक्रनीति, 2.86
26. शुक्रनीति, 2.87
27. महाभारत, आदिपर्व, 107.15
28. मनुस्मृति, 8.380
29. शुक्रनीति, 4.1.92
30. शुक्रनीति, 4.1.93
31. शुक्रनीति, 1.38

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 93-96

lkinkf;d jktuhfr dk vk;ke % mnw ukxjh fookn vkj mldh ,frgkfld i"BHkwfe

MkW vjfoUn*

इस लेख के माध्यम से हम यह समझने का प्रयास कर रहे हैं कि उर्दू–नागरी विवाद क्या है, और इसके पीछे क्या कारण थे? 19वीं शताब्दी में ये समस्या उत्तर भारत में आती है। इसका प्रारम्भ 1830 ई0 से है और 1868 ई0 के लगभग यह जोर पकड़ती है। समस्या राजस्व रिकाडों को लेकर उठती है कि उनको किस भाषा में लिखा जाये? फारसी में लिखा जाये या नागरी में। इस बात को लेकर समय–समय पर प्रश्न उठते रहे। जिस समय राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद ने जो इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल के सरकारी मुलाज़िम थे, उन्होंने एक मेमोरेंडम लिखा Court collectorate provinces of India. इसमें उन्होंने कहा कि राजस्व रिकार्ड जो उर्दू फारसी भाषा में लिखा जाता है इसे हिन्दी देवनागरी में लिखा जाना चाहिए। इस बात को लेकर शिवप्रसाद सितारे हिंद का भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र से वैचारिक मतभेद था। क्योंकि भारतेन्दु बाबू संस्कृत समर्थित हिन्दी के पक्षकार के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करते हैं। एहसाम हुसैन, जिन्होंने उर्दू साहित्य का इतिहास लिखा, कहते हैं कि 18वीं सदी के अन्त तक उर्दू का प्रयोग एक भाषा के रूप में होने लगता है। इन्होंने उर्दू का जन्म क्षेत्र मेरठ, पंजाब, दिल्ली के आस–पास माना है। यह एक विरोधाभास ही है कि पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा उर्दू मानी जाती है, किंतु वहाँ के चार प्रान्तों में कहीं भी उर्दू भाषा नहीं हैं केवल भारत से जो मुसलमान गये हैं उनकी भाषा उर्दू है बाकी पंजाबी आदि का इस्तेमाल करते हैं। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से उर्दू का प्रयोग फारसी लिपि के साथ होने लगा। 13वीं सदी के दौरान जब मुसलमान उत्तरी भारत की सत्ता में आये उस समय हिन्दी ही वर्नाकुलर थी। 1000 ई0 सन् के आस–पास पंजाब व लगायत क्षेत्र मुस्लिमों के अन्तर्गत आने से वहाँ उर्दू का प्रभाव बढ़ता है अकबर के काल में राजस्व विभाग में 'हिन्दी का प्रयोग होता था लेकिन सिविल और क्रिमिनल कोर्ट में फारसी का प्रयोग हो रहा था। ये सब अंग्रेजों के सत्ता में आने तक चलता रहा। 1772 ई0 में वारेन हेस्टिंग्स ने सत्ता संभाली और विचार किया कि प्रशासन और न्याय पालिका कैसे चलनी चाहिए? इसके पूर्व तक राजा ही प्रधान होता था, लेकिन अंग्रेजों के आने से स्थितियाँ बदलीं। अंग्रेज न तो मुस्लिम कायदों को जानता था और न ही ब्राह्मणीय परम्पराओं को। अतः समस्या को ठीक करने के लिए 18वीं सदी में एक मदरसा खोला और 1792 ई0 में संस्कृत कॉलेज की स्थापना की। इसके बाद वारेन हेंस्टिंग्ल का यह विचार था कि न्यायपालिका के समक्ष सभी समान होते हैं। अतः इसने हर जिले में सदर दिवानी और सदर निज़ामत अदालत की स्थापना की। 1757 ई0 के दौरान जॉन गिलक्राईस्ट ईस्टइण्डिया कम्पनी की सेवा में थे। उर्दू के बारे में इन्होंने लगभग 20 वर्षों तक लेखन कार्य किया। इन्होंने फोर्ट विलियम कॉलेज खोला। इसका उद्देश्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी में आये कर्मचारियों को ट्रेण्ड करना था। गिलक्राईस्ट इस कॉलेज के प्रथम प्रिंसिपल हुए। आधुनिक हिन्दी गद्या साहित्य के जनक लल्लू लाल जी माने जाते हैं। वे इस कॉलेज में हिन्दी ट्रेनर के रूप में अपनी सेवाएँ दे रहे थें एहतसास हुसैन लिखते हैं कि फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से ही भाषाई विवाद की शुरूआत हुई और यह राजनीतिक रंग लेता है।

उस समय के जो अधिकांश अंग्रेज थे, फारसी का अध्ययन करते थे। जब ये हिंदुस्तान में आए तो उन्होंने सोचा, यही हिन्दुस्तानी भाषा है, और पूरे भारत में प्रचलित है। जबकि 1830 ई0 में कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर ने ये बात स्वीकार की कि जो आम–जन की भाषा है वही कोर्ट की भाषा होनी चाहिए, जहाँ

*पूर्व पी0डी0एफ0 अध्येता (यू0जी0सी0) डॉ0 राधाकृष्णन, महात्मा गांधी नगर, बक्सर, बिहार

तक कोर्ट के स्तर पर भाषा की बात है तो यह चाहे अरबी हो या फारसी फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि एक न्यायाधीश या जिलाधिकरी तो वह भाषा सीख सकता है, लेकिन आम किसान के लिए यह आसान नहीं होता, इसलिए राजस्व और कोर्ट में भाषा आम आदमी की ही होनी चाहिए, चुंकि हिन्दी ही आम जन की भाषा है वही कोर्ट की भाषा हो सकती है। क्योंकि राजस्व देने वाला किसान फारसी नहीं जानता। इसको लेकर कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर का पत्रक तो 1830 में आ जाता है लेकिन 1837 तक यह लागू नहीं किया गया। यहीं पर फोर्ट विलियम कॉलेज ने गुमराह किया और उर्दू भाषा को हिनदुस्तानी कहना प्रारम्भ किया। इन परिस्थितियों को देखकर विचार हुआ कि उर्दू फारसी की जगह क्यों न रोमन लिपि का प्रयोग किया जाये। यह माँग आगे 1894–95 में ज्यादा जोर पकड़ती है। शिवप्रसादजी और उनके समर्थकों ने कहा, यह उचित नहीं हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इन लोगों के विचारों को नहीं माना। 20 नवम्बर, 1837 ई0 को एक सर्कुलर आया जिससे बंगाल में बंग्ला को मान्यता दी गयी और उड़ीसा में उड़िया को। ऐसा इसलिए किया गया ताकि भाषाओं के विवाद का निबटारा हो सके। बाकी जो हिन्दुस्तान का क्षेत्र था North Provincial State था यहाँ हिन्दुस्तानी अर्थात् उर्दू भाषा का प्रयोग फारसी लिपि में किया गया। यह हिन्दी के लिए जान बूझ कर उठाया गया कदम था, और इसकी आलोचना हुई। हालांकि 1881 ई0 में विहार के स्टेट गवर्नर मैकडोनाल्ड ने कैथी (देवनागरी) लिपि लागू की। लेकिन यू0पी0 में ऐसा कुछ न हुआ। शिव प्रसाद सितारे हिन्द का कहना था यू0पी0 में जनसंख्या के आधार पर 14 प्रतिशत इनके पास है और सरकारी नौकरियों में ये लगभग पचास प्रतिशत तक हैं। तो साम्प्रदायिक आधार के अलावा ये इज्जत की भी लड़ाई है। इस पर सर सैय्यद का कहना था कि एक यही भाषा तो हमारी पहचान है और यह भी चली जायेगी तो हमारे पास क्या बचेगा? मैकडोनाल्ड ने भारत में डिप्टी कलक्टर की परीक्षा शुरू करवायी। सर सैय्यद अहमद ने इसका विरोध किया कि मुसलमान तो अंग्रेजी जानता नहीं। यह उनके हम में ठीक नहीं होगा। इसके पूर्व तक इसके लिए कोई परीक्षा नहीं थी। चन्द्रबली पाण्डेय ने एक पुस्तक लिखी, 'कचहरी की भाषा और लिपि' इसमें इन्होंने बताया कि अग्रेजों ने इस समय होशियारी से काम लिया और पर्शियन की जगह दरवारी उर्दू भाषा को महत्व दियां यर सैय्यद अहमद बरेलवी ने अग्रेजों की इस धूर्तता को स्वीकार किया। ध्यान देने वाली बात है कि जो सरकार पहले हिन्दी को वास्तविक वर्नाकुलर मान रहीं थी, उसने अब उर्दू को महत्व दिय। तत्पश्चात् गवर्नमेण्ट ऑर्डर आता है कि कठिन उर्दू (दरबारी उर्दू) की जगह आसान हिन्दुस्तानी (सरल उर्दू) का प्रयोग किया जाये। कायस्थों ने इस भाषाई विवाद में उर्दू का साथ दिया इसका कारण था कि कचहरी के ज्यादातर पदों पर कायस्थ पीढ़ियों से आसीन थे। उनको लगा आम भाषा के आने से कचहरी पर जो हमारा वर्चस्व है वह टूट जायेगा। यद्यपि 30 दिसम्बर, 1854 को बोर्ड ऑफ रेवेन्यू ने आदेश जारी किया कि पटवारी लोग रिकार्डों को हिन्दी में लिखें। लेकिन इस आदेश का भी कोई फर्क नहीं पड़ा और उर्दू का वर्चस्व बना रहा। इसी प्रकार डॉइरेक्टर जनरल ऑफ स्कूल ने 1854–55 ई0 में रिपोर्ट की कि हिन्दी की करेंट वर्नाकुलर (प्रचलित देशी भाषा) है 1857 बोर्ड ऑफ रेवेन्यू ने सर्कूलर जारी कर देशी भाषा हिन्दी के प्रयोग पर अपनी मुहर लगायी, लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं हो सका। इन चीजों को लेकर व्यूरोक्रेसी (अधिकरी तंत्र) भी आपस में बँटी रही। राजेन्द्र लाल में मिश्रा ने 1864 ई0 में An origin of Hindi language and literacy to the urdu dilect में हिन्दी का पक्ष लिया। 1877 ई0 में मैकडोनाल्ड ने एक आदेश जारी किया कि हाईस्कूल तक अंग्रेजी जानना अनिवार्य है। यहीं से अंग्रेजी को एक सम्पर्क भाषा के रूप में देख्खा गया। 1877 के दौरान यह आदेश आता है कि दस रूपये से ज्यादा की नौकरी करने वाले को उर्दू या फारसी जानना जरूरी है। जबकि पिछले जितने भी आदेश आये वो आम आदमी की भाषा (हिन्दी) को लेकर आये। 1854 का आदेश भी यही स्पष्ट करता है कि जिस भाषा को लोग ज्यादा जानते हैं वहीं वास्तविक वर्नाकुलर है। इन बातों को लेकर आगे भी विचार होते रहे।

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने नागरी को लेकर एक मेमोरेंडम लिखा–"फ़ारसी भाषा पढ़ने से हमस ब फारसी हो जायेंगे। हमारी विचारधारा इसके कारण दूषित हो जायेगी। हमारी राष्ट्रीयता चली जायेगी। वह बड़ दुर्भाग्य का दिन था जिस समय मुसलमानों ने हिन्दूकुश को पार किया। उसी दिन से

सारी बुराइयाँ हममें आ गयीं। हम उसी दिन बरबाद हो गये।" सरसैय्यद इस पर नाराज हुए। इन्होंने कहा–'हमारी राय है कि तमाम देहाती और तहसीली स्कूलों व मकतब में, सरकारी कार्यालयों की जुबान हिन्दी कर दी जाये ताकि मुसलमानों के हालात और उनकी स्थिति खराब हो जाये उनकी तमाम जरूरतें निस्तोनाबूत हो जाएं। उन्होंने लिखा मुझे एक और ख़बर मिली है कि बाबू शिवप्रसाद ने उर्दू को नागरी से निम्न बताया, और कहा उर्दू जो मुसलमानों की निशानी है उसे मिटा दिया जाये। समस्या यहीं से ज्यादा गहराती है जब उर्दू और हिन्दी को समुदाय से जोड़कर देखा जाने लगा। सरसैय्यद अपने मेमोरेंडम में लिखतें हैं कि "अगर मुसलमान हिन्दुओं से अलग होते हैं तो मुसलमानों को फ़ायदा ज्यादा होगा। यहीं से पूर्णतः अलगाववाद की स्थिति महसूस की जा रही थी। बाबू सरोदा/सारदा प्रसाद जी इस समय हिन्दी का समर्थन कर रहे थे। शिवप्रसाद सिंह ने अलीगढ़ गजट में आँकड़ो के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि उर्दू (फ़ारसी लिपि में) से हिन्दी (नागरी लिपि में) जानने वाले ज्यादा हैं। शिवराज सिंह का विचार था कि आम आदमी या किसान भोजपुरी जानता है इसलिए कोर्ट की भाषा हिन्दी चाहिए। 1868 के समय में यह काफी जोर पकड़ता है। समाचार पत्रों के माध्यम से भी इसे बल मिलता है। 1860 में जब भारतेंदु बाबू आते हैं, इन्होंने हिन्दी को नया आयाम दिया। ये आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य के पिता माने जाते हैं। बलिया के एक जन सभा में उन्होंने निज भाषा को उन्नति का मूल बताया। इनके पत्र कविवचनसुधा और हरिश्चन्द्र से हिन्दी के प्रोत्साहन को बल मिल रहा था। ये लिखते हैं–"हिन्दी भाषा को घर में ही बोलो। क्योंकि बाहर बोलोगे तो पकड़े जावोगे। क्योंकि पॉयनियर में हमने देखा कि हिन्दी इस देश की भाषा नहीं है और जन–बन का ठेका अंग्रेजों ने अंग्रेजी को दिया है, और आप जानते हैं ठेका तोड़ना कानून जुर्म है। 1873 में इन्होंने एक मेमोरेंडम निकाला कि फ़ारसी हमारे लिए विदेशी है, जबकि हिन्दी यहाँ की भाषा है और सीखना आसान है। 1877–78 में यह स्वीकार किया जाता है कि 'हिन्दी इन् द ट्रू बर्नाकुलर, और यह लोगों के लिए आसान है। उर्दू और फ़ारसी का शहरी तथा उच्च वर्ग के मुसलमानों द्वारा प्रयोग किया जा रहा था। जबकि आज की स्थिति ऐसी है कि अपनी पहचान बनाने के लिए इस भाषा का प्रयोग किया जाता हैं।

सन् 1881–82 में बिहार व मध्य प्रदेश में कैथी (देवनागरी लिपि) में लागू की गयी। इसी समय भारतेंदु बाबू ये माँग करते हैं कि यू0पी0 में भी हिन्दी भाषा को लागू किया जाना चाहिए। 1882 में पं0 मदन मोहन मानवीय और सर सैय्यद अहमद ने अपने–अपने पक्षकार के रूप में हंटर कमीशन के समक्ष अपनी–अपनी बातें रखीं। भारतेंदु का कहना था कि उर्दू को जो सम्मान मिल रहा है वह कचहरी में प्रयोग के कारण है। अगर यहाँ से इसे हटा दिया जाय तो इसका महत्व समाप्त हो जायेगा। इसे कोई पढ़ने वाला नहीं है। सरसैय्यद ने इस समय अपना बयान दिया कि उर्दू सम्राटों की भाषा है जबकि हिन्दी गवारों की। इस पर लोगों ने काह सरसैय्यद का बयान बहुत गैर जिम्मेदाराना हैं इस समय भाषा को लेकर कई सारे पत्रक हंटर कमीशन को सौंपे जाते हैं। खासकर पश्चिमी यू0पी0 का क्षेत्र जहाँ मुसलमानों की संख्या ज्यादा रही वहाँ से भी हिन्दी के पक्ष में मत आ रहे थे। इस समय कुल मिलाकर 67 हजार लोगों ने हिन्दी के पक्ष में अपना मत दिया। इसी समय हण्टर कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि संयुक्त प्रांत प्राथमिक शिक्षा में पीछे है। मदन मोहन मालवीय ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा कि यदि प्राथमिक षिक्षा में सुधार करना है तो भाषा नागरी होनी चाहिए क्योंकि आम आदमी को मातृ भाषा से सीखने में आसानी होती है, बजाये अन्य भाषा के। मदन मोहन मालवीय ने तर्क दिया कि बंगाल, महाराष्ट्र और मद्रास में शिक्षा का क्रमशः प्रसार हुआ है जबकि हमारी स्थिति में गिरावट है। इसका कारण हमारे यहाँ फ़ारसी को महत्व दिया जा रहा था। हिन्दी और उर्दू को समुदाय से जोड़ दिया जाना भाषाई विवाद का मुख्य वजह बना। सर सैय्यद ने भाषा को सीधे समुदाय से जोड़ने का प्रयास किया। उनके मन में सम्भवतः ये भी बात रहीं होगी कि हम सत्ता के केन्द्र में बने रहें, क्योंकि अगर हिनदी को लागू किया गया तो बहुसंख्यकों का शासन हो जायेगा। आर्य समाज आदि ने भी विवादों को कम न करने का ही प्रयास किया। लखनऊ में उर्दू एशोसिएशन की मीटिंग आयोजित होती है। इस सभा के लिए कहा गया कि इस सभा में आना मक्का

जाने से ज्यादा महत्वपूर्ण है। वहीं हिन्दी के पक्षकार ये कह रहे थे कि हमें हमारी भाषा में शिक्षा क्यों नहीं दी जा रहा है? हमें उर्दू–फारसी पढ़ने के लिए मज़बूर किया जा रहा है। अखबारों आदि के माध्यम से ये बातें बार–बार उठायी जा रही थीं। भाषा का विवाद समुदायों का विवाद बनाया गया और वह साम्प्रदायिक राजनीति का मुद्‌दा बनता गया।

I UnHk %

1. शर्मा, रामविलास, 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2012
2. तलवार, वीरभारत, 'रस्साकशी : उन्नीसवीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रान्त', सारांश प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2006
3. हसन, मुशीरुल, 'भारत में राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिक राजनीति', ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, संस्करण–2008
4. शुक्ल, रामचन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण–संवत् 2067, सन् 2010
5. हसन, मुशीरुल, 'भारत में राष्ट्रवाद और साम्प्रदायिक राजनीति', ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, संस्करण–2008
6. उद्धृत, तलवार, वीरभारत, 'रस्साकशी : उन्नीसवीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रान्त', सारांश प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2006
7. वर्मा, वन्दिता, 'ब्रिटिश सम्राज्यवाद के सांस्कृतिक पक्ष और 1857', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2009
8. सिंह, रामधारी, 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2010, पुनरावृत्ति–2013
9. रे, शांतिमय, 'आजादी का आन्दोलन और भारतीय मुसलमान', नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत, संस्करण : 2013, आवृत्ति : 2014

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 97-100

Hkkjrh; lkfgR; dh eyHkwr ,drk

vuqjk/kk xqIrk*

हमारा देश भारत विभिन्नताओं का देश है। इस महान् देश में अनेक भाषाएं अनेक साहित्य अनेक लिपि, अनेक बोली पढ़ी, लिखी एवं समझी जाती हैं। अनेक धर्म, जाति, सम्प्रदाय एवं वर्ग के लोग सदियों से रहते आए हैं। यहाँ एक साथ अनेक संस्कृतियाँ पलती–पनपती आ रही है। लेकिन अनेकता में एकता हमारी विशेषता है। भाषाओं की दृष्टि से हमारा देश एक विशालतम देश है। इसके उत्तर–पश्चिम में पंजाबी, हिन्दी और उर्दू, पूर्व में उड़ीसा, बंगला और असमिया, मध्य पश्चिम में मराठी और गुजराती और दक्षिण में तमिल तेलगु, कन्नड़ तथा मलयालम इनके अतिरिक्त देश में और भी भाषाएं है। जिनका साहित्यिक एवं भाषा वैज्ञानिक महत्व कम नहीं है–जैसे कश्मीरी, डोंगरी, सिन्धी, कोंकणी, भोजपुर, तुरु आदि, लेकिन उपर्युक्त प्रथम बारह भाषाओं का अपना साहित्य है जो विविध गुण। परिणाम एवं प्राचीनता की दृष्टि की कसौटी पर अत्यन्त समृद्ध है। हम देखते हैं कि बाहरी तौर पर मूलभूत एकता, अवश्य परिलक्षित होती है। इन सबके मूल में प्रवाहित इस सद्भाव एवं सौहार्द की धारा को हमारे संतो सूफियो। समाज सुधारकों भक्तों एवं गुरुओं आदि ने अपनी वाणी अथवा रचनाओं में समेट कर अभिव्यक्ति दी जिसके फलस्वरुप भारतीय साहित्य में एकता के लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

हमारे भारतीय संविधान में भी देश की करीब 18 भाषाओं को मान्यता प्राप्त है जैसे– (1) असमी, (2)बंगला,(3) गुजराती, (4) मराठी, (5) हिन्दी (6)कन्नड, (7) कश्मीरी, (8) मलयालम, (9) उड़िया, (10)पंजाबी, (11) संस्कृत, (12) तमिल,(13) तेलगु, (14) उर्दू, (15)सिन्धी, (16)कोंकणी, (17) कश्मीरी एंव (18) नेपाली इनमें से प्रत्येक भाषा–साहित्य का अपना स्वतंत्र व विशिष्ट महत्व है जो अपने प्रदेशके व्यक्तित्व से मुद्रांकित है। पंजाबी और सिन्धी, 'हिन्दी और उर्दू की प्रदेश सीमाएं कितनी मिली हुई हैं, किन्तु उनके अपने–अपने साहित्य की अलग विशेषता है। इसी प्रकार गुजराती और मराठी का जन जीवन परस्पर ओत–प्रोत किन्टु क्या उनके बीच मे किसी प्रकार भ्राँति सम्भव है? दक्षिण की भाषाओं का उद्गम एक है। सभी द्रविड़ परिवार की विभूतियाँ हैं, परन्तु क्या कन्नड़ और मलयालम या तेलगु और तमिल के स्वरुप क विषय में शंका हो सकती है? यही बात बगला, असमिया और उड़िया के विषय में सत्य है। बंगला के गहरे प्रभाव को पंचाकर असमिया और उड़िया अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाए हुए हैं।

जिस प्रकार अनेक धर्मों विचारधाराओं और जीवन–प्रणालियों के रहते हुए भी भारतीय संस्कृति की एकता असंदिग्ध है। उसी प्रकार अनेक भाषाओं और अभिव्यंजना पद्धतियों के रहते हुए भी भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता सम्भव है और उसका अनुसंधान भी सहज है। भारतीय साहित्य भी विविधता में विशेषता तो अपूर्व हैही, उसकी मौलिक एकता और भी रमणीय है। यहाँ हम इस अपूर्व एकता के आधार तत्वों का विश्लेषण करेंगे–

दक्षिण में तमिल और उर्दू को छोड़ भारत की लगभग सभी भारतीय भाषाओं का जन्मकाल प्रायः समान ही है, तेलगु साहित्य में प्राचीनतम ज्ञान कवि नत्रय को माना जाता है जिनका रचनाकाल ईसा की ग्यारहवीं शती के करीब है, कन्नड़ का प्रथम उपलब्ध ग्रंथ है कविराजमार्ग' जिसके लेखक है राष्ट्रकूट वंश के नरेश नृपतृंग (814–877ई), और मलयालम की सर्वप्रथम कृति है। 'रामचरितम' जिसके विषय में रचनाकाल और भाषास्वरुप आदि की अनेक समस्याएं हैं जो अनुमानतः तेरहवीं शती की रचना है। गुजरात एवं मराठी के आविर्भाव काल लगभग काल लगभग एक ही है। गुजराती का आदि ग्रंथ सन् 1185 ई.

*हिन्दी नेट, शिवदासपुर, मण्डुवाडीह, वाराणसी, उ0प्र0

में रचित शालिभद्र भारतेश्वर का 'बाहुबलिरास' है और मराठी के आदिम साहित्य का आरम्भ बारहवीं शती में हुआ था। यही बात पूर्व की भाषाओं में लागू होती है। बंगला के चर्चित गीतों की रचना शायद 10वीं और 12वीं शताब्दी के बीच किसी समय हुई होगी। असमियां–साहित्य के सबसे प्राचीन उदाहरण प्रायः तेरहवीं शताब्दी के अन्त की है। जिनमें सर्वश्रेष्ठ हैं हेम सरस्वती की रचनाएँ 'प्रहलाद चरित' तथा 'हर गौरी संवाद उड़िया भाषा में भी तेरहवीं शताब्दी में निश्चित रुप से व्यंगात्मक काव्य और लोक गीतों के दर्शन होने लगते हैं। इसी प्रकार पजाबी एवं हिन्दी में ग्यारहवीं शती से व्यवस्थित साहित्य उपलब्ध होने लगते हैं। केवल दो भाषाएँ ऐसी हैं–जिनका जन्मकाल भिन्न है–तमिल जो संस्कृत के समान प्राचीन है (यद्यपि मिल भाषी उसका उद्‌भव और भी पहले मानते हैं) और उर्दू जिसका वास्तविक आरम्भ पन्द्रवही शती से पूर्व नहीं माना जा सकता।

भारतीय साहित्यों का जन्मकाल के अतिरिक्त विकास के चरण भी प्रायः समान ही प्रतीत होते हैं, क्योंकि भारत के प्रमुख भाषाओं के साहित्यों का विकास चरण पद्रहवीं शताब्दी से लेकर अंग्रेजी शासन के अंत तक का समय माना जाता है। इन विकास क्रम का आधार स्तम्भ बिलकुल स्पष्ट है, क्योंकि वह भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन से बिलकुल जुड़ा हुआ है। बीच–बीच में कई प्रकार के व्यवधान होने पर भी देश में शताब्दियों तक समान राजनीतिक व्यवस्था रही है। मुगल शासन में तो लगभग 150 वर्षों तक उत्तर–दक्षिण और पूर्व–पश्चिम में घनिष्ठ सम्पर्क बना रहा। मुगलों के शासन के उपरान्त भी यह सम्पर्क बना रहा टूटा नहीं, जिसके कारण मुसलमानों के शासन प्रणाली में विभिन्न सम्प्रदायों में एकता की मूलभूत बातें दिखाई पड़ती थी। बाद में अंग्रेजों ने तो केन्द्रीय शासन व्यवस्था कायम कर इस एकता को और सुदृढ़ किया इन्हीं सब कारणों से भारत के विभिन्न भाषा–भाषी प्रदेशी की राजनीतिक परिस्थितियों में पर्याप्त साम्य रहा है।

इतिहास के अवलोकन करने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक परिस्थितियों की अपेक्षा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ का साम्य और भी अधिक रहा है। पिछले तीन–चार शाब्दी में अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलन ऐसे हुए जिनका प्रभाव देशव्यापी था। बौद्ध धर्म के हास के युग में उसकी कई शाखाएं और शैव–शाक्त धर्मों के संयोग से नाथ सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ। तो ईसा की द्वितीय सहस्त्राब्दी के आरम्भ मे उत्तर में तिब्बत आदि तक दक्षिण में पूर्वी घाट के प्रदेशों में, पश्चिम में महाराष्ट्र आदि में और पूर्व में प्रायः सर्वत्र संतो का प्रभाव फैला हुआ था योग की प्रधानता होने पर भी इन साधुओं की साधना में जिनमें नाथ, सिद्ध और शैव सभी थे, जीवन के विचार और भाव पक्ष उपेक्षा नहीं थी और इनमें अनेक साधु आत्माभिव्यक्ति एवं सिद्धान्त–प्रतिपादन दोनों के लिए कवि–कर्म में प्रवृत्त होते थे। भारतीय भाषाओं के विकास के प्रथम चरण में इन सम्प्रदायों का प्रभाव प्रायः विद्यमान था। इनके बाद इनके उत्तरधिकारी संत सम्प्रदायों और नवागत् मुसलमानों के सूफी मत का प्रसार देश के भिन्न–भिन्न भागों में होने लगा संत–सम्प्रदाय वेदान्त दर्शन से प्रभावित थे और निर्गुण भक्ति की साधना तथा प्रचार करते थे। सूफी धर्म में भी निराकार ब्रह्म की ही उपासना थी। किन्तु उसका माध्यम था उत्कृट प्रेमानुभूति। सूफी–संतों का यद्यपि उत्तर–पश्चिम में अधिक प्रभुत्व था। फिर भी दक्षिण के बीजापुर एवं गोलकुण्डा राज्यों में भी इनके अनेक केन्द्र थे और वहाँ भी अनेक सूफी–संत हुए। इनके पश्चात् वैष्णव आन्दोलन का आरम्भ हुआ जो समस्त देश में बड़ी तीव्रगति से फैल गया। राम और कृष्ण की भक्ति के अनेक मधुर पद्धतियों का देश भर में प्रचार–प्रसार हुआ और समस्त भारतवासी सगुण ईश्वर के लीला गान से गुजित हो उठे। उधर मुस्लिम संस्कृति एवं सभ्यता का प्रभाव भी निरन्तर बढ़ रहा था। ईरानी संस्कृति के अनेक आकर्षक तत्व जैसे वैभव–विलास, अलंकरण–सज्जा आदि भारतीय जीवन में बड़ी तेजी से घुल–मिल रहे थे और एक नई दरबारी या नागर संस्कृति का जन्म हो रहा था। राजनीतिक और आर्थिक पराभव के कारण यह संस्कृति शीघ्र ही अपना प्रसादमय प्रभाव, खो बैठी और जीवन के उत्कर्ष एवं आनन्दमय पक्ष के स्थान पर रुग्ण विलासिता ही शेष रह गई। तभी पश्चिम के व्यापारियों का आगमन हुआ जो अपने साथ पाश्चात्य शिक्षा–संस्कार लाए और जिनके पीछे–पीछे मसीही प्रचारकों के दल भी भारत में प्रवेश कर गए। उन्नीसवीं शती में अंग्रेज का प्रभुत्व देश में स्थापित हो गया और शासक वर्ग सक्रिय रुप से योजना बनाकर अपनी

शिक्षा, संस्कृति और उनके माध्यम से प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में अपने धर्म का प्रचार करने लगे। प्राच्य एवं पाश्चात्य के इस सम्पर्क और संघर्ष से आधुनिक भारत का जन्म हुआ।

भारत के आधुनिक साहित्य का विकास क्रम भी लगभग समान ही है। विदेशी धर्म–प्रचारकों और शासकों के प्रयत्नों के फल– स्वरुप पाश्चात्य तथा संस्कृति के साथ सम्पर्क एवं संघर्ष और उससे पुनर्जागरण युग का उदय राष्ट्रीय आंदोलन की प्रेरणा से साहित्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का उत्कर्ष साहियत्य में नीतिवाद एवं सुधारवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया और नई रोमानी सौन्दर्य दृष्टि का प्रवेश चौथे दशक में साम्यवादी विचारधारा। के प्रचार से द्वंदात्मक भौतिकवाद का प्रभाव, इलियट आदि के प्रभाव से नए जीवन की बौद्धिक कुण्ठाओं और स्वप्नों की शब्द रुप देने के नए प्रयोग और अंत में स्वतंत्रता के बाद विश्व कल्याण की भावना से प्रेरित राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का विस्तार–यही संक्षेप में आधुनिक भारतीय भाषाओं की विकास की रुपरेखा है, जो सभी भाषाओं मे समान रुप से परिलक्षित होती है।

अब हम विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यिक पृष्ठाधार की चर्चा करेंगे भारतीय भाषाओं का परिवार यद्यपि एक नहीं है फिर भी उनका साहित्यिक विषयवस्तु परिवेश समान ही दिखाता है। रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत् सस्कृत का अभिजात साहित्य–अर्थात् कालिदास, भवभूति, बाणभटट, श्री हर्ष, अमरुक और जयदेव आदि की अमर कृतियाँ, पत्नी, प्राकृत तथा अप्रभ्रंश में लिखित बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मों का साहित्य भारत की समस्त भाषाओं को उत्तरराधिकार में मिला है। शास्त्र के अन्तर्गत उपनिषद् षड्दर्शन स्मृतियाँ आदि और उधर काव्यशास्त्र के अमरग्रंथ– नाट्यशास्त्र,ध्वन्यलोक, काव्यप्रकाश, साहित्य दर्पण, रसगंगाघर आदि की विचार–भवभूति का उपयोग भी सभी ने निरन्तर किया है। वास्तव में आधुनिक भारतीय भाषाओं के ये अक्षय प्रेरणास्रोत हैं और प्रायःसभी को समान रुप से प्रभावित करती रही हैं। इनका प्रभाव निश्चय ही अत्यन्त समन्वयकारी रहा है और इनमें प्रेरित साहित्य में एक प्रकार की मूलभूत समानता स्वतःही आ गई इस प्रकार समान राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक अधारभूमि पर पल्लवित एवं पुष्पित भारतीय साहित्य में जन्मना समानता एक सहज घटना है।

भारतीय साहित्य की काव्य शैलियों और काव्य रुपों की मूलभूत एकता भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। भारत के प्रायः सभी साहित्यों में संस्कृत से प्राप्त काव्य शैलियों– महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, कथा आदि के अतिरिक्त अपभ्रशं की भी अनेक शैलियाँ जैसे–चरित काव्य,प्रेमगाथा शैली, रास पद–शैली आदि प्रायः समान रुप में मिलती है, अनेक वार्णिक छंदों के अतिरिक्त अनेक देशी छंद–दोहा, चौपाई आदि भी भारतीय साहित्य के लोकप्रिय छंद हैं। इधर आधुनिक युग में पश्चिम की अनेक काव्य रुपो और छंदों का–जैसे प्रगति काव्य और उसके अनेक भेद्रो, संबोध–गीत, शोक–गीत, चतुर्दशपदी और मुक्त छंद, गद्य–गीत आदि का प्रचार भी सभी भाषाओं में हो चुका है। यही बात भाषा के विषय में भी सत्य है यद्यपि मूलतः भारतीय भाषाएं दो विभिन्न परिवारों–आर्य एवं द्रविड़ परिवार की भाषाएं हैं, फिर भी प्राचीनकाल में संस्कृत, पाली,प्राकृतों और अपभ्रंशों के और आधुनिक युग में अंग्रेजी के प्रभाव के कारण रुपों एवं शब्दों की अनेक प्रकार की समानताएं सहज ही दिखाई पड़ती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भातीय साहित्य की विचारधारा भी लगभग एक ही है भले ही वह विभिन्न भाषाओं में व्यक्त किए गए हैं। हालांकि स्वतंत्रता प्राप्ति तंक विदेशी प्रभाव के कारण भाषाओं के अध्ययन एवं प्रचार–प्रसार में भी अनेकता के बीज बोए गए, लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय साहित्य में उपजे विचार सोच भी लगभग एक ही दिखाई पड़ती है।

हम यह भी देखते है कि भारत की विभिन्न भाषाओं में कृष्ण की बाल–लीला, तुलसी के रामचरितमानस, माहभारत में पांडवों और कौरवों के गौरवपूर्ण गाथा आदि का तुलनात्मक,अध्ययन उनके साहित्य की विशेषताओं में से एक है। इससे भारतीय चिन्ताधारा एवं रागात्मक चेतन के अखण्ड एकता की झलक मिलती है। हालांकि यह विषय अभी अनुसंधान का विषय है, क्योंकि अभी तक भारतीय अनुसंधानकर्ताओं की पकड़ भारत के कुछ प्रादेशिक भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेजी तथा संस्कृत तक ही सीमित है। आज जरुरत है कि विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधि साहित्य का दूसरी अन्य भाषा में अनुवाद कराकर शुरु की कक्षाओं से लेकर स्नातक की कक्षाओं तक भाषा एवं अन्य विद्यार्थियों के लिए

अनिवार्य किया जाए ताकि भारतीय जनमानस की विचारधारा, सोच एवं आदेश देश के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँच सके। इसके अतिरिक्त साहित्यिक इतिहास, परिचय, तुलनात्मक अध्ययन, अनुसंधान आदि, अंतः साहित्यिक गोष्ठियों की स्मयक् व्यवस्था द्वारा परस्पर आदान–प्रदान की सुविधा मुहैया कराई जाए। हालांकि कतिपय संस्थाएं इस दिशा में कार्य कर रही हैं, किन्तु अभी तक यह कार्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही है। इसके लिए जैसी व्यापक एवं संगठित प्रत्यत्न की अपेक्षा की जाती है वैसा आयोजन अभी नहीं हो रहा है। फिर भी भारतीय साहित्य' की प्रबुद्धि ही अपने आप में एक शुभ लक्षण है।

भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए सांस्कृतिक एकता का आधार अनिवार्य है और सांस्कृतिक एकता का सबसे दृढ़ एवं स्थायी आधार है साहित्य जिस प्रकार अनेक निराशावादियों की आशंकाओं को विफल करता हुआ हमारा राष्ट्र निरन्तर अपनी अखण्डता का प्रतीक बनता जा रहा है, उसी प्रकार एक सामाजिक इकाई के रुप में भारतीय साहित्य का विकास भी धीरे–धीरे हो रहा है और उसमें रची–बसी मूलभूत एकता सदैव विद्यमान रहेगी।

lUnHkZ %

1. वन्दना कुमारी, भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता,प्रतियोगिता दर्पण, नवम्बर, 2003 पृ0 842–843
2 अपेक्षा – जुलाई दिसम्बर 2011 पृ0 109
3 डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक– साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 15 मार्च 1964, पृ0 25

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 101-105

'kkjhfjd v{kerk vkj f'k{kk i.kkyh ij pkV djrh fluek ^fgpdh^

MkO eerk [kk.My*

भारत जैसे एक अरब से अधिक आबादी वाले विकासशील देश में इस तथ्य से अधिक चिन्ताजनक आंकड़े हैं कि हर 100 में से दो व्यक्ति किसी न किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक कमजोरी में जीते हैं। हिन्दी सिनेमा ने समय–समय पर शारीरिक या मानसिक कमजोरी में जीते लोगों को फिल्म का किरदार बना समाज को इनके प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण देने का प्रयास किया है। 1964 में बनी 'दोस्ती' दो विकलांग किरदारों की कहानी है। 1967 में 'उपकार' 1972 में फिल्म बनी 'कोशिश' जिसमें एक गूंगे–बहरे दम्पति को अपनी तमाम परेशानियों के बावजूद एक सामान्य जीवन जीता दिखाया गया है। 1980 में 'स्पर्श' नाम से बनी एक नेत्रहीन किरदार की कहानी है। 1986 में 'नाचे मयूरी' ने समाज की सोच को बदलने पर मजबूर किया कि शारीरिक अक्षमता लक्ष्य प्राप्ति में रूकावट नहीं हो सकती। 2005 में बनी 'ब्लैक' फिल्म हॉलीवुड की 'द मिरेकल वर्कर' पर आधारित थी इन दोनों फिल्म की कहानी हेलेन केलर के जीवन पर आधारित थी, जो देखने और सुनने की क्षमता न होने के बावजूद ना केवल स्नातक की उपाधि हासिल करती हैं बल्कि पुरे विष्व के लिए एक प्रेरणा पूंज भी बनती है। 2007 में बनी फिल्म 'तारे जमीं पर' ने डिस्लेक्सिया पीड़ितों की जिन्दगी और समस्या को पर्दे पर जीवन्त किया। 2008 में बनी 'गजनी' में 'एटीरोग्रेड़ एम्नेसिया' नामक बीमारी के साथ किरदार को प्रस्तुत किया गया है। 2009 में 'पा' में प्रोजेरिया नामक बीमारी को रखा गया है। 2010 में बनी "माइ नेम इज खान" में किरदार एस्पर्जर्स सिन्ड्रोम से पीड़ित है।

हिन्दी सिनेमा ने वैश्वीकरण के इस दौर में शारीरिक अक्षमता को नयी दृष्टि से देखने और समझने का प्रयास किया है। 2018 में बनी यश राज फिल्म्स की 'हिचकी' भी शारीरिक अक्षमता और उस पर मानसिक विजय की कहानी है। यह हॉलीवुड़ फिल्म 'फ्रंट ऑफ द क्लास' पर आधारित है। यह ब्रैड कोटेन की आत्मकथा 'फ्रंट ऑफ द क्लास : हाउ टौरेट सिंड्रोम मेड मी द टिचर आई नेवर हैड' का हिन्दी संस्करण है। यश राज फिल्म्स ने इस आत्मकथा के अधिकार हासिल किये और स्वयं कोहेन भी फिल्म निर्माण के दौरान सलाह देते रहे थे।

क्या होता है ये टूरेट सिंड्रोम? साधारण भाषा में जब दिमाग के सारे तार आपस में जुड़ नहीं पाते हैं तो व्यक्ति को लगातार हिचकी आती है, गले से कुछ अजीब–सी आवाजें निकलती हैं, चेहरे के हाव–भाव अलग होने लगते हैं, आँखे झपकने लगती हैं इन अजीब–सी लगातार निकलती आवाजों के साथ सामाजिक जीवन जीना फिर अपने सपनों को पूरा करना कोई बहुत आसान नहीं होता। लेकिन ये हिचकियाँ और आवाजें नैना माथुर के जीवन का हिस्सा है जिसे उसे स्वीकार करना ही है। नैना की अपनी जिन्दगी से जंग शुरू होती है जब बचपन में उसे इन हिचकियों की वजह से स्कूलों से निकाला जाता रहा और उसके पिता स्कूल, घर, दुकान, मार्केट आदि जगहों पर उसकी वजह से अपमानित सा महसूस करने लगे। उसके पिता उसे इन आवाजों के साथ स्वीकार नहीं कर पाते हैं और पिता–बेटी के रिश्ते में कडवाहट भरने लगती है। लेकिन जीवन जब सहज ही नहीं हो तो सपने पुरे करने इतने आसान कहाँ हो पाते हैं? खासकर तब जब सिपाही इस जंग में अकेला और निहत्था हो।

*सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बान्दरसिन्दरी, किशनगढ़, अजमेर, राजस्थान

बच्ची नैना 12 स्कूलों से निकाली जाती है। अंत में उसे 13 वीं स्कूल सैंट नोटकर में प्रिंसिपल मी. खान की वजह से एडमिशन मिलता है। नैना चाहती है कि उसे अन्य छात्रों की तरह ही स्वीकार किया जाए और प्रिंसिपल खान उससे यह वादा करते हैं। बच्ची नैना प्रिंसिपल खान से काफी प्रेरित होती है और टीचर बनना ही अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करती है। वह कहती है– एक सामान्य अध्यापक पढ़ाता हैं, एक अच्छा अध्यापक समझाता है, बहुत अच्छा अध्यापक हो तो खुद करके दिखाता है लेकिन कुछ अध्यापक प्रेरणा बन जाते है। वह अपनी कमजोरी से ऊपर उठ दूसरों के लिए प्रेरणास्त्रोत बनने का अर्थात् एक बहुत अच्छा टीचर बनने का निर्णय लेती है।

नैना माथुर अब टिचर बनने की कोशिश कर रही है। अपनी हिचकियों की वजह से बहुत से स्कूलों से रिजक्ट होती है। स्वाभाविक भी है। हिचकियों की अजीब आवाजें उसकी प्रतिभा पर हावी रही। 18 बार असफल होने के बाद 19 वीं बार चुन ली जाती है। यह सही है कि उसकी असाधारण प्रतिभा से प्रिसिंपल प्रभावित होते जरूर हैं" सिंड़ोम स्पीच में है इटेलिजेन्स में नहीं।[1]

लेकिन उनकी एक मजबूरी भी थी। उन्हें 9F क्लास को पढ़ाने के लिए एक टिचर की बेहद आवश्यकता थी। इस क्लास के लिए प्रिंसिपल नैना में एक उम्मीद देखते है और उसे नौकरी मिल जाती है।

9FClass क्या है? यहाँ फिल्मकार समाज के एक और ज्वलंत प्रश्न को उठाता है। 9F स्कूल का आखिरी बैच है जिसमें स्लम ऐरिया के बच्चे पढ़ते हैं। म्यूनिसपालिटी के स्कूल के टूटने और उस जगह को स्कूल द्वारा प्ले–ग्राउण्ड के लिए खरीदने की वजह से उस स्कूल के छात्रों को 'शिक्षा सभी के लिए' के तहत एडमिशन लेना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए ये बच्चे स्कूल के दूसरों बच्चों द्वारा कभी नहीं अपनाए जाते यहाँ तक की अध्यापक भी इन्हें हीन दृष्टि से देखते हैं।धीरे–धीरे यह क्लास भी बगावत पर उतर जाती है।

अब नैना के सामने एक चैलेंज है, अपने को टीचर के रूप में साबित करने का वह भी अपनी असामान्य स्थिति के साथ। क्या वह क्लास उसे स्वीकार करेगी। छात्रों और अध्यापकों या फिर स्कूल प्रशासन द्वारा नकारे जाने वाली क्लास अब तक काफी ढ़िठ और बदतमीज़ बन चुकी थी, वह नैना को स्वीकारती नहीं है।

वह क्लास नैना को स्कूल से निकालने की बहुत कोशिश करती है। उनका व्यवहार उसके प्रति जितना बिगड़ता नैना उतनी मजबूत बनती चली जाती। आखिर नैना ने शिक्षा पाने के लिए 12 स्कूल की यात्रा की थी। वह जानती थी–शिक्षा का महत्व। वह अपने पिता द्वारा नकारी हुई थी, वही समझ सकती थी नकारे जाने की पीड़ा। वह इन छात्रों की बदमाशियों के पिछे नकारे जाने के दर्द को जानती थी। उसने उन बच्चों को एक चुनौती के रूप में लिया। इसलिए वह उनकी हर बगावत वाली शरारत को सहजता से स्वीकार करती चली जाती है। वह प्रिंसिपल के सामने उनकी बदमाशियों को नकारते हुए उनकी वकालत करती है। नैना जानती थी जिन छात्रों को पढ़ाने की जिम्मेदारी उसे मिली है वो बहुत तंग माहौल से आये हैं। सुबह–शाम पानी के लिए लाइन में खड़े होना, दो वक्त की रोटी जुटाने में अपने माता–पिता के साथ जिम्मेदारीयाँ साझा करना।

फिल्मकार ने नैनामाथुर के नायकत्व को उभारने के लिए दो बड़ी समस्याओं को आपस में जोड़ा है–एक शिक्षक के पढ़ाने और विद्यार्थीयों के साथ व्यवहार करने की शैली और दूसरी सामाजिक–आर्थिक भिन्नता की हकीकत। सैंट नोटर उस शहर का एक प्रतिष्ठित विद्यालय है जो समृद्ध वर्ग से आने वालों बच्चों का विद्यालय है। 'शिक्षा का आधिकार' के दबाव में 9F सेक्शन बनाया जाता है। फिल्म 'शिक्षा के अधिकार' के नाम पर छात्रों के साथ किया जा रहा व्यवहार, भेद–भाव, आदि पर भी प्रश्न चिन्ह लगाती है।

नैना अपने छात्रों और उनके परिवेश को समझने के लिए उनकी झोपडपट्टी में जाती है। उनको वो उनकी हकीकत के साथ देखती है। कोई सट्टे की बाजी लगा रहा है, कोई सब्जी का ठेला लगा रहा है, तो कोई पंक्चर ठिक कर रहा है, किसी की माँ मछली बेचने बाजार गई है, तो कोई पानी के लिए लाइन में खड़े रह धक्का–मुक्की से अपने हिस्से के पानी के लिए ठेला–ठेली करता है।

निर्देशक ने इस पहल को खूबसूरती से दिखाया है। कैमरा स्कूल की चकाचौंध, से निकलकर झोपड़पट्टी में जाता है, जहाँ पीने के पानी के इंतजार में पीपे और बर्तनों की बहुत लम्बी लाइन लगी है, लेकिन जैसे ही पाली की सप्लाई शुरू होती है तो धक्कामुक्की और एक–दूसरे को ठेलते हुए दौड़ भाग का दृश्य, सट्टा खेलते हुए बच्चों को पकड़ने के लिए पुलिस का दौड़ना और बच्चों का खप्परैलों पर कूद भाग जाना, बस्ती में बिजली का कभी भी कट जाना, वहाँ छात्रों के माता–पिता की आँखो में नैना माथुर को लेकर उम्मीदों से भरना आदि है।

नैना को लगने लगा है वह भी महत्वपूर्ण है इन छात्रों के टीचर के रूप में। इन 'इकोनोमिकली वीकर सेक्शन' के विद्यार्थियों को स्कूल की कई सारी सुविधाओं का प्रयोग करने की इजाजत नहीं। टीचर नैना माथुर जानती है कि जिन्दगी रियलिस्टिक होती है। जब इम्तिाहान लेती है तो स्वजेक्ट वाइस नहीं लेती। वह उन्हीं की शैली में उन्हें पढ़ाना शुरू करती है। वह अब तक समझ चुकी थी 'केवल विद्यार्थी ही अच्छें नहीं होते, कई बार शिक्षक भी अच्छे नहीं होते।' प्रत्येक विद्यार्थी को पढ़ाया, सिखाया और आगे लक्ष्य को पाने के लिए प्रेरित भी किया जा सकता है, शर्त है विद्यार्थी के साथ समझ का ताल–मेलबैठाने का। उसे अपनी अध्यापकीय पद्धति पर विश्वास हैं और उसी के दम पर वह क्लास रूम की चारदिवारी से बाहर अपने छात्रों को निकालकर मैदान में पढ़ाती है। गणित, भौतिकी आदि विषयों को समझाने के लिए क्लास में सभी विद्यार्थियों के पास उबले अंडे भी उछालती है। बास्केटवाल खेलते हुए, छत पर आसमान के तारे दिखाते हुए, बस में चलते हुए वह लैबरेटरी के उपकरणों से अलग सामान्य वस्तुओं से मॉस, डेनसिटी, इक्वेशन, समझाती है। वह 9 Aके क्लास टीचर मिस्टर वाडिया का व्यंग्य "मिस माथुर इम्तहान बच्चों से ज्यादा आपका है"[2] को दृढ़ संकल्प के साथ स्वीकार करती है। वह प्रिसिंपल को भरोसा दिलाती है 9 F निश्चित एक प्रिफेक्ट बैंच बनेगी। उसे विश्वास है कि वह यह सब कुछ कर सकती है क्योंकि पढ़ाना उसके लिए मात्र एक नौकरी, अपनी रोजी–रोटी कमाने का महज साधन नहीं है, अपितु पैशन है। निर्देशक ने नैना माथुर के पढ़ाने के तरीके, विद्यार्थियों को अपने में पूरी तरह से डूबो देना, उनके अन्दर की नकारात्मक भावना को कागज पर लिख जहाज बना उनका उड़ाना, को न केवल खूबसूरती से प्रस्तुत किया है दर्शक के मन में एक प्रश्न भी देता है शिक्षा किस प्रकार दी जानी चाहिए। थोप कर उसे कठिन बनाना या मनोरंजन के साथ उसे सहज बनाना। शिक्षक कैसा होना चाहिए? खौफ पैदा करने वाले या मित्र जैसा जिसके साथ सहज हो सके विद्यार्थी। फिल्म देखते हुए 'जागृति' फिल्म के मास्टरजी की भी याद दिलाती हैं जो विद्यार्थी के अन्दर छिपी प्रतिभा को बाहर निकालने के लिए किस प्रकार विद्यार्थियों में अपने आप को तिरोहित कर देते हैं। यह फिल्म 1954 में आई थी। फिल्म 'ब्लैक' भी शिक्षा का नया अध्याय लिखती है जिसमे देखने सुनने की शक्ति से हीन किरदान मिशेल मैथनेली को इसके शिक्षक मि. सहाय सपर्श और इशारों के साथ अंसभव शब्द के अलावा सब कुछ सिखाते हैं जिसे मिशेल अच्छी तरह समझती है। यह फिल्म है विद्यार्थी और शिक्षक के मध्य एक समझदार आपसी परिचय की। तभी सीखने–सिखाने की स्थिति बन सकती है। यहाँ मि.सहाय अपनी विद्यार्थी को समझाते हैं– 'सबसे खतरनाक होता है, सपनों का मर जाना"[3] और सपने आँखों से नहीं मन से देखे जाते हैं। मिशेल भी आँखों की रोशनी के अभाव में सपना देखती है, स्नातक का सपना। अमिर खान द्वारा निर्देशित 'तारे जमीं पर' (Every child is special) प्रांरभ होती हैं किरदार ईशान की असफलता से लेकिन समाप्त होती है उसकी सफलता से। असफलता से ग्रसित डिस्लेक्सिया से पीड़ित ईशान को उसके नये शिक्षक निकुंभ उसे सफलता का सही और सार्थक पाठ बनाते है। तात्पर्य है "हर विद्यार्थी महत्वपूर्ण होता है"[4] शर्त है शिक्षक उसे उसी तरह स्वीकार करे जैसा वह है।

माता–पिता के पश्चात शिक्षक ही वह दूसरा व्यक्तित्व होता है जो एक बच्चे का सुन्दर और आत्मविश्वास से पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण कर सकता है। निर्देशक ने मिस माथुर को एक बेहद अच्छे टीचर के रूप में प्रस्तुत किया है, जो केवल पाठ को ही आसान बनाकर नहीं समझाती, वरन एक एकटिविस्ट की तरह उनके अंदर उर्जा भी भरती है। जीवन मूल्य देती है, किसी भी परिस्थिति में सच्चाई के साथ अड़िग खड़े रहने का आत्मबल भी भरती है और अंतः वह उनको दिशा दिखाने वाली 'पोल स्टार' भी बनती है।

फिल्म अपनी शुरूआत में ही तीन प्रश्न लेकर उपस्थित होती है। नैना माथुर स्कूल में एक टीचर का इन्टरव्यू देने के लिए आई है। वह काफी नर्वस है, तभी एक छोटे बच्चे की कागज की जहाज उसके पैरों में आकर गिरती है। उसे एक मुस्कान के साथ वह कागज की जहाज वापस करती है। इन्टरव्यू के दौरान उसको इस न्यूरालॉजी सिंड्रोम की वजह से नकार दिया जाता है तब वह कहती है 'आखिर हम कब तक सोते रहेंगे'। निर्देशक ने इस पहलू को गहराई से पकड़ा है। भाषण शैली के बजाय कार्य रूप में अपनी फिल्म में इस प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत किया है। नैना हर परेशानी, हर चैलेंज को मुस्कान के साथ स्वीकार करती है और अपनी शिक्षा पद्धति से अपने साथी अध्यापक और अपने आस–पास के समाज को जगाने का प्रयास करती है। उसका प्रयास न केवल अपनी क्लास को प्रिफेक्ट बनाता है बल्कि मि. वाड़िया में भी परिवर्तन लाता है।

लेकिन यह फिल्म केवल नैना की शारीरिक अपंगता, उसकी सोच हर बच्चे को चाहे वह हो या कोई और "उसे वैसे ही स्वीकार किया जाए जैसे वह है" को ही प्रस्तुत नहीं करती बल्कि हमारे पूरे एजुकेशन सिस्टम, अध्यापक के तरीकों, निम्न वर्ग की समस्याओं और उन समस्याओं से जूझते हुए भी अपनी संतानों के लिए सुरक्षा और शिक्षा का स्वप्नदेखते रहने की और बड़ी शिद्दत से उन सपनों को पूरा होने की कामना करते अभिवावकों की बात भी करती है।

वह फिल्म इस बात पर भी प्रश्नचिन्ह लगाती है कि प्रतिभाओं को किस प्रकार निखारा और तराशा जाता है। कभी सॉफ्ट तो कभी शार्प टूल के प्रयोग से। एक शिक्षक के लिए यह बात कोई मायने नहीं रखती कि विद्यार्थी का संबंध किस वर्ग से है, उसकी पारिवारिक और आर्थिक स्थिति कैसी है। फिल्म में अनेक ऐसे दृश्य है जो दिल पर चोट करते हैं कि बचपन कितना कुछ सीखाता है अपने अनुभव से और उससे भी ज्यादा पीड़ा की बात यह है कि 'किस तरह' से सीखाता है।

यह फिल्म हमें सीख देती है– लक्ष्य प्राप्ति की जिद के बीच किसी को आने की इजाजत नहीं अपनी शारिरीक कमजोरियाँ भी नहीं। अपने ही विद्यार्थी से यह सुनने पर भी 'दो शब्द बोलती हो चार पर हिचकी लेती हो, क्लास को सर्कस बना रखा है"।[5] मि. वाड़िया के द्वारा उसके"संकल्प को तोड़ने की कोशिश के बाद वह पूरे जोर से कहती है। "इसके बावजूद मैं 9F की क्लास टीचर हूँ और अब भी वह मेरी क्लास है।"[6] उसका यह संकल्प धीरे–धीरे उसके विद्यार्थियों में रूपान्तरित होने लगता है और फिल्म के समापन पर हम इस रूपातंरण को पूरे साकार रूप में होता देखते है। 'हिचकी' पूरी सिद्दत से जिजिविशा की ओर या़त्रा की सिनेमा है।

"कथा सिनेमा की नींव होती है, जिसके आधार पर सिनेमा का पूरा ढ़ाँचा तैयार होता है।"[7] फिल्म की कथा की प्रमुख और अनिवार्य विशेषता होती है–दृश्यात्मकता। इस संदर्भ में मनोहर श्याम जोशी की यह धारणा कि "जँहा तक फिल्म के लिए आदर्श कहानी का सवाल है, उनमें उपकथानक न बहुत ज्यादा होने चाहिए और न मुख्य कथानक से बिलकुल स्वतंत्र"[8] रानी मुखर्जी ने मुख्य अभिनेता नैना माथुर का किरदार बेहद खूबी से साथ निभाया है। एक अच्छा कलाकार उम्र से अनुभव लेता हुआ अधिक परिपक्व होता चला जाता है। ब्लैक की बेहतरीन अदाकारी के बाद रानी मुखर्जी इस फिल्म के माध्यम से अपने

आप को एक मंजे हुए कलाकार के रूप में साबित करती है और पूरी फिल्म की सफलता वह अपने कंधों पर लेती है।पहली फ्रेम में ही वह दर्शकों से सीधे जुड़ जाती है और इसी कारण फिल्म से दर्शक बंधे रहते हैं।

नैना के खिलाफ खड़े शिक्षक के रूप में नीरज काबी का अभिनय भी दमदार है। उनके चेहरे के भाव और बॉड़ी लैंगवेज देखने लायक है। सभी बच्चों का अभिनय भी नैसर्गिक है।

इसकी सफलता इन आंकड़ों से भी लगाई जा सकती है कि यह 12 करोड़ के सीमित बजट पर निर्मित होती है और 2018 की पांच सर्वाधिक कमाई (231–77 करोड़) करने वाली बॉलीवुड़ फिल्मों में एक साबित होती है। इसके साथ ही किसी महिला नायक की मुख्य भूमिका वाली तीसरी सर्वकालिक उच्चतम कमाई करने वाली भारतीय फिल्म है।

फिल्म के पटकथा लेखक है– अंकुर चौधरी, सिद्धार्थ पी मलहोत्रा अंबर हड़प, और गणेश पंड़ित। निर्देशक सिद्धार्थ पी मल्होत्रा और निर्माता मनीष शर्मा। सिनेमा अपने रूप में एक समग्र प्रभाव छोड़ता है कि सिनेमा का निर्देशन करना थोड़ा कठिन है रंग कर्म के आगे एक समस्या होती है निर्देशक 'लोकेशन' की बारीकियों को अभिनय, संगीत और प्रकाश व्यवस्था के द्वारा कैसे संयोजीत करे ?"[9] निर्देशक मल्होत्रा इमोशनल सीन फिल्माने में दक्ष लगे। जैसे नैना के बचपन के दृश्य, नैना और उसके खान टीचर वाला सीन, नैना द्वारा स्टूडेंट्स को अपना डर दूर करने वाला दृश्य, नैना के डर, तनाव, खीझ को हिचकियों के माध्यम से प्रस्तुत करने वाले दृश्यों में काफी जान डाली गई है।

फिल्म में संगीत दिया है जसलीन रॉयल ने। गाने फिल्म की थीम के अनुरूप है खास कर 'ओये हिचकी मैड़मजी गो ईजी'। संगीतकार किसी भी पंक्ति को चाहे वह कितनी भी सपाट क्यों न हो, अपनी धुन और मिश्रीत संगीत से लोकप्रीय बना देता है जिसके कारण वह मनभावन लगने लगते है और दर्शक उन गानों के साथ जुड़ाव महसूस करने लगता है। सिनेमाटोग्राफी और अन्य तकनीकी पात्र भी अच्छे हैं।

सिनेमा में बिम्ब की यात्रा उलटी शुरू होती है। अभिप्राय है, चित्र से शब्द की ओर आना, चित्र से विचार की ओर आना। पर्दे के पीछे वह शब्द से चित्र की और आता है, और पर्दे पर वह चित्र से शब्द की और जाता है। इसी आधार पर 'हिचकी' अपने टाइटल को सार्थक करती हुई अपने उद्देश्य तक पँहुचने का सफलतम प्रयास करती हुई नजर आती है। स्कूल बनाम विद्यार्थी, टीचर बनाम विद्यार्थी, प्रशासन बनाम विद्यार्थी के कुछ इमोशनल सीन और होते तो शायद बेहतरीन उदाहरण बन जाती। फिर भी 116 मिनट में यह फिल्म कुछ कहती हुई कुछ प्रश्नों को निरूत्तर करती है। बॉक्स ऑफिस के फार्मूले से अलग अपनी मासूमियता के साथ प्रस्तुत यह एक सफल फिल्म है।

lUnHkZ %

1. फिल्म हिचकी
2. फिल्म हिचकी
3. फिल्म ब्लैक
4. फिल्म तारे जमीं पर
5. फिल्म हिचकी
6. फिल्म हिचकी
7. डॉ गोकुल क्षीरसागर सिनेमा और फिल्मांतरित हिन्दी साहित्य विकास प्रकाशन– कानपुर पृ0 25
8. मनोहर श्याम जोशी– पटकथा लेखन : एक परिचय पृ0 22
9. अरूण कुमार– यहाँ से सिनेमा, साहित्य भण्डार, इलाहबाद पृ0 31

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 106-108

ifrek'kkL= dh mikns;rk

MkW0 Lor= dqekj ekS;Z*

भारतीय कला के स्वरूप व परिवेश के उपादेयता के विषय में प्राचीन साहित्य से महत्वपूर्ण वृत्तांत प्राप्त होते हैं। अनेक विदेशी यात्रियों या विजेताओं आदि ने भी यदाकदा ऐसे वृत्तांत दिये हैं जिनसे प्राचीन कला परम्परा का स्पष्टीकरण होता है। इन विभिन्न विवरणों में कहीं तो किसी विशिष्ट धार्मिक परम्परा के परिप्रेक्ष्य में कला एवं स्थापत्य से सम्बन्धित संदर्भ प्राप्त होते है। जैसे ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तांत में तो कहीं किसी अन्य विशिष्ट दृष्टि से कला एवं स्थापत्य की परम्परा अथवा उसके स्वरूप की व्याख्या है।

भारतीय कला का स्वरूप जितना प्रशस्त है, उतना ही इसका इतिहास पुरातन है। इसके सम्पूर्ण कलेवर में समाहित अनेक माध्यमों, मूर्ति–चित्र आदि की अपनी विशिष्ट धाराएं हैं। सभी धाराओं में भारतीय कला की अनेक विधाओं की सर्जना हुई है।[1] सामान्यतया देश में विभिन्न प्रतिमाओं का निर्माण धर्म प्रेरित रहा है। कला धर्म की सहचरी रही है। वैदिक, बौद्ध तथा जैन धर्मो, एवं लोक जीवन की विभिन्न परम्पराओं से प्रेरित मूर्तिकला में तत्सम्बन्धित मूल अभिप्राय प्राप्त होते है। किन्तु इनमें सौन्दर्य प्रतिष्ठा की अदम्यता एक जैसी है, जैसे विभिन्नता में एकता की कड़ी का सम्पादन इनमें हो। इनसे भी भिन्न है, अलंकारिक कला। अलंकारिक कला का बड़ा मनोहर स्वरूप कला के सम्पूर्ण इतिहास में मिलता है। इनमें विभिन्न धर्मो से बधी साम्प्रदायिक भावना का लेशमात्र प्रभाव नहीं है। यहां कला एक सर्वव्यापी धरातल पर विस्तष्त हुई।

Hkkjrh; dyk i/kkur % धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत है और धार्मिक विशेषताओं को साथ लेकर विकसीत हुई। प्रतिमा–निर्माण से पूजन कार्य को सुसम्पन्न करते हैं ताकि अलौकिक देवता के उच्चतम गुणों का समादर हो सके। यही कारण था कि उन आदर्शो का पालन करने के लिए देवी–देवता की मूतियाँ मनुष्य के आकार में तैयार की गयी।[2]

भारतीय विचारधारा के अनुसार उपासना का चरम लक्ष्य निर्गुण से उपासक का एकात्मक सम्बन्ध स्थापित करना है। परन्तु निर्गुणोंपासना तक पहुँचने के लिए सगुणोपासना का मूल आधार है अर्चा। यही कारण है कि जैन, बौद्ध आदि नास्तिक मतों में भी मूर्तियों की प्रचुरता हो ही गई। यद्यपि प्रतीकों से मूर्तियों तक पहुँचने में कुछ काल अवश्य लगा, पर बाद में तो केवल बुद्ध की ही नहीं, अपितु बोधिसत्व, यक्ष तथा देवी–देवताओं की प्रतिमाओं की बाढ़–सी आ गई। यहीं स्थिति ब्राह्मणों तथा जैनधर्मावलम्बियों की हुई। फलतः प्रतिमाशास्त्र भारत के आध्यात्मिक जन–जीवन का अक्षुण्ण अंग बन गया।

भारतीय पुराविद्या से सम्बद्ध विविध विषयों की सहायता से यदि भारतीय मूर्ति विज्ञान का अध्ययन किया जाय, तो अनेक दृष्टियों से वह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। भारतीय इतिहास के सभी युगों में धर्म की प्रधानता रहीं। मुसलमानों को छोड़कर अति प्राचीन काल से जिन विदेशी शक्तियों के सामने रणक्षेत्र में भारत को झुकना पड़ा, उन्हीं को धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में उसने जीत भी लिया। यूनानी, शक, कुषाण एवं हूणों ने एक ओर भारत की भूमि पैरों तले रौंद डाली, पर दूसरी ओर यहाँ के विष्णु, शिव, बुद्ध आदि देवताओं को सिर माथे चढ़ाया। प्रतिमाशास्त्र इतिहास की इन बीती घटनाओं का प्रत्यक्ष चित्र उपस्थित करता है। विष्णु से वरदान प्राप्त करता हुआ विदेशी शासक[3] शिवलिंग का पूजन करते हुए भद्रवर्गीय कुषाण पुरूष[4] आदि इस तथ्य के कतिपय उदाहरण है। भारतीय संस्कृति ने अपनी सीमाएं लांघकर बाहर के देशों को किस प्रकार प्रभावित किया था, इसका प्रमाण भी प्रतिमाशास्त्र ही दे सकता

*शोध छात्र, कालिकाधाम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेवापुरी, वाराणसी, उ0प्र0

है। मध्य–एशिया से मिली हुई पोथियों पर विदेशी वेश–भूषा में शिवादि देवताओं के चित्र, कम्बोडिया के हरिहर आदि विविध अर्चाएं इस दृष्टि से विशेष उपयोगी है।

विदेशी प्रभाव से मुक्त भारतीय देव–प्रतिमाएं विभिन्न युगों में प्रचलित वेश–भूषाओं का प्रत्यक्ष दर्शन कराती है। साथ ही साथ लोक–मानस के कुछ विचित्र पहलुओं पर भी ये प्रकाश डालती है। जैसे अश्लीलता से दूर भागने वाले ब्राह्मण–समाज ने काल के प्रभाव में आकर संसार के उत्पादन के प्रतीक योनिपीठ पर प्रतिष्ठित शिवलिंग को इस प्रकार मान्यता प्रदान की कि वह शिव–पूजन का एकमात्र प्रतीक बन गया। ईरानी सूर्य की प्रतिमाओं ने भारतीय समाज को इतना प्रभावित किया कि पूजनादि पवित्र कार्यों में जूतों को दूर रखने वाले सनातनी लोगों ने भी कम से कम उत्तर भारत में सूर्य और यत्र–तत्र सूर्य के अनुसार दण्ड, पिंगलादि की ऊँचे जूते पहनी हुई प्रतिमाएं वैध मान लीं। यहीं शास्त्रीय रूप देने के लिए ग्रन्थों में यहां तक बात कह डाली कि सूर्य के पैरों का दर्शन एवं पूजन अवैध है।[5] इसके कारण है कि विशेष रूप से प्रभावशाली व्यक्तियों के द्वारा प्रतिपादित कुछ बातें जनमानस को इतना अधिक प्रभावित करती है कि युगों तक वह उचित कारण परम्परा को समझते हुए भी उनसे मुक्त नहीं होना चाहता, अपितु शास्त्र–शुद्ध रूप देकर उन्हें और अधिक दृढ़ बनाना चाहता है। कुषाण–कालीन ईरानी सूर्य का शनैः–शनैः भारतीयकरण तो हुआ, किन्तु उसके पैरों के अपूज्य होने वाली बात की आड़ में सूर्य के जूतों को नहीं हटाया गया, हाँ इस बात को अवश्य भूला दिया गया कि वे मूलतः ईरानी सूर्य के जूते हैं।[6]

लोकधर्म और उसके प्रभाव के अध्ययन का प्रतिमाशास्त्र एक बहुत बड़ा साधन है। अविकसित या अर्ध–विकसित सभ्यताएं जब पूर्ण विकसित संस्कृतयों के संसर्ग में आती है तब वे धीरे–धीरे अपना आकार खो देती है, परन्तु कालान्तर तक कुछ रूपों में उनकी छाप अवश्य बनी रहती है। उदाहरणार्थ शबर–सभ्यता को लें। खस, पुलिन्द, भिल्ल, शवर, कोल आदि लोग आदिवासी के मान से पहचाने जाते है। इनमें से शबरों को आज की बोली में 'साबरा' कहते है। ओड़िसा, मध्य प्रदेश, बिहार और मद्रास के राज्यों में अब निवास करने वालों साबराओं के कितुंग, उमुंगसुम आदि देवताओं के साथ राम, जगन्नाथ, चन्द्र आदि पौराणिक देवताओं को भी स्थान मिला। परन्तु लोक कथा तथा लोकधर्म के रूप में मूल देवता अवश्य बने रहे।

प्रतिमाशास्त्र हमें यह भी बतलाता है कि नवविकसित ऊंची सभ्यताएं अपना विस्तार करने के लिए अर्द्धविकसित सभ्यताओं की लोक–देवाताओं को अपने यहाँ किस प्रकार समाविष्ट करती हैं। ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैनधर्म का युगों–युगों में विकसित होने वाला देव–परिवार ही इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। यक्ष, नाग, राक्षस, भूत, वीर, जो मूलतः लोक–देवता के रूप में विद्यमान थे, तीन धर्मो में अनुचर–देवता के रूप में समाविष्ट हो गये। कार्तिकेय के समान 'तस्कर देव' पौराणिक काल में देव–सेनापति बन गये तथा राक्षसराज कुबेर को लोकपालों में स्थान मिला। इस प्रकार सभ्यताओं के परस्पर प्रभाव का प्रतिमाशास्त्र की सहायता से अच्छा अध्ययन किया जा सकता है।

भारतीय उपासना–पद्धति का एक मूल यंत्र था–''यथा देहे तथा देवे,'' जिस प्रकार देह को अनेक उपचार समर्पित किये जाने हैं, उसी प्रकार आराध्य को भी अनके उपचार–पंचोपचार, पोऽशोपचार आदि अर्पित करने चाहिए। इस विचारधारा का फल यह हुआ कि प्रत्येक युग में प्रचलित पद्धतियों के अनुसार देव–प्रतिमाओं को वेश पहनाया गया, आयुध दिये गये तथा अलंकारों से मण्डित किया गया। इस प्रकार ये देव–मूर्तियाँ अपने युग की भौतिक सभ्यता का प्रत्यक्ष दर्शन कराने लगीं और आधुनिक काल में उसके अध्ययन का अपरिहार्य साधन बन गई। कई प्राचीन वस्तुओं का सत्य स्परूप इन प्रतिमाओं में होता है। पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में उनके वस्तुओं के नाम मिलते हैं, परन्तु बहुधा उनका ठीक–ठीक बोध वहां नहीं होता। उन विशिष्ट नामों को भली–भांति समझने में मूर्तियाँ हमारी बड़ी सहायती करती है। उदाहरणार्थ देव–दुन्दुभि, कीर्तिमुख, पादमध्याधरा, गन्धर्व–मिथुन–'सिंह–व्याघ्र,' 'विद्याधर–समन्वित तोरण' आदि प्रतिमा–लक्षणें में व्यवह्रत शब्दावलि मध्यकालीन विष्णु–मूर्तियों की सहायता से ही स्पष्ट रूप से समझी जा सकती है।

कभी–कभी मूर्तियाँ लेखांकित एवं तिथियों से युक्त होती हैं। यद्यपि ऐसी प्रतिमाओं की संख्या थोड़ी है, तथापि इन पर दिखलाई पड़ने वाली शैलीगत विविधताओं का यदि ध्यान से अध्ययन किया जाय, तो प्रत्येक काल की शैली का बहुत कुछ शास्त्र–शुद्ध चित्र निखर आता है तथा उस काल का प्रतिनिधित्व करने वाले निश्चित मानदण्ड स्थिर किये जा सकते है। तिथ्यांकित मूर्तियों की सहायता से इस प्रकार स्थिर किये हुए मानदण्ड अन्य बिना लेखों वाली मूर्तियों का काल–निर्णय करने में सहायक होते है। पहली शताब्दी से बुद्ध प्रतिमा के निर्माण के क्रम में पूर्व मध्यकाल तक बुद्ध एवं बौद्ध देवता समूह के प्रतिमाशास्त्र के मानकों को ध्यान में रखकर प्रतिमा निर्माण कार्य किया गया, इस श्रेणी में विशिष्ट प्रतिमाओं में मनकुँवार की बुद्ध प्रतिमा[7], सारनाथ की धर्मचक्र प्रवर्तन प्रतिमा[8], मथुरा की बुद्ध प्रतिमा[9] सुल्तानगंज की बुद्ध प्रतिमा आदि हैं।[10]

जैन तीर्थंकारों की प्रतिमाओं के निर्माण में प्रतिमालक्षण का अक्षरशः पालन किया गया। गुप्तकाल में तीर्थंकर प्रतिमाओं के निर्माण की सामान्य विशेषताएं तो वे ही हैं, जो कुषाणकाल में विकसित हो चुकी थी, किन्तु उनके परिकरों में इस समय कुछ विशिष्टता दिखलायी पड़ती है। धर्मचक्र व उसके उपासकों का चित्रण पूर्ववत होते हुए भी कहीं–कहीं तीर्थंकर प्रतिमाओं के बगल में मृग को प्रदर्शित किया गया है जो बौद्ध एवं जैन धर्म में समन्वय के भाव को दर्शाता हुआ प्रतिमाशास्त्र के उपादेयता को बनाये हुआ है।

विभिन्न दृष्टियों से अब तक किये गये विवेचन से यह स्पष्ट होगा कि प्रतिमाशास्त्र का क्षेत्र कितना व्यापक है और शास्त्रीय ढंग से किया गया उसका अध्ययन कई गुत्थियों को सुलझाने में कैसे सहायक हो सकता है तथा पुराशास्त्र के अन्धकार में डूबे हुए कुछ कोने किस प्रकार आलोकित हो सकते है।

lUnHkZ %

1. मिश्र रमानाथ, भारतीय मूर्तिकला, नई दिल्ली 1978, पृ0 268
2. उपाध्याय वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति–विज्ञान, वाराणसी 1982, पृ0 211
3. बनर्जी जितेन्द्र नाथ, हिन्दू प्रतिमा–विज्ञान का विकास, कलकत्ता, 1956, प्लेट 11
4. पुरातत्व संग्रहालय मथुरा, आवाप्ति संख्या 36.2661
5. श्रीवास्तव वृजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिमा–विज्ञान एवं मूर्ति–कला, वाराणसी, 2015, पृ0 95
6. वहीं पृ0 101
7. कुमारस्वामी ए0के0, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, लंदन 1927, पृ0 74
8. सारनाथ संग्रहालय, आवाप्ति संख्या–340
9. कुमारस्वामी उपरोक्त, पृ0 60
10. कुमारस्वामी उपरोक्त, पृ0 60, 74, 84

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 109-112

0;olk;&uhfr'kkL= dk Lo:lk

vHk; dqekj ;kno*

वर्तमान समय में नैतिक व्यवसाय की मांग बढ़ रही है। औद्योगिक घरानों व व्यावसायिक प्रतिष्ठानों पर यह दबाव बनाया जा रहा है कि वे व्यवसाय में गुणगत सुधार लाएं। यह महसूस किया गया है कि व्यावसायिक निर्णय और कार्यों के नैतिक पहलू हैं। जब तक व्यावसायिक निष्पादन में स्पष्ट रूप से नैतिक अंकुश नहीं होगा तब तक व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों के लिए गुणगत कर्मजीवन और नागरिक जीवन असम्भव हो जाएगा।

"Business ethics is a study of moral standards and how these apply to the systems and organizations through which modern societies produce and distribute goods and services, and to the people who work within these organizations. Business ethics, in other words, is a form of applied ethics. It includes not only the analysis of moral norms and moral values, but also attempts to apply the conclusions of this analysis to that assortment of institutions, technologies transactions, activities and pursuits that we call business."[1]

अर्थात् व्यवसाय नीतिशास्त्र नैतिक मानकों का एक अध्ययन है और कैसे ये उन तन्त्रों (व्यवस्थाओं) और संगठनों पर लागू होते हैं जिनके माध्यम से आधुनिक समाज सामानों और सेवाओं का उत्पादन एवं वितरण करते हैं और उन लोगों पर लागू होता है जो इन संगठनों में काम करते हैं। व्यवसाय–नीतिशास्त्र दूसरे शब्दों में व्यावहारिक नीतिशास्त्र की एक अवस्था है। यह केवल नैतिक मानकों एवं नैतिक मूल्यों के विश्लेषण को शामिल नहीं करता अपितु इन विश्लेषणों के निष्कर्षों को संस्थाओं, तकनीकों, लेन–देन, गतिविधियों और धन्धों के उस वर्गीकरण पर अनुप्रयोग करने का प्रयास करता है जिसे हम व्यवसाय कहते हैं।

व्यवसाय नीतिशास्त्र को व्यावहारिक नीतिशास्त्र से सम्बद्ध अध्ययन के रूप में समझा जा सकता है जो व्यावसायिक वातावरण में उठने वाली या उससे सम्बन्धित नैतिक सिद्धान्तों की गवेषणा करता है। ऐतिहासिक रूप से व्यवसाय नीतिशास्त्र में रूचि तेजी से 1980 और 1990 के दौरान बढ़ी। उद्योग या कारखानों से सम्बन्धित अधिकांश वेबसाइटों पर आज ऐसे प्रयासों पर बल दिया जा रहा है जो गैर आर्थिक और सामाजिक मूल्यों को बढ़ावा दें। विभिन्न शीर्षकों जैसे 'नैतिक आचार–संहिता', 'सामाजिक उत्तरदायित्व' इत्यादि नैतिक महत्व के कारण दार्शनिकों के रूचि के विषय बन गए हैं। यदि गहन पड़ताल की जाए तो यह देखा जा सकता है कि व्यवसाय–नैतिकता वस्तुतः व्यवसाय प्रबंधन में मूल्यों की अभिव्यक्ति है। व्यवसाय, नैतिक मूल्य और सामाजिक उत्तरदायित्व परस्पर विरोधी नहीं हैं। यदि कोई उद्यम मूल्य आधारित प्रबंधन लागू कर रहा है तो वह लाभ का प्रबंध और आम शुभ सुनिश्चित कर सकता है। वस्तुतः एक उद्यम या व्यावसायिक संस्थान एक 'नैतिक आत्मा' के साथ व्यवसाय कर रहा है उसे नैतिक रूप से उपयुक्त उद्यम कहा जा सकता है। विभिन्न व्यवसायों ने यह अनुभव किया कि यदि वे 'गला काट' प्रतिस्पर्धा के इस युग में एक धारणीय स्थिति पाना चाहते हैं, तो उन्हें मूल्यों के द्वारा प्रबंध करना चाहिए। मानवीय एवं नैतिक दोनों मूल्यों का ध्यान उन्हें रखना होगा। व्यवसाय नैतिकता सत्य एवं न्याय के बुनियाद पर खड़ी है। इसके विभिन्न पहलू हैं। उदाहरण के लिए ईमानदारी की प्रतिस्पर्धा, सामाजिक–उत्तरदायित्व, उपभोक्ता–स्वायत्तता, उद्यम–व्यवहार इत्यादि। एक महत्वपूर्ण चीज जो सभी व्यावसायिक उद्यमों को स्मरण रखना चाहिए कि व्यवसाय का कार्य केवल व्यवसाय करना ही नहीं हैं, उसका कतिपय नैतिक दायित्व भी है मात्र पैसा बनाने के लिए व्यवसाय में रहना आज उचित नहीं समझा जाता। पैसा

*शोध छात्र, दर्शन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उ0प्र0

बनाना स्वयं में गलत नहीं है। नैतिक व्यवहार के प्रश्नों पर विचार न करते हुए येन–केन प्रकारेण पैसा कमाना गलत है। यही कारण है कि व्यवसाय–नीतिशास्त्र में कई रोचक प्रश्न उठाए जाते हैं–क्यों अच्छे लोग बुरा चुनाव करते हैं? वे बाह्य कारक क्या हैं जो व्यक्ति के निर्णय लेने को प्रभावित करते हैं? कैसे किसी संगठन के भीतर एक कर्मचारी या नियोक्ता के निर्णय लिंग या श्रेष्ठता या अन्य बातों से प्रभावित हो सकता है? गणना एवं हिसाब किताब में विश्वास एवं स्वतन्त्रता की क्या भूमिका हैं? आचरण के पेशेवर कूटों की क्या सीमाएं हैं? क्यों कोई व्यावसायिक निगम या संगठन नैतिकता के औपचारिक कार्यक्रमों को शुरू करते हैं और वे कैसे प्रभावी हैं? कभी–कभी यह हो सकता है कि 'नैतिक व्यक्ति' जो सामान्यतया उचित एवं अनुचित के बीच फर्क को जानते हैं फिर भी वे उनके विवेक के अनुरूप कार्य करने में असफल हो जाते हैं। किसी प्रबंधक या पेशेवर की इस प्रकार की नैतिक असफलता का यह मतलब निकालना कि व्यक्ति अनैतिक है, जरूरी नहीं है। यह असफलता व्यावसायिक संस्था के समर्थन के अभाव में व्यक्ति की व्यक्तिगत कमजोरी का परिणाम भी हो सकता है। व्यवसाय नीतिशास्त्र के स्वरूप एवं प्रकृति को समझने के लिए एक बात का स्मरण रखना आवश्यक है कि आजीविका एवं व्यवसाय में अन्तर होता है क्योंकि जीविकोपार्जन के लिए जो भी आर्थिक क्रिया (कार्य) किया जाता है उसे आजीविका (OCCUPATION) अथवा धन्धा कहा जाता है। जिसके अन्तर्गत व्यवसाय, पेशा इत्यादि कुछ भी हो सकता है। परन्तु 'व्यवसाय' शब्द का प्रयोग विशेष अर्थों में किया जाता है। आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वस्तुओं एवं सेवाओं की उत्पादन एवं विनिमय सम्बन्धी समस्त मानवीय क्रियाएं 'व्यवसाय' शब्द में सम्मिलित हैं। व्यवसाय के अन्तर्गत वे सभी क्रियाएं आती हैं। जिनका सम्बन्ध वस्तुओं के उत्पादन एवं उनके क्रय–विक्रय से है। व्यवसाय का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसका क्षेत्र केवल व्यापार तक ही सीमित नहीं है। व्यापार का अर्थ वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय–विक्रय करना है परन्तु व्यवसाय में वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन से लेकर वितरण तक सभी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। इसमें उद्योग एवं व्यापार के साथ ही अन्य क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जो उत्पादन एवं वितरण में सहायता करती हैं। व्यावसायिक क्रियाएं अपने अन्तर्गत उद्योग एवं वाणिज्य दोनों का समावेश करती हैं। उद्योग से तात्पर्य उन मानवीय क्रियाओं से है जो वस्तुओं में आकारगत उपयोगिता प्रदान करती हैं। 'उद्योग' में उन सब क्रियाओं को शामिल किया जाता है जो कच्चे माल को पक्के माल के रूप में अथवा विक्रय योग्य अवस्था में लाती हैं। 'वाणिज्य' शब्द में क्रय एवं विक्रय (थोक, खुदरा, आयात, निर्यात) तथा उन क्रियाओं को सम्मिलित करते हैं जो क्रय एवं विक्रय क्रिया में सहायता करती हैं। जैसे स्टोर, पैकिंग, वित्त प्रदान करना, यातायात उपलब्ध कराना, बीमा कराना इत्यादि। वाणिज्य के द्वारा पदार्थ एवं सेवा के वितरण में होने वाली कठिनाइयों को दूर किया जाता है। वाणिज्य के अन्तर्गत उन सभी क्रियाओं का समावेश है जो वस्तुओं एवं सेवाओं को उत्पत्ति स्थान से उपभोग के स्थान पर पहुंचाने के लिए आवश्यक है। व्यवसाय के कार्य क्षेत्र को मुख्यतः पांच क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे उत्पादन सम्बन्धी कार्य, विपणन सम्बन्धी कार्य, वित्त सम्बन्धी कार्य, कर्मचारी सम्बन्धी कार्य एवं प्रशासन सम्बन्धी कार्य। उत्पादन सम्बन्धी कार्यों में उत्पादन सम्बन्धी योजनाएं बनाना, माल एवं यन्त्रों का क्रय एवं संग्रहण, उत्पादन, नियोजन एवं नियन्त्रण, यन्त्रों की साज–सज्जा, अनुसंधान एवं विकास, मरम्मत एवं रख–रखाव आदि कार्य आते हैं। विपणन सम्बन्धी कार्यों में ग्राहक सृजन, विपणन शोध, वितरण माध्यमों का चुनाव, विज्ञापन का नियोजन विक्रय संवर्द्धन इत्यादि कार्य आते हैं। वित्त संबंधी कार्यों में पूंजी की आवश्यकता का अनुमान लगाना, पूंजी ढांचे को निर्धारित करना, वित्त के स्त्रोत ढूँढ़ना, विनियोग सम्बन्धी निर्णय लेना, रोकड़ का प्रबंध करना इत्यादि कार्य सम्मिलित हैं। कर्मचारी संबंधी कार्य में अधिप्राप्ति एवं चयन, प्रशिक्षण एवं विकास, कर्मचारियों का वेतन निर्धारण, कर्मचारियों के लिए उपयुक्त वातावरण कर्मचारियों का अभिप्रेरण इत्यादि कार्य आते हैं। प्रशासन संबंधी कार्य पत्र व्यवहार, संगठन की योजनाओं के एकीकरण करने, समन्वय एवं नियन्त्रण तथा वैधानिक औपचारिकताएं पूरी करना इत्यादि कार्य आते हैं। इन बातों से व्यवसाय के विषय में एक धारणा बनती है, जो इस रूप में व्यक्त हो सकती है–

"Business is a natural ally of economic enterprise because business is basically an enterprise that involves apart from other things, economic concerns about market, marketing, production, distribution, sales and purchase, finance, accounting profit and loss, demand and supply and many such things, wherein distinct question of ethical value becomes relevant and important."[2]

अर्थात् व्यवसाय आर्थिक उद्यम का एक स्वाभाविक सहयोगी है, क्योंकि व्यवसाय मूलतः एक ऐसा उद्यम है जो कि अन्य चीजों के अतिरिक्त बाजार सम्बन्धी आर्थिक उद्देश्य, विपणन, उत्पादन, वितरण, विक्रय एवं क्रय, वित्त, लेखा, लाभ एवं हानि, मांग एवं पूर्ति और बहुत सी ऐसी चीजों को शामिल करता है जिनमें नैतिक मूल्यों के प्रश्न स्पष्ट रूप से प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण होते हैं।

प्रायः एक व्यवसायी उत्पादन, बिक्री और लाभ के मामलों में असीमित स्वतन्त्रता चाहता है परन्तु उपभोक्ता या क्रेता और कई मामलों में समाज के हित को दृष्टिगत रखते हुए वह प्रायः इस असीमित स्वतन्त्रता को सीमित करता है। एक जागरूक एवं जिम्मेदार व्यवसायी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं अपने व्यवयाय में इस तरह के संयम अथवा रोक लगाए। धीरे–धीरे यह महसूस किया जाने लगा कि व्यवसायियों के भी कुछ उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य हैं। उन्हें अपने लाभ के साथ ही साथ दूसरों के हितों का भी ध्यान रखना चाहिए। एक व्यवसायी के कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के अतिरिक्त उपभोक्ता या ग्राहक के अधिकार एवं व्यापार में औचित्य एवं न्याय जैसे मूल्यों पर बल दिया जाने लगा है। व्यवसाय नीतिशास्त्र का विकास उद्यमों की कार्य प्रणाली की वांछनीयता एवं उनके मूल्यांकन, बाजार की आवश्यकताओं की उचित तरीके से पूर्ति और उद्यमों के वांछनीय सेवाओं एवं समाज में उनके योगदान जैसे बिन्दुओं पर बल देने से हुआ है। एक आम व्यक्ति व्यवसाय नीतिशास्त्र जैसे शब्द को सुनकर यही प्रश्न सर्वप्रथम करता है कि व्यवसाय में क्या कोई नैतिकता होती है? व्यवसाय की तो एक ही नैतिकता या लक्ष्य है और वह है लाभ कमाना। व्यवसाय नीतिशास्त्र सर्वप्रथम इसी भ्रान्त अवधारणा को तोड़ता है। यह सोचना कि व्यवसाय नीतिशास्त्र की कोई सम्भावना नहीं है क्योंकि व्यवसाय का कोई नैतिक पक्ष नहीं है; अनुचित है। व्यवसाय के लिए नीतिशास्त्र आवश्यक हो जाता है क्योंकि व्यावसायिक गतिविधियां सामाजिक परिवेश में होती है और कोई भी सामाजिक गतिविधि जिनमें लोगों के हित एक दूसरे से टकराते हैं या प्रभावित होते हैं। वहां नीतिशास्त्र की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसे हम इस तरह से समझ सकते हैं कि यदि किसी क्षेत्र के सारे बच्चे अशिक्षित हों तो वहां शिक्षा की प्रासंगिकता और भी अधिक हो जाती है।

"Unethical business remains enough wide for business ethics because probing the pathway to hell a critique explores its ethical darkness to lead us to brightness."[3]

अर्थात् अनैतिक व्यवसाय में व्यवसाय नीतिशास्त्र की पर्याप्त गुंजाइश है अथवा वहां व्यवसाय नीतिशास्त्र के लिए पर्याप्त मौका होता है क्योंकि नर्क के लिए जाने वाले रास्ते की जांच करके एक समालोचक इसके नैतिक अन्धकार को दिखाकर हमें प्रकाश की तरफ ले जाता है।

व्यवसाय नीतिशास्त्र व्यवसाय के बारे में कुछ भ्रान्त अवधारणाओं को खण्डित करते हुए अपना विकास करता है। जैसे कुछ आलोचक व्यवसाय को 'लाभ कमाने वाली गतिविधि' कहकर लाभ कमाने को समाज में होने वाली एक बुरी चीज के रूप में दर्शाया है परन्तु बिना लाभ का व्यवसाय किसी सभ्य समाज के लिए किस प्रकार से सहायक हो सकता है यह समझ पाना मुश्किल है। यह कल्पना करना कि व्यवसाय में सदैव लाभ ही होता है; अनुचित ही है। व्यवसाय में घाटा होना भी एक आम बात है। यदि व्यवसाय में लाभ को लेकर नकारात्मक धारणा रखी जाए तो क्या घाटे के व्यवसाय से विकास संभव हो सकता है? निश्चित रूप से घाटे के व्यवसाय से किसी भी राष्ट्र में गरीबी या दरिद्रता आती है। अब प्रश्न उठता है कि क्या गरीबी या दरिद्रता शुभ है? इस प्रकार बिना लाभ का व्यवसाय न तो व्यवसाय के लिए व्यावहारिक है और न समाज के लिए शुभ।

"It is the tendency to see business as an isolated and insulated endeavour, with values different from the values of the surrounding society that characterizes all of these myths and metaphors. Breaking down their sense of isolation is the first task of business ethics."[4]

आशय यह है कि व्यवसाय को समाज के मूल्यों से अलग प्रयत्न के रूप में देखने की प्रवृत्ति इन सभी भ्रान्त विश्वासों एवं अलंकारों की रचना करती है। अलगाव के इस समझ को तोड़ना व्यवसाय नीतिशास्त्र का पहला कार्य है।

कुछ ध्यान देने पर स्पष्ट हो जाता है कि मानकीय नीतिशास्त्र ही नहीं, व्यवसाय नीतिशास्त्र में अधिनैतिक, मूल्याधारित एवं व्यावहारिक नैतिक चर्चाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। जैसा कि अभी देखा गया, 'व्यवसाय' और 'व्यवसाय नीतिशास्त्र' के अर्थ की व्याख्या करना और इस विद्या के अध्ययन के औचित्य को सिद्ध करना, अधिनैतिक चर्चा ही है। व्यवसाय में मूल्यों या सद्‌गुणों के स्थान की चर्चा और मूल्यपरक व्यावसायिक संस्थाओं के निदान की चर्चा करना, सद्‌गुणाधारित नीतिशास्त्र और व्यावहारिक नीतिशास्त्र से सम्बद्ध चर्चाएं हैं। व्यवसाय नीतिशास्त्र, व्यावहारिक नीतिशास्त्र से सम्बद्ध तो है परन्तु यह कुछ परम्परागत नैतिक मानकों का अनुप्रयोग करना मात्र नहीं है। व्यवसाय नीतिशास्त्र ऐसे गैर परम्परागत नैतिक मानकों और उनके व्यावहारिकता या अनुप्रयुक्तता का अध्ययन करना है जो किसी व्यावसायिक संगठन या व्यावसायिक तन्त्र पर लागू किए जा सकें। व्यवसाय नीतिशास्त्र नैतिक मानकों एवं मूल्यों का मात्र विश्लेषण नहीं करता अपितु व्यवसाय से जुड़ी विभिन्न नैतिक समस्याओं का व्यावहारिक समाधान करने के लिए उनका अनुप्रयोग भी करता है। व्यवसाय का क्षेत्र और व्यवसाय से सम्बन्धित अध्ययन के अनेक मुद्‌दे होते हैं जो कि नैतिकता को शामिल करने की मांग करते हैं। अतः उन मार्गों को दर्शाना महत्वपूर्ण है जिनमें व्यवसाय नीतिशास्त्र के लिए पर्याप्त स्थान छोड़ता है। उपरोक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि व्यवसाय नीतिशास्त्र एक बहु आयामी अध्ययन है जो अनेक मुद्‌दों को स्पर्श करता है, विभिन्न समस्याओं एवं द्वन्द्वों को सुलझाने का प्रयास करता है जो कि प्रायः व्यवसाय के क्षेत्र से सम्बन्धित होती हैं। व्यवसाय नीतिशास्त्र को सरल ढंग से इस प्रकार समझ सकते हैं।

1. यह सम्पूर्ण समुदाय के लिए नीतिशास्त्र का अनुप्रयोग है।
2. यह महत्वपूर्ण व्यावसायिक एवं सामाजिक मुद्‌दों की पहचान करता है।
3. यह व्यावसायिक प्रक्रियाओं या व्यावसायिक कार्यों में उत्तरदायित्व को रेखांकित करने का एक उपाय है।

वस्तुतः व्यवसाय नीतिशास्त्र की प्रकृति एवं स्वरूप को और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें इसके कार्यों और व्यवसाय से जुड़े विभिन्न मुद्‌दों को जानने की आवश्यकता होगी जो व्यवसाय–प्रबंधन के नीतिशास्त्र के सम्बन्ध में हमारी समझ को और अधिक विस्तृत करेगा।

lUnHkZ %

1. Velasquez, Manuel, G. Business Ethics : Concept and Cases, Prentice - Hall of India Private Limited, New Delhi, 2002, p.15.
2. Guha, Debashis, Pratical and Professional Ethics, Vol. V, Concept Publications, New Delhi, 2008, p.72.
3. Ibid., p.79.
4. Solomon, Robert C., "Business Ethics" in Singer Peter (ed.), A Companion to Ethics, Oxford University Press. Oxford 1991, p.359.

♦ ♦ ♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 113-115

vYek dcrjh miU;kl e vkfnoklh thou dh vfHk0;fDr

dfiy dekj jtu*

आज भारत की अधिकांश भाषाओं की लगभग सभी विधाओं में आदिवासी जीवन की विभिन्न स्थितियों पर गंभीरतापूर्वक साहित्य सृजन हो रहा है। इनमें महाराष्ट्र के वाह : सोनवणे, भुजंग मेश्राम, लक्ष्मण गायकवाड़ तथा झारखंड में निर्मला पुतुल, रोजकेरकेटा, महादेव टोप्पो एवं वन्दना टेटे, छत्तीसगढ़ में के. आर. शाह और राजस्थान में हरिराम मीणा, डॉ. रमेशचन्द्र मीणा, प्रो. हेमराज मीणा, डॉ. जनकसिंह मीणा आदि अनेक आदिवासी कवि, लेखक एवं संपादक आदिवासी लेखन को नई गति प्रदान कर रहे हैं। हिन्दी में जितनी मात्रा में आदिवासी कविता, कहानी, नाटक की रचनाएँ हुई है उसकी तुलना में आदिवासी उपन्यास संख्या में कम ही नजर आते हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी आदिवासी उपन्यासकारों की अपेक्षा गैर आदिवासी लेखकों ने निम्नलिखित उपन्यास लिखे हैं, इनमें–राजेन्द्र अवस्थी, शानी, शिवप्रसाद सिंह, राकेश वत्स, हिमांशु जोशी, मनमोहन पाठक, संजीव, मृणाल पांडे, मैत्रेयी पुष्पा, हरिराम मीणा, तेजिंदर सिंह, पुन्नी सिंह, श्री प्रकाश मिश्र, गुरूदत्त, रणेन्द्र, राकेश कुमार सिंह, महुआ माझी आदि का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

हिन्दी उपन्यास अपने वर्तमान में समाज के हर वर्ग और हर पहलू के समान्तर चल रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात जब आँचलिक उपन्यासों का युग आता है तो विभिन्न क्षेत्रों की लोक चेतना से जुड़े उपन्यास लिखे गए और इस क्रम में वनांचल को भी केन्द्र में रखा गया। आँचलिक उपन्यासों के विकास के साथ ही जनजातियों से सम्बद्ध उपन्यास लिखे गए जिसमें जनजातियों के रहन–सहन, पर्व, उत्सव, परम्परा, भाषा संस्कृति, लोक विश्वास और संस्कारों पर प्रकाश पड़ा। कालान्तर में जनजाति बहुल क्षेत्रों के विकास के लिए अलग राज्य बने। झारखण्ड, छत्तीसगढ़ उत्तराखण्ड ऐसे ही हिन्दी भाषी राज्य हैं, जहाँ जनजातियों का समूह अधिक है। भारत के लगभग सभी राज्यों में उनकी उपस्थिति विद्यमान है। आँचलिक उपन्यासों के युग की समाप्ति के बाद उनके राजनीतिक जागरण को लेकर मुख्यधारा के भी उपन्यास लिखे गए। बांग्ला में महाश्वेता देवी ने तो जनजातियों के विद्रोह को अपने साहित्य का आधार बनाकर उपन्यासों की संरचना की है। इस पूरे जीवन से आदिवासी समाज की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति और उनके शोषण और विद्रोह का पता चलता है। मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' सन् (2000 ई0) में प्रकाशित आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यास है जो साहित्य जगत में काफी चर्चित रहा है। यह 'कबूतरा' जाति में पैदा हुयी 'अल्मा' नामक एक संघर्षशील स्त्री पात्र की जीवन गाथा भी है। जिसके माध्यम से लेखिका ने ऐसे समाज की रूपरेखा तैयार की है जो समाज आज आजादी के 69–70 वर्षों के पश्चात भी हाशिए पर खड़ा है। ऐसे समाज में स्त्री की स्थिति बड़ी दयनीय एवं विषम है, तो पुरूषों का जीवन भी कम संघर्षमय नहीं है। पग–पग पर भारतीय समाज व्यवस्था में उच्चवर्गीय जातियों द्वारा कबूतरा जाति का अपमान, तिरस्कार, उपेक्षा सहन करना जैसे उनकी आदत में हो गया है। मैत्रेयी पुष्पा आदिवासी समाज के कबूतरा जाति की कथा को केन्द्र बनाकर हाशिए के ऐसे अनेक जातियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति और विषमता को पाठक एवं समाज के सामने रखकर एक नये कलेवर से सोचने, समझने और चिन्तन करने के लिए विवश भी किया है।

प्रस्तुत उपन्यास अट्ठाहर अध्याय में विभाजित हैं। जिसकी कथाभूमि में बुन्देलखण्ड जो उत्तर प्रदेश के दक्षिण और मध्यप्रदेश के पूर्वोत्तर राज्य में स्थित है। इस विलुप्त होती कबूतरा नामक जनजाति के रहन–सहन, जीवन–प्रणालियों, संस्कृति एवं भाषा आदि का इस उपन्यास में समावेश है। लेखिका ने दो समाजों को चित्रित किया है। पहला आदिवासी कबूतरा समाज जो मुख्यधारा के बाहर का है और दूसरा सभ्य समाज जो मुख्यधारा के अन्तर्गत आता है। जिसे कबूतरा जाति के लोग अपनी भाषा में 'कज्जा' कहते हैं। 'कबूतरा' एक जनजाति है जिसे अंग्रेजों ने इस जाति को जरायमपेशा घोषित किया

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

था किन्तु वे लोग अपना सम्बन्ध रानी पद्मिनी, राणा प्रताप और झाँसी की रानी और उनकी प्रिय सखी झलकारीबाई से जोड़ते हैं। 'अल्मा' का पिता रामसिंह पढ़ा–लिखा व्यक्ति है जो पेशे से एक अध्यापक है किन्तु नियतिवश पुलिस का एजेन्ट बन गया है। उसने अल्मा को पढ़ाया लिखाया है और उसे सभ्य समाज के लायक बनाया है।

मंसाराम माते और कदमबाई कबूतरी का बेटा 'राणा' भी रामसिंह के संरक्षण में पढ़ता लिखता है। कबूतरा बस्ती 'राणा' को धर्म भ्रष्ट कहती है। क्योंकि मंसाराम माते और कबूतरी के संसर्ग से राणा का जन्म हुआ है इसलिए वह न कज्जा बन पाता है और न ही कबूतरा रह पाता है। कबूतरा बस्ती का मुखिया समरन कहता है– ''राणा ने बिरादरी को नहीं, कबूतरा धर्म को धोखा दिया है। अपनी हठ के चलते विरासत पर लात मार रहा है। हजारों का नुकसान..... कदमबाई ता जिन्दगी बेकार करे, तब भी भरपाई होगी?''[1] कदमबाई ने अपने बेटे राणा को जिस स्कूल में भर्ती करवाया वहाँ छात्रों एवं शिक्षकों द्वारा राणा को परेशान किया जाता है। सामंतवादी मानसिकता के उच्चवर्गीय छात्रों द्वारा राणा का स्कूली बस्ता पीपल पर टाँग दिया जाता है। वह अपना बस्ता प्राप्त करने हेतु पीपल पर चढ़ता है। क्रूर स्वभाव के मास्टरजी वहाँ आकर राणा को कोड़े से पीटते हैं। राणा इस बात को स्मृति में रखता है– ''स्कूल में खिलते फूलों के रंगों में उतरने वाला राणा बदरंग हो गया। माँ को कैसे बताये, वह पीपल पर चढ़ने लगा था, मास्टर जी ने आकर कमर पर कोड़ा मारा–साले, यह नहीं देखता कि पीपल पर देवताओं का वास होता है। स्कूल जैसी पवित्र जगह में बैठ जाने दिया तो तू हमारे देवताओं के मूँड पर नाचेगा।''[2] कहना यह गलत है कि आज भी भारतीय समाज व्यवस्था में जाति एक ऐसी सच्चाई है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पीछा नहीं छोड़ती लेकिन फिर भी आज शिक्षक समुदाय का ऐसा होना पूरे शिक्षक समाज, प्रशासन एवं स्वतंत्रता के बाद की सरकारों पर प्रश्न चिह्न नहीं खड़ा करता है।

देखा जाय तो यह भेदभाव आज भारतीय समाज में आने वाली पीढ़ियों के प्रतिभा को कलंकित भी करता है। यह उपन्यास केवल अल्मा जैसी एक स्त्री की जीवनगाथा नहीं है। यह अपराधी टोलों या सर्कस दिखाने वाली जनजातियों के सपनों का सफर भी है। सपना तो भूरी बाई की आँखों में जन्मा था– ''बस्ती की पहली माँ थी भूरी जिसने अपने बेटे रामसिंह को कुल्हाड़ी, डण्डा न थमाकर पोथी, पाटी पकड़ाई।''[3] भूरी अपने शरीर का जगह–जगह पर सौदा करके भी अपने बेटे रामसिंह को इस योग्य बनाना चाहती है कि वह सम्मान की जिन्दगी जी सके, परन्तु ऐसा हो नहीं पाता। वह कबूतरा बनकर ही जीवन जीने को अभिशप्त है वह धीरे–धीरे अपनी संघर्ष क्षमता खोकर पुलिस का दलाल बन जाता है तथा अन्ततः बेटाराम के नाम पर उसको पुलिस द्वारा प्रायोजित एक फर्जी मुठभेड़ में मार गिराया जाता है। एक 'कबूतरा' के 'सभ्य' बनने की कोशिश का यह अंजाम दिखाकर लेखिका ने यथार्थ को उसके नग्नतम रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वैसे तो कबूतरा जनजाति का जीवन संघर्षों से भरा हुआ है। उसके पास न तो खेत–खलिहान है न तो कोई दूसरे उपार्जन के साधन। वे अपने परिश्रम और मेहनत मजदूरी के बल पर कुछ भी करने में सक्षम होते है। इस उपन्यास का आर्थिक पहलू स्वयं व्यक्ति पर निर्भर करता है। शराब बनाकर बेचना, चोरी करना, जादूगरी एवं नाचगान इनके आर्थिक उपार्जन के माध्यम होते हैं। पुरूष वर्ग चोरी करता है तो स्त्रियाँ डेरों पर महुए आौर गुड़ की शराब बनाती है।'' खेत में कच्चे ओरले उठने लगे। भट्टियाँ खुदने लगी। घड़े और कनस्तर आए। महुआ और गुड़ के खमीर ने फसलों को घेर लिया।''[4] शराब बेचने के इस व्यवसाय की वजह से उन बस्ती या कस्बे का नाता हर एक वर्ग, जाति, उपजाति, समाज एवं पुलिस से होता है। शराब बनाकर बेचना कबूतरा जाति का पैतृक व्यवसाय होता है, जिसे उन्हें लगता है कि यह हमारा कर्तव्य बनता है उसे सुरक्षित रखे। कभी–कभी अपने पैतृक व्यवसाय को नकारने पर पुत्र को पंचायत के माध्यम से अपनी बिरादरी से बहिष्कृत किया जाता है। शराब का व्यवसाय कबूतरा जाति में आत्मसम्मान एवं प्रतिष्ठा का सूचक माना जाता है। कदमबाई का पति जंगलिया बीस वर्ष की आयु में चोरी करने में इतना पारंगत था जिसका उद्धरण इस प्रकार है ''बीस साल की अवस्था में रबी की खलिहान उठते ही उसने ससुर का कर्ज उतारने की ठानी। आँधी रात के समय सड़क पर जाती बैलगाड़ी का गेहूँ भरा सलीता चीरकर दस मन गेहूँ चुरा लिया''[5] कभी–कभी ये कबूतरा जाति के लोग रात में किसी घर, द्वार या आँगन में बँधे पशुओं को भी उठा लेते थे। यह सब उनके जरूरत, मजबूरी जीविकोपार्जन का साधन मात्र हुआ करती है न कि उनका शौक या रोजगार जिसके फलस्वरूप वह समाज यह कृत्य करता था।

भारतीय समाज व्यवस्था के आदिवासी समुदाय को लोक संस्कृति के सन्दर्भ में देखें तो 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में उस समाज की उत्कृष्ट एवं समृद्ध परम्परा विद्यमान है। आदिवासी समाज में कबूतरा जाति घुमक्कड़ होती है। गाँव–गाँव घूमते, हुए जाकर किसी के खेत में बसती, वहाँ आस–पास के खेत खलिहानों में काम करके अपनी जिन्दगी गुजर–बसर करती है। पर्व, त्योहारों के अवसर पर वे लोग अपना श्रम करते ही रहते हैं। सुबह से लेकर शाम तक वे लोग मजदूरी, शिकार, चोरी, डकैती आदि में लगे रहते हैं। नलिया त्योहार के समय भी भूखा रहकर हँसता है और कहता है– ''ढोल बजाओ। आज भी भूख–प्यास का रोना। गेहूँ की हरी–हरी बाले हिलोरे ले रही है।''[6]

कबूतरा जाति के लोग अपनी संस्कृति के अनुरूप एक समूह में नृत्य करते हैं। एक पुरूष वर्ग का व्यक्ति घेरा के बीच में ढ़ोल बजाता है और पुरूष, स्त्रियाँ उसके चारों ओर घेरा बनाकर नृत्य करते हैं। ढ़ोल की लय पर गीत गाते जाते हैं। जैसे–

**ekjh pknk pdkj] dkty yxk d vk xb Hkkj gh Hkkj
ekjh pnkpdkj] Nfr;k i rkrk] dfjgk i ekj
ekjh pnkpdkj] pkyh e fucvk ?k?kjk ?keA**[7]

इस प्रकार आदिवासी समाज के कबूतरा जाति द्वारा इस उपन्यास में लोकगीत, संगीत, लोकनृत्य, लोक–कथाएँ आदि का चित्रण हुआ है।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा ने कबूतरा और कज्जाओं के संघर्ष का जो चित्रण प्रस्तुत किया है, उसमें कबूतरा जाति का संघर्ष ही नहीं बल्कि पूरा निम्न वर्ग, या हाशिए का समाज और उसके संघर्ष को देखा जा सकता है। इनका सामाजिक स्तर पशुओं से भी बदतर है। आदिवासी कबूतरा समाज अपराधी गतिविधियों के साथ जुड़े होने की वजह से तथाकथित सभ्य समाज उन पर शोषण और अत्याचार करता है।

इस उपन्यास में आदिवासी समाज के कबूतरा जाति का सम्पूर्ण ताना–बाना बुना गया है। पारिवारिक समाज की कलह, पुलिस का आदिवासी समाज पर किया जाने वाला अत्याचार, पूजा–पाठ, जादू–टोना, चुड़ैल, भूत, पिशाच आदि लोकविश्वास को उपन्यास के माध्यम से व्यक्त किया गया है। अल्मा, कदमबाई, सरमन, राणा, खुरदा, भूरी, रामसिंह, मलिया, जंगलिया, भीखम, गौतम आदि पात्रों के माध्यम से कबूतरा जनजाति के जीवन–संघर्ष पर मैत्रेयी पुष्पा ने बड़ी गहराई के साथ प्रकाश ही नहीं डाला बल्कि उसे उन्होंने नजदीक से देखा भी है। इसलिए यह उपन्यास उनके वैचारिक यात्रा से होकर कबूतरी जाति के जीवन संघर्ष यात्रा का परिणाम भी है। देखा जाय तो मैत्रेयी पुष्पा ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से अछूते ग्रामीण अंचलों की अनुभव यात्रा कर उन अंचलों की भौगोलिक एवं प्राकृतिक सौन्दर्य की छवियों से साक्षात्कार कराना नहीं है, बल्कि वहाँ की गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास, शोषण, रूढ़िग्रस्तता आदि समस्याओं और प्रश्नों से घिरी जिन्दगी की संकुचित पहचान उभारकर, वहाँ की जिन्दगी के अंतर्विरोध और मूल्यों की टकराहट को रूपायित कराना है।

इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' हिन्दी आदिवासी उपन्यास की रचना करके न केवल आदिवासी कबूतरा जाति को प्रस्तुत किया है, बल्कि समग्र आदिवासी संस्कृति और उनके जीवन–संघर्ष को आज के हिन्दी पाठक समुदाय के समक्ष प्रस्तुत भी किया है।

lUnHk %

1. मैत्रेयी पुष्पा– अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ0 65
2. वही– पृ0 5
3. प्रो0 बी0के0 कलसावा– हिन्दी में आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, मयूर प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ0 212
4. मैत्रेयी पुष्पा– अल्मा कबूतरी, पृ0 12
5. वही– पृ0 14
6. वही– पृ0 42
7. वही–पृ0 42

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 116-118

vFkoZosn esa vkfFkZd fLFkfr

jktsy flag*

सम्पूर्ण विश्व के प्राचीनतम् वाङ्मय में वेद का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान नितान्त गौरवपूर्ण है। श्रुति की दृढ़ आधारशिला के ऊपर भारतीय धर्म तथा सभ्यता का विशाल प्रासाद प्रतिष्ठित है। हिन्दुओं के आचार–विचार, रहन–सहन तथा धर्म–कर्म को भली–भाँति समझने के लिए वेदों का ज्ञान विशेष आवश्यक है क्योंकि सहस्रों वर्षों से वेद भारत की संस्कृति का स्रोत बना हुआ है। वेद शब्द की व्युत्पत्ति 'विद्' धातु से स्वीकार की जाती है। विद् धातु से करण तथा अधिकरण दोनों ही अर्थों में घञ्प्रत्यय लगने पर वेद शब्द निष्पन्न होता है। इस प्रकार वेद शब्द का अर्थ है– जिस ज्ञान से सभी मनुष्य सभी सत्य विद्याओं को जानते हैं, जिससे सम्पूर्ण चराचर जगत् स्थित है जिससे लौकिक तथा पारलौकिक सुख प्राप्त होता है तथा जिससे ग्राह्य एवं त्याज्य का विचार किया जाता है, वह वेद है। वेद को स्पष्ट करते हुए आचार्य सायण ने 'तैत्तिरीय भाष्य भूमिका' में कहा है–

^b"VikIR;fu"Vifjgkj;ksjykSfdde~ mik;a ;ks xzUFkks osn;fr l% osnA*

अर्थात् जो ग्रन्थ इष्ट धातु की प्राप्ति तथा अनिष्ट वस्तु के परिहार के कारणभूत अलौकिक उपाय को बतलाता है, वह वेद है।वेद शब्द का अभिधेयार्थ ज्ञान है तथा सम्पूर्ण विश्व को ज्ञानालोक से आलोकित करने का प्रथम श्रेय वैदिक वाङ्मय को ही है।

मन्त्रों के समूह का नाम संहिता है। पहले वेद एक ही था। यज्ञ के अनुष्ठान को दृष्टि में रखकर भिन्न–भिन्न ऋत्विजों के उपयोग के लिए वेदव्यास ने वेद का चतुर्धा विभाजन किया। यथा–

1- _Xosn lafgrk% इसमें मुख्यतया विभिन्न देवताओं की याज्ञिक स्तुतियों का संकलन किया गया है। जो तत्त्वज्ञान विषयक विचारों से परिपुष्ट होने के कारण मानव–जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इसमें कुल 33 देवताओं की स्तुति की गयी है। इसका. ऋत्विक् होता है।

2- ;tqosZn&lafgrk% यजुर्वेद संहिता यजुसों का संग्रह है। यजुस् का अर्थ होता है जिसमें अक्षरों की संख्या नियत न हो– ^^vfu;rk{kjkolkuks ;tq%A**

अध्वर्यु ऋत्विक् के लिए उपयोगी मन्त्रों का संकलन यजुर्वेद–संहिता में किया गया है।

3- lkeosn&lafgrk% 'साम' शब्द का शाब्दिक अर्थ है– ''देवों को प्रसन्न करने वाला गान।'' इस संहिता में ऋत्विक उद्गाता के लिये यज्ञ–यागादि में गाये जाने वाले साममन्त्रों का संकलन हुआ है।

4- vFkoZosn&lafgrk% इस प्रकार पद्य, गद्य एवं साम के आधार पर जो संहिताएँ संकलित की गयीं उनका नामकरण तो हो गया परन्तु अन्य संकलन का नामकरण क्या हो, इस समस्या का समाधान उन मन्त्रों के द्रष्टा अथर्वा और ऋषियों के नाम से 'अथर्वांगिरस् संहिता' अथवा अथर्ववेद–संहिता नाम रखकर कर लिया गया है। इसमें शान्तिक तथा पौष्टिक कार्यों से सम्बन्धित मन्त्रों का संकलन तैयार किया गया है। इसके ऋत्विक् ब्रह्मा हैं।

चारों वेदों में अथर्ववेद का स्थान बहुत ऊँचा हैं। यह वैदिक वाङ्मय का शिरोभूषण है। यद्यपि गौरव, यज्ञोपयोगिता और मन्त्र–संख्या की दृष्टि से ऋग्वेद का स्थान प्रथम है तथापि सांस्कृतिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से अथर्ववेद अत्यन्त महत्वपूर्ण है। संस्कृति और सभ्यता का जितना विषद् विवेचन अथर्ववेद में प्राप्त होता है। उतना अन्य किसी वेद में नहीं। इस वेद का जितना अधिक मनन, विवेचन, विश्लेषण और अनुशीलन किया जायेगा, उतनी ही अधिक सामग्री इस वेद से प्राप्त होगी।

*शोधच्छात्रा, संस्कृतविभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्याय, वाराणसी, उ0प्र0

जब अथर्ववेद में आर्थिक स्थिति को समझना या देखना होता है तो सर्वप्रथम हमारा ध्यान उस समय की आजीविका की ओर जाता है। उस समय का मुख्या आर्थिक स्रोत का साधन कृषि, अन्न एवं औषधियाँ व वनस्पतियाँ थीं। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन निम्नलिखित रूप से किया गया है।–

d½ d`f"k ½ अथर्ववेद में कृषि के महत्त्व का पर्याप्त वर्णन है। कृषि का कार्य सुयोग्य व्यक्ति ही करते थे। कवि और धीर (विद्वान) व्यक्ति इस कार्य को अपनाते थे और कृषि करते थे। यह कार्य सुख–प्राप्ति के उद्‌देश्य से किया जाता था।[1] कृषि गौरव का कार्य था, अतः इन्द्र और पूषा देवों को इसमें लगाया गया है। इन्द्र का अर्थ राजा भी है, अतः राजा का कृषि कार्य में लगना उचित बताया गया है। अथर्ववेद में वर्णन है कि विराट् (ब्रह्म) मनुष्यों के पास पहुँचा। मनुष्यों ने इसे इरावती (अन्न समृद्धि) नाम से पुकरा। उन्होंने इसे दुहकर कृषि और अन्न प्राप्त किया। कृषि और अन्न से ही सब मनुष्यों का कम चलता है यही आजीविका का साधन है। अथर्ववेद में कृष्टराधि (कृषि में सफल) को 'उपजीवनीय' (सफल आजीविका वाला) कहा गया है।[2] ऋग्वेद के अक्षसूक्त में कृषि को उत्तम कार्य बताते हुये कहा गया है कि द्यूत छोड़ो और परिवार की भलाई के लिए कृषि करो।[3] अथर्ववेद में राजा पृथी वैन्य को कृषि विद्या का आविष्कारक या जन्मदाता बताया गया है। उसने ही सर्वप्रथम कृषि की और अन्न उत्पन्न किया।[4] इसी वेद में वर्णन है कि देवों ने सरस्वती नदी के किनारे जौ के लिए खेत तैयार किया। इन्द्र सीरपति (हलस्वामी) था और मरुत् देव कृषक थे।[5] वेदों में किसान के लिए 'किनाश' शब्द है। किसान भूमि को जोतने व बीज बोने का काम करते थे। अथर्ववेद में किसान के लिए 'कार्षीवण' शब्द भी आया है। इनको अन्नविद् अर्थात् अन्न का विशेषज्ञ कहा गया है। 'क्षेत्रस्य पतये' से ज्ञात होता है कि किसान क्षेत्र का स्वामी या क्षेत्रपति भी होता था।[6] अथर्ववेद के एक मंत्र में 'क्षेत्रस्य पत्नी' भी आया है।[7] इससे ज्ञात होता है कि खेत की स्वामिनी स्त्री भी हो सकती थी। एक मंत्र में शंभु अर्थात् परमात्मा को ही क्षेत्रपति कहा गया है। अथर्ववेद से ज्ञाता होता है कि इन्द्र या राजा क्षेत्रपति या खेत का स्वामी होता था। और किसान खेत जोतने का काम करते थे। इसका यह भी अभिप्राय है कि खेत का स्वामित्व राजा के पास होता था और किसान केवल पारिश्रमिक के अधिकारी थे। मरूतों ने इन्द्र के लिए कृषि का काम किया था।

अथर्ववेद, यजुर्वेद और तैत्तिरीय संहिता में भूमि के विविध भेदों का उल्लेख हुआ है। तीन मुख्य भेद– उर्वरा (उपजाऊ), इरिण (ऊषर) और शृप्य (चरागाह के योग्य)।[8] इसी तरह कृषि से उत्पन्न अन्न को कृष्ट पच्य और बिना कृषि के उत्पन्न अर्थात् जंगली फल–फूल आदि अकृष्ट पच्य कहे जाते हैं। इसी क्रम में कृषि के दो भेदों का उल्लेख किया गया है–

1. o";k ½ वर्षा पर निर्भर रहने वाली कृषि।

2. vo";k ½ वर्षा पर निर्भर न रहने वाली अर्थात् नहर, कूप, तालाब आदि सिंचाई के अन्य साधनों पर आश्रित।

अथर्ववेद में पाँच प्रकार के जलों का वर्णन प्राप्त होता है जो अलग–अलग प्रकार से कृषि कार्य में सिंचाई का काम करते थे– 1. धन्वन्य (मरु–देशीय जल), 2. अनूप्य (तालाब आदि का जल), 3. खनित्रिम (खोदे हुए कुएँ आदि का जल), 4. वार्षिक (वर्षा का जल), 5. नदियों का जल।

अथर्ववेद में कृषि के साधन के रूप में निम्नलिखित हैं–

1- gy ½ जिसके लिए लांगल और सीर शब्द है।

2- lhrk Qy ½ हल के अगले नुकीले भाग के लिए सीता और फल शब्द है।

3- 'kqukl hj ½ रोउ ने शुनासीर से हल की लकड़ी (शुना) और फाल (सीर) अर्थ लिया है।

4- b"kk] ;qx] oj=k ½ हल में लम्बी लकड़ी (हलस) लगी रहती है, उसके लिए ईषा शब्द है। इसके निचले भाग में लोहे की फाल होती है। इसके ऊपर जूआ (युग) रखा जाता है।[9] हलस और जूए की रस्सी (जो बाँधने के काम में आता है) 'वरत्रा' कहलाती है।

5- v"Vªk ½ किसान जिस छड़ी से बैलों को हाँकता है, उसके लिए 'अष्ट्रा' शब्द है।[10]

6- cSy ½ बैल के लिए 'वाह' शब्द का प्रयोग है।

इस प्रकार कृषि–सम्बन्धी अनेक तथ्य अथर्ववेद से प्राप्त होते है और यह भी ज्ञात होता है कि अथर्ववेद में वर्णित कृषि की प्रक्रिया और वर्तमान कृषि–प्रक्रिया में पर्याप्त साम्य है।

[k½ vUUk % जिस प्रकार जीवन की आजीविका के लिए मुख्य रूप से कृषि को अनिवार्य बताया गया है उसी प्रकार जीवन निर्वाह के लिए अन्न को भी उपयोगी बताया गया है। अथर्ववेद में अन्न के विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। इसमें अन्न का महत्त्व, अन्न का विराट् रुप, अन्न के विभिन्न रुप, फसलें, अन्नों के नाम आदि का वर्णन मिलता है। अन्न का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि क्षुधा–निवृत्ति का साधन है और पौष्टिक तत्त्व है। यह रोगों का नाशक है। अनेक मन्त्रों में अन्न समृद्धि की प्रार्थना की गयी है। अथर्ववेद में यव, माष, ब्रीहि और तिल इन चार अनाजों का उल्लेख है। इनमें भी जौ का विशेष रूप से अनेक बार उल्लेख है। जौ को भूख दूर करने का साधन बताया गया है।[11] इससे ज्ञात होता है कि जौ सबसे प्राचीन अन्न है और जौ से अनेक शारीरिक रोगों को दूर करने का उल्लेख मिलता है।[12] जौ के साथ ही ब्रीहि (चावल) का भी प्रमुख खाद्यों में उल्लेख है। अथर्ववेद में वासस् और वस्त्र का अनेक स्थानों पर उल्लेख है।[13] नवीन वस्त्रों का भी उल्लेख मिलता है। तन्तु (धागा) शब्द का अनेक बार उल्लेख है। तन्त्र (करघा) का वर्णन है। उस पर वस्त्र की बुनाई का विस्तृत वर्णन भी मिलता है इससे रूई के अस्तित्व का ज्ञान होता है।

x½ vk"kf/k;k vkj ouLifr;k % जिस प्रकार अर्थववेद में आर्थिक स्थिति के लिए कृषि व अन्न का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है ठीक उसी प्रकार उसी क्रम में औषधियों व वनस्पतियों की भी महत्ता को दर्शाया गया है। अथर्ववेद में औषधियों के गुण, उनके लाभ और महत्त्व आदि का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। औषधियाँ चिकित्सा की प्रमुख साधन हैं। इनके द्वारा विभिन्न रोगों को दूर किया जाता है। अतः इन्हें भेषज और सुभेषज (उत्तम चिकित्सा) कहा जाता है।[14] औषधियों के रस से अनेक दवाएँ बनाई जाती थीं। इनसे रोगों की चिकित्सा होती थी। ये रस आयुर्वर्धक बताए गए हैं। कुछ औषधियाँ पर्वतों से लायी जाती तो कुछ कन्दमूल आदि के रूप में प्राप्त होती थीं। इनमें कुछ रोग–निवारण और कुछ रक्तस्राव एवं घाव आदि के लिए उपयोगी होती थीं।[15]

इस प्रकार हम अथर्ववेद में आर्थिक स्थिति के रूप में कृषि, अन्न व औषधियों आदि का विस्तृत उल्लेख प्राप्त करते है और यह भी ज्ञात होता है कि यह मनुष्य की आजीविका व जीवन निर्वाह के लिए कितना आवश्यक है।

lUnHkZ %

1. सीरा युञ्जन्ति कवयो.....सुम्नयौ । अ0 3.17.1
2. कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति । अ0 8.10.24
3. ऋग0 10.34.13
4. अ0 8.10.4.11
5. अ0 6.30.1
6. नमः क्षेत्रस्य पतये। अ0 2.8.5
7. क्षेत्रस्य पत्नी। अ0 2.12.1
8. अ0 10.6.33
9. ईषायुगेभ्यः। अ0 2.8.4
10. शुनम् अष्ट्राम् उदिङ्गय। अ0 3.17.6
11. यवेन क्षुधम्। अ0 7.50.7, 20.17.10
12. अ0 6.91.1
13. वासांसि। अ0 9.5.26
14. अ0 2.3.1
15. अथर्ववेद का संस्कृतिक अध्ययन, डॉ0 कपिल देव द्विवेदी।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 119-123

Hkfädkyhu i#"k jpukdkjk dh L=h&lonuk vkj ehjk dk L=h foe'k

M,0 lnhi j.kfHkjdj*

मीरां के व्यक्तित्व एवं जीवन–दर्शन को समझना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। मीरां का काव्य निज–भावों की सहज अभिव्यक्ति है। मीरां के काव्य में वर्णित मोर–मुकुट, पीताम्बर आदि के चित्रमय वर्णन उतना महत्त्व नहीं रखते, जितना कि मोर–मुकुट वाले की 'लगन' महत्व रखती है। वस्तुतः यह 'लगन' इतनी सघन और गहन है कि वह मीरां को आध्यात्मिकता के चरम सोपान पर पहुंचा देती है। किन्तु मीरां की आध्यात्मिकता की सबसे बड़ी विशेषता उसकी लोकाभिमुखता है। अतः मीरां का काव्य बौद्धिकता एवं तत्वचिंतन से ओतप्रोत न होकर लोकसंस्पर्श से आप्लावित है। जिसमें अलौकिक प्रियतम को पाने की आतुरता, न पा सकने की व्यथा, उसके पास पहुंचने से रोके जाने का आक्रोश, अपनी असहायता, उसे भावजगत में प्राप्त कर लेने की पुलक सब कुछ विद्यमान है। मीरां की आध्यात्मिकता ज्ञान–पक्ष की प्रमुखता से युक्त बोझिल न होकर हृदयपक्ष का अबाध उद्‌गार है जिसके अनन्य प्रवाह में पाठक भी सराबोर हो जाता है। स्पष्ट है कि मीरां का अध्यात्म आत्मगत एवं सौन्दर्यशास्त्रीय दुनिया को निर्मित करनेवाला मनोविज्ञान नहीं है अपितु सामाजिक मुक्ति एवं स्वाधीन शरीर–मनोजगत का निर्माण करनेवाला माध्यम है। मीरां की आध्यात्मिकता का सबसे पुनीत पक्ष यह है कि यहाँ मीरां की अंतर्दृष्टि बहिर्जगत के लिए तिरोहित हो जाती है। जहां अध्यात्म बहिर्जगत का विगलन कर अपनी अंतर्दृष्टि का विकास करते हुए ईश्वर की शरण में उनसे तादात्म्य प्रस्थापित करना है वही मीरां अपनी अंतर्दृष्टि के आलोक में बहिर्जगत को पूर्ण प्रकाशित कर एक नई दुनिया का संधान करना चाहती है जिसमें परंपरागत धारणाएँ पूर्णतः तिरोहित हो जाएँ, यहीं आकर उनकी आध्यात्मिकता पर सामाजिकता का रंग भी चढ़ जाता है, जो उनके काव्य को एक नूतन आयाम प्रदान करता है।

मीरां के काव्य में लोकाभिमुखता, सामाजिकता के दर्शन होते हैं, जिससे उनका काव्य काफी ऊँचा उठ जाता है। मीरां कवयित्री से पूर्व एक स्त्री भी है, अतः स्त्रियोचित भावनाओं का उद्‌घाटन मीरां के काव्य में देखा जा सकता है। स्त्री जीवन की अनेक विसंगतियों को मीरां अपने काव्य में उघाड़कर रख देती है। यहीं मीरां का काव्य लोक से जुड़ता हुआ नजर आता है जहां मीरां प्रातिनिधिक रूप में समग्रतः स्त्री अस्मिता, स्वतंत्रता, अधिकारों के प्रति सजगता आदि की बात करती है। युगों–युगों से गुलामी की जंजीरों में आबद्ध स्त्री की मुक्ति की कामना करते हुए विद्रोही तेवर अपनाती है। उसे पता है कि स्त्री की इस स्थिति के लिए पुरुषप्रधान मानसिकता जिम्मेदार है जिसने समाज व्यवस्था के समस्त सूत्र अपने हाथ में ले रखे हैं। अतः स्थिति में परिवर्तन तभी संभव है जब इन राणा रुपी व्यवस्था के ठेकेदारों को चुनौती दें, इनके प्रति असहमति दर्ज कराएं। मीरां व्यवस्था के विरुद्ध मोर्चा खोलकर अपने साहस का परिचय देती है।

भक्तिकालीन साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में यदि स्त्री की स्थिति का जायजा लिया जाए तो हम पायेंगे कि भक्त कवियों की सामाजिक दृष्टि भले ही अत्यंत प्रखर रही हो किन्तु स्त्री के प्रति उनकी दृष्टि प्रतिकूलात्मक ही थी। इन कवियों ने खुलकर स्त्री की सामाजिक आलोचना की और उसे मायाविनी, अवगुणों की खान कहा। कबीर यद्यपि अत्यंत प्रखर सामाजिक चेतना से युक्त कवि अथवा समाज सुधारक थे किन्तु उनके स्त्री संबंधी विचारों पर युग की छाप दिखाई पड़ती है। उनके काव्य में भी स्त्री सामंती रुढियों में जकड़ी हुई दिखाई पड़ती है। वे लिखते हैं –

*सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बान्दरसिंदरी, किशनगढ, जिला–अजमेर (राजस्थान)

Þukjh d|M ujd dk fcjyk Fkke| ckxA dkÃ lkèk|tu mcj|] lc tx e|vk ykxAAß[1]

इन भक्त कवियों के नारी विषयक विचार देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे इनकी दृष्टि में भक्ति के लिए नारी निंदा अत्यंत आवश्यक है। इसके विपरीत भक्त कवयित्रियों के काव्य में कहीं भी पुरुष निंदा की आवश्यकता नहीं पड़ी। हालांकि वे सबसे अधिक पुरुष द्वारा ही प्रताड़ित एवं अपमानित थीं। पुरुष द्वारा भक्तिमार्ग में लाख रोड़े डालने पर भी स्त्री ने अपने स्त्रीत्व के जरिए ही आत्मज्ञान की सहज प्राप्ति की। किन्तु पुरुष भक्तों ने केवल विचार के धरातल पर ही नारी निंदा की, अनुभूति में, संवेदना के स्तर पर ईश्वर प्राप्ति हेतु वे स्वयं नारी का रूप धारण करते हैं और परमात्मा को पुरुष के रूप में चित्रित करते हैं। इस प्रकार पुरुष रचनाकारों का दोगलापन दिखाई पड़ता है। उनके अनुसार स्त्री में भले ही अविश्वसनीयता, बुद्धिहीनता, मायाविनी, निर्दयता, अपवित्रता आदि वृत्तियाँ हैं और वह भक्तिमार्ग में बाधक है किन्तु फिर भी वैयक्तिक धरातल पर ईश्वर की प्राप्ति हेतु वे स्वयं अत्यंत प्रसन्नता से स्त्री रूप धारण करते हैं।

तुलसीदास मानवीय भावभूमि पर उतरकर लोकमंगल से युक्त काव्य का सृजन करते हैं और आचार्य शुक्ल के अनुसार उन्हें लोकहृदय की पहचान भी है किन्तु फिर भी उनके स्त्री चित्रण में भी युगीन मानसिकता का निर्वाह देखा जा सकता है। परम्परागत रूप से नारी में अविश्वसनीयता, बुद्धिहीनता, मायाविनी होना, निर्दयता और अपवित्रता आदि वृत्तियों को माना जाता है। तुलसीदास ने अपने संवेदन में नारी के इसी रूप को अंकित किया है। उनके अनुसार स्त्री में सदैव आठ अवगुण विद्यमान होते हैं साथ ही स्त्री के स्वभाव की थाह कोई नहीं पा सकता उसका स्वभाव अत्यंत अगम एवं अगाध है –

Þukjh l|Hkko lR; lc dgfgA vox|.k vkB lnk mj jgfgAA
lgl] vu`r] pi yrk] ek;kA Hk; vfoo|d] vlkp vnk;kAAß[2]
Þ lR; dgfg dfo ukjh l|HkkmA lc fofèk vxe vxkèk n|jkÅAA
fut çfrfcEc| c#d| xfg tkÃA tkfu u tkb ukjh xfr HkkÃAAß[3]

तुलसी की स्त्री विषयक संवेदना में स्त्री के स्त्रीपन का ही नकार नहीं है बल्कि, यह नकार है स्त्री के अस्तित्व और अस्मिता का। जिस प्रकार धर्म, शास्त्र और सत्ता के रक्षक नारी को श्रृंखलाबद्ध करते थे; सतीत्व की ज्वाला और जौहर की आग प्रदान करते थे, उसी प्रकार तुलसी सदृश संवेदक भी स्त्री को हीनता की ग्रंथी में जलने हेतु, संवेदना के माध्यम से विवश करते थे। 'जिमि सुतंत्र भई बिगरही नारि' कहनेवाले तुलसी को आत्मज्ञान कराने वाली रत्नावली भी एक नारी ही थी। तुलसी सती का आदर्श वही मानते थे जो रूढ़िग्रस्त समाज में परंपरा से गृहीत था।

इस काल में रहीम का भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। रहीम ने अपने भक्ति एवं नीतिपरक दोहों के जरिए समाज के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत किया एवं समाज का पथप्रदर्शन किया। किन्तु नारी के प्रति उनकी दृष्टि भी सकारात्मक दिखाई नहीं पड़ती। पूर्वाग्रह से युक्त हो कर वे नारी को विश्वास योग्य नहीं मानते। नारी के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि साँप, घोडा, नारी, राजा (उच्चाधिकारी), नीच आदमी और अस्त्र–शस्त्र इन सब से हमेशा सावधान रहना चाहिए। रहीम के अनुसार, इनके साथ जरा सी भी चूक होने पर ये पलटवार करने में देर नहीं लगाते –

Þmjx r|jx ukjh u`ifr uhp tkfr gfFk;kjA jfgeu bUg| lHkkfj, iyVr yx| u ckjAAß[4]

नारी का सबसे ज्यादा आकर्षण उसका सौन्दर्य है। भक्त कवियों की मान्यता रही है कि नारी का सौन्दर्य ही व्यक्ति के मन को चंचल बनाकर अपने सौन्दर्य पाश में आबद्ध कर लेता है, जिससे मनुष्य पतनोन्मुख हो जाता है। कवि सुन्दरदास ने नारी को राक्षसी के रूप में दिखाकर नारी का विकर्षक एवं भयावह चित्रण किया है–

Þ lUnj dgr ,d vkj Mj vfr rkeA jk{kl cnu "kkÅ "kkÅ gh djr| gAAß[5]

दादू तो इन सब से दो कदम आगे प्रतीत होते हैं। वे नारी की छाया से ही नहीं डरते हैं, वे नारी द्वारा पुरुष को देखने और स्पर्श करने की बात तो बहुत दूर, नारी का नाम भी लेना या सुनना दुखद मानते हैं–

Þukjh u|u u nf[k,] e|[k lkS uko u yÃA dkuk dkef.k ftfu l|.k] ;g e.k tk.k u nbAAß[6]

भक्तिकालीन पुरुष रचनाकारों की इस स्त्री संबंधी मानसिकता के विपरीत स्त्री रचनाकारों ने पुरुष रचनाकारों के समान समाज का एकांगी चित्र प्रस्तुत न करते हुए अधिक वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया। भक्तिकालीन कवयित्रियों ने अपनी रचनाधर्मिता में जहाँ व्यवस्था विरोध एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को मूल्यांकित करने का कार्य किया वहीं सामाजिक व्यवस्था के समक्ष अपनी सृजनात्मक चेतना के माध्यम से निज अस्तित्व एवं अस्मिता का प्रस्फुटन भी किया। एक ओर तो इन्होंने मध्यकालीन प्रभुता के विरुद्ध आवाज उठायी तो दूसरी ओर अपनी कविताओं में स्त्री–जिजीविषा को पूरी शिद्दत के साथ परिलक्षित किया। पुरुषप्रधान मानसिकता, सामाजिक–सांस्कृतिक जकड़बंदियाँ, रूढ़ियों एवं परम्पराओं का दुराग्रह, स्त्री अस्मिता का हनन आदि के प्रति इन स्त्री रचनाकारों में विद्रोही चेतना दिखाई पड़ती है। इस काल में स्त्री संवेदनाओं का प्राबल्य अधिक नहीं तो न्यून भी नहीं है। उमा, पार्वती, मुक्ताबाई, गंगाबाई, रत्नावली, ताज, सहजोबाई, दयाबाई आदि इस काल के प्रमुख नाम हैं जिनमें सगुन एवं निर्गुण कवयित्रियाँ सम्मिलित हैं।

इन सब में राजस्थान की मरुभूमि पर कोमल लता के समान उदित मीरां का अनुपम स्थान है। राजस्थान में जहाँ वीरता को ही परम धर्म माना जाता था वहाँ भक्ति की रागिनी गाना, वह भी एक राजपूत महिला द्वारा, अपने आप में चुनौतीपूर्ण था। साथ ही न केवल राजपूत समाज एवं राजघराने को अपितु समूची भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था को तथा रुढियों एवं परम्पराओं को चुनौती देना, राजवैभव का त्याग करना और सड़क पर उतरकर महिलाओं के अधिकारों की बात करना इतना साहस केवल मीरां ही कर सकती थी। मीरां के काव्य में अभिव्यक्त स्त्री विमर्श को निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत विवेचित किया जा सकता है–

1- eè;dkyhu tMrk e L=h&vfLrRo dh ryk'k ,o iu%lt u % मीरां की भरसक कोशिश यही रही है कि न केवल मध्यकालीन जड़ता में स्त्री–अस्तित्व की तलाश की जाए अपितु उसका पुनःसृजन भी संभव हो सके। इसीलिए तत्कालीन समय में जहाँ स्त्री केवल जीने की औपचारिकता का निर्वाह मात्र कर रही थी, मीरां ने जीने के मायने ही बदल दिए थे। मीरां केवल जीने के लिए नहीं जीती अपितु सामंती पुरुष–प्रभु समाज में नए संकल्प के साथ स्त्री–अस्मिता प्रदर्शित करती है। वह साधारण से असाधारण की यात्रा तय करते हुए अपनी जीवन साधना को निज आत्मानुसार साधती है। मीरां के काव्य में नारी तत्कालीन समाज में आत्मसम्मान की आकांक्षा व स्वाभिमान के साथ जीना चाहती है। अपने काव्य में वह समाज में नारी जीवन की रवानी पर लगाम कसने की कोशिश का खुलकर विरोध करती हैं। नारी जिजीविषा को प्रत्यक्ष करने के लिए वह व्यवस्था की जड़ संरचना की पुनर्सर्जना करना चाहती है। अपनी रचनाओं के जरिए वह नारी भावना एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का समर्थन करती हैं। मीरां नारी जीवन पर से पुरुष सत्ता के वर्चस्व विसर्जन को उकेरती है परिणामस्वरूप नारी को नारी का अस्तित्व प्रदान करनेवाले प्रतिक चिह्नों के विसर्जन की वह वकालत करती है–

Þxg.kk xkBh jk.kk ge lc R;kxk] R;kX;k dj jk pMkA
dkty Vhdh ge lc R;kX;k] R;kX;k N ckèku tMkAß[7]

2- lkekftd 0;oLFkk dh ,dkfxrk dk fojkèk % मीरां के अनुसार स्त्री की दयनीय अवस्था का प्रधान कारण सामाजिक व्यवस्था की एकांगिता है। अतः वह खुलकर इसका पुरजोर विरोध करती है। मीरां ने व्यवस्था के विरोध के जरिए परंपरा का पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास किया है। मीरां ने सामाजिक व्यवस्था के सम्मुख अपनी सृजनात्मक वृत्ति के माध्यम से निज अस्तित्व–अस्मिता का प्रस्फुटन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मीरां को चहुतरफा विरोध सहना पड़ा और उसे बहिष्‌ता का जीवन जीना पड़ा। साथ ही सत्ता और व्यवस्था के साथ निरंतर द्वंद्व चलता रहा। स्त्री–अधिकारों की प्राप्ति हेतु मीरां ने व्यवधान उपस्थित करने वाले सामाजिक विधि–निषेधों और नैतिकतावादी समाज की मर्यादाओं का उल्लंघन किया। मीरां ने मिथ्या आरोपित लोकलाज को त्याग दिया, फलस्वरूप वह लोकनिंदा से निर्भीक हो गई। लोकलाज एवं लोकनिंदा से निर्भय रहकर अपने द्वारा चुने गए मार्ग का अनुसरण करते हुए अपने समय के भक्ति आन्दोलन से जुड़कर व्यवस्था के सम्मुख न केवल अपने लिए अपितु सम्पूर्ण नारी समाज के लिए धार्मिक, सामाजिक अधिकार प्राप्त करने की पहल मीरां द्वारा की गयी। परिणामतः मीरां लोगों की प्रतिक्रिया, लोकलाज, कुलकानि आदि के प्रति बेपरवाह थी –

Þykdykt dyjk ejtknk] txek .kd .kk jk[;k jhAß[8]

मीरां सामाजिक, मानसिक स्वतंत्रता की पक्षधर है। अतः वह किसी भी प्रकार की वर्चस्ववादिता का विरोध करती है। सामंती व्यवस्था द्वारा निरीह और अस्तित्वहीन किये जाने की क्रूरता का भी मीरां ने स्पष्ट शब्दों में अंकन किया है –

Þykx dák ehjk ckojh lkl dák dyuklh jhA
fo"k jk l;kyk jk.kk HkT;k] ihok ehjk gkl h jhAAß[9]

3- ^L=h efä* dh ;k=k e L=h gh lcls cMk vojks/k% मीरां के अनुसार स्त्री की मुक्ति में सबसे बड़ी बाधा स्वयं स्त्री ही है। इस बात को समझना अत्यंत आवश्यक है। स्त्री ही है जो स्त्री को परम्परा एवं रुढियों के बंधन में बंधने को बाध्य करती है। स्त्री को समाज द्वारा प्रदत्त पीड़ा, वेदना एवं सदियों के अपमान को चुपचाप हलाहल के समान पी लेना चाहिए। उसे सब कुछ अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि वह विरोध करती है तो पुरुषों की तुलना में नारी समाज का ही उसे अधिक विरोध सहना पड़ता है। कितनी विडंबना है कि स्त्री की सबसे बड़ी शत्रु स्वयं स्त्री है। मीरां ने भी जब व्यवस्था को चुनौती दी थी तब सबसे पहले उसे सास, ननद एवं सहेलियों से ही पारम्परिक मर्यादाओं में रहने की सीख मिली थी। इन लोगों ने मीरां के आचरण की भरपूर निन्दा की थी –

Þl[kh lkbfu Egkjh gl r g] gfl&gfl n ekfg rkjh] g ek;A
lkl cjh v# uun gBhyh] yfj&yfj n ekfg xkjh] g ek;Aß[10]

मीरां के इन शब्दों में उसकी पीड़ा को एवं तत्कालीन स्थिति को समझा जा सकता है। मीरां ने अत्यंत मार्मिक शब्दों में अपने समय की स्त्री मानसिकता का यथार्थ चित्रण किया है। यह भी समझना आवश्यक है कि मध्यकालीन मानसिकता से आधुनिक मानसिकता में अधिक परिवर्तन नहीं है। आज भी स्त्री का स्त्री के प्रति वैसा ही व्यवहार दिखाई पड़ता है। जहाँ आगे बढ़कर स्त्री को स्त्री का साथ देना चाहिए वहीं स्त्री स्त्री के खिलाफ खड़ी होती है।

4- foækg dh Hkkouk% मीरां ने डंके की चोट पर अपनी सोच को अभिव्यक्ति प्रदान की है। जहाँ–जहाँ स्थितियाँ प्रतिकूल नजर आयीं मीरां ने उन पर खुलकर चोट की है। कहीं पर भी मीरां ने परिस्थितियों से समझौता नहीं किया। मीरां के विद्रोही तेवर के मूल में स्त्री की आँसू भरी नियति को बदलने की तीव्र इच्छा है, जिसके लिए वह स्त्री–अस्मिता एवं अधिकारों के प्रति सजगता की बात करती है। मीरां नारी की मुक्ति, आशा, आकांक्षा, अभिलाषा की पक्षधर है। मीरां के काव्य की अर्थवत्ता स्त्री की आत्मिक एवं सामाजिक मुक्ति में ही सन्निहित है। मीरां की विद्रोही चेतना के मूल में संस्कारपोषित व रूढ़िबद्ध पुरुष मानसिकता और व्यवस्था की कारा से मुक्ति की कामना है। अतः नारी के स्वाधीन मन एवं वाणी को पराधीनता में परिवर्तित करनेवाले तमाम प्रतीकों एवं रुढियों का विरोध करती है।

मीरां पर राणा ने कई अमानुष अत्याचार किए जिसका अपने पदों में मीरां बार–बार उल्लेख करती है, किन्तु मीरां को राणा का किंचित भी भय नहीं है। वह राणा के खिलाफ विद्रोह कर उसे ही चुनौती देती है। मीरां के अनुसार राणा उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता –

Þlhlks|k :Bîk rk Egkjk dkÃ djyl hA Eg rk x.k xkfoUn dk xkL;k] gk ekÃAAß[11]

यदि राणा रूठता है तो वह मीरां को अपने देश से निकाल देगा किन्तु श्रीकृष्ण रुठेंगे तो मीरां मुरझाई हुई लता के समान कांतिहीन और निष्प्राण हो जाएगी। राणा यहाँ सामंती व्यवस्था का प्रतीक है और मीरां पर उसके अत्याचार पुरुष–प्रधान नैतिकता के स्त्री पर अत्याचार हैं। अतः मीरां खुलकर विरोध करती है। उसे परिणामों की किंचित भी चिंता नहीं है। वह कहती है कि उसने लोकलाज एवं कुल की मर्यादा को पानी की तरह बहा दिया है और उसके किये पर यदि राणा को लज्जा आती है या संकोच होता है तो वह अपने घर का परदा कर ले –

Þykdykt dy dk.k txr dh] nb cgk; tl ik.khA
viu ?kj dk ijnk djy] e vcyk ckjk.khAAß[12]

5- lerkfèkf"Br uru lekt dh LFkkiuk grq dfVc) % मीरां के स्त्री विमर्श का उद्देश्य स्त्री–पुरुष में खाई उत्पन्न करना न होकर खाई को पाटना है। वह स्त्री को माया रूप से बाहर निकाल कर मानवी रूप में प्रतिष्ठित करने की पक्षधर है। वह समताधिष्ठित नूतन समाज की स्थापना हेतु कटिबद्ध है। अतः वह पुरुष का विरोध नहीं करती अपितु पुरुषी अहंग्रस्त मानसिकता का विरोध करती है। वह चाहती है कि स्त्री स्वनिर्मित सामाजिक मूल्यों के साथ जीवन यापन करे। अतः सामाजिक नैतिकता व सामंती मर्यादावादी मूल्यों के प्रतिरोध में नारी जीवन मूल्यों की स्वयं स्थापना करती है। वह एक ऐसे समाज की स्थापना हेतु कटिबद्ध है जिसमें चीरकालीन पीड़ा, बेचैनी, यातना से स्त्री को मुक्ति प्राप्त हो। वह हर प्रकार की सत्ता, संस्कृति, व्यवस्था के वर्चस्व से स्त्री अस्मिता को स्वतंत्र रखने का प्रयास करती है। वह उपेक्षित तथा दास की अस्मिता प्रदान करनेवाली पुरुष–संकल्पना का प्रतिकार करती है। मीरां को यह भी ज्ञात है कि स्त्री को स्वयं अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्नशील होना आवश्यक है, कोई अन्य उसे मुक्ति प्रदान नहीं कर सकता, इसलिए वह स्त्री में आत्मसम्मान व स्वावलंबन के भाव विकसित करने का प्रयास करती है। वह एक नविन नारी के ऐसे स्वरूप की स्थापना करती है जो केवल तत्कालीन मानस के समक्ष ही नहीं अपितु भावी समय के इतिहास के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करता है।

समग्रतः भक्तिकालीन पुरुष रचनाकारों ने भले ही मानवीय दृष्टि का परिचय देते हुए अपने काव्य के जरिए मानवता धर्म की प्रतिष्ठा पर बल दिया किन्तु स्त्री के प्रति वे रहे अमानवीय ही। इन रचनाकारों को अपनी समर्पित भक्ति–साधना में स्त्री ही सबसे बड़ा अवरोध प्रतीत हुई। अतः अपनी पूर्वाग्रह ग्रसित सोच के चलते वे स्त्री–मानस को समझने में असमर्थ रहे। ऐसे समय में स्त्री–रचनाकारों की ही दरकार थी जो स्वाभाविक रूप में स्त्री–संवेदनाओं को वाणी प्रदान कर सके और स्त्री को समाज में उसका वाजिब स्थान दिला सके। मीरां के काव्य में स्त्री पक्षधरता के साथ–साथ व्यवस्था को चुनौती देने का माद्दा था। मीरां ने अपने निर्भय एवं साहसी व्यक्तित्व के बलबूते स्त्री–अस्मिता एवं स्त्री–अधिकारों की वकालत की। प्रतिरोध की इस लड़ाई में मीरां ने न केवल स्त्री को एक मानवी के रूप में प्रतिष्ठित किया अपितु उसे जागरुक बनाने का भी प्रयास किया। अपने पदों में मीरां ने स्त्री जीवन से सम्बद्ध विविध आयामों को उद्घाटित करने का प्रयास किया। निश्चित रूप से मीरां का व्यक्तित्व एक भक्त का कम और समाजसुधारक का अधिक दिखाई पड़ता है। यहाँ व्यष्टि–चेतना समष्टि–चेतना में परिवर्तित होती है। भक्तिकाल में अभिव्यक्त मीरां के विचारों की आज भी प्रासंगिकता यह प्रमाणित करती है कि इनके काव्य में वर्णित मूलवर्ती गुणों की आज भी दरकार है जिसके चलते इनका काव्य कालजयी बना हुआ है। अंततः केवल इतना कहा जा सकता है कि– Þvèkjk xgjk jgk g--- jk'kuh ;gÈ feyxh---ß

lUnHkZ %

1. मैनेजर पाण्डेय, भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 1993, पृ0 26
2. तुलसीदास, रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, 15/1.2, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1959
3. वही, अयोध्याकाण्ड, 47/4
4. (सं) वाग्देव, रहीम दोहावली, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, सं0 2011
5. (सं) पुरोहित हरनारायण शर्मा, सुन्दर ग्रंथावली, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कोलकाता, 1993, पृ0 437
6. दादू बाणी, बेलेडियर प्रेस, प्रयाग, पृ0 131
7. देशराजसिंह भाटी, मीरांबाई और उनकी पदावली, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 2009, पृ.225
8. वही, पृ0 204
9. वही, पृ0 232
10. वही, पृ0 367
11. वही, पृ0 230
12. वही, पृ0 234

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 124-127

ledkyhu ifjos'k esa foKkiu fuekZ.k izfØ;k

MkW0 vfer dqekj flag dq'kokgk*

çLrkouk%

नाम बनाने की राह में / चुनौतियां तो आयेगी, / गिर गया तो क्या हिम्मत का गूंट लगा,
आगे बढने का रिस्क उठा / क्योंकि नाम एक दिन में नहीं बनता,
पर एक दिन जरूर बनता हैं। मांउटेंन ड्यू / 'नाम बनते हैं रिस्क से'

मांउटेंन ड्यू के इस विज्ञापन को आजकल अक्सर टेलीविजन पर देखा जा सकता है। इसी तरह समाचार पत्र, पत्रिकाओं, सिनेमा घर, बस स्टैंड, सडकों के किनारे, दुकान या, शोरूम के अन्दर, बाहर हर जगह विज्ञापन ही विज्ञापन नजर आते है। आधुनिक समय में विज्ञापन से कोई भी क्षेत्र बच नहीं पाया है। क्या हमनें कभी इस बात पर विचार किया है कि विज्ञापन क्या है और इस का निर्माण किस प्रकार होता है ज्यादातर लोगों का जवाब ना होगा। अगर हम ये कह कि विज्ञापन एक शक्तिशाली राजा की भांति काम करता है जिसने पूरी दुनिया में अपना साम्रज्य फैलाया हुआ है तो गलत नहीं होगा। क्योंकि जिस प्रकार राजा के आदेश पर जनता काम करती है चाहे राजा का आदेश ठीक हो या गलत। ठीक उसी प्रकार विज्ञापन अपने अनुसार जनता से काम लेने में सक्षम है विज्ञापन का निर्माण इतने प्रभावशाली ढंग से करके जनता के सामने प्रस्तुत किया जाता है कि उपभोक्ता उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

आज के प्रतियोगितावादी युग में उत्पादक का गुजारा विज्ञापन के बिना नहीं हो सकता। उत्पादक जब अपनी वस्तु के विज्ञापन के लिए विज्ञापन एजेंसी में जाता है तो वहां पर उपस्थित दिग्गज कलाकारों की मण्डली उस वस्तु को इतने प्रभावशाली तरीके से विज्ञापन में दिखाती है कि हर कोई उस वस्तु का दीवाना बन जाता है और उस वस्तु के सिवाय किसी दूसरी वस्तु को खरीदने की सोचता भी नहीं।

foKkiu dk vFkZ% विज्ञापन शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। विज्ञापन वि का अर्थ है 'विशेष' और ज्ञापन से अभिप्राय 'ज्ञान' से है। अर्थात विज्ञापन का अर्थ 'विशेष ज्ञान' से है जो वस्तु के बारे में उपभोक्ता को दिया जाता है या दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि विज्ञापन द्वारा उपभोक्ता को किसी वस्तु विशेष के बारे में सूचित किया जाता है।

बाजार में प्रतिदिन नई–नई वस्तुएं आती रहती है विज्ञापन ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा उपभोक्ता को इनके बारे में जानकारी मिलती है। विज्ञापन के द्वारा ही उपभोक्ता किसी भी वस्तु के बारे में आसानी से जान सकता है तथा अपनी जरूरत के अनुसार वस्तु को खरीदने का निर्णय ले सकता है विज्ञापन ही वस्तु की बिक्री बढ़ाकर उत्पादक को सन्तुष्ट करता है।

ifjHkk"kk%

1. रोजर रीवज के अनुसार 'विज्ञापन एक व्यक्ति के मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में एक विचार को स्थानान्तरित करने की कला है।'
2. स्टार्च के अनुसार, 'विज्ञापन प्रायः मुद्रण के रूप में किसी प्रस्ताव को लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करता है जिससे कि वे उसके अनुसार कार्य करने को प्रेरित हो सके।'
3. लस्कर के अनुसार, 'विज्ञापन मुद्रित रूप से विक्रय की कला है।'
4. डा0 एम0 बाउस के शब्दों में एक सीधी कार्यवाही को उकसाने के उद्देश्य से किसी संचार माध यम में समय या स्थान की खरीद का नाम विज्ञापन है।

*सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बांदरसिंदरी, किशनगढ़, अजमेर

foKkiu fuekZ.k ifØ;k % विज्ञापन निर्माण बहुत ही मुश्किल कार्य होता है इसके पीछे एक बहुत बडी टीम कार्य करती है। कला विभाग की इस टीम मे क्रिएटिव डायरेक्टर, आर्ट डायरेक्टर, विजुलाइजर तथा आर्टिस्ट आदि अपनी–अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। तभी एक प्रभावशाली और आकर्षक विज्ञापन का निर्माण कर पाना सम्भव होता है विज्ञापन निर्माण के लिए वस्तु से सम्बन्धित ले–आउट तैयार किया जाता है और जब यह ले–आउट बन कर तैयार हो जाता है तो यह विज्ञापन का रूप ले लेता है। वास्तव में कोई भी ले–आउट अपने अन्तिम स्प में पहुंचने से पहले बहुत सी परिस्थितियों से होकर गुजरता है।

y&vkmV D;k gS % ले– आउट एक ऐसी व्यवस्था या योजना का नाम है जिसके अन्तर्गत इस बात का निर्णय लिया जाता है कि शीर्षक, उपशीर्षक, बॉडी कॉपी, ट्रेडमाक्र, चित्र, बार्डर आदि को किस प्रकार व्यवस्थित किया जाये कि वे देखने में अच्छा लगें। ले– आउट का प्रयोग समाचार पत्र, पत्रिका, आदि के लिए किया जाता है।

वास्तव में ले– आउट एक कच्चा खाका होता है जिसके अन्तर्गत ले–आउट के तत्वों को क्रमबद्व तरीके से उनके उपयुक्त स्थान पर व्यवस्थित किया जाता है। ले–आउट निर्माण की प्रक्रिया में बहुत से तत्वों का योगदान होता है ये तत्त्व निम्न हैं:– 1. मुख्य शीर्शक; 2. उपशीर्शक; 3. बॉडी– कॉपी; 4. चित्र; 5. व्यापारिक चिन्ह्; 6. सफेद जगह; 7. बार्डर।

eq[; 'kh"kZd % मुख्यशीर्षक ले–आउट का आधार–स्तम्भ है जिस पर ले–आउट के बाकी तत्व निर्भर करते है। यह एक ऐसा महत्वपूर्ण वाक्य होता है जो उपभोक्ता को सबसे पहले अपनी ओर आकर्षित करता है और पूरा विज्ञापन पढ़ने के लिए प्रेरित करता है जैसे–

'नाम बनते हैं रिस्क से' / 'स्वाद अपने पन का' / 'सस्ता नहीं सबसे अच्छा'।

विज्ञापन क्या है? किस वस्तु का है? किसके लिए? आदि प्रश्नों के उत्तर मुख्य शीर्षक ही अन्य तत्वों के माध्यम से उपभोक्ता को दिलवाता है। कुछ विज्ञापनविद मानते हैं कि विज्ञापन में 50–70 प्रतिशत प्रभाव मुख्य शीर्षक का होता है। मुख्य शीर्षक की लिखावट एक प्रकार के टाइपफेस तथा सबसे बडे आकार में होनी चाहिए मुख्य शीर्षक के बिना विज्ञापन निर्माण की कल्पना भी नहीं की जा सकती। क्योंकि मुख्य शीर्षक ही उपभोक्ता में जिज्ञासा उत्पन्न कर देता है। और उपभोक्ता पूरा विज्ञापन रूचि से पढ़ता है।

mi'kh"kZd % यह भी ले–आउट का महत्वपूर्ण तत्त्व होता है इसी के सहयोग से मुख्य शीर्षक के द्वारा दिये गये संदेश को स्पष्टता मिलती है यानि मुख्य शीर्षक में छुपी विचार धारा को सुलझा कर उपभोक्ता के सामने प्रस्तुत करता है। यह मुख्य शीर्षक और बॉडी कॉपी के मध्य सीढ़ी का कार्य करता है उपशीर्षक पक्ति से प्रेरित होकर ही उपभोक्ता बॉडी कॉपी को पढ़ने के लिए तैयार हो जाता है कुछ उपशीर्षक पंक्तियां इस प्रकार हैं।

'अपनों को खुशी देना अब आसान' / 'तकलीफों का बजाने बाजा'

'आ गया है राहत राजा' / पहले इस्तेमाल करें, फिर विश्वास करें'

अतः उप–शीर्षक पंक्ति ले–आउट में एक सहयोगी के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

cMh dkih % विज्ञापन में बॉडी कॉपी का भी बहुत महत्व होता है। इस के अन्तर्गत वस्तु के बारे में विस्तार से पाठक को जानकारी दी जाती है। वस्तु कैसी, इसके क्या लाभ है तथा इसमें क्या–क्या गुण है इसके अलावा इसमें स्थानीय विक्रेता का पता बताया जाता है जहां से उपभोक्ता वस्तु को खरीद सकता है इस का साईज उप–शीर्षक से कम आकार में होता है।

बॉडी–कॉपी उपभोक्ता को यह विश्वास दिलाती है कि विज्ञापित वस्तु बाजार में उपलब्ध दूसरी प्रतियोगी वस्तुओं से बेहतर है तथा हर प्रकार से उपभोगता के अनुकूल है बॉडी–कॉपी में ऐसे महत्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग होना चाहिए। जो उपभोक्ता के दृष्टिकोण से मेल खाते हो और बॉडी कॉपी पढ़ने के बाद उपभोक्ता वस्तु खरीदने के लिए तैयार हो जाये।

अतः बॉडी कॉपी शीर्षक तथा उपशीर्षक द्वारा दी गई सीमित जानकारी को विस्तार प्रदान करती है।

fp= % चित्र एक ऐसी भाषा है जिसे उपभोक्ता आसानी से समझ जाता है। जब शब्द अपने अर्थ को स्पष्ट न कर पाये तो चित्र उन्हे आसानी से समझा देता है उपभोक्ता पर चित्र का बहुत अधिक प्रभाव पडता है। उपभोक्ता पर चित्र का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। विज्ञापन में चित्र मुख्य आकर्षण का केन्द्र होता है चित्र उपभोक्ता का ध्यान एकदम अपनी ओर खींच लेता है एक चीनी कहावत के अनुसार, 'एक चित्र दस हजार शब्दों के बराबर होता है।'

चित्र बनाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि वह उपभोक्ता को यह स्पष्ट कर दे कि विज्ञापन क्या संदेश दे रहा है विज्ञापन में ऐसे चित्रों का प्रयोग होना चाहिए कि अधिक से अधिक लोग उसको पसन्द करें। डा0 जार्ज गलय नें अपने 29000 पाठकों के अध्ययन में पाया कि प्रत्येक चित्र का अलग अलग प्रभाव व्यक्ति पर पडता है। सर्वाधिक प्रभाव बच्चों के चित्रों का उपभोक्ता पर पडता है। चित्र में सच्चाई का भाव हो जो वास्तविक स्थिति से मेल खाये जैसे विज्ञापन अगर 7–8 साल के बच्चे से सम्बन्धित है तो उसमें ऐसा चित्र का ही प्रयोग करें जिसमें बच्चा 7–8 साल का ही लगे। ऐसा न हो कि चित्र 2–3 साल के बच्चे का लगा दे। चित्र शीर्षक तथा उप–शीर्षक आदि से मेल खाता हो अतः हम कह सकते है कि विज्ञापन में चित्र की वही भूमिका होती है जो फिल्म में नायक– नायिका की होती है।

0;kikfjd fpUg % विज्ञापन में व्यापारिक चिन्ह् का भी विशेष महत्व है यह नाम या चिन्ह् होता है जो किसी विशेष अर्थ को व्यक्त करता है। यह कम्पनी की पहचान का प्रतीक होता है। व्यापारिक चिन्ह का भी व्यक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ता है अतः ट्रेडमार्क बनाते समय इस बात का ध्यान रखें कि यह कम्पनी की विशेषताओं को व्यक्त करता हो। ब्राण्ड नाम छोटा होने के साथ–साथ सरल भाषा में होना चाहिए। यह इतना प्रभावशाली होना चाहिए कि उपभोक्ता के मस्तिष्क में सदा के लिए अपनी छवि बना ले और उपभोक्ता यह चिन्ह् देखते ही वस्तु को खरीदने के लिए तैयार हो जाये।

व्यापारिक चिन्ह् हर कम्पनी का अलग–अलग होता है और कम्पनी के नाम पर रजिस्टर होता है। ताकि दूसरी कम्पनी इसका इस्तेमाल अपने लाभ के लिए न कर पाये यदि कोई प्रतियोगी कम्पनी ऐसा करती है तो इसके लिए कानून में दण्ड का प्रावधान है।

lQn txg % विज्ञापन में सफेद जगह का भी उतना ही महत्व है जितना दूसरे तत्वों का। अतः ले–आउट का निर्माण करते समय सफेद जगह ले–आउट के तत्वों के माध्यम इस प्रकार छोड़नी चाहिए कि वह देखने में आकर्षक लगे ताकि पाठक को ले आउट पढ़ने में कोई दिक्कत न आये। अतः अगर ले आउट में सफेद जगह नहीं होगी तो शीर्षक, उपशीर्षक, बॉडी– कॉपी, चिन्ह् और व्यापारिक चिन्ह् आदि चाहे कितने भी सुन्दर व प्रभावशाली क्यों न हो, इसके बिना उपभोक्ता उन्हें देखना भी पसन्द नहीं करेगा। इसके बिना विज्ञापन में किया गया सारा कार्य बेकार चला जायेगा। इसलिए ले–आउट के तत्वों के बीच उपयुक्त खाली स्थान होना चाहिए।

ckMZj % ले–आउट में बाडर के महत्व को भी कम नहीं आंका जा सकता जिस प्रकार घर के चारों तरफ बनी बाउंड्री घर के सौंदर्य को चार चांद लगा देती है उसी प्रकार विज्ञापन के चारों और बना बार्डर भी ले आउट के सौंदर्य को ओर भी अधिक बढ़ा देता है यह विज्ञापन के अन्य तत्वों को महत्व प्रदान करता है। यदि बार्डर ले–आउट में प्रयोग की गई विषय वस्तु के अनुसार होगा तो वह भी विज्ञापन का महत्वपूर्ण भाग लगेगा। साथ ही यह ले– आउट के तत्वों की विशेषताओं के अनुकूल होना चाहिए। जैसे अगर हम चाय की पत्ती का ले–आउट तैयार कर रहे हैं तो बार्डर में हरी पत्तियों का प्रयोग कर के उसे सजा देने से वह देखने में तो सुन्दर लगेगा साथ ही ले–आउट में रूचि पैदा कर देगा।

अतः किसी भी ले–आउट निमार्ण में इन तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

y: vkmV fuekZ.k % ले आउट निर्माण की प्रक्रिया तीन प्रकार से होती है। सबसे पहले ले–आउट कलाकर जिस वस्तु का विज्ञापन तैयार कर रहा होता है। उसके बारे में कल्पना करता है और जो भी उपयुक्त विचार उसके दिमाग में आते है उनको छोटे–छोटे थम्बनेल्स के रूप में कागज पर पेंसिल से उतारता चला जाता है यानि अपनी कल्पना को दृश्य रूप प्रदान करता है इस बात पर भी विचार किया जाता है कि विज्ञापन पर खर्चा कितना होगा और उसको किस माध्यम में प्रकाशित करना है।

थमनेल्स में वह ले–आउट के तत्वों का अपनी–अपनी उपयोगिता के आधार पर स्थान निर्धारित किया जाता है। इसमें शीर्षक, उपशीर्षक तथा कॉपी के स्थान पर सरल लाईनों का प्रयोग किया जाता है। यहीं से ले–आउट निर्माण का पहला चरण आरम्भ हो जाता है।

दूसरी अवस्था में थमनेल्स में से किन्हीं एक या दो चुनाव करके उस पर आगे की कार्यवाही एक रफ ले–आउट बनाकर कि जाती है इसमें शीर्षक, उपशीर्षक ओर फोन्ट का आकार निश्चित किया जाता है। प्रतीत चिन्ह् को उपयुक्त स्थान पर बनाया जाता है तथा कॉपी की जगह भी निश्चित की जाती है। कॉपी को रेखाओं द्वारा दिखाया जाता है। इनमें से एक ले–आउट का चुनाव करके उसे विज्ञापनकर्ता के पास सहमति के लिए भेजा जाता है।

कला निर्देशक तथा विज्ञापनकर्ता के निर्णय के पश्चात अन्तिम ले–आउट तैयार किया जाता है तथा कच्चा खाका कम्पयूटर द्वारा तैयार किया जाता है। इस में शीर्षक, उपशीर्षक, और कॉपी को लिखा जाता है तथा चित्र के स्थान पर वास्तविक तस्वीरों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार वास्तविक ले–आउट तैयार किया जाता है। इसके पश्चात अन्तिम सहमति के लिए विज्ञापनकर्ता के पास भेजा जाता है यदि वह इसमें कुछ बदलाव करवाना चाहे तो करवा सकता है। विज्ञापनकर्ता की सहमति के पश्चात् ले–आउट को छपने के लिए प्रिंटिंग प्रेस में भेजा जाता है।

fu"d"kZ % अन्त में हम कह सकते हैं कि विज्ञापन उत्पादक के हाथ में एक ऐसा जबरदस्त हथियार है जिसका प्रयोग हमेशा उत्पादक के पक्ष में जाता है। विज्ञापन अपने कलात्मक जादू से अपनी इच्छानुसार कार्य करवाता है यानि वस्तु खरीदने के लिए उपभोगता के तैयार कर देता है। बच्चे से लेकर बुर्जुग तक कोई भी व्यक्ति विज्ञापन के प्रभाव से बच नही पाया है जिस वस्तु का विज्ञापन हमने देखा या सुना होता है। चाहे वह वस्तु अच्छी है या बुरी, इस को जाने बिना हम उसी वस्तु खरीदना पसंद करते हैं। कीमत ज्यादा होने पर भी विज्ञापित वस्तु ही हमें भाती है। हम सब ऐसा इसलिए करते है क्योंकि हमारे मस्तिष्क पर विज्ञापन का इतना अधिक प्रभाव होता है कि हम उस वस्तु के अलावा प्रतियोगी वस्तु के बारे में पूछना भी पसन्द नहीं करते।

हम ऐसा व्यवहार इसलिए भी करते हैं कि विज्ञापन निर्माण का कार्य इतने प्रभावशाली और आकर्षक ढ़ग से किया जाता है कि हम उस वस्तु की तरफ खीचे चले जाते है। अतः हम कह सकते है कि एक सफल विज्ञापन उत्पादक के उद्वेश्यों की पूर्ति करने वाला हो। प्रेस्बी मानते है कि विज्ञापन का उद्वेश्य विज्ञापन दाता को वस्तुओ का विक्रय करना एंव सार्वजनिक विचारधारा को व्यक्तिगत करना एवं सामूहिक रूप से विज्ञापन दाता के हित में प्रभावित करना होता है। उत्पादक विज्ञापन निर्माण पर करोडों रूपये खर्च करता है ताकि उसकी वस्तु बाजार में टिकी रहे।

lUnHkZ %

1. विज्ञापन, अशोक महाजन।
2. आधुनिक विज्ञापन और जन सम्पक्र, डा. तारेश भाटिया
3. विज्ञापन कला, ऐकश्वर प्रसाद हटवाल
4. ग्राफिक डिजाइन नरेन्द्र सिंह यादव
5. दृश्य कला, एम. वसीम
6. दृश्य कला, डा. आभा सिंह
7. विज्ञापन तकनीक एंव सिद्वांत, नरेन्द्र सिंह यादव

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 128-129

lLdkj xhr % lkgj

dekjh pUnk*

लोक जीवन में संस्कार गीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से ही मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक विकास के लिए संस्कारों का संयोजन होता रहा है। जीवन का सबसे महत्वपूर्ण संस्कार है 'जन्म–संस्कार', जिसका सम्पादन बड़े ही विधि–विधान से किया जाता है। मानव जीवन की सबसे बड़ी कामना सन्तान प्राप्ति की होती है। विवाहोपरान्त हर दम्पति की यह इच्छा होती है कि उसे सुन्दर सन्तान हो। स्त्री जीवन के लिए तो सन्तान के बिना कोई मायने ही नहीं है। वंश को बढ़ाने से लेकर, धार्मिक दृष्टिकोण से, पितृऋण से उऋण होने की आकाँक्षा सभी को रहती है।

पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में प्रमुख गीत शैली 'सोहर' है। सोहर एक मंगलगीत की धुन है। यह गीत प्रायः पुत्र–जन्मोत्सव पर गाया जाता है। डॉ0 सूर्यकान्त त्रिपाठी के अनुसार, ''सोहर को कहीं–कहीं सोहलो तथा मंगल भी कहते हैं। पुत्र–जन्म का अवसर सौभाग्यशाली पुरुष के ही जीवन में आता है। स्त्रियाँ पुत्र–प्राप्ति के लिए अनेकानेक देवी–देवताओं की उपासना करती हैं, व्रत–उपवास रखती हैं और लाख–लाख मनौतियाँ मनाती हैं। वस्तुतः पुत्र–जन्म भारतीय ललनाओं की ललित कामनाओं की चरम परिणति है तथा उनकी उपासनाओं, व्रत–उपवासों और मनौतियों का परिणाम है। इस शुभ अवसर पर पास–पड़ोस की स्त्रियाँ एकत्र होकर जच्चा के प्रसूतिका गृह के दरवाजे पर या आँगन में बैठकर रमणीक गीत सुनाकर घर भर की स्त्रियों विशेषकर जच्चा का मनोरंजन करती हैं।''[1]

त्रिपाठी जी की बातों से सहमत होते हुए, हम कह सकते हैं कि पुत्र जन्म के अवसर पर मंगल गीतों का गायन आवश्यक समझा जाता है। अतः जन्म के छः दिन अथवा बारह दिनों तक महिलाओं द्वारा एकत्रित होकर सोहर गाने की प्रथा है। सोहर प्रेम प्रधान गीत होते हैं, जिनमें श्रृंगार के संयोग–वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर वर्णन रहता है। इन गीतों में विविध भावों की व्यापकता रहती है। एक सोहर गीत प्रस्तुत है जिसमें बहू से यह जानने की कोशिश हो रही है कि इतना सुन्दर पुत्र–प्राप्ति के पीछे कौन–कौन सा विधान है, कारण है। सास, ननद, देवर सभी पूछ रहें हैं–

^lku d gmo dtjoVk] dtjoVk Hkjy dktj gk]
;s yyuk ykxyk ckcy th d vk[k]
n[kr fud ykx n[kr uhd ykxyk gkA
efp;k cbBy lkl r cg l Hkjt dj gkA
;s cg dou&dou Qy rg] [kby gkjhyok
cMk lUnj gkA
veok ts [kbyh ?kon Qy behyh >kikl Qy gk]
;s lkl Nhfy&Nhfy [kbyh uojxh;k]
gkjhyok cMk lUnj gkA---A
liyh emfu;k [kyr uunh r] HkkHkh l vjt dj gk]
;s HkkHkh dou tru rg dby] gkjhyok cMk lUnj gkA
ek?k gh ekl ge ugyh] vfxu ukgh riyh gkA
;s uunk gkr lcj l: t xkMok yxyh] gkjhyok cMk lUnj gkA

*शोध छात्रा, भोजपुरी अध्यन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0

nvj l vkoy noj th] r HkkHkh l vjt dj gkA
; HkkHkh dou&dou lft;k] rg lkoy gkjhyok cMk lUnj gkA
,d r ek lryh jmok lx] nlj uunkb;k lx gkA
; noj liuk e lkb jkmj Hkb;k lx gkjhyok cMk lUnj gkA*

एक दूसरे उदाहरण में देखिए, कितना सुन्दर संवाद इस सोहर में है। परिवार के सदस्यों का प्रेम दिखता है। आने वाली नई सन्तान के प्रति अनुराग दिखता है। पूरे परिवार में खुशी व आनन्द का माहौल रहता है। इस अवसर पर सोहर के अतिरिक्त जो गीत गाये जाते हैं, उनमें 'खेलवना' गीत की अपनी विशेषता है। इसमें सन्तान प्राप्ति का हर्ष, छठी पूजना, पिपरी पीसना, नेग माँगना और ननद–भौजाई की हास–परिहास पूर्ण बातें इत्यादि रहती है। प्रसव–पीड़ा व पति–पत्नी के संवादों का भी बड़ा सुन्दर वर्णन इन गीतों में रहता है।

^^dej dMd jktk cnk ckykn] cnk tk ekx lkB :ib;k]
ekgj nb n jktk cnk ckykn
cnk t ekx iMh dpkMh] cjQh nb n jktk cnk ckykn
cnk t ekx ?kj dh fc;kgh] uunh nb n jktk cnk ckykn]
dej dMd jktk cnk ckykn**[2]

सामाजिक पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो स्त्री हमेशा अपने मायके के लोगों को महत्व देती है। सास की अपेक्षा माँ को, ननद की अपेक्षा बहन को, जेठानी की अपेक्षा भाभी को और देवर की अपेक्षा भाई को महत्व देना सोहर गीतों में भी दिखाई देता है जैसे–

^^ejh ekj jktk dej d njn ejh] dgr r , /kfu lkl ckykb nhA
ukgh ekj jktk mud t :jr ugh] dgr r , /kfu vEek ckykb nhA
gk gk ekj jktk ,gh rk eu e clhAA**[3]

इस अवसर पर सास–ननद, देवर, जेठानी, धगरिन (दाई) और पउनीपरजा इत्यादि को नेग देने की भी प्राचीन प्रथा है। पियरी, चुनरी, कंगना, झुमका, छागल, बिछिया और यहाँ तक कि हंडा व परात देने का वर्णन भी इन गीतों में मिलता है।

^vxuok e [ky xkjh rjk yyuk] Lkkl th vko nork euu dk]
mg fi;h jktk mg fi;h] lkl jkuh d nhg jktk mg fi;hA*

इस तरह हम देख सकते हैं कि पारिवारिक रिश्तों का कितना सजीव चित्रण इन गीतों में हुआ है। कुछ माँगना भी रिश्ते में अधिकार व प्रेम का संचार करता है। पारिवारिक व सामाजिक रिश्तों की महत्ता स्पष्ट दिखाई देती है। समस्त गीत हर्ष–उल्लास की भावना को प्रकट करते हैं और साथ ही आशीर्वाद भी देते हैं कि जच्चा–बच्चा सुखी, दीर्घायु व निरोग रहे। जिस मकार अंधेरे घर में दीपक जलाते ही आलोक बिखर जाता है, उसी प्रकार पुत्र के जन्म लेते ही समस्त दुःखों–कष्टों का तिरोभाव हो जाता है। सब प्रकार की पीड़ा, वेदना को भूल कर समस्त परिवार आनन्दित हो उठता है। सभी अपनी सामर्थ्य के अनुसार नेग–दान देते हैं। इन सभी रीतियों का उल्लेख लोकगीतों में मिलता है।

lUnHk %

1. डॉ0 सूर्यकान्त त्रिपाठी : लोक का अवलोकन, आर्य प्रकाशन मंडल, गाँधीनगर दिल्ली, प्रथम संस्करण–2013, पृ0 100.
2. डॉ0 ज्योति सिन्हा : भोजपुरी लोकगीतों के विविध आयाम, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2013, पृ0 64.
3. वही, पृ0 64.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 130-132

edÑr dVk{k'krd e: :id vy:dkj % ,d foospu

vfdrk frokjh*

काव्य में अलंकारों की रसोपस्कारकता निर्विवाद सिद्ध है। काव्यशास्त्र के सिद्धांतों का तलस्पर्शी अध्ययन करने वाले अध्येताओं ने एक स्वर में काव्य के अन्य तत्वों की भाँति अलंकारों का उद्‌भव भी वेदों से ही माना है। प्रकृत शोधपत्र के विषय को ध्यान में रखते हुये ^^eddr dVk{k'krd e: :id vy³dkj % ,d leh{kk** के विवेचन से पूर्व व्याकरण तथा काव्यशास्त्रीय विद्वानों में अभिमत अलङ्कार शब्द का विमर्श करते हैं।

अलंकार शब्द व्याकरण द्वारा संस्कृत तथा काव्यशास्त्र में द्विधा व्युत्पत्तियों का अवलंबन करते हुए अपनी सत्ता को ख्यापित करता है। अलंकार शब्द Hkko O;qRifÙk तथा dj.k O;qRifÙk से निष्पन्न होने के कारण असमान अर्थों का द्योतन करता है। भाव व्युत्पत्ति के अनुसार ^^vydfrvydkj** शब्द सौंदर्यपरक अर्थ से हमें काव्यों में निहित दोषाभाव, गुणसद्‌भाव और रीतिरसादि काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का बोध कराता है, तथा करण व्युत्पत्ति में ^^vy fØ;r vuu bfr vydkj** अलंकार शब्द अनुप्रास, उपमा आदि शब्दार्थालंकारों का बोध कराता है, इस विषय में वामन का मत सर्वोत्कृष्ट है–

dk·Lkoydkj bR;kg lkUn;eyUdkj% vydfrjydkj%A dj.kO;qRiR;k iqujydkj'kCnk·;a miekfn"kq orrA[1] अतः अनुप्रास, उपमादि अलङ्कारों का बोध ज्ञापित कराने के लिये ''अलङ्क्रियते अनेन इति अलङ्कारः'' व्युत्पत्ति ही सम्यक् प्रतीत होती है।

यदि व्याकरणादि शास्त्रों के नियमों से संस्कृत अलङ्कार शब्द की काव्य में उपयोगिता के संदर्भ में बात की जाये तो अलङ्कारों का स्थान प्राचीन परपंरा के अनुसार काव्य में प्रधान रूप से माना गया है, किन्तु नव्याचार्य अलङ्कारों को लौकिकता के आधार पर उन्हें रस का उपस्कार मात्र मानने के पक्ष में हैं। जैसा कि लोक प्रसिद्ध कटककुण्डलादि भूषण शरीर के अवयवों को उपस्कृत करते हुए शरीर में विद्यमान आत्मा के भी उपस्कारक यथा कथञ्चित् हो जाते हैं, उसी प्रकार काव्य में अलङ्कार, काव्य के शरीरभूत शब्दार्थों को माध्यम बनाकर रस के जातुचिद् (कभी होगें कभी नहीं) उपस्कारक होते हैं। इस संदर्भ में अनेक आचार्यों के मतों का पर्यवसान रस के उपस्कारक होने पर उपमादि अलङ्कारों का अलङ्कारत्व स्थिर करने में ही है।

यथा– jlkiLdkjdRo lfr& vy³dkjRoe~ इस अलङ्कारसामान्य लक्षण का समर्थन करते हुए काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों तथा संप्रदायों का स्थापन करने वाले आचार्यों ने विभिन्न प्रकार से अलङ्कार का लक्षण किया है, उनमें अतिप्रसिद्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ काव्यप्रकाश में आचार्य मम्मटकृत अलङ्कारसामान्यलक्षण यथा–

midqoZfUr ra lUra ;s³x}kjs.k tkrqfpr~A gkjkfnoy³dkjkLrs·uqikl·ikekn;%AA[2]

अर्थात् जो विद्यमान उस (प्रतीयमानार्थ, जो कि रसरूप है) को शब्दार्थ के माध्यम से उपस्कृत करते हैं, अथवा रस के विद्यमान होने पर उपस्कृत करेंगे नहीं रहने पर नहीं (ये बात आचार्य ने जातुचिद् पद से स्पष्ट की है), वे लोक में प्रसिद्ध अङ्गना के हारादि आभूषणों के तुल्य काव्य में अनुप्रासादि और उपमादि अलङ्कार होते हैं। इसी प्रकार अन्य आचार्यों ने भी अलङ्कारों का अस्तित्त्व साधने के निमित्त अपने मतों का प्रदर्शन किया है। प्रकृत में उन लक्षणों की अनुपयोगिता को ध्यान में रखते हुये रूपक अलङ्कार के स्वरूप का अवलोकन करते हैं जिसमें मूलकृत कटाक्षशतक में प्रयुक्त रूपक अलङ्कार वर्णन किया जा सके।

*संस्कृत–विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0

: id vy³dkj % अलङ्कारों की शताधिक कल्पित संख्या में रूपक अलङ्कार का सादृश्य मूलक अलङ्कारों में अभेदप्रधान अलङ्कारों की कोटि में गणना की जाती है। इसमें उपमान का प्राधान्य भाषित होता है परन्तु उपमा अलङ्कार में उपमेय का प्राधान्य सहृदयहृदयाभिमत है। रूपक अलङ्कार का बीज सारोपा लक्षणा को माना जाता है। उसका लक्षण इस प्रकार है–

lkjkikU;k r ;k=käk fo"k;h fo"k;LrFkk[3]

अर्थात् जिस वाक्य संदर्भ में विषयी अर्थात् उपमान और विषय अर्थात् उपमेय दोनों शब्दोपात्त हों वहाँ सारोपा लक्षणा होती है जैसे– xkokghd%A[4] रूपक में भी इसी तरह उपमानभूत प्रसिद्ध पदार्थ का उपमेयभूत प्रतिपाद्य में चमत्कारातिशय नियोजित करने के निमित्त आरोप होता है। ये आरोप सर्वथा कल्पित होता है, क्योंकि अत्यन्त भिन्न दो पदार्थ एक कैसे हो सकते हैं अतः कवि वर्णनीय सामग्री की अलङ्कार करने की अभिलाषा से काल्पनिक अभेद करता है जिसको शास्त्रीय भाषा में आहार्याभेद कहते हैं– ck/kdky bPNktU; Kkuekgk;eA[5] अर्थात् उपमान और उपमेय दो भिन्न पदार्थों का वस्तुतः अभेद न होने पर अपनी इच्छा से किया गया अभेदारोप आहार्य अभेद कहलाता है। अब मम्मटाचार्य की लोकप्रियता को ध्यान में रखते हुये उनके द्वारा निर्दिष्ट रूपक अलङ्कार का लक्षण तथा भेदों का विवेचन करते हैं– लक्षण यथा– rnideHknk ; miekukie;;k%[6]

vfrlkE;knuiguHkn;kjHkn%A[7] अर्थात् उपमान और उपमेय का जो अभेद वह रूपक (कहलाता) है। परन्तु यह लक्षण रूपकातिशयोक्ति, अपह्नुत्यादि अलङ्कारों में जहाँ उपमान और उपमेय का अभेद होता है वहाँ अतिव्याप्त होगा। अतः लक्षण निर्दिष्ट 'रूपक' यह पद अन्वर्थ संज्ञा है– जिसके आधार पर अन्यत्र अतिव्याप्ति का वारण होता है। जैसे रूपक का अर्थ– :i;fr :ioRdjkfr :ideA इसी प्रकार इसका निष्कृष्ट लक्षण होगा जहाँ उपमान और उपमेय में परस्पर विरुद्ध धर्म विद्यमान हों और उनके समानधर्मों (गुण, क्रियादि के आधार पर) का प्रकाशन भी हो रहा हो, किन्तु अत्यन्त साम्य के प्रतिपादन के लिये काल्पनिक अभेद का आरोप किया जाता है, वहाँ रूपक अलङ्कार होता है। रूपक को स्पष्ट करने में तथा और अलङ्कारों से इसका व्यावर्तन सिद्ध करने में अभी बहुत कुछ कहना अवशिष्ट है, परन्तु प्रकृत में उसकी आवश्यकता नहीं है। अतः सुधीजन स्वयं तत् तत् स्थलों का अवलोकन करें।

: id d ik;% vkpk;ku vkB Hkn Lohdkj fd; g % 1. साङ्ग समस्तवस्तुविषयक, 2. साङ्ग एकदेशविवर्ति, 3. निरङ्ग केवल, 4. निरङ्ग माला, 5. श्लिष्ट परम्परित केवल, 6. श्लिष्ट परम्परित माला, 7. शुद्ध परम्परित केवल, 8. शुद्ध परम्परित माला।

अब प्रसङ्गप्राप्त मूककविकृत पञ्चशती के कटाक्ष शतक में रूपक के भेदों की समीक्षा करते हैं–

lthou tufu prf'kyhe[kL;[8] lEekgu 'kf'kfd'kkjd'k[kjL;
lLrEHku p eerkxgpf"VrL;] dkekf{k oh{k.kdyk ijek"k/k rAA15AA

हे माता कामाक्षि! कामदेव को पुनः जीवित करने में, शिव को वश में करने में, सांसारिक मोहबन्धों के व्यापार के अवरोधन में आपके कटाक्ष का लेशमात्र (कला) सर्वोत्तम औषधि रूप है।

प्रकृत पद्य में भी उपमेयभूत भगवती के वीक्षण के लेश पर उपमानभूत परम औषधि का आरोप किया है जो कि तत् तत् कार्य करने में वीक्षणकला को समर्थ बना रहे हैं। यहाँ भी रूपक अलङ्कार भावध्वनि का उपस्कारक है।

Lugknrk fonfyrkRiydkfUrpkjk[9]] trkjeo txnh'ofj trdke%A
ekuk) rk edjdrjlk /kuhr] dkekf{k rkoddVk{kdik.koYyheAA31AA

अर्थात्– हे जगदीश्वरि कामाक्षि! अलङ्कार से उत्तेजित, काम को भी जीतने वाले (शिव जी) को जीतने की इच्छा वाला यह कामदेव, तेल (स्नेह से आर्द्र– भगवती पक्ष में) में आर्द्र तथा विकसित नीलकमल की कान्ति का हरण करने वाली आपकी कटाक्ष रूपी कृपाणवल्ली को, भान्जता है (हिलाता है)।

प्रकृत पद्य में कवि ने उपमेयभूत कटाक्षों पर उपमानभूत कृपाणवल्ली का आरोप किया है, जो कि कामदेव के शिव जी को जीतने के उपक्रम में सहायक है, इस रूपक से भगवती के कटाक्षों का सौन्दर्यातिशय प्रकट करना कविसंरभगोचरता का प्रयोजन है, जिससे यहाँ रूपक, कविनिष्ट

भगवती विषयक रति होने से Hkko/ofu[10] को उपस्कृत कर रहा है, और उपस्कारक होने से इसकी अलङ्कारता में कोई शङ्का नहीं है। अवयवों का अभाव होने से यह शुद्ध निरङ्ग रूपक अलङ्कार भेद सिद्ध होता है।

dkekf{k rkoddVk{kegUnuhy[11]] fIgkIu fJrork edj/otL;
IkekT;e³xyfo/kk ef.kd.MyJh&uhjktukR Iorjf³xrnhiekykAA44AA

हे देवि कामाक्षि! तुम्हारे कटाक्ष रूपी नीलमणि सिंहासन पर विराजमान कामदेव के साम्राज्यगत उत्सव में (आपके) मणिकुण्डल की शोभा, आरती की शुभक्रिया में घुमायी गयी दीपमाला है।

यहाँ उपमेय कटाक्ष पर उपमान नीलमणि का तथा उपमेय मण्डिकुण्डल की शोभा पर उपमान दीपमाला का आरोप है, जो कि दोनों स्वतन्त्र रूप से दो रूपक अलङ्कार हैं।

iekixki;fI eTtuekjp¸;[12]] ;ä% fLerk'kdrHkLefoy iuuA
dkekf{k d.Myef.k|frfHkt Vky%] Jhd.Beo Hkt r ro nf"Vikr%AA46AA

अर्थात्– हे कामाक्षि! प्रेमरूपी नदी के जल में डुबकी लगाकर स्मितकिरण रूपी भस्म के विलेपन से सुसज्जित, कुण्डलमणि की कान्ति से जटाधारी तुम्हारा कटाक्ष भगवान शिव का ही भजन करता है।

यहाँ भी प्रेम पर नदी का आरोप कटाक्ष को डुबकी लगाने में तथा स्मितकिरण पर भस्म का आरोप कटाक्ष का भस्म विलेपन औचित्य का प्रतिपादन कर रहा है अतः उक्त आरोपों से रूपक अलङ्कार स्पष्ट होता है।

इसी तरह मूककृत कटाक्षशतक में अलङ्कारों का यथोचित नियोग किया गया है तथा कवि का अलङ्कारनियोजन में ध्वनिकारोक्त अपृथक्यत्ननिर्वर्त्य13 नियम का अनुसरण प्रायः परिलक्षित होता है।

IUnHk %

1. वामन, काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति 1/1/02 सूत्र की वृत्ति में
2. मम्मट, काव्यप्रकाश, अष्टम उल्लास सूत्र सं0 67
3. मम्मट, काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास, सू0 सं0 14
4. मम्मट, काव्यप्रकाश, द्वितीय उल्लास सूत्र सं0 16 की वृत्ति
5. टीकाकारनुमत
6. मम्मट, काव्यप्रकाश, दशम उल्लास सूत्र सं0 139
7. मम्मट, काव्यप्रकाश, दशम उल्लास सूत्र सं0 139 की वृत्ति
8. मूक, पञ्चशती, कटाक्षशतक पद्य सं0 15
9. मूक, पञ्चशती, कटाक्षशतक पद्य सं0 31
10. रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः। भावः प्रोक्तः।। मम्मट, काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास सूत्र सं0 48
11. मूक, पञ्चशती, कटाक्षशतक पद्य सं0 44
12. मूक, पञ्चशती, कटाक्षशतक पद्य सं0 46
13. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक– 2/16

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 133-135

Hkkjrh; lekt esa f'k{kk % ,d uohu fo'ys"k.k

lqJh jek lkuh*

शिक्षा मनुष्य के विकास का सबसे प्रमुख साधन है, इसके द्वारा मनुष्य को जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कला कौशल, में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है। और उसे सभ्य सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। यह कार्य मनुष्य के जन्म से प्रारम्भ हो जाता है और जीवन के अन्तिम क्षणों तक चलता रहता है अपने वास्तविक अर्थ में किसी समाज में सदैव चलने वाली सीखने सीखाने की यह सप्रयोजन प्रक्रिया ही शिक्षा है। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की शिक्ष् धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। शिक्ष् का अर्थ है– सीखना व सिखाना, इसलिए शिक्षा को हम प्रयोग के रूप में देखे तो शिक्षा शब्द का प्रयोग दो रूपों में होता है एक प्रक्रिया रूप में तथा दूसरा प्रक्रिया परिणाम रूप में। जब हम कहते है कि उसकी शिक्षा सुचारू प्रक्रिया रूप में है जब हम यह कहते है कि उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की है तो यहां शिक्षा शब्द का प्रयोग परिणाम रूप में है।

शिक्षा को न केवल व्यक्तिगत विकास वरन् सामाजिक व राष्ट्रीय विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व सर्वसुलभ साधन स्वीकार किया जाता है। यही कारण है कि सभ्यता के प्रारम्भ से लेकर आज तक प्रत्येक समाज अपने भावी नागरिकों कि शिक्षा पर विशेष ध्यान देता है। शिक्षा को अंग्रेजी में Education कहा जाता है Education शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के तीन शब्दों से हुई है। 1- एडूकेटम Educatum शिक्षित करना। 2- एडूकेयर Educere आगे बढाना। 3- एडूसीयर Educere विकसित करना।

लैटिन भाषा के इन तीनों शब्दों के अर्थ को समाहित किया जाता है, तो यह मालूम होता है कि शिक्षा मनुष्य के विकास का महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा का वास्तविक अर्थ– बालक के समस्त पहलुओं से है। जिनका प्रत्येक प्रभाव उसके ऊपर जन्म से लेकर मृत्यु तक पड़ता है शिक्षा के संम्बन्ध में कुछ शिक्षा शास्त्रियों का बिचार इस प्रकार है।

Vh0ih0 uu ds vuqlkj % ''शिक्षा व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास है जिसकी सहायता से मनुष्य मानव जीवन में अपनी उत्तम शक्ति के अनुसार मौलिक योगदान देता है।''

Mk0 tkfdj gqlSu ds 'kCnksa esa % ''शिक्षा सम्पूर्ण जीवन का कार्य है।''

Lokeh foosdkuUn ds vuqlkj % ''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।''

oSnkfUrd nf"Vdks.k ds vuqlkj % ''हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान आध्यात्मिकता की आवश्यकता की तीव्र सजीव तथा प्रकाशमान करें।''

vjLrq ds vuqlkj % ''शिक्षा का कार्य स्वस्थ्य शरीर में स्वस्थ्य मन का निर्माण करना है।''

vkpk;Z dkSfVY; ds vuqlkj % ''शिक्षा का अर्थ देश के लिए प्रशिक्षण तथा राष्ट्र के प्रति प्यार।''

vkpk;Z ikf.kuh ds vuqlkj % ''मानवीय शिक्षा का अर्थ उस प्रशिक्षण से है जिससे मनुष्य प्रकृति से प्राप्त करता है।''

उपरोक्त तथ्यों पर विवेचना करे तो हम कह सकते है कि शिक्षा एक ऐसी सामाजिक एवं गतिशील प्रक्रिया है जो व्यक्ति/बालक की जन्म जाता शक्तियों का स्वाभाविक विकास करके उसके व्यक्तित्व को निखारती है। और न केवल उसको वैयक्तिकता अपितु उसे सामाजिक, आध्यामिक एवं भौतिक वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित व्यक्तित्व का ज्ञान कराते हुए उसके विचार एवं व्यवहार में समाज के लिए हितकर परिवर्तन करती है।

*सहायक आचार्या, शिक्षा संकाय, जगद्गुरू रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उ0प्र0

1-2 ikjfEHkd f'k{kk % प्रारम्भिक शिक्षा से तात्पर्य बालक के शिक्षा प्रवेश से होता है उसके अन्तर्गत तीन स्तर है जो निम्न लिखित है।

1-2-1 iwoZ ikFkfed % इसके अन्तर्गत 3–6 वर्ष के बालकों को रखा गया है। शिक्षा के इस स्तर पर सरकार की तरफ से कोई सुविधा नहीं थी। किन्तु जब शिक्षा मिनो आंगनबाड़ी के तहत दी जाती है अन्यथा यह निजी संस्थाओं द्वारा संचालीत होता है जैसे– किंडरगार्डेन।

1-2-2- ikFkfed % इसके अन्तर्गत कक्षा 1–5 तक के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 45 में कि प्राथमिक स्तर की शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क प्रदान कराये। अतः प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्रत्येक राज्य में अनिवार्य एवं निःशुल्क है।

1-2-3 mPp ikFkfed % कक्षा 6–8 तक के विद्यार्थियों को उच्च प्राथमिक स्तर में सम्मिलित किया गया है। उच्च प्राथमिक शिक्षा सरकार तथा निजी रूप से भी संचालित की जाती है।

1-2-4 ek/;fed f'k{kk % माध्यमिक शिक्षा का प्रारम्भ प्राथमिक शिक्षा के समाप्ति के पश्चात होता है तथा उच्च शिक्षा से पूर्व समाप्त हो जाती है शिक्षा आयोग (1964–66) भी माध्यमिक शिक्षा को दो भागों में विभाजित किया है।

1-2-4-1 fuEu ek/;fed Lrj % इसके अन्तर्गत कक्षा 9–10 तक के विद्यार्थी को सम्मिलित किया गया है। तथा सरकारी एवं निजी संस्थाओं द्वारा यह शिक्षा प्रदान की जाती है।

1-2-4-2 mPp ek/;fed Lrj % इस स्तर में कक्षा 11–12 तक की शिक्षा को उच्च माध्यमिक स्तर में सम्मिलित किया जाता है। यहाँ भी सरकारी व निजी संस्थाओं द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती है।

1-2-5 mPp f'k{kk % शिक्षा का यह स्तर माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त प्रारम्भक होता है तथा विद्यार्थी अपनी रूचि के अनुसार पाठ्यक्रम में दाखिला ले सकता है। यह शिक्षा महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा निजी और सरकारी दोनों तरह से प्रदान किया जाता है।

1-3 f'k{kk dk egRo % ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी डिक्शनरी के अनुसार, ''ज्ञान का अर्थ है शिक्षा या अनुभव के माध्यम से तथ्य, सूचना और कौशल प्राप्त करना। ज्ञान किसी विषय के सैद्धान्तिक या व्यवहारिक समझ का गठन करता है। मानव समाज के वंशज, वानर व अन्य जानवरों से केवल ज्ञान और उपयोग के कारण अलग है। ज्ञान केवल शिक्षा के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

यह बिना कहे ही जाना जा सकता है कि समानता बनाने तथ आर्थिक स्थिति के आधार पर बाधाओं तथा भेद भाव को दूर करने के लिए शिक्षा बहुत आवश्यक है। राष्ट्र की प्रगति और विकास के साथ ही साथ नागरिकों की शिक्षा के अधिकार की उपलब्धता पर निर्भर करता है।

शिक्षा का महत्व कुछ इस प्रकार है।

• शिक्षा मनुष्य को एक सभ्य नागरिक बनाने में सहायता प्रदान करती है। • शिक्षा से मनुष्य योग्य तथा कुशल निर्माण करता है। • शिक्षा मनुष्य के कौशलों का विकास करती है। जो उसमें पहले से विद्यमान होती है। • शिक्षा मनुष्य को रोजगार प्रदान करता है। • शिक्षा मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी बनाता है। • शिक्षा मनुष्य को चिन्तन के लिए प्रेरित करता है।

शिक्षा गतिशील है शिक्षा विकास का माध्यम है शिक्षा क्रियात्मक है शिक्षा जीवन के विकास का एक स्वरूप है। शिक्षा के कार्य के संबंध में कुछ शिक्षाशास्त्रियों के निम्न विचार हैं।

Mfu;y cDLVj d vuqlkj % ''शिक्षा का कार्य भावनाओं को अनुशासित, संवेगों को नियत्रित, प्रेरणाओं को उत्तेजित धार्मिक भावनाओं को विकसित और नैतिकता को अभिवृद्धित करना है।''

tkWu Mh0oh0 d vuqlkj % ''शिक्षा का कार्य असहाय प्राणी के विकास में सहायता पहुँचाना है। ताकि वह सुखी, नैतिक और कुशल मानव बन सके।''

शिक्षा का कार्य देश और काल के अनुरूप बढ़ता रहता है।

शिक्षा उत्तम नागरिक तथा उत्तम राज्य का आधार स्तम्भ होता है और उत्तम नागरिक वह होता है जो कि अपने एवं राष्ट्र दोनों के लिए उपयोगी है अर्थात मानव जीवन में बदलाव लाने का कार्य शिक्षा का ही है।

शिक्षा मनुष्य के मूलभूत शक्तियों का विकास करती है जिसे मानव जन्म के साथ लाता है। शिक्षा का कार्य मनुष्य के व्यक्तित्व का संतुलित विकास करना भी है व्यक्तित्व के अन्तर्गत शारीरिक मानसिक, नैतिक, अध्यात्मिक एवं संवेगात्मक आदि का विकास करना तथा शिक्षा के द्वारा मनुष्य के चारित्रिक सामाजिक विकास भी आवश्यक रूप से पूर्ण होता है शिक्षा इन सब मूल– भूत आवश्यकताओं के विकास के साथ–साथ बालक या मनुष्य के अन्दर अपने देश तथा राष्ट्र के प्रति भावनात्मक दृष्टि कोण का भी विकास करता है। जिससे बालक अपने राष्ट्र के प्रति तन, मन, धन के साथ भावात्मक रूप से समर्पित होता है।

यह सब कार्य शिक्षा के माध्यम से ही पूर्ण होता है।

शिक्षा और राष्ट्र का प्राचीन सम्बन्ध है शिक्षा ही वह माध्यम है जो बालक के अन्दर राष्ट्र भावना जगाने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। शिक्षा के बिना बालक पशु के समान होता है। और राष्ट्रीयता के बिना बालक अनाथ के समान हो जाता है।

अतः शिक्षा ही वह विकास की धूरी है जो बालक को शिक्षित कर एक सुढष्ण तथा जिम्मेदार नागरिक बनाती है जिससे उसके अन्दर राष्ट्र–प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना का उदय होता है और वह शिक्षा के बल पर अपने राष्ट्र को एक मजबूत तथा शक्तिशाली देश बनाने में अपना योगदान प्रदान करता है।

अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने राष्ट्र की दष्ढता तथा अखण्डता को बनाये रखने में पूर्ण सहयोग प्रदान करे एवं राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के लिए राष्ट्रीयता की भावना परम आवश्यक है यह तभी सम्भव है जब देश की शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत हो जिससे बालक के अन्दर प्राथमिक स्तर से ही राष्ट्रीयता की भावना रूपी ज्योति शिक्षा के माध्यम से जलाया जाय।

राष्ट्रीय भावना का विकास तभी सम्भव है जब राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय दर्शन से प्रभावी हो जिस देश की शिक्षा प्रणाली जिस दर्शन भावना से प्रभावी होती है उस राष्ट्र या देश के बालकों में उसी भावना का विकास होता है।

अतः प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति अथवा अवनति इस बात पर निर्भर करती है कि उसके नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना किस सीमा तक विकसित हुयी है यदि नागरिक राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत है तो राष्ट्र उन्नति के शिखर पर चढ़ता रहेगा अन्यथा उसे एक दिन रसातल को जाना होगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि राष्ट्र को सबल तथा सफल बनाने के लिए नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने के लिए शिक्षा की अति आवश्यकता है।

lUnHkZ %

1. गुप्ता, डा0 महावीर एवं डा0 ममता (2005), भारतीय षिक्षा का विकास एवं समस्यायें, साहित्य प्रकाशन, आगरा
2. त्यागी, जी0एस0डी0 एवं पाठक, पी0डी0 (2010), भारतीय षिक्षा की सम–सामयिक समस्याऐं, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
3. भटनागर, सुरेश (2005), आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें, आर0लाल0 बुक डिपो, निकट गर्वनमेन्ट इण्टर कालेज, मेरठ।
4. माथुर, डा0के0पी0 (2008), भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याऐं, आर0एस0ए0 इण्टरनेशनल, आगरा–2।
5. पाण्डेय, प्रो0बी0बी0 (1995), भारतीय शिक्षा की समस्याएँ, तेतरा विद्यावती शैक्षिक प्रकाशन, गोरखपुर।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 136-139

LokrU«;kRrj fgUnh xty vkj ie[k xtydkj

f'kÁk*

साहित्य को समाज के प्रतिबिम्ब के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। आदिकाल से लेकर अब तक साहित्य का विकासशील रूप ही देखा जाता है। भावों या विचारों को वाणी प्रदान करने हेतु साहित्यिक विधाओं (गद्य, पद्य, चम्पू) की आवश्यकता होती है। पद्य रूप में ग़ज़लों का आगमन फ़ारसी भाषा से हुआ है। ईरानी कवि 'jkndh* ने सर्वप्रथम ग़ज़ल विधा को जन्म दिया। फ़ारसी में ग़ज़ल की विशाल परम्परा बनी, परन्तु इसको वृहद् आकार उर्दू साहित्य में प्राप्त हुआ। ग़ज़लों के प्रारम्भिक स्वरूप को दर्शाते हुए उर्दू ग़ज़लकार 'फ़िराक गोरखपुरी' जी कहते हैं– ^^xty vlEc) dforkgA xty dk fetkt eyr% leil.kokn h gkrk gA**1

ग़ज़ल एक ऐसी विधा है जो मानव मन को बाँधने की क्षमता से परिपूर्ण है। इसका अर्थ 'प्रेमिका से वार्तालाप' होता है। फ़ारसी हो या उर्दू, प्रारम्भिक दौर में ग़ज़ल विधा का वर्ण्य विषय शीरी फरहाद के प्रेम, लैला मजनूं के किस्से, प्रेमिका या प्रेमी की बेवफाई आदि विषयों के इर्द–गिर्द घूमता रहा। प्रेमिका के नख–शिख वर्णन के कारण इसका विषय अश्लीलता की ओर मुड़ता गया और बाद की ग़ज़लों में बदलाव की आवश्यकता हो गई। प्रेम के वासनात्मक रूप को आध्यात्मिकता से जोड़ते हुए भावात्मक स्तर तक ले जाने का कार्य 'मिर्ज़ा ग़ालिब' ने किया। इनके ग़ज़ल की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

^yk ge ejht b'd d rhekjnkj g]
vPNk vxj u gk rk elhgk dk D;k bykt gA*2

इस परम्परा में कई नाम आते हैं जैसे– ज़िगर मुरादाबादी, जोश मलीहाबादी, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, साहिर लुधियानवी, बशीर बद्र और वली अकबराबादी आदि।

हिन्दी में ग़ज़ल लेखन का प्रारम्भ 'अमीर खुसरो' से होता है। इन्होंने रेख़्ता और हिन्दी मिश्रित शब्दावली में ग़ज़ल लेखन किया। इनके अनुगमनकर्ताओं के रूप में कबीरदास, प्यारेलाल शोकी और गोपालचन्द्र 'गिरिधरदास' ने भी ग़ज़ल लेखन का कार्य किया। इन ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल लेखन के जो बीज बोए उनका पल्लवन आधुनिक काल में परिलक्षित होता है।

ग़ज़ल की दो पंक्तियाँ भी जनमानस को बांधने की सामर्थ्य रखती हैं। इसके प्रत्येक शेर अपने आपमें अनन्त अर्थ व असीम भावों को समेटे रहते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर युग से पूर्व भारतेन्दु युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' द्विवेदी युग में श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शर्मा 'शंकर', मैथिलीशरण गुप्त छायावादी युग में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद, माखनलाल चतुर्वेदी छायावादोत्तर युग में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', नरेन्द्र शर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, जानकीवल्लभ शास्त्री, बलबीर सिंह 'रंग', रामस्वरूप सिंदूर आदि तथा प्रयोगवादी युग में शमशेर बहादुर सिंह का नाम आता है। इन ग़ज़लकारों ने हिन्दी ग़ज़ल लेखन को निरन्तर विकास की दिशा प्रदान की और आगे आने वाले ग़ज़लकारों के लिए मजबूत आधार तैयार किया। प्रारम्भिक दौर की ग़ज़लें रोमांस व प्रेम की भावभूमि पर लिखी जाती थीं, परन्तु धीरे–धीरे इनका स्वरूप बदला और ग़ज़लें अपने सीमित दायरे से बाहर निकलकर विस्तृत धरातल पर फलने–फूलने लगीं। प्रयोगवाद तक आते–आते ग़ज़लों में आम आदमी के दर्शन होने लगते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर युग में यही आम आदमी ग़ज़ल लेखन का केन्द्र बना हुआ है। इस युग में सबसे पहला नाम दुष्यन्त कुमार का आता है जिनका मार्गदर्शन हिन्दी ग़ज़ल लेखन

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

के लिए अनिवार्य था। काव्य रचना के प्रारम्भिक दौर में इन्होंने कविता लेखन का कार्य किया परन्तु इन्हें लोकप्रियता ग़ज़लों के कारण मिली। इनसे पूर्व ग़ज़ल अपने जिस स्वरूप के साथ चलती आ रही थी, उससे बाहर निकालने का कार्य दुष्यन्त जी ने किया। प्रेम की कोरी कल्पनाओं और निरर्थक ख़यालों से ग़ज़ल को बाहर निकालकर वास्तविकता के धरातल पर लाने का कार्य इन्होंने किया। ये प्राचीन काल से स्थापित व्यवस्था को उखाड़ फेंकने और नई व्यवस्था को जन्म देने की बात करते हुए कहते हैं–

^gk xbZ gS ihj ioZr lh fi?kyuh pkfg,] bl fgeky; ls dkbZ xaxk fudyuh pkfg,A
vkt ;g nhokj] ijnksa dh rjg fgyus yxh] 'krZ ysfdu Fkh fd ;s cqfu;kn fgyuh pkfg,A
esjs lhus esa ugha rks rsjs lhus esa lgh] gks dgha Hkh vkx ysfdu vkx tyuh pkfg,A*3

आज के पूंजीवादी युग में दुष्यन्त कुमार आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्ति देते हुए कहते हैं–

^dgka rks r; Fkk fpjkxk gjd ?kj ds fy,] dgka fpjkx e;Llj ugha 'kgj ds fy,A
;gka nj[rksa ds lk, esa /kwi yxrh gS] pyks ;gka ls pysa vkSj mez Hkj ds fy,A*4

रीतिकालीन कवि बिहारी की भांति मात्र एक ग़ज़ल–संग्रह 'साये में धूप' ने इन्हें ग़ज़ल लेखन के क्षेत्र में सर्वोत्तम स्थान प्रदान किया। इनके पश्चात् हिन्दी ग़ज़ल के ऐसे समर्थ ग़ज़लकार का नाम आता है, जिन्होंने हिन्दी ग़ज़ल को सर्वाधिक समृद्ध बनाया– कुंवर बेचैन। ये जीवन के अनुभवों को बहुत ही संवेदनशीलता के साथ प्रकट करते हैं। इन्होंने प्रेमपरक ग़ज़लों के साथ–साथ सामाजिक चेतना से पगी ग़ज़लें भी कही हैं। सामाजिकता की झलक के साथ इनकी ग़ज़ल की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

^tgka bUlku dh vkdkr ls nkyr cM+h gksxh] egy rudj [kM+s gksaxs] >qdh gj >ksiM+h gksxhA
tgka lkpk fd eSa gh rd jkfV;ka D;ksa ugha vkbZ] rEgkjh gh dykbZ esa dgha dqN xM+cM+h gksxhA*5

'शामियाने कांच के' एवं 'महावर इंतजारों का' इनके प्रकाशित ग़ज़ल–संग्रह हैं। इनका मानना है कि दर्द जीवन की सच्ची पहचान है। यह पीड़ा वैयक्तिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक भी हो सकती है। आज समाज में असमानता, अपराधबोध, शोषण, दुख, संत्रास और कुंठा जैसी समस्याएँ व्याप्त हैं। सर्वहारा वर्ग की सबसे बड़ी समस्या भूख है। रोटी के कारण मनुष्य रात–दिन मेहनत करता है। इसी समस्या को देखते हुए कुंवर बेचैन कहते हैं–

^;g gedks upkrk gS b'kkjks ij jkr&fnu] ;kjks gekjk isV enkjh dh rjg gSA*6

गरीबी और भुखमरी की समस्या ने भारत के मजदूर व किसान वर्ग को सर्वाधिक चपेट में लिया। आर्थिक वितरण की असमानता के कारण तमाम विसंगतियाँ आने लगीं। इन समस्याओं ने कवि हृदय को उद्वेलित कर दिया। भूख की समस्या को देखते हुए 'अदम गोण्डवी' जी अपनी ग़ज़ल की पंक्तियों में कहते हैं–

^vki dgrs gSa ljkik xqyegj gS ftanxh] ge xjhcksa dh utj esa bd dgj gS ftanxhA
Hkw[kejh dh /kwi esa dEgyk xbZ vLer dh cgu] ekSr ds yEgkr ls Hkh rY[krj gS ftanxhA*7

अदम गोण्डवी जी की ग़ज़लों में अलग ही अंदाज देखने को मिलता है। इन्हें 'आधुनिक साहित्य का कबीर' भी कहा जाता है। कबीरदास की ही तरह इन्होंने भी बेलाग, सहज, दो टूक बातें कहीं हैं। शोषक वर्ग किसानों व मजदूरों की मेहनत पर पलता है और ऐशोआराम की जिंदगी जीता है, वहीं किसान व मजदूर वर्ग भूख की समस्या से घिरा होता है। पूंजीवादी वर्ग पर व्यंग्य और मार्क्सवाद इनकी ग़ज़लों में परिलक्षित होते हैं। राजनीति पर करारा व्यंग्य करते हुए गोण्डवी जी कहते हैं–

^dkts Hkqus gSa lyhV esa] foLdh fxykl esa] mrjk gS jkejkT; fo/kk;d fuokl esaA
iDds lektoknh gSa rLdj gksa ;k MdSr] bruk vlj gS [kknh ds mtys fyckl esaA*8

दुष्यन्त कुमार ने जो व्यवस्था विरोधी मुहिम छेड़ा था उसे अंजाम तक ले जाने की कोशिश अदम गोण्डवी की ग़ज़लों में मिलती है। 'समय से मुठभेड़' और 'धरती की सतह पर' इनके ग़ज़ल–संग्रह हैं।

ग़ज़लें जीवन के सत्य से परिचित कराती हुई हमारे अपने जीवन को भी सत्य से जोड़ती हैं। साहित्यकार समाज और साहित्य को अपने जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष देकर अमर हो जाता है। सरल उर्दू भाषा की शब्दावली में ही अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने वाले ग़ज़लकारों में

'सूर्यभानु गुप्त' का नाम आता है। 1962–63 ई0 में इन्होंने लेखन कार्य प्रारम्भ किया। पत्र–पत्रिकाओं में इनकी ग़ज़लें बहुत अधिक संख्या में प्रकाशित हुईं।

आम आदमी के जीवन की समस्याओं को इन्होंने अपनी ग़ज़लों का वर्ण्यविषय बनाया है। मानव जीवन की समस्याओं व पीड़ाओं का सहज और स्वाभाविक वर्णन करते हुए अपनी ग़ज़ल के शेरों के माध्यम से गुप्त जी कहते हैं–

^[ku n&n d Hkjuk iMrk g] nn [kkyh fxyk l gkr gA
vkvk xe dk fyck l iguk n] y t xe dk fyck l gkr gA
geu ;s gh fe tkt iN Fk] vki ukgd mnk l gkr gA*[9]

वे कहते हैं कि आज मानव प्रेम के स्थान पर भूख की आग में झुलस रहा है। बेकारी और लाचारी ने प्रेम की कोमलता को नष्ट कर दिया है। प्रेम हर मानव की आवश्यकता होती है, परन्तु भूख उससे भी बड़ी आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में सूर्यभानु गुप्त कहते हैं–

^b l ch l oh l nh e egCcr dh [kj gk]
ru e yxh g vkx] fgju g Q l k gvkA*[10]

आज के समाज में नैतिक मूल्यों का जिस तरह से पतन हो रहा है, उसके अनुसार मनुष्य के जीवन में विश्वास की इतनी कमी हो गई है कि जीवन को ढोना बेहतर और जीना कठिन लगने लगा है–

^gj yEgk ftnxh d i l hu l rx g] e Hkh fd l h deh t d dkyj dk jx gA
ek>k dkb ;dhu d dkfcy ugh jgk] rugkb;k d iM l vVdh i rx gA*[11]

स्वातन्त्र्योत्तर ग़ज़लकारों में एक और प्रसिद्ध नाम 'चन्द्रसेन विराट' का आता है। ये गीतिशैली की कोमलता पर ध्यान देते हैं। इनकी ग़ज़लें परम्परागत वर्ण्यविषयों का निर्वाह करते हुए चलती हैं। इनके प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह हैं– निर्वसना चांदनी (1970), आस्था के अमलतास (1980) और कचनार की टहनी (1983)। इन्होंने शुद्ध हिन्दी ग़ज़ल की पक्षधरता करते हुए अपनी रचनाएं भी हिन्दी में कीं। इनकी ग़ज़ल की दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

^ykt dk dij tyk i rfy;k e] vk[k l gh vkjrh mrkj x;k dkbA[12]

आज के पूंजीवादी युग में हृदय पक्ष का लोप जिस प्रकार से हो रहा है, मनुष्य की भावनाओं का दूषित होना अनिवार्य हो गया है। मनुष्य सांप से भी अधिक विषाक्त होता जा रहा है और अपनी समस्त कोमलता व मिलनसारता को कहीं कोने में दफ़न करके इस संसार में द्वेषरूपी विष फैला रहा है। इसी भावना को दर्शाती 'विराट' जी की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

^dkVk Fkk vkneh dk exj l ki ej x;k] c<rk gvk vkne e tgj n[k jgk gA[13]

पूंजीवादी व सत्तावर्ग के समक्ष आम आदमी अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु गिड़गिड़ाता है, जबकि लोकतंत्र की शक्ति आम जनता के ही पास है। जनता को अपनी शक्तियों का सदुपयोग आत्मसम्मान के साथ करना चाहिए। जब तक आम आदमी जागरुक नहीं होगा, बदलाव आना असम्भव है। अपने सम्मान को बचाकर अपनी शक्तियों को पहचानना व उनका उपयोग करना आवश्यक है। चन्द्रसेन विराट के कुछ शेर द्रष्टव्य हैं–

^v/kj d bykd l] fdj.k ekxk ugh djr] tgk gk dVdk dk ou] l eu ekxk ugh djrA
ijk e 'kfDr gk rk uki yk miyC/k uHk lkjk] mMkuk d fy, i{kh xxu ekxk ugh djrA*[14]

इनके पश्चात् भी व्यवस्था पर तीखा और सीधा प्रहार करने वाली ग़ज़लों की रचना निरन्तर होती रही है और आज भी गतिमान है। कुछ अन्य ग़ज़लकार भी हैं जिन्होंने समाज और राजनीति की विकृतियों, विद्रूपताओं व भयावह स्थितियों को देखते हुए अपना लेखन कार्य जारी रखा है और समाज को देखने के नजरिए को बदलने का प्रयास किया है। इनमें उर्मिलेश, शिवओम 'अम्बर', रामावतार त्यागी, अजय प्रसून, गिरिराजशरण अग्रवाल, रोहिताश्व अस्थाना, ज़हीर कुरैशी, अशोक अंजुम, राजेश रेड्डी, राजेश मल्होत्रा, मधुर नज़्मी, बुद्धिनाथ मिश्र, डॉ0 वशिष्ठ अनूप तथा भालचन्द त्रिपाठी आदि प्रमुख हैं।

वैसे तो स्वातन्त्र्योत्तर ग़ज़लकारों के नामों की सूची अत्यधिक लम्बी है परन्तु कुछ प्रमुख सशक्त व समर्थ ग़ज़लकारों ने इस विधा को मजबूती प्रदान करने का कार्य किया है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है आगे भी ग़ज़ल समाज व राजनीति के मार्गदर्शन का कार्य बख़ूबी करती रहेगी। 'मधुर नज़्मी' के शब्दों में–

^l[k gkFkk gh gjkjr e lekbi g x t y]
,d eQfy l d i lhu dh dekbi g x t yA
efl Q oDr l] dkfry l nkj gkft j l]
bd dyedkj dh lxhu yMkbi g x t yA
, fd l kuk! , efyu cfLr ;k d ckf'kUnk]
ckn lfn ;k d ; pkiky l vkbi g x t yA
eu egyk l ugh] >kiMh dh fdLer l]
>y l ekgky d etj l mBkbi g x t yA*[15]

lUnHk %

1. उर्दू भाषा और साहित्य : रघुपति सहाय फ़िराक गोरखपुरी, पृ0 350–351, संस्करण 1969, हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
2. दीवान–ए–ग़ालिब : मिर्ज़ा ग़ालिब, सम्पा0 प्रकाश पण्डित, पृ0 40, हिन्दी पॉकेट बुक्स, दिल्ली–32।
3. साये में धूप, दुष्यन्त कुमार, पृ0 30, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
4. वही, पृ0 13।
5. शामियाने काँच के, कुंवर बेचैन, पृ0 43, प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, 1983।
6. वही, पृ0 57।
7. समय से मुठभेड़, अदम गोण्डवी, पृ0 84, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010।
8. वही, पृ0 70।
9. ग़ज़ल : एक अध्ययन, चानन गोविन्दपुरी, पृ0 70, सी0 आर0 पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1980।
10. साप्ताहिक हिन्दुस्तान (फाइल, 1972) : सूर्यभानु गुप्त।
11. सारिका (1 फरवरी, 1981) : सूर्यभानु गुप्त, पृ0 27।
12. आस्था के अमलतास, चन्द्रसेन विराट, पृ0 42, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली–51, 1980।
13. सर्वप्रिया (मासिक, अक्टूबर 1983), चन्द्रसेन विराट, पृ0 27।
14. ग़ज़लः दुष्यन्त के बाद, दीक्षित दनकौरी, पृ0 72, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
15. ग़ज़लः दुष्यन्त के बाद : भाग दो, दीक्षित दनकौरी, पृ0 227, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 140-142

u0;U;k; e^voPNnd* foe'k
¼u0;U;k;Hkk"kkçnhi d fo'k"k lUnHk e½

itk flg*

भारतीय ज्ञान परम्परा में न्याय दर्शन का विशेष स्थान रहा है। प्रमाणों के माध्यम से अर्थ का परीक्षण करने वाला शास्त्र न्याय कहलाता है।[1] प्राचीनन्याय में प्रमाणादि षोडश पदार्थों के निरूपण के कारण उसे 'पदार्थशास्त्र' तथा नव्यन्याय में प्रमाणों की मीमांसा होने के कारण 'प्रमाणशास्त्र' कहा जाता है। नव्यन्याय के प्रतिष्ठापक आचार्य गङ्गेशोपाध्याय ने 'तत्त्वचिन्तामणि' में प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द एवं उपमान प्रमाणों का नवीन शैली के माध्यम से उपस्थापन किया है। इसमें अनेक पारिभाषिक शब्दालियों जैसे अवच्छेदक–अवच्छिन्न अनुयोगिता– प्रतियोगिता, विषयता–विषयिता, प्रकारता–प्रकारिता इत्यादि का प्रयोग किया गया है, जो भाषा को नवीन दृष्टि प्रदान करती है।

नव्यन्याय में अवच्छेदक किसे कहते हैं? उसके कितने भेद हैं तथा उन भेदों का क्या स्वरूप है? इत्यादि प्रश्नों को लेकर प्रस्तुत शोधपत्र प्रवृत्त हुआ है। नव्यन्याय में 'अवच्छेदक' की अवधारणा विचारों के सूक्ष्म विश्लेषण एवं उसके सही अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है। अन्य दार्शनिक सम्प्रदायों में भी अवच्छेदक एवं अवच्छिन्न[2] इस प्रकार के प्रयोग देखे जाते थे। इसके अतिरिक्त शाङ्कर ग्रन्थों में भी 'अवच्छेदक' को 'परिच्छेदक' इस प्रकार की शब्दावली से अभिहित किया गया है[3], किन्तु नव्यन्याय में सबसे पहले इसका प्रयोग पारिभाषिक शब्दावली के रूप में किया गया।

अवच्छेदक विशेषण स्वरूप होता है तथा अवच्छिन्न विषय से सम्बद्ध होता है। यह 'अव' उपसर्ग पूर्वक छिद् धातु से ण्वुल् प्रत्यय करने पर बनता है जिसका वियोजक, निर्धारक, निर्णायक, सीमा बाधने वाला, इत्यादि अनेक अर्थ है।[4] नव्यनैयायिकों ने 'अवच्छेदक' शब्द को एक विशेष पारिभाषिक अर्थ में प्रयोग किया है। उदाहरण– 'वह्नि' इस स्थल पर वह्नित्व धर्म अवच्छेदक है। वह्नित्व एक धर्म है जो वह्नित्व का बोध कराने की शक्ति रखने के साथ साथ उसको अन्य वस्तुओं से पृथक करता है।[5] 'अवच्छिनत्ति व्यावर्तयति' इस व्युत्पत्ति के अनुसार अवच्छेदक शब्द व्यावर्तक अर्थ में प्रयुक्त होता है।[6] परीक्षाकारदर्पण में 'अन्यूनानतिप्रसक्तत्वमवच्छेदकत्वम्'[7] इस प्रकार का लक्षण किया गया है। प्रतियोगी आदि में अनेक धर्मों के विद्यमान होने पर भी कोई विशेष धर्म ही प्रतियोगिता का भेदक होता है, इसलिए प्रतियोगी में प्रतीत होने वाला व्यावर्तक धर्म ही प्रतियोगिता का अवच्छेदक कहलाता है।

अवच्छेदक में रहने वाला धर्म अवच्छेदकत्व या अवच्छेदकता कहलाता है। अवच्छेदकता भी प्रतियोगिता, अनुयोगिता आदि के समान ही पारिभाषिक शब्दावली है। अवच्छेदकत्व एक सम्बन्ध के रूप में भी जाना जाता है। प्रतियोगिता, अनुयोगिता की भाँति इसे भी स्वरूप सम्बन्ध कहा जाता है। उदाहरण घटाभाव का प्रतियोगी घट है। घटनिष्ठ जो प्रतियोगिता है, उस प्रतियोगिता का अवच्छेदक 'घटत्व' है। घटत्व एवं घटाभाव के मध्य जो सम्बन्ध है उसको अवच्छेदकत्व या अवच्छेदकता कहा जा सकता है। इस प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि अवच्छेदक वह आश्रय है जिसमें अवच्छेदकत्व रहता है।
अवच्छेदक के भेद–अवच्छेदक के मुख्यतः छः भेद हैं–

1 देशमूलक अवच्छेदक 2. कालमूलक अवच्छेदक 3. धर्ममूलक अवच्छेदक 4. सम्बन्धमूलक अवच्छेदक 5. विषयतामूलक अवच्छेदक[8] 6. विषयतामूलक अवच्छेदक। विषयता एवं विषयिता को

*शोधच्छात्रा, संस्कृत एवं प्राच्य–विद्या अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली,

अवच्छेदक मानने पर कुछ आपत्तियाँ हो रही हैं। अतः मुख्यरूप से आरम्भ के चार अवच्छेदकों का ही उल्लेख किया जायेगा।

1- n'keyd voPNnd % नव्यन्याय में देश को अवच्छेदक के रूप में माना गया है। जैसे पर्वत के मध्य भाग में अग्नि है तथा उसके शिखर भाग में अग्नि का अभाव है। इस प्रकार के ज्ञान में पर्वत का मध्य भाग अग्नि का तथा शिखर भाग अग्नि के अभाव का दैशिक अवच्छेदक है। अतः इनको देशमूलक अवच्छेदक कहा जाता है। इनमें रहने वाली अवच्छेदकता दैशिक अवच्छेदकता कहलाती है।

2- dkyeyd voPNnd % नव्यन्यायभाषाप्रदीप में कालिक सम्बन्ध को वृत्ति (आधेय)–नियामक एवं वृत्ति–अनियामक के रूप में स्वीकार किया गया है। वृत्ति–नियामक कालिक सम्बन्ध से सभी पदार्थ काल में रहते हैं।[9] वह काल महाकाल तथा खण्डकाल स्वरूप है। काल में सभी पदार्थ विद्यमान है इस प्रकार की प्रतीति महाकाल विषयक है। 'दिसम्बर मास में ठण्ड अधिक है' 'आज वर्षा हुई' 'श्याम कल विद्यालय में था' इस प्रकार की प्रतीति खण्डकाल विषयक हैं।

घट के जन्मकाल में घट में गुण नहीं है। इस प्रकार के ज्ञान में घट का जन्मकाल, घट में गुण के अभाव का कालिक अवच्छेदक है। काल में रहने वाली अवच्छेदकता कालिक अवच्छेदकता होती है, जो काल स्वरूप ही होती है।

3- /keZeyd voPNnd % नव्यन्यायभाषाप्रदीप में धर्म को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है– "धर्मः–ध्रियते तिष्ठति वर्तते यः, स धर्मः।"[10] अर्थात् जो धारण किया जाता है अथवा जो स्थिर रहता है, जो कहीं रहता है, वह धर्म है। आकाशादि को छोड़कर सभी पदार्थ कहीं न कहीं रहते हैं, अतः वे सभी पदार्थ धर्म कहे जाते हैं। जिस आधार में जो पदार्थ रहता है, वह उस आधार का धर्म कहलाता है। जैसे– द्रव्य में जाति, गुण और कर्म रहते हैं इसलिए ये तीनों ही द्रव्य के धर्म कहलाते हैं।[11]

जाति नामक धर्म को महर्षि कणाद ने 'सामान्य' नाम से अभिहित किया है। विभिन्न आकार, स्वरूप एवं स्वभाव वाले मनुष्यों का एक मात्र मनुष्यत्व जाति के द्वारा एक श्रेणी में अन्तर्भाव हो जाता है और यही मनुष्यत्व धर्म उसे अन्य धर्मों जैसे पशुत्वादि से पृथक् करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मनुष्यत्व अभाव की प्रतियोगिता का अवच्छेदक मनुष्यत्व है।

4- lEcU/keyd voPNnd % नव्यनैयायिकों ने पदार्थ के विश्लेषण में 'सम्बन्ध' के सिद्धान्त विशेष बल दिया है। संसार में विद्यमान सभी पदार्थ एक दूसरे जुड़े हुए हैं तथा उनकी पारस्परिक सम्बद्धता किसी न किसी 'सम्बन्ध' पर निर्भर करता है। नव्यन्यायभाषाप्रदीप में ^lEcU/k% lfUud"k%*[12] इस प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है। सम्बन्ध भिन्न–भिन्न वस्तुओं में विशेषण विशेष्य का प्रयोजक होता है। जैसे 'दण्डवाला पुरुष' इस स्थल पर दण्ड और पुरुष में विशेषणविशेषय का प्रयोजक संयोग सम्बन्ध है। यदि इन दोनों के मध्य संयोग सम्बन्ध न मान जाय तो दण्ड एवं पुरुष के मध्य विशेषण–विशेष्यभाव की प्रतीति सम्भव नहीं हो सकती है। यदि भिन्न वस्तु न भी हो जैसे तादात्म्यसम्बन्ध के स्थल में अथवा अभेदसम्बन्ध के स्थल में भी 'सम्बन्ध' एक ही वस्तु में विशेषण–विशेष्य भाव का नियामक होता है, दो पृथक्–पृथक् वस्तुओं का नहीं।

न्याय दर्शन किसी भी वस्तु को विशिष्ट रूप में देखता है अर्थात् प्रत्येक विशिष्ट ज्ञान में विशेषण, विशेष्य तथा इन दोनों को सम्बद्ध करने वाल सम्बन्ध ये तीन बातें आवश्यक हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विशिष्ट ज्ञान की संसर्गता रूप विषयता को सम्बन्ध कहा जा सकता है, जो प्रकारता तथा विशेष्यता से भिन्न है। नव्यन्याय में सम्बन्ध को भी 'अवच्छेदक' माना गया है। जैसे–' मेज पर पुस्तक है' यहाँ मेज तथा पुस्तक के मध्य संयोग सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध ही पुस्तक को अवच्छिन्न कर रही है। संयोग के अतिरिक्त अन्य कोई सम्बन्ध नहीं है, जो मेज तथा पुस्तक में सम्बन्ध स्थापित कर सके। इसी प्रकार यदि भगिनी भ्रातृत्व सम्बन्ध से भाई से सम्बन्धित है तो उस समय अन्य सम्बन्ध जैसे पुत्रीत्व, पत्नीत्व इत्यादि सम्बध नहीं कार्य करेंगे। अतः भ्रातृत्व सम्बन्ध उस समय भगिनी को अवच्छिन्न कर रहा है। इस प्रकार इस स्थल पर भ्रातृत्व रूप सम्बन्ध अवच्छ्देक के रूप में कार्य कर रहा है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'अवच्छेदक' किसी भी पदार्थ को सीमित करता है। इसका प्रयोग विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों में भले ही अन्य शब्दावलियों के द्वारा किया गया हो किन्तु अर्थ 'सीमित

करने वाला' ही लिया जा सकता है। आचार्य वाचस्पति मिश्र ने इस पारिभाषिक शब्दावली को ग्रहण कर 'अवच्छेदवाद' की स्थापना भी की है। नव्यन्याय में धर्म, सम्बन्ध देश एवं काल ये चार अवच्छेदक हैं जो पदार्थ को सीमित करते हैं।

lUnHk %

1. प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः। न्यायदर्शनम्, पृष्ठ–8
2. जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमाः महाव्रतम्। योगसूत्र, साधनपाद, सूत्र–31,
   पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। योगसूत्र, समाधिपाद, सूत्र–26
3. स यः कश्चित् हैतान्प्रजापतेरात्मभूतानन्तवन्तः परिच्छिन्ना33..भूतान् अपरिच्छिन्नानुपास्ते३.बृहदारण्यकोपनिषद् शाङ्करभाष्य–1.5.13। सर्वत्र प्राप्य– नोपाधिपरिच्छिन्नैकदेशेन......... घटे घटाकावदविद्या.तोपाधिपरिच्छेदं जहति। मुण्डकोपनिषद् भाष्य–3.2.5। कार्यं परिच्छिन्नं स्थूलम्, कारणेनापरिच्छिन्नेन सूक्ष्मेण व्याप्तमिति दृष्टम्, बृहदारण्यकोपनिषद् शाङ्करभाष्य–3.6.1
   यथाऽन्ये संसारिणः कालेनाऽहोरात्रादिलक्षणेन परिच्छेद्या न तथायं कालपरिच्छेद्य इत्यभिप्रायः। छान्दोग्योपनिषद्शाङ्करभाष्य– 8.4.1
   अतश्च नान्नमयेनैव परिच्छिन्नेनात्मनात्मवन्तः प्राणिनः। तैत्तिरीयोपनिषद् शाङ्करभाष्य– 2.1
4. संस्कृत–हिन्दी कोश– वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ–107
5. शक्यत्वे सति शक्यव्यावर्तकत्वम् अवच्छेदकत्वम्। Navya nyaya sytem of logic, Dinesh Chandra Guha, Page–24
6. नव्यन्याय के पारिभाषिक पदार्थ, बलिराम शुक्ल, पृष्ठ–75
7. Navya Nyaya Sytem of Logic, Dinesh Chandra Guha, Page–27
8. भारतीय न्यायशास्त्र, चक्रधर विजल्वान, पृष्ठ–438
9. कालिकनामकः सम्बन्धः कश्चिद् वृत्तिनियामकः, कश्चिच्च वृत्त्यनियामकोऽस्ति। वृत्तिनियामकेन कालिक–सम्बन्धेन काले सर्वं वर्तते। नव्यन्यायभाषाप्रदीपः, महेशचन्द्र न्यायरत्न, पृष्ठ–51
10. नव्यन्यायभाषाप्रदीपः, महेशचन्द्र न्यायरत्न, पृष्ठ–3
11. द्रव्ये जातिगुणकर्माणि तिष्ठन्तीति जातिगुणकर्माणि द्रव्यस्य धर्माः। नव्यन्यायभाषाप्रदीपः, महेशचन्द्र न्यायरत्न, पृष्ठ–3
12. नव्यन्यायभाषाप्रदीपः, महेशचन्द्र न्यायरत्न, पृष्ठ–26

lUnHk xzUFk&lwph %

1. बृहदारण्यकोपनिषद् (सानुवाद शाङ्करभाष्यसहित), गोरखपुर : गीताप्रेस, (सं.) 2071
2. ईशादि नौ उपनिषद् (शाङ्करभाष्यार्थ), गोरखपुर : गीताप्रेस, (सं.) 2068
3. न्यायदर्शनम् (वात्स्यायनभाष्यसहितम्), गौतम, (व्या.) ढुण्ढिराज शास्त्री, वाराणसी, चौखम्बा संस्:त भवन, (वि. सं.) 2075
4. नव्यन्यायभाषाप्रदीपः, महेशचन्द्र न्यायरत्न, अहमदाबाद : पार्श्व पब्लिकेशन, 2017
5. नव्यन्याय के पारिभाषिक पदार्थ, बलिराम शुक्ल, पुणे : योग एन्टरप्राईझेस, शक 1920
5. भारतीय न्यायशास्त्र, चक्रधर विजल्वान, लखनऊरू उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, 1983
6. भारतीय दर्शन का इतिहास (न्याय–वैशेषिक), जयदेव वेदालङ्कार, दिल्लीरू न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, 2014
7. भारतीय चिन्तन की धारा, राममूर्ति शर्मा, दिल्ली : चौखम्बा ओरियन्टलिया, 2008
8. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास (नवम खण्ड), गजानन शास्त्री 'मुसलगांवकर', लखनऊरू उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, 1999
9. अद्वैत वेदान्त में आभासवाद, सत्यदेव मिश्र, नई दिल्ली : श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्:त विद्यापीठ, 2018
10. संस्कृत–हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन पब्लिकेशन, 2018
11. Navya Nyaya System of Logic, Dinesh Chandra Guha, Varanasi: Bharatiya Vidya Prakashan, 1968
12. A primer of Navya Nyaya Language and methodology, Mahesha Chandra Nyayaratna, 'Engllish Translation' Ujjwala Jha, Kolkata: Asiatic Society,2004

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 143-148

vUèkk&;x ukVd e; ;xckèk

M,0 lj;'k çlg jkBkM*

काव्य नाटक 'अंधा युग' में डॉ. धर्मवीर भारती ने युद्ध के परिपेक्ष्य में आधुनिक जीवन की विभीषिका का चित्रण किया है। इस नाटक में एक ओर महाभारत के युद्ध की विभीषिका का विषद वर्णन है तो दूसरी ओर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उपजी अराजकता को साक्षात् अभिव्यक्ति दी है। रचनाकार का मानना है कि स्वार्थ और मोहासक्ति के अंधेपन से उत्पन्न युद्धों के उपरान्त एक महान विघटनकारी संस्ति का निर्माण होता है, जिसमे कुंठा, निराशा, पराजय, अनास्था, प्रतिशोध, आत्मघात जैसी अंधी प्रवृत्तियों का उद्घाटन होता है। 'अंधायुग' की कथा महाभारत युद्ध के अट्ठारहवें दिन की रात्रि तथा कृष्ण के स्वर्गारोहण की कथा है। इसमें धृतराष्ट्र, युयुत्सु, अश्वत्थामा, गांधारी, व्याध आदि पात्र प्रतीकात्मक हैं, जो अंधायुग की वेदना को स्पष्ट करते हैं।

रचनाकार का मानना है कि जब जब युद्ध होता है तो उसमें मर्यादाओं का हनन होता है। महाभारत में भी युद्ध से पूर्व कृष्ण ने धृतराष्ट्र को समझाया था कि मर्यादा मत तोड़ो। टूटी हुई मर्यादाएं सारे कौरव वंश को नष्ट कर देंगी। परंतु धृतराष्ट्र न केवल आँखों से अंधा था अपितु मोहासक्ति, स्वार्थ तथा वैयक्तिकता के अंधेपन के कारण अपनी वैयक्तिक सीमाओं से बाहर नहीं निकल पाये और महाभारत जैसे युद्ध का बीजारोपण कर दिया। धृतराष्ट्र के इस अंधेपन ने संस्कृति को ह्रासोन्मुख बना दिया और पूरे युग को महाविनाश के कगार पर खड़ा कर दिया और मानवीय जीवन को ध्वस्त कर दिया। इस युद्ध में अनेक मर्यादाएं, आस्थाएँ टूट गई। भारती का मानना है कि जब–जब युद्ध होता है तब–तब मानवता शर्मसार होती है और उसे अनेक भीषण स्थितियों का सामना करना पड़ता है । यह सच भी है कि युद्ध में जो भी सत्यं, शिवम् और सुंदरम होता है वह समूल नष्ट हो जाता है।

अंधायुग नाटक में भारती ने इसे अभिव्यक्त करते हुए कहा है "टुकड़े–टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा, उसको दोनों ही पक्षों ने तोडा है। यह इस बात का साफ़ संकेत है कि युद्ध में विजयश्री का वरण करने के लिए सदैव मर्यादाओं का हनन होता आया है।

dk0;&ukVd % काव्य–नाटक अंग्रेजी के ''Poetic Drama'' का हिंदी रूप है । काव्य–नाटक काव्य और नाटक कि मिली–जुली विधा है। इसमें दोनों के तत्व समाहित होते हैं। नाटक को पंचम वेद कहा जाता है क्योंकि इसमें नृत्य, संगीत, गीत और काव्य सबका समावेश होता है। यद्यपि प्राचीनकाल में नाटक काव्यमय ही थे परंतु बाद में इनमें गद्य का समावेश हो गया। आलोचक काव्य नाटक शब्द को लेकर एक मत नहीं है। आलोचकों ने इसे गीतिनाट्य, .श्य नाट्य, गीतिरूपक, काव्य रूपक कहा है। डॉ.बच्चन सिंह के अनुसार "गीति नाट्य मुख्यतः भावनामय होते हैं; उनमें बाह्य संघर्षों की अपेक्षा अन्तः संघर्षों की प्रधानता होती है, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जीवन की कठोर वास्तविकताओं से उनका कोई संबंध नहीं जुड़ पाता।"[1] बच्चन सिंह के उक्त के उक्त कथन के आधार पर अंधायुग नाटक की समीक्षा करें तो ज्ञात होता है कि आलोच्य नाटक इसमें पूरी तरह खरा उतरता है । क्योंकि धृतराष्ट्र, गांधारी, युयुत्सु, अश्वत्थामा, कृष्ण सभी में आंतरिक संघर्ष ही अधिक दिखाई देते हैं। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार काव्य नाटक के प्रमुख तत्व निम्नांकित हैं .प्रस्तावना, कथा, संवाद, गीत, नर्तन। आलोचकों ने जयशंकर प्रसाद रचित 'करुणालय' को हिंदी का प्रथम गीति नाट्य मन है। इस प्रकार समीक्षकों ने प्रसाद को हिंदी गीति नाट्यों का प्रथम पुरस्कर्ता होने का गौरव दिया हैं। हिंदी के प्रमुख गीति नाट्यों में मैथिलीशरण गुप्त रचित 'अनघ'

*सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय, किशनगढ़ (राजस्थान)

सियारामशरणगुप्त रचित 'उन्मुक्त' तथा 'स्वर्ण विहान',भगवतीचरण वर्मा रचित 'तारा',उदय शंकर भट्ट रचित 'विश्वामित्र','मत्स्यगंधा',और 'राधा',पन्त रचित 'रजत शिखर','शिल्पी',और 'सौवर्ण', गिरिजाकुमार माथुर रचित 'कल्पान्तर','दंगा', 'राम',सिद्धनाथ कुमार सिंह रचित 'सृष्टि की सांझ','लौह देवता','संघर्ष','विकलांगों का देश' और 'बादलों का शाप', धर्मवीर भारती रचित 'अंधा–युग',अज्ञेय रचित 'उत्तर प्रियदर्शी',दुष्यंत कुमार रचित 'एक कंठ विषपायी' हिंदी के प्रमुख गीति नाट्य माने जाते हैं।

धर्मवीर भारती ने आलोच्य काव्य नाटक अंधायुग की भूमिका में इसे अलग–अलग नामों से अभिहित किया है। नाटक की भूमिका के आरम्भ में ही उन्होंने इसे .श्य काव्य कहा है "इस दृश्य काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है, उनके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण किया है। एक स्थान पर वे इसे काव्य कहते हैं "मूलतः यह काव्य रंगमंच को दृष्टि में रख कर लिया गया था।" इसी प्रकार वे इसे नाटक कहते हुए भूमिका में लिखते हैं "कुछ स्थानों को अपवाद स्वरुप छोड़ दें तो प्रहरियों का सारा वार्तालाप एक निश्चित लय में चलता है जो नाटक के आरम्भ से अंत तक लगभग एक–सी रहती है। इस प्रकार स्वयं भारती इसे अनेक नामों से अभिहित किया है।

युगबोध के सामान्य अर्थ के साथ ही इसका स्वरूप आभासित होता है। युगबोध के निर्माण की प्रक्रिया में ही इसका स्वरूप निहित है। युगबोध में युग के बारे में ज्ञान, पहचान करना समाहित है। युगीन परिवेश, विचारधारा, परिस्थितियाँ, मान्यताएं, परिवर्तन आदि एक युग का निर्माण करते हैं। और इन युगीन परिस्थितियों या स्वरूप में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, स्थितियों को सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक परिस्थितियों में उसकी परम्परा वर्तमान स्थिति मान्यताएं, पीढ़ियों के मध्य अंतर्द्वंद्व, युवा मानसिकता बुजर्गों की स्थिति, स्त्री विषयक दृष्टिकोण आदि को लिया जा सकता है। राजनीति का वर्चस्व और भ्रष्ट प्रशासन तंत्र या नौकरशाही की कार्यशैली को देखा जा सकता है। सता. विपक्ष दोनों की कार्य शैली भाई भतीजावाद, भ्रष्टाचार तो जैसे आज राजनीति के मूल तत्त्व से प्रतीत होते हैं। वर्तमान समय में विघटित होते मानवीय मूल्य, व्यक्ति की स्वार्थपरकता, जातिवादी अवधारणा इंसान की लुप्त होती इंसानियत वर्ग–विभेद की स्थिति दिखाई पड़ती है। युगबोध में सामयिक संवेदना और युगीन परिवेश की प्रमुख भूमिका रहती है। युगबोध के स्वर को अपने साहित्य में कोई भी साहित्यकार नकार नहीं सकता है। धर्मवीर भारती ने भी अपने काव्य नाटक में युगबोध को रूपायित किया है ।

आलोच्य काव्य नाटक के रचनाकार धर्मवीर भारती ने महाभारत कालीन स्थितियों का आधुनिक युग की स्थितियों से तारतम्य बैठते हुए युगबोध को इंगित करते हुए बताया है कि महाभारत युगीन अमर्यादा, अनैतिकता, रक्तपात, निराशा, कुंठा, संत्राश आज के युग में भी वैसा ही है जैसा उस युग में था। आज भी युयुत्सु जैसे वीर योद्धा जो सत्य का साथ देते हैं, उन्हें आत्मघात करना पड़ता है। युधिष्ठिर जैसे लोग सत्य का चोला पहनकर असत्य बोलते हैं, धृतराष्ट्र जैसे लोग आज भी सत्ता से चिपके रहना चाहते हैं, भीम जैसे लोग मद में डूबे हुए हैं, आम जनता युद्ध नहीं चाहती फिर भी शासक अपने निजी स्वार्थों के कारण आमजन को युद्ध की विभीषिका में धकेल देते हैं । क्या आज का युग महाभारत युग जैसा नहीं है?

आज पूरी दुनियां हथियारों के ढेर पर बैठी हुई है। कोई देश हथियार बनाकर खुश है तो कोई हथियार खरीदकर। मानवता की कोई बात नहीं करता है । ऐसा प्रतीत होता है कि सभी अपने अपने निजी स्वार्थों के कारण समष्टि भाव को छोड़कर वैयक्तिक सीमाओं में बंध गए हैं। जिस प्रकार धृतराष्ट्र ने अपने निजी हितों के कारण पूरे कौरव कुल को युद्ध की विभीषिका में धकेल दिया उसी प्रकार आज के राजनेता भी अपने तुच्छ स्वार्थों के कारन भारत की अस्मिता को बेचने पर अमादा हैं।

आलोच्य काव्य नाटक अंधा–युग में प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। रचनाकार धर्मवीर भारती ने ऐतिहासिक, पौराणिक एवं सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से इस युग का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। इस नाटक का शीर्षक प्रतीकात्मक है। शीर्षक से अनेक सन्दर्भ ग्रहण किए जा सकते हैं। आलोचकों का मानना है कि काव्य नाटक अंधा–युग का नामकरण लोगों की अज्ञानता को, अन्ध–परिवेश को, अभावग्रस्त युग

को आधार बनाकर किया है। क्योंकि भारती का ध्येय लोगों के स्वार्थ के अंधेपन, आज के परिवेश के अंधेपन, सत्ता के अंधेपन. मोह के अंधेपन को अभिव्यक्त कर उसके परिणामों से अवगत करवाना है। वस्तुतः महाभारत का युग अन्धों का युगा था, अज्ञानता से त्रस्त उन व्यक्तियों का युग था जिनमें कर्तव्य और अकर्तव्य का बोध शेष नहीं रह गया था। व्यक्ति तुच्छ स्वार्थों के कारण अकर्तव्य की ओर उन्मुक्त हो रहे थे तथा समष्टिगत भाव का परित्याग कर क्षुद्र वैयक्तिक सीमाओं के कोटर में बंद थे। महाभारतयुगीन भारत में आस्था, साहस, श्रम, अस्तित्व का कोई अर्थ नहीं था। क्योंकि महाभारत का युद्ध अपने–अपने स्वार्थों के लिए लड़ा गया था। मनुष्य पर जब स्वार्थ हावी हो जाते हैं तो मर्यादाओं का हनन होता है, आचरण पतित हो जाता है, क्योंकि मोहांध व्यक्ति को कुछ भी दिखाई नहीं देता है। जिस प्रकार धृतराष्ट्र अपने पुत्रों और प्रजा को मरते हुए देखकर भी कुछ नहीं देख सके। मोहाशक्त व्यक्ति अनिर्णय की स्थिति में होता है। वह हर पल विजिय की आशा में ही युद्ध में रत रहता है। धृतराष्ट्र के लिए उनके पुत्र ही सर्वस्व थे। यही कारण है कि वे समष्टि की चिंता नहीं कर सके उसी प्रकार आज के राजनेता भी अपनी सत्ता को ही सर्वोपरि समझते हैं और आमजन को युद्ध में धकेल देते हैं। सत्तासीन व्यक्ति को जिस दिन पराजय की आशंका हो जाती है, उस दिन वह पूरी तरह टूट जाता है, अपने। जबकि मनुष्य ठोकरों से ही सीखता है, पराजय ज्ञान का द्वार खोलती है, असफलता सफलता का मार्ग प्रशस्त करती है, अपनों की चोट और मृत्यु हमें व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाती है, व्यक्ति स्व की कोटर से बाहर आता है परन्तु धृतराष्ट्र उस आशंका से भी कुछ नहीं सीखता ठीक उसी प्रकार अज के राजनेता भी अपनी असफलातों से कुछ भी नहीं सिखाते हैं।

विवेच्य नाटक का परिवेश अंधा है जिसमें सर्वत्र अस्पष्टता, अनिश्चय और अविवेक के कारण सब कुछ धुंधला–सा प्रतीत होता है। विवेच्य काल अभावग्रस्त काल है, जिसमें राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक सभी प्रकार के मूल्यों का विघटन हो चुका है– अर्थात् किसी भी प्रकार की मर्यादा शेष नहीं है। ठीक उसी प्रकार आज के युग में भी मर्यादाओं का नित–प्रतिदिन हनन हो रहा है। स्वार्थी लोग अपनी मर्यादा, अपनी अस्मिता, अपने ईमान को बेचने के लिए तत्पर रहते हैं। आज का सम्पूर्ण परिवेश भी महाभारत कालीन है। आज के मनुष्य में भी राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक सभी प्रकार के मूल्यों का विघटन हो चुका है। डॉ.सुखबीर सिंह के अनुसार "महाभारत के युद्ध में सभी प्रकार के मानव–मूल्य जलकर राख हो गए थे। जिसके बाद पीड़ित और कुण्ठित अनास्था युक्त, गूंगे, बहरे घायल सैनिक और प्रजा ही शेष रह गए थे, जिन्होंने अपने सामने सभी प्रकार के मूल्यों को नष्ट होते हुए देखा था। इस युग में शेष थे तो ऐसे विक्षिप्त लोग जो युद्ध में मर न पाने की यातना को भोगन के लिए अभिशप्त थे। यह युद्ध मर्यादा और मुल्यों की रक्षा के लिए लड़ा गया था, किन्तु 'युद्धोपरान्त' जिस 'अन्धे युग' का 'अवतरण' हुआ, उसमें मर्यादा ओर मूल्यों का कोई स्थान शेष नहीं रह गया था।"[2]

काव्य नाटक 'अंधा–युग' नये युगबोध का नाटक है । इस नाटक की आज भी प्रासंगिकता है। यह कृति वर्तमान युग को संकेत करती है कि यह युग भी महाभारत युग के सामान ही अंधायुग है। अंधा इस अर्थ में कि आज के मानव भी धृतराष्ट्र की तरह विवेक और बुद्धि से अंधे हैं। आज भी समाज में मानवता शर्मसार है। सर्वत्र अनास्था, कुंठा, कर्तव्यहीनता, भ्रष्टाचार, बेईमानी, आत्महत्या आदि पनप रही है। इस युग में जो शासक वर्ग है, वह धृतराष्ट्र के सामान आंखें बंद कर बैठा है। धृतराष्ट्र तो अंधे थे परंतु आज का मानव खुली आँखों से भी नहीं देख पाता है। ऐसे समय में मानवता बीते समुद्र के समान हो गई है, मानव संवेदना शून्य हो गया है। दिन प्रतिदिन लोगों की भावनाओं की हत्या हो रही है। इस युग में स्वार्थ, लोभ, लालच के अनेक प्रकार के विवर हैं, अंध गुफाएं हैं, गलियां हैं। इसके कारण लोगों का मन ही अंधा हो गया है। गांधारी के समान सभी लोगों ने स्वार्थ, विवेकहीनता, कर्तव्यहीनता की पट्टियां आंखों पर बांध रखी है। भाईचारा समाप्त हो गया है, मनुष्य मनुष्य में वैमनष्यता बढ़ गई है, स्वार्थ के वशीभूत हो गए हैं। ऐसा युग अंधा नहीं तो क्या कहा जा सकता है ? जहाँ प्रति दिन मासूम द्रोपदियों के साथ अनाचार होता है, बहुत सारी कन्याओं को जन्म लेने से पूर्व ही कोख में मार दिया जाता है, पिता

द्वारा पुत्री का यौन शोषण किया जाता है, सत्य का साथ देने वालों को सरे राह मौत की घाटी में सुला दिया जाता है, जहाँ न्याय के दरबार में न्याय की बोली लगाई जाती है, स्वार्थ सर्वोपरि है, सभी मनुष्य स्व की कोटर में बंध है, संत्रास, पीड़ा और घुटन के इस वातावरण में सब कुछ अंधा ही अंधा है। अंधा–युग नाटक की समकालीनता पर विचार करते हुए गिरीश रस्तोगी ने लिखा है "प्रसंग सब वही हैं, पात्र सब वही हैं, पर मूल प्रसंगों और चरित्रों से भारती ने समकालीन अनुभव को, युगबोध को, अपने चिंतन को बड़ी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है।"[3]

आज के युग में राष्ट्र भक्ति के स्थान पर पद भक्ति बढ़ गई है। विश्व ग्राम की परिकल्पना में राष्ट्रों का स्वार्थ बढ़ रहा है। आतंकवाद जैसी विश्वजनित समस्या सुरसा के मुख के समान संपूर्ण विश्व के सामने मुंह बाहे खड़ी है। स्व रक्षा, आत्मरक्षा के नाम पर दिन–प्रतिदिन परमाणु बमों, हाइड्रोजन बमों का निर्माण हो रहा है। कोई राष्ट्र आतंकवाद को बढावा दे रहा है तो कोई विश्व शांति के नाम पर दूसरे राष्ट्र पर आधिपत्य जमाना जाता है। हथियारों की इस अंधी दौड़ में मानवीय भाव समाप्त प्राय हो गए हैं। ऐसे वातावरण में निराशा और पराजय, रक्तपात, विध्वंस, कुरूपता, हिंसा, नृशंसता, ह्रासोन्मुख मनोवृत्ति आदि ही उपजते हैं। इसी प्रकार के गिरते और ध्वस्त होते मानव मूल्यों का आज का युग साक्षी है। इस युग में सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन जिस गति से हो रहा है वह समस्त विश्व और संस्कृति के लिए बहुत बड़ा खतरा है। आज के समय में एक–एक कर सारे मूल्य टूटते और बदलते जा रहे हैं। इसने हमारा विश्वास ही तोड़ डाला है। लोगों के जीने का एक बड़ा मानसिक सहारा उनसे छिन गया है। यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि मनुष्य चाहे सच का रास्ता चुने या झूठ का, दोनों का ही अंत दुखदायी होता है।

नाटककार का मानना है कि युग अपने आप को दुहराता है। जैसा मूल्यों का संकट आज दिखाई दे रहा है, वैसे ही संकट की कल्पना कथाकार महाभारत की स्थिति में भी देखता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद लिखा गया यह नाटक उस समय के युद्ध को प्रतीक के रूप में प्रयोग करता है। जब कृति का अन्त होता है तो कवि कहता है,

ml fnu tk vUèkk ;qx vorfjr gqvk tx ij
chrrk ugÈ jg&jg dj nkgjkrk g
gj {k.k gkrh g çHkq dh eR;q dgÈ u dgÈ
gj {k.k vfèk;kjk xgjk gkrk tkrk gSA[4]

निस्संदेह रचनाकार ने इस नाटक का मर्म बिंदु दूसरे विश्वयुद्ध के बाद मानव की नियति और उसकी स्थिति में देखा। हिरोशिमा और नागासाकी में गिराए गए बम इस बात के पुख्ता प्रमाण है। महाभारत युग से आज तक हम उन्हीं मानसिक यंत्रणाओं, रक्तपात, हिंसा और व्यर्थता के बोध के बीच विध्वंसों के अवशेष पर खड़े हैं और कर रहे हैं इंतज़ार विश्वास, सत्य, अहिंसा और भाई चारे रुपी नई कोंपलों के फूटने का। फ़सल तो विनाश की बो रहें हैं और फल सर्जन का चाहिए। अन्धायुग में कवि ने जो प्रश्न उठाए हैं उनकी प्रासंगिकता आज भी कायम हैं। इस काव्य नाटक की मूल संवेदना पर विचार करें तो ज्ञात होता है कि रचनाकार आज के मानव के सामने साफ शब्दों में कहता है कि मनुष्य के उसी कर्म का महत्त्व है जो अनासक्त है अर्थात् कृष्ण ने अर्जुन को गीता में जो संदेश दिया है वही उचित है। मानव फल की इच्छा किए बिना कर्म करता है तो वह अवश्य ही विजयी होता है। यदि व्यक्ति फल, स्वार्थ, मोहासक्ति को छोड़कर वैयक्तिक भावों से ऊपर उठकर कर्म क्षेत्र में प्रवृत होता है तो वह इतिहास और नक्षत्रों की गति बदलने का भी सामर्थ्य रखता है। भाग्य, नियति कुछ भी नहीं है, मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति द्वारा हर पल नूतन इतिहास का निर्माण करता है। इच्छा शक्ति की प्रबलता के बल पर ही मनुष्य कर्म की लकीरों को मिटाकर ईश्वर को भी चुनौती देता है। केवल कर्म सत्य है। कर्म ही मनुष्य को उठाता है और कर्म ही उसे गिरा भी देता है। नियति या भाग्य पूर्वनिर्धारित या नियंता शक्ति नहीं है, अपितु मानव–निर्णय उसे निरंतर बनाता–मिटाता है। कर्म की शक्ति अपरिमित है। यदि कोई पुरुष स्वार्थ–भाव से ऊपर उठकर इतिहास को चुनौती देता है तो निश्चय ही वह सफल होता है–

tc dkÃ Hkh eu";
vukl ä gkdj pukrh nrk g bfgkl dk]
ml fnu u{k=k dh fn'kk cny tkrh gA
fu;fr ugÈ g iofuèkkfjr&
ml dk gj {k.k ekuo&fu.k; cukrk&feVkrk gA[5]

डॉ. बच्चन सिंह ने इस दायित्व, अनासक्त कर्म के महत्त्व पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए कहा है "अंधायुग में जिस दायित्व की बात उठाई गई है वह एक आस्था को जन्म देती है। यद्यपि जीवन में वह आस्था पुनः भटक गई है। अंधायुग में युग के अंधेपन का, घुटन, विवशता, लाचारी का जो चित्रण हुआ है वह हमें बुरी तरह झकझोर देता है। पर दायित्व की बात केवल बात बनाकर रह जाती है।"[6]

रचनकार का मानना है कि मनुष्य की पहचान का आधार उसका आचरण ही है, आचरण ही उसे पतित करते हैं और आचरण ही उसे महत्व देते हैं। अतः मनुष्य का आचरण मर्यादित होना चाहिए। मर्यादा को कोई भी व्यक्ति तोड़ न पाए। मर्यादा तोड़ने का प्रयत्न करने वाले व्यक्ति को समाज द्वारा दण्ड का विधान किया जाता है। इसीलिए भीष्म ने,गुरु द्रोण ने तथा .ष्ण ने कौरव सभा में कहा था –

e;knk er rkMk&
rkMh gÃ e;knk
dpy g, vtxj&lh
xtfydk e dkjo&o'k dk yiV dj
l[kh ydMh lk rkM Mkyxh[7]

संसार का नियम है जिसकी लाठी उसकी भैंस अर्थात् बलशाली व्यक्ति सदैव ही मर्यादाओं, नीतियों और नियमों को अपने अनुसार तोड़ते–मरोड़ते रहे हैं। गांधारी भी इस बात से सहमत है कि ये धर्म, नीति, मर्यादा ये सब हैं केवल आडम्बर मात्र। उसका मानना है कि बलशाली व्यक्ति अपने हित में मर्यादा का स्वरुप बदल लेता है। शेष लोग, क्योंकि उससे निर्बल होते है इसलिए उसे रोक नहीं पाते। यही कारण है कि कृष्ण बलशाली हैं और उन्होंने धर्म, नीति, मर्यादा सबको अपने अनुरूप बदल लिया।

ftldk re dgr gk çHk
mlu tc pkgk
e;knk dk viu gh fgr e cny fy;kA[8]

इसी प्रकार का सच आज के परिवेश में भी देखा जा सकता है। आज के शुभ्रवेशधारी राजनेता भी नकली चेहरे लगाकर जनता का शोषण करते हैं। जन गण मन के नाम पर सत्ता का उपभोग करते हैं। अवसरवादी सत्तासीन लोग अपने क्षुद्र स्वार्थों के कारण जनता को परस्पर लड़ाते रहते हैं और वातावरण को दूषित करते हैं। ऐसे वातावरण में जो दुर्बल व्यक्ति है वह हार मान कर आत्महत्या के लिए बाध्य हो जाता है। ठीक उसी प्रकार जैसे महाभारत–युद्ध में कौरव पुत्र युयुत्सु पाण्डव पक्ष से लड़ा था। परन्तु कौरवों की पराजय के पश्चात् विजयी पक्ष पांडवों का एक सैनिक होने के कारण उसे भी उचित सम्मान मिलना चाहिए था। किन्तु भीम जहाँ कहीं भी उसे देखता था, उसका अपमान कर देता था। भीम के इस कु.त्य को रोकने की इच्छा या शक्ति किसी में भी नहीं थी। मर्यादा का बार–बार उल्लंघन हो रहा था जिसके कारण अन्ततः वह कौरव पुत्र युयुत्सु अपमानित होकर आत्महत्या करने को बाध्य हो जाता है। आत्महत्या एक पाप है। जब यह होता है तो समाज के आंतरिक विघटन की ओर संकेत अवश्य कर जाता हैं इसीलिए कृपाचार्य इस आत्महत्या के दूरगामी परिणामों की कल्पना सहज ही कर लेता है–

vkRegR;k gkxh çfrèofur
bl ijh lLÑfr e
n'ku e] èke e] dykvk e
'kkl u&0;oLFkk e
vkRe?kkr gkxk cl vfUre y{; ekuo dkA[9]

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि काव्य नाटक 'अन्धा युग' में भारती ने महाभारत युद्ध का प्रसंग लेकर आधुनिक युग में युद्ध की विभीषिका को चित्रित किया है। आज के युग में भी सभी देश अपने निजी स्वार्थो के वशीभूत होकर एक दूसरे से तने खड़े हैं। आज के युग में विश्वशांति की बात बेईमानी हो गई है। आज सभी राष्ट्र अपने रक्षा बजटों पर जितना खर्च कर रहें हैं, वह आने वाले समय में किसी नवीन युद्ध की दस्तक देते नज़र आते हैं। विचारणीय बिंदु यह है कि मनुष्य का जन्म शांति एवं सद्भाव के लिए हुआ है परन्तु वैयक्तिक स्वार्थों के चलते दया, त्याग, करुणा, विश्व बंधुत्व की भावना तिरोहित होती जा रही है। प्रस्तुत काव्य नाटक में रचनाकार धर्मवीर भारती ने कृष्ण के वचनों का समर्थन करते हुए यह सन्देश दिया है कि मनुष्य अपने कर्म द्वारा नियति को बदल सकता है। साथ ही साथ मर्यादा की महत्ता स्थापित करने का प्रयत्न भी किया है। महाभारत के युद्ध में जिस मर्यादा का लोप हो गया था वैसा अब हनन अब नहीं होना चाहिए। यह नाटक यह सन्देश भी देता है कि युद्ध किसी भी स्थितिमें स्वीकार्य नहीं होना चाहिए क्योंकि इसके कारण मानवता का, जीवन मूल्यों का एवं सनातन संस्कृति का ह्रास होता है। इस प्रकार सर्वे भवन्तु सुखिनः एवं विश्व बंधुत्व की भावना जागृत करने वाले इस काव्य नाटक का युगबोध अपने आप में महत्वपूर्ण है।

lUnHk %

1 सिंह, बच्चन, हिंदी नाटक, राधा कृष्ण, नई दिल्ली, पृ0 145
2 कथूरिया, सुंदरलाल, सं, लेख, सिंह, सुखबीर, आधुनिक साहित्य विविध परिदृश्य, पृ0 28
3 रस्तोगी, गिरीश, हिंदी नाटक का आत्मसंघर्ष, लोक भारती प्रकाशन इलाहबाद, पृ0 91
4 भारती, धर्मवीर, अंधा युग, किताब महल, पृ0 108
5 वही, पृ0 16
6 सिंह, बच्चन, हिंदी नाटक, राधा कृष्ण, नई दिल्ली, पृ0 163
7 वही, पृ0 8–9
8 वही, पृ0 13
9 वही, पृ0 90

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 149-154

Hkkjr dh l?k"kjr turk dk Loj % ^le; dk ifg;k*

jfrjke vfgjokj*

क्रांति के विचार और क्रांति के स्वप्नों से निर्मित गोरख पाण्डेय की कविताओं में भारत की संघर्षरत जनता का स्वर झलकता हुआ दिखाई देता है। गोरख पाण्डेय का जन्म सन् 1945 में उत्तरप्रदेश के देवरिया जिले के 'पंडित के मुड़ेरवा' गांव में हुआ था। इन्होंने नक्सलबाड़ी आंदोलन के प्रभाव में हिन्दी कविता की अराजक धारा से अलगाव, किसान आंदोलन से प्रत्यक्ष जुड़ाव, ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यकर्ता के बतौर कामकाज, गतिविधि के क्षेत्र इलाहाबाद, बनारस और लखनऊ रहे। अनेक नए चेहरों को आंदोलन से जोड़ा तथा आंदोलन के लिए गीत और कविताएं लिखीं। इनके काव्य संग्रह 'समय का पहिया' में क्रांति के विचारों को रेखांकित किया गया है। इस काव्य संग्रह में इन्होंने हर तरह के शोषण से मुक्त दुनिया के लिए आवाज उठाने वाली ये कविताएँ जीवन और गहरे दुःखों और उतने ही दृढ़ संघर्षों की भूमि पर खड़ी हैं। इनकी कविताएँ नक्सलबाड़ी किसान विद्रोह की कोख से जन्मी थी। 'तुम्हें डर है' शीर्षक कविता में वे कहते हैं कि–

^^gtkj lky iqjkuk gS mudk xqLlk
gtkj lky iqjkuh gS mudh uQjr
eSa rks flQZ @ mudks fc[kjs gq, 'kCnksa dks
y; vkSj rqd ds lkFk] ykSVk jgk gw¡
exj rqEgsa Mj gS fd @ vkx HkM+dk jgk gw¡A**1

पाण्डेय जी ने 'फूल और उम्मीद' नामक शीर्षक कविता में कवि एक उम्मीद के साथ मुझे न्याय मिल जाए तो मैं अपनी यादों में चीखता तो नहीं रहूँगा जैसे–

^^gekjh ;knksa esa NViVkrs gSa@dkjhxj ds dVs gkFk
lp ij dVh tqcku] ph[krh gS gekjh ;knksa esa
gekjh ;knksa esa rM+irk gS@nhokjksa esa fpuk gqvk I;kj!**2

देखा जाए तो कवि की कल्पना उस पिछले युग से लेकर आज तक सिर्फ वही हो रहा है जो आज के युग में नहीं होना चाहिए था। गोरख पांडेय ने जिन दिनों लिखना शुरू किया वह नक्सलवादी के किसान विद्रोह से प्रेरित राजनीति पर अमानुषिक दमन का दौर था, श्वेत आतंक के पक्ष में राज्य की समूची दमनकारी ताकते क्रांतिकारियों पर टूट पड़ी थी, लगता था कुछ भी नहीं बचेगा, हजारों किसान सैकड़ों नौजवान और नक्सलवादी के अधिकांश नेतृत्वकारी साथी 'मुक्त होगी प्रिय मातृभूमि' का सपना लिए अद्भुत वीरता से लड़ते हुए शहीद हो चुके थे।

शहीदों का अविराम शोकगीत गोरख की कविता की अंतवर्ती धार है, उनकी रचना की आधारभूत करूणा और अदम्य शौर्य, यह वही दौर था, जब धक्का खाये हुए आन्दोलन को संभालते हुए 1980 का दशक आते–आते क्रांतिकारी ताकतें क्रांति के पुनर्निर्माण के लिए संघर्ष और आत्मसंघर्ष में जुट गई थी, इसलिए गोरख की कविता में क्रांति का महज आवेग अथवा रोमानी भावोच्छवास नहीं बल्कि उसका अंतः बाहर संघर्ष और परिपक्व राजनीतिक चेतना मिलती है। 'इंकलाब का गीत' कविता में इसके स्वरूप को देखा जा सकता है। जैसे–

*शोध छात्र, हिन्दी विभाग, डॉ0 हरी सिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, म0प्र0

^^gekjh [okfg'kk dk ,d uke bUdyko g]
gekjh [okfg;k dk lo.uke bUdyko g]
gekjk vkt ,dek= dke bUdyko g]
[kre gk yV fdl rjg tcko bUdyko g]
lHkh iqjkuh rkdrk dk uke bUdyko g]
lHkh fouk'kdkfj;k dk uk'k bUdyko gA^^3

बदली हुई परिस्थिति में नक्सलबाड़ी के अनुभवों से निकली एक चिंता यह भी थी कि जमीनी संघर्षों से उठकर राजनीति की मुख्य धारा में हस्तक्षेप कैसे किया जाए, गोरख की कविता साहित्य–संस्कृति के क्षेत्र में इस चिंता का वहन करती है कि एक ओर भोजपुरी की लोक–लय में धरती के दुःख और धरती–पुत्रों के शौर्य को वे एक दम आधुनिक और वैज्ञानिक, भौतिकवादी चेतना के साथ पिरो रहे थे, वही दूसरी और गज़लों और नज्मों के साथ छोटे कस्बों और शहरों में रहने वाले विराट निम्न मध्यमवर्गीय जनसमूह को क्रांति के पक्ष में संबोधित करने की तैयारी उनकी कविताओं में स्पष्ट रूप से झलकती हुई या दिखाई देती है। 'मल्लाहों का गीत' शीर्षक कविता में इसका यथार्थ रूप इस प्रकार है–

^^gedk dkbZ rk crk, gk lTuh@ufn;k D;k cgrh tk, gk lTuh
/kkj Fkeh dk yxrh g xgjh@mBrh g D;k ygjk ij ygj
dc mrjs dc cfg vk, gk lTuhA**4

इन्होंने गजल एवं लोक धुनों में सामान्य लोकजीवन की जनचेतना को जागृत किया है। जैसे–

^^jrk&jrk utjcanh dk tkn ?kVrk tk, g
:[k ls mudk jrk&jrk ijnk gVrk tk, g
Åps ls Åps mlls Hkh Åps vkj Åps tk jgrs g
mudk uhps dk [kkyhiu dh/kk ls iVrk tk, g
cqurs jg ge lius ges'kk ges'kk nnZ es uxs gkrs x,
pknj ykch gkrh xbZ g iko fleVrk tk, gA**5

गोरख पांडेय की कविता का घनिष्ट सम्बन्ध सन् 1972 से 1979 के बीच भोजपुर और पटना में विकसित जुझारू किसान संघर्षों से है। गोरख पांडेय की कविताएँ संघर्षों के मार्मिक चित्र मात्र नहीं खींचती, बल्कि वर्ग–संघर्ष की जटिलताओं को हल करने, किसान आन्दोलन को सर्वहारा चेतना से सम्पन्न करने, जन कार्यवाहियों की सुसंगत मार्क्सवादी व्याख्या प्रस्तुत करने भारतीय समाज की सत्ता, संरचना को समझाने क्रांतिकारी संघर्ष के अनुभवों को तर्कसंगत ज्ञान में बदलने तथा जनता को इंदात्मक भौतिकवाद में शिक्षित–प्रशिक्षित करने के काम में लगी दिखाई देती हैं। गोरख के लिए लोक कथाएँ किस्से, मुहावरे और मिथक न तो अलंकरण है और न ही दृष्टांत बल्कि वे सामंती समाज के लोक मन की संरचनाएँ हैं। 'समकालीन' शीर्षक कविता में समाज की विभिन्न विषमताओं की पीड़ा को यथार्थ रूप में उजागर करने का प्रयत्न करते हैं। जिसकी चीख इस प्रकार है–

^^dgha ph[k mBh g vHkh@dgha ukp 'k: gvk g vHkh
dgha cPpk gvk g vHkh@dgha Qk t py iMh g vHkhA**6

इसी प्रकार 'गुहार' शीर्षक कविता में किसान जनजीवन की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हैं। जैसे–

^^l: dk fdlku dh yMb;k] py rh gs yMs in Hkb;k
dc rd lgrc] efn dh u;uok
QVfy yyfd fdjfu;k] py rh gs cm cn Hkbl;k
rkgjs ilhuok ls vu/ku lkuok
rkgjk dh pfl&pfl c<s mudh rkuok vkfnA**7

गोरख पाण्डेय की कविताओं की भाषा हमें सामंतों और ग्रामीण गरीबों, दोनों ही वर्गों की आंतरिकता से पहचान कराती है। आमतौर पर प्रचलित सामंती मिथकों की यथार्थ विडंबना को वे उजागर

कर देते हैं। सामंती दबदबे के इलाकों में उन दिनों गरीब दलित स्त्रियों को भूमिपति अक्सर अपनी हवस का शिकार बना लेते थे, अरहर के खेत इन जघन्यताओं के लिए कुख्यात थे, गोरख पांडेय इस अनुभव को बड़ी सहजता से मिथक में बदल देते हैं। 'जानता हूँ' कविता शीर्षक में इन्होंने कहा है कि–

tgk¡ ifRu;k¡ fcLrjksa dh t:jr gSa
vkSj iSfedk,¡ vkjkenq fcLrjksa dh ryk'k
tgk¡ eDdkj l;kj dk gyQukek fy[krs gSa
gR;kjs ckVrs gSa vfgalk vkSj lR; ds bf'rgkj-**8

इसी तरह सामंती मिथकों की रूपगत तान को बनाए रखते हुए भी वे उसके क्रूर यथार्थ की अंतर्वस्त्र को अद्‌भुत तीक्षणता से स्पष्ट कर दते हैं। गोरख की कविताएँ सामंती जकड़बंदी में घिरी संघर्षरत औरतों के ढेरों अक्स स्त्री–मुक्ति और समग्र मानव–मुक्ति के अविभाज्य संबंध को प्रकट करते हैं। जैसे– बुआ के लिए आँखे देखकर', भूखी चिड़िया की कहानी, कैथर कला की औरतें आदि कविताओं में सर्वहारा ही नहीं बल्कि अनेक वर्गों की संघर्षरत स्त्रियां दिखाई देती है। 'बुआ के लिए' गहरी निश्छल ममता के बावजूद 'कैथर कला की औरतें ही उनकी काव्य संवेदना की अगुवाई करती हैं।

^^[kqj] ;g tks vHkh&vHkh@dFkj dyk esa NkVk&lk egkHkkjr
yMk x;k vkSj ftlesa@xjhc enksa ds lkFk dU/ks ls dU/kk feykdj
yMh Fkh dFkjdyk dh vkSjrsa@bl s ;kn j[ks
os tks bfrgkl dks cnyuk pkgrs gSa@vkSj os Hkh
tks bl s ihNs eksMuk pkgrs gSa---A**9

बुआ के लिए कविता में गोरख पांडेय ने अस्पृश्यता का चित्र अपनी बुआ के माध्यम से खींचा है। जिसमें कवि कहता है कि–

^^rqe vc Hkh NqvkNwr D;ksa eukrh gks
firk ds lkeurh vfHkekuu ds geyks ls
dot dh rjg gekjh fgQktr djus ds ckotwn
jke/kuh pekj dks uhp D;ksa le>rh gks**10

'आँखे देखकर' शीर्षक कविता में कवि क्लासिकीय बिम्ब में संवेदना को दर्शाता है, यहाँ आंखें हैं जिनमें तकलीफ का समन्दर हैं लेकिन साथ ही साथ दुनिया को जल्द से जल्द बदल देने की बात करते हैं जैसे–

^^;s vk[ksa gSa rqEgkjh@rdyhQ dk meMrk gqvk leqnj
bl nqfu;k dks@ftruh tYnh gks@cny nsuk pkfg,A**11

कवि उन आँखों में झाँककर कहता है कि आँखों में तकलीफ के उमड़ते हुए समंदर को देखना और दुनिया को बदल देने की छटपटाहट का एहसास कराता है। जैसा कि मार्क्स ने कहा था– 'दार्शनिकों ने अब तक दुनिया की व्याख्या की है, जरूरत हालांकि यह है कि उसे बदल दिया जाएँ।'

इस प्रकार गोरख के काव्य संसार में स्त्रियाँ आमतौर पर सर्वाधिक शोषित किन्तु सर्वाधिक मानवीय तबके के रूप में दिखती है, गोरख की कविता में स्त्री जीवन एक ऐसा रूपक है, जिसमें शोषण की हद और इंसानियत की जिद एकाग्र है, इसलिए जब स्त्रियों की यह आधी दुनिया गिरती है तो पूरी मनुष्यता गिरती हुई दिखाई देती है। जैसे–

^^nhokjksa ls Vdjkdj@fxjrh gS og@fxjrh gS vk/kh nqfu;k
lkjh euq";rk fxjrh gS@ge tks ftank gSa
ge lc vijk/kh gSa@ge nfMr gSaA**12

जीवन में जो कुछ भी सहृदय, सुन्दर और कोमल किन्तु अभिशप्त है वह उनकी कविता में अनायास ही स्त्रीलिंग बन जाता है, जैसे– भूखी चिड़िया 'मैना' आदि कविताओं में पक्षी इसी अभिशप्त कोमल मानवीयताओं के प्रतीक हैं। पितृ सत्ता और सामंतवाद की दानवी छाया प्रेम, सौन्दर्य और

स्वाधीनता का पीछा हर कहीं करती है। गोरख की कविता इस बात की गवाह है कि 'समकालिक' कैसे 'कालजयी' बनता है।

जब 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या के बाद कांग्रेस के निर्देशन में जब हजारों निर्दोष लोगों का कत्ल किया गया। इस हत्याकांड के विरूद्ध चीख की तरह 'खूनी पंजा' शीर्षक कविता से पता चलता है जैसे नरसंहार ही इस कविता में साकार हो उठता है–

^^iVky fNMdrk ftLek ij@gj ftLe l yiV mBokrk
gk vkg epkrk dRyvke@vkl vkj [ku e ygjkrk
ckyk ;g itk fdldk g\@;g [kuh itk fdldk g**[13]

गोरख का क्रांतिकारी कवि कर्म मुक्तिबोध की ही तरह इस तथ्य से लगातार उलझता है कि अभिव्यक्ति मध्यमवर्ग के पास है जबकि गहन गंभीर अनुभव गरीब और उत्पीड़ित वर्गों के पास है।

''मैना'' शीर्षक कविता में, गोरख के हाथों, सामंती क्रूरता से लहूलुहान लोक की करूण कथा का स्वभाविक छंद बन जाती है, होली में गाया जाने वाला फगुआ जमीन–दखल का गीत बन जाता है। जैसे–

^^ddj uko tehu iVokjh@ddj uko tehu\---
t /kjrh e dbl l djyk v/khuA
[ku&ilhuk uxfj;k yVy@yf[k&yf[k /khjt d cUgok VVy
vc ge fdlku etjk fefyd@gd ybc&pkju l NhuA**[14]

कवि गोरख पाण्डेय ने 'सपना' शीर्षक गीत को सोहर की तर्ज पर गाया गया है, जिसमें जन संघर्ष की जीत का मनोरम सपना साकार हो उठता है। जैसे–

^^vf[k;k d uh[kk Hkby [kr lkuok@r [kr Hkby vkiu gk lf[k;k]
xkl;k d yfB;k ljbvk vl Vjyh@Hkxoyh egktu gk lf[k;kA**[15]

इसी प्रकार नीची समझी जाने वाली जातियों और शिल्पकारों जैसे मेहनती तबकों प्रचलित लोक–रूपों को गोरख पाण्डेय ने बड़ी सावधानी के साथ क्रांतिकारी चेतना से जोड़ा है। इन गीतों में श्रम की लय और श्रम की विचारधारा एक रूप में दिखाई देती है। जैसे– 'कोईला' शीर्षक गीत 'धोबियउवा' धोवियों का गीत है। 'मल्लाहो' के गीत में खड़ी बोली भोजपुरी धुन में कही भी कोई शिकायत नहीं होती है। क्योंकि गोरख पांडेय इन तथ्यों से पूरी तरह परिचित हैं। किसी भी वर्ग विभाजित समाज में 'शोषितों के विचार बहुधा शोषकों के ही विचार होते हैं सिर्फ कवि या लेखक उनको अपने माध्यम से गढ़ता है या रेखांकित करता है। जैसे– 'हमको कोई तो बताए हो सजनी/नदियां क्यों बहती जाए हो सजनी/धार थमी क्यों लगती है गहरे/उठती है क्यों लहरों पर लहरे/कब उतरे कब बढ़ि आए हो सजनी।'

इनकी कविताओं में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सरल जनभाष्य 'समय का पहिया' अथवा 'कइसे चलले चनरमा' जैसी कविताओं में दिखाई देता है। जैसे–

^^le; dk ifg;k pyy j lkFkh le; dk ifg;k---
Qkyknh ?kkMk dh xfr l] vkx cQl e ty j lkFkhA
jkr vkj fnu iy&iy fNu&fNu vkx c<rk tk,A
rkM ijkuk u, flj l lc dN x<rk tk,---
egur d gkFkk l vktknh dh lMd <y j lkFkh!**[16]

कम्यूनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीयतावाद न केवल 'उठो मेरे देश' फिलिस्तीन, रूसी सैनिक उतर पड़े हैं ये दिखाई देता है बल्कि जनता के पलटनि जैसी भोजपुरी लोकधुन में लिख गई कविताओं में उतनी ही ताकत के साथ खरी उतरती हैं। ''हिले लागे ऐशिया हिलेला अफरिकवा/हिलेला अमेरिका लतिनिया/हिलेले झकझोर दुनिया/हिलेला यूरोपवा हिलेला अमरीकवा।''[17] इनकी कविताओं में जुझारू और अदम्य देशभक्ति तथा सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का गहरा रिश्ता, 'उठो मेरे देश' शीर्षक नामक लम्बी कविता में अद्भुत यथार्थ चित्र खींचता हुआ दिखाई देता है। ''मैं खुशी और सम्मान से/चिल्ला उठा मेरे देश का सही नाम/वियतनाम है/अमेरिकी जंगबाजों से/लोहा लेता हुआ वियतनाम।''[18]

गोरख पाण्डेय की कविता में साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरूद्ध भारतीय जनता का संघर्ष और नव–जनवादी क्रांति का प्रकल्प किसी तस्ब्बुर की तरह नहीं बल्कि जटिल वास्तविकता की धरातल पर विस्तार पाता है। मार्क्सवाद, लेनिनवाद, माओवाद की विचारधारा उनकी कविताओं में बेहद सफाई के साथ अंकुरित हुई है–

^^ejdl vxqvk@yqfuu cM+ vxqvk
ekvks nq[kykoys jkLrk@fgyys >d>ksj nqfu;kA**[19]

'कला कला के लिए' कविता शीर्षक में गोरख पांडेय ने आधुनिक युग के समाज की बदलाव परिवर्तन की बात करते हैं और कहते है कि राजनीतिक लोग और ये सामंतवादी व्यवस्था चाहती है कि जो जैसा है वैसे ही रहे मजदूर मजदूर हो, नेता नेता हो और पूंजीपति हों मालिक ताकि गुलाम भी उसकी निगरानी में रहें। इस पर कवि का कहना है कि–

^^etnwj egur djus ds fy, gks@flQZ egur
iwathifr gks egur dh tek&iwath ds
ekfyd cu tkus ds fy,
;kuh tks gks tSlk gks oSlk gh jgs
dksbZ ifjorZu u gks@ekfyd gks@xqyke gksA**[20]

कहने का तात्पर्य यह है कि यह सारी प्रक्रिया सिर्फ इन्हीं लोगों के हिसाब से होनी चाहिए जो इस देश की आम जनता पर शासन करन रहे हैं वही इन बड़े लोगों की धारणा है। 'समझदारों का गीत' शीर्षक कविता में कवि पक्ष और विपक्ष दोनों की ओर संकेत करते हुए कहता है कि ये दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं, एक आज तो एक कल इस पीठ पर स्थापित रहेंगे और जनता देखेगी इनका ड्रामा जो कई साल से चला हा रहा है। इस पर पाण्डेय जी कहते हैं कि–

^^gok dk :[k dSlk gS] ge le>rs gSa
ge mls ihB D;ksa nsrs gSa] ge le>rs gSa
ge le>rs gSa [kwu dk eryc
iSls dh dher ge le>rs gSa
D;k gS i{k esa foi{k esa D;k gS] ge le>rs gSa
ge bruk le>rs gSa
fd le>us ls Mjrs gSa vkSj pqi jgrs gSaA**[21]

गोरख पांडेय ने 'उसको फांसी दे दो' शीर्षक कविता में राजनीतिक नीतियों पर कटाक्ष करते हुए आम जनता के हक की बात करते हुए कहते हैं कि–

^^og dgrk gS mldk jksVh&diMk pkfg,
og bruk gh ugha] mls U;k; Hkh pkfg,
blij ls mldks lpeqp vktknh pkfg,
mldks Qkalh ns nksA**[22]

'वतन का गीत' शीर्षक कविता में पांडेयजी ने आजादी की बात करते हुए कहते है कि न कोई राजा हो न कोई नौकर हो, सब समान हो सभी को आजादी मिलनी चाहिए अर्थात् सभी एक समान हैं। जैसे–

^^gekjs oru dh ubZ ftUnxh gks@ubZ ftUnxh ,d eqdEey [kq'kh gks
u;k gks xfyLrka ubZ cqycqys gksa@eqgCcr dh dksbZ ubZ jkfxuh gksA
u gks dksbZ jktk u gks jad dksbZ@lHkh gksa cjkcj lHkh vkneh gksA**[23]

देखा जाये तो कविता में कवि सभी को समान वर्गों में रखने की बात करता है। ठीक उसी तरह 'आजादी का गीत' शीर्षक कविता में भी 'वतन का गीत' की तरह सुर और तान से आजादी का गीत भी सुनाई देता है। जैसे–

^^liuk dh eftty gk l[k dk vk/kkj gk
vktknh! re thou dk lkjk l;kj gk
egur ds eFk g, lkxj ls tUerh---
ekuo dh lRrk gk ekuo dk lkj gk
Hk[k dh jkVh gk uxs dk oL= gk
c/k g, ykxk ds gkFkk es vL= gk
HkVdkok ds Hkhrj dk/krk fopkj gkA**[24]

निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि गोरख पाण्डेय का कविता संग्रह 'समय का पहिया' सामाजिक यथार्थ का दर्पण है। इसमें समाज की विभिन्न परिस्थितियों को यथार्थ रूप में दर्शाने का अनूठा प्रयास किया गया है। किसान, मजदूर, श्रमिक, स्त्री, छात्र एवं विद्यार्थियों के जीवन की समस्याओं को प्रकट किया गया है। इनका यह काव्य संग्रह बेहद ऊर्जावान है जो मानव जीवन को एक जरूरी दिशा प्रदान करता है। साथ–ही–साथ इस काव्य संग्रह में सर्वहारा वर्ग की पीड़ा को उकेरा गया है। इनके काव्य में मार्क्सवादी विचारधारा के अंत की जोरदार घोषणाओं को प्रकट किया गया है जिसके बाद दुनिया भर में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष और मार्क्सवाद नए सिरे से जोर पकड़ा। हमारे देश में भी फांसीवादी तांडव के खिलाफ जनता की लामबंदी लिए या जनता के संगठन के लिए गोरख पांडेय की कविता की जरूरत पहले से कहीं आज ज्यादा महसूस होती दिखाई देती है।

lUnHkZ %

1. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, संपादन प्रणय कृष्ण, संवाद प्रकाशन, आई–499, शास्त्रीनगर, मेरठ (उ.प्र.), प्रथम संस्करण 2004, पृ. 22
2. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 21
3. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 80
4. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 83
5. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 85
6. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 64
7. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 98
8. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 62
9. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 45
10. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 40
11. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 25
12. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 13
13. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 14
14. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 100
15 गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 81
16 गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 17
17 गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 94
18 गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 95
19 गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 115
20. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 18
21. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 85
22. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 51
23. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 86
24. गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 110
25 गोरख पांडेय की चुनी हुई कविताएं : समय का पहिया, वही, पृ. 127

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 155-157

tc tc n[kk Yk¨gk n[kk

I~"kek*

साहित्यिक पत्रिका 'वागर्थ' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होने के दौरान ही 'जड़िया बाई' उपन्यास अपने लोकप्रियता के चरम पर था। अब यह उपन्यास पूर्ण रूप से प्रकाशित होकर आ चुका है, जिसे पढ़ते हुए यह अहसास होता है कि यह 'उपन्यास' बड़े विजन वाली किसी बड़ी लेखिका की बड़ी रचना है। यह उपन्यास 'भिमानी' के एक सम्पन्न परिवार में पैदा हुई 'जड़िया बाई' नामक स्त्री के जीवन पर केन्द्रित है। जड़िया बाई सात भाईयों के बीच केदारनाथ की इकलौती पुषी है। वह बचपन से ही नटखट, बिजली सी चपल, सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति (शकुन्तला, द्रौपदी, रम्भा और उर्वशी समेत समस्त रूपसियों के रूपों का अर्क़ अपनी सुंदरता में समेटे हुए)[1], संस्कारशील, प्रत्युत्पन्नमति, सहृदय बालिका है।

जड़िया बचपन में ही 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' को साकार करती हुई अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ उठाते हुए हमारे सामने प्रस्तुत होती है। बड़े होने पर जड़िया का विवाह 'मंडावा' निवासी 'शिवदत्त राय' के पुत्र 'श्रीनिवास' से होता है। श्रीनिवास रूप में, रंग में, कद में, काठी में, पढ़ाई में, लिखाई में, घुड़सवारी में, बंदूक चलाने में अर्थात् सारी कलाओं में परिपूर्ण एक ऐसा पात्र है, जो जड़िया के लिए बिल्कुल उपयुक्त है। श्रीनिवास एक पढ़ाकू, देशभक्त एवं प्रतिभाशाली नवयुवक है जिसके रोम–रोम से चेतना की नई–नई किरणें निकलती हुई प्रतीत होती हैं जो लगातार समाज को, देश को आगे बढ़ाने में मील का पत्थर साबित होती है। अपने छोटे से गाँव में 'झूलते बरामदे' का निर्माण करना उसे एक कुशल 'वास्तुकार' के रूप में प्रतिष्ठित करता है, जिसे देखने के लिए एक जर्मन वास्तुकार भी यहाँ आया था। ठीक इसी प्रकार जड़िया बाई का मात्र तेरह वर्ष की आयु में ही एक बकरे का ताँगा बनाकर पूरी 'भिवानी' के बच्चों को सैर कराना तथा आम पार्टी में अधिकतम गरीबों के बच्चों को आम खिलाना उसके जनतांत्रिक पहलू को रेखांकित करता है। 'कदम–कदम बढ़ाए जा, ख़ुशी के गीत गाए जा, ये ज़िन्दगी क़ौम की, तू क़ौम पे लुटाए जा' के मार्ग पर चलती हुई जड़िया दाम्पत्य जीवन में आने के बाद और भी मुखर, जनतांत्रिक और 'परहित' को अपना धर्म मानकर आगे बढ़ने लगती है। उसका मानना है कि मनुष्य को पानी–सा तरल और दाता होना चाहिए जो सबको जीवन देकर भी कभी अहंकार नहीं करता। शादी के बाद मुँह दिखाई में औरतें जहाँ ढ़ेर सारे अर्थ तथा सोने, चाँदी की अपेक्षा करती हैं वहीं जड़िया गाँव की सीमा पर खाली पड़ी ज़मीन को माँगकर उसमें स्कूल खोलवाकर लोगों को शिक्षित करने की इच्छा ज़ाहिर की, जिसे उसके श्वसुर जोखीराम ने सहज ही स्वीकार कर लिया। जड़िया तथा श्रीनिवास के कठिन परिश्रम तथा दृढ़ संकल्प के चलते कुछ ही दिनों के बाद स्कूल में पठन–पाठक का कार्य प्रारम्भ हो गया। स्कूल का नाम 'शान्ति गर्ल्स स्कूल' रखा गया जिसमें जड़िया के अथक प्रयास के बाद धीरे–धीरे ही सही बच्चियों का आगमन प्रारम्भ हुआ। ढ़ेरों अड़चनें आईं, पर उठती–गिरती जड़िया बिना एक क्षण रूके आगे बढ़ती रही और स्त्री शिक्षा की अलख जगाते रही, कुछ ही दिनों के बाद स्कूल की उन्नति से न केवल जड़िया और श्रीनिवास हर्षित हुए, बल्कि पूरा मंडावा गाँव ही इसे अपनी एक बड़ी उपलब्धि मानने लगा।

एक समय था जब 'गबन' की 'जालपा' का आभूषण प्रेम उसके पति 'रतन' से क्या–क्या कुकर्म नहीं करवाता है, वहीं आज की जड़िया बाई अपने सारे आभूषण को बेच कर अपनी पुरानी हवेली में ही अपनी दादी माँ के नाम से 'दाखीदेवी प्रसूति अस्पताल' खोलने का आग्रह करती है और यह ब्रत भी लेती

---

*शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

है कि वह अपनी दूसरी प्रसूति इसी अस्पताल में करवाएगी। यह दोनों युगों में स्त्री चेतना में आए परिवर्तनों को भी रेखांकित करता है। दरअसल उसके गाँव में कोई प्रसूति अस्पताल न होने के कारण जड़िया को पहली प्रसूति के लिए भिमानी जाना पड़ा था जहाँ उसने अपने पहले पुत्र 'गुरुदेव' को जन्म दिया था और वहीं उसने इस प्रसूति अस्पताल को बनवाने का संकल्प ले लिया था। जड़िया, केदारनाथ जी, पूरनचन्द जी तथा श्रीनिवास के अहर्निश प्रयास से जड़िया ने अपने दूसरे पुत्र 'सत्यदेव' को इसी अस्पताल में जन्म दिया। इसके अलावा जड़िया का महिलाओं को सूत कातने को प्रोत्साहन देना तथा काते हुए सूत को विभिन्न रंगों में रँग कर उनसे रंगबिरंगे कपड़े बनाने की समझ विकसित करना उसके स्त्री सशक्तिकरण के संघर्ष को अभिव्यंजित करता है।

चूँकि श्रीनिवास के दादा जोखीराम कलकत्ता में रहते थे। कुछ दिनों के पश्चात् श्रीनिवास भी किसी बड़े काम की तलाश में सपरिवार कलकत्ता पहुँचे, जहाँ उसने अपनी कुशाग्र बुद्धि के चलते एक जर्मन व्यापारी की मदद से भारत में प्रथम प्लास्टिक कारखाना खोला। इतना ही नहीं, भारत विभाजन की षासदी झेल रहे बंगाल के शरणार्थियों के जख़्मों पर मरहम लगाने में जड़िया तथा श्रीनिवास ने कोई कसर नहीं छोड़ी। इस उपन्यास में केवल जड़िया तथा श्रीनिवास ही नहीं बल्कि उनके पुत्र गुरुदेव तथा सत्यदेव के साथ–साथ उनके पुत्र व पुत्रियाँ अपूर्वा, तन्वी, आद्या, अनिंद्य, रोज़ीना, अरविन्द, अन्विति और पल्लवी ने भी आह्लादित होकर दूने उत्साह से शिक्षा केन्द्र, चिकित्सा केन्द्र, करघा केन्द्र, नशा उन्मूलन केन्द्र और वृद्धों के रिहायशी केन्द्रों का काम करना शुरू कर दिया। तकनीकी शिक्षा के मद्देनज़र उन लोगों ने अपने–अपने क्षेत्र में कम्प्यूटर केन्द्र भी खोल दिये जिससे वहाँ के बाशिंदे आधुनिक संचार व्यवस्था के माध्यम से भारत की प्रमुख धारा और पूरे विश्व से जुड़ जाएँ।[2]

इस प्रकार यह एक ऐसा उपन्यास है जहाँ स्त्री भी है, पुरुष भी है, सास भी है, ननद भी है, बच्चे भी हैं, श्वसुर भी हैं, यदि कुछ नहीं है तो वह है– शोषण। सब एक–दूसरे के रकबे को समझते हुए अपने–अपने ढंग से पूरी पृथ्वी को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' मानकर अपना–अपना कार्य करते हुए आगे बढ़ रहे हैं। उपन्यास का शीर्षक तो 'जड़िया बाई' है पर इसमें जड़िया के पति 'श्रीनिवास' का चरित्र भी जड़िया से तनिक भी कम नहीं है। दोनों अलग–अलग न होकर एक–दूसरे के पूरक हैं। जड़िया वर्तमान की आधुनिक व शिक्षित स्त्री है तो श्रीनिवास भी आज का प्रबुद्ध एवं संवेदनशील पुरुष जो हमेशा जड़िया को अपनी पुतलियों पर बिठाए रहता है। दोनों एक–दूसरे को इतना प्यार, स्नेह व सम्मान देते हैं कि समाज के लिए आदर्श बन जाते हैं। स्त्री–पुरुष का ऐसा सामंजस्य (तुलसी के इतर) या तो गोदान में मिलता है या कुछ हद तक कामायनी में। एक परिवार में इतना प्रेम, इतना भरोसा, इतना सम्मान शायद ही कहीं देखने को मिलता है। अपरिग्रह, त्याग, करुणा, संघर्ष, क्षमा, दृढ़ संकल्प आदि ऐसे मानवीय मूल्य हैं जिस पर इस उपन्यास की बुनियाद टिकी हुई है। इन्हीं मानवीय मूल्यों पर खड़े होकर जड़िया तथा श्रीनिवास अपने–अपने व्यक्तित्व का विकास भी करते हैं।

यह उपन्यास एक तरफ आज की स्त्री के बदले हुए स्वरूप को हमारे सामने प्रस्तुत करता है तो दूसरी तरफ परम्परागत–रूढ़िवादी विकृतियों को नेस्तनाबूद कर मनुष्य को आधुनिक (जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि कुरीतियों से ऊपर उठाने की) बनाने का जद्दोजहद करता है। मृत्यु के पश्चात् 'जोखीराम' का मिला 'नोट' (पत्र) इसका प्रतीकधर्मी रचाव है। इस उपन्यास का फलक इतना बड़ा है कि जो भारत की आज़ादी के पहले तथा आज़ादी के बाद के धुंधले इतिहास को अपने भीतर समेटे हुए एक ऐसे भारत का बिम्ब खींचता है जहाँ कि कुछ ईमानदार स्त्री–पुरुष हैं जो मनुष्यता को बचाने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं, जहाँ न जाति है, न धर्म है, न सम्प्रदाय है, यदि कुछ है तो वह– मानवता है, परहित है, प्रेम है, सद्भाव है, ममत्व है, श्रम है, संघर्ष है। इसमें एक तरफ भारत विभाजन की त्रासदी को झेलते हुए मनुष्य के करुण दृश्य हैं तो दूसरी तरफ जीवन को संजोने का अथक प्रयास।

जड़िया पर अपने समकालीन संत पुरुष 'महात्मा गाँधी' का प्रभाव सबसे अधिक है। रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा हर दृष्टि से वह गाँधी जी के करीब है। वह उन सभी मूल्यों को आगे बढ़ाते हुए अग्रसर होती है जिन्हें गाँधी जी ने अपनाया था। वह भी महात्मा गाँधी की तरह एक क्षण भी व्यर्थ किये

बिना, अपने आलस्य व प्रमाद का त्याग करके, तन–मन और धन– तीनों से पूर्ण समर्पण के साथ प्रत्येक क्षण दूसरों के बारे में सोचा और समाज के लिए जीया।[3] जड़िया उसी संत की अवधारणा की प्रतिमूर्ति है जिसकी कल्पना 'गोस्वामी तुलसीदास' अपने 'रामचरितमानस' में करते हुए कहते हैं– ''संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।।/निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता।।[4]'' यह उपन्यास मरती हुई संवेदनाओं के बीच 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के उदात्त मानवीय मूल्यों को लेकर आगे बढ़ता है जिसमें जड़िया का पूरा परिवार अपने आपको न्यौछावर कर देता है। जड़िया बाई तथा उसके परिवार के चरिष के विषय में संक्षेप में कहें तो– ''मैंने उसको/जब जब देखा,/लोहा देखा,/लोहा जैसा–/तपते देखा/गलते देखा/ढ़लते देखा,/मैंने उसको/ गोली जैसा/चलते देखा![5]'' जिनका केवल एक ही लक्ष्य है– ''संदेश नहीं मैं यहाँ स्वर्ग का लाया/इस धरती को ही स्वर्ग बनाने आया।''
भाषा, शिल्प तथा संवेदना के स्तर पर यह एक अद्वितीय उपन्यास है। भाषा का सृजनात्मक उपयोग और आडंबरहीन ईमानदार कहन–शैली उपन्यास को अर्थ–व्यंजक बनाते हैं। शुद्ध हिन्दी के साथ–साथ हरियाणवी, बंग्ला, अंग्रेजी की छौंक उपन्यास की रोचकता में चार चाँद लगा देते हैं। कहावतें, मुहावरे तथा देशी शब्दों की भरमार उपन्यास में सहजता प्रदान करते हैं। साझेपन की रचनात्मकता जो कि समय की मांग है, को विस्तृत आयाम देना इस उपन्यास की प्रमुख विशेषता है।

lUnHkZ %

1. जड़ियाबाई (उपन्यास)– कुसुम खेमानी, राजकमल प्रकाषन, नई दिल्ली, प्रथम पेपर बैक, संस्करण–2016, पृ0सं0 11
2. वही पृ0सं0 – 149
3. वही पृ0सं0 – 143
4. रामचरित मानस – गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2075, एक सौ चौबीसवां पुनमुर्द्रण, पृ0सं0–391।
5. केदारनाथ अग्रवाल–प्रतिनिधि कविताएँ, सं0–अषोक त्रिपाठी, राजकमल प्रकाषन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण, 2016, पृ0सं0–68।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 158-162

;|) vkj thou dh =klnh d dFkkdkj % txnh'kpUæ

MkO jktUn ;kno*

भारतीय समाज एवं उसका सामाजिक जीवन अपने आप में ही एक बहुत बड़ी त्रासदी की गाथा प्रस्तुत करता है। सर्वप्रथम इस सम्पूर्ण जनमानस ने धर्म की बेड़ियों में अपने आपको जकड़ा पाया, तदुपरान्त ब्रिटिश साम्राज्य की गिरफ्त में फँस गया। भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा तबका सामाजिक नीतियों के कारण लम्बे समय तक षोशण का शिकार रहा है, जिसकी अनुगूँज स्वतंत्रता आंदोलनों में सुनाई देती है। देश आजाद हुआ, जिसमें हमारे कई भारतीय महापुरुषों ने अपने जीवन को हँसते–हँसते देश पर बलिदान किया, किन्तु आजादी मिलने के बाद भी भारतीय समाज की पूरानी बुराइयाँ अपने स्थान पर बरकरार रहीं, जो आजादी के पूर्व विद्यमान थी। जैसे– शोषण, जाति–भेद, धर्म–भेद, कुटिल राजनीति आदि। आजादी के बाद भारतीय समाज में जो उतार–चढ़ाव दिखाई देते हैं उनके जीवन्त दृष्य और करुणगाथा जगदीशचंद्र के उपन्यासों में दिखाई देती है।

जगदीशचंद्र सच्चे अर्थों में दलित जीवन के उपन्यासकार कहे जाते हैं। दलित जीवन की त्रासदी को लेकर लेखक ने तीन उपन्यास लिखे हैं, जिसमें 'धरती धन न अपना', 'नरककुण्ड में वास' एवं 'जमीन अपनी तो थी' प्रमुख हैं। इन उपन्यासों में लेखक ने आजादी के बाद के समाज की गाथा प्रस्तुत की है, जो आजादी के बाद भारतीय समाज की सबसे जटिल एवं महत्वपूर्ण बात कही जा सकती है। जगदीशचन्द्र ने दलित जीवन की त्रासदी की तरह युद्ध और शान्ति को केन्द्र में रखकर तीन उपन्यासों की रचना की, जिसमें 'आधापुल' 'टुण्डा लौट' एवं 'लाट की वापिसी' प्रमुख हैं। जगदीशचंद्र ने युद्ध की त्रासदी को दलित जीवन के बहुआयामी उपेक्षापूर्ण अपमान के बाद सबसे महत्वपूर्ण युद्ध की विभीषिका को माना है और उन्होंने उपन्यासों के केन्द्र में इस विषय को प्रभावी ढंग से उठाया है। देश–विभाजन के दंश पर आधारित उपन्यासों में 'झूठा–सच', 'आधा गांव', 'तमस' कितने पाकिस्तान जैसे महत्वपूर्ण उपन्यासों की श्रेणी में जगदीशचंद्र के 'आधापुल', 'टुण्डा लॉट' एवं 'लाट की वापिसी' भी देश विभाजन की समस्याओं पर महत्वपूर्ण माने गये हैं।

जगदीशचंद्र के उपन्यास 'आधापुल', 'टुण्डा लॉट', एवं 'लॉट की वापिसी' में देश–विभाजन त्रासदी का यथार्थ चित्रण हुआ है, आजादी के बाद देश का बंटवारा एक ही देश की अलग–अलग सीमाएँ, सरहदों में टूटना, भारत के लिए सबसे दर्दनाक, घातक एवं कष्टदायक सिद्ध हुआ, जिसकी कीमत, यतीम बच्चों, विधवा नारियों एवं बेसहारा माँ–बाप ने अपने प्रियजनों को खोकर चुकाई। भारतीय सैनिकों के रूप में तैनात सरहदों को बचाने और भारत की सुरक्षा हेतु जो सैनिक कुर्बान हुए उनके जीवन के दर्द को 'आधापुल' उपन्यास में महसूस किया जा सकता है। यह उपन्यास इसी भीषण तबाही के रूप में देश की सुरक्षा हेतु अपनी जान को न्योछावर करते सैनिकों की जीती–जागती कहानी की यथार्थ घटना को प्रस्तुत करता है।

'आधापुल' का कथानायक केप्टन इलावत प्रेम और युद्ध की जमीन पर खड़ा होते हुए अंततः वीरगति को प्राप्त होता है। युद्ध में प्राण न्यौछावर करके भी केप्टन की आहुति का सफल एवं सार्थक अर्थ नहीं निकलता, क्योंकि जितना बहादुरी और साहस से केप्टन इलावत दुश्मन को मार गिराकर पुल पर अपना कब्जा करता है, उतनी ही कुटिल तरीके से अपने देश के राजनीतिज्ञों द्वारा पुनः दुःश्मनों को पुल वापिस करने को कहा जाता है और केप्टन इलावत की कुर्बानी व्यर्थ साबित हो जाती है, जिससे

*सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

निराश सैनिकों के मन में एक नियति बनती है कि हम अपनी जान तो कुर्बान कर सकते हैं, लेकिन फैसला करने का काम हम नहीं ले सकते। सैनिकों का मानना है कि ''यह फैसला करना मेरा और आपका काम नहीं है, ऐसे फैसले हायर कमाण्ड और पॉलीटिकल लीडरशिप करती है।''[1] भारतीय पॉलीटिकल के एक गलत फैसले से अनेक भारतीय सैनिकों को शहीद होना पड़ता है, जिससे हमारी सैना में कमी और दुश्मनों के हौसले मजबूत होते दिखाई देते हैं। भारतीय राजनीति की कुछ रणनीतियाँ घातक सिद्ध होती है और इसी कमजोरी का फायदा दुश्मनों को सफलता दिलाता है।

कथाकार ने इस उपन्यास में देश की गलत राजनीति के कारण देश को निगलने का कारण बताया है। अपने निजी स्वार्थ के लिए सारे देश को दाँव पर लगाना कहाँ की राजनीति है! सैनिक जीवन में सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य एवं अंतिम ख्वाहिश देश की रक्षा करना होता है। अपने जिस्म के चिथड़े–चिथड़े करके भी अपने लक्ष्य को प्राप्त करना और यहाँ तक का सफर सैनिक कैसे–कैसे पूरा करते हैं! मरूस्थल, पर्वत, जंगल एवं पहाड़ों में रहकर सुविधाविहीन सैनिक अपना पल–पल देश–सेवा में लगाते हैं। प्रत्येक सैनिक की त्याग और तपस्या ही देश का आधार है, उनका घर परिवार एवं दुनिया देश की सरहदें होती हैं। देश पर मर मिटना हर सैनिक का सपना होता है। जैसे– ''सर मेरे मन में डर नहीं था, सिर्फ एक अहसास था घोर लज्जा का कि मैं कंपनी की कमान संभालते ही और एक गोली चलाये बिना दुश्मन का कैदी बन गया।''[2] यह कथन केप्टन इलावत द्वारा कहा गया है, जिसमें केप्टन स्वयं दुश्मनों की गिरफ्त में आ जाता है, उस वक्त भागकर बटालियन में आकर घोर लज्जा का अनुभव इलावत करता है। इसके अतिरिक्त युद्ध के दौरान लेखक एक बात को और साफ–साफ ज़ाहिर करता है, जो सैनिक को सबसे ज्यादा खटकती है, जिसमें हमेशा दुःश्मन का पहला बार हमारे सैनिकों को सहना पड़ता है। हमारे देश के सैनिकों को बिना आदेश के गोली चलाने का अधिकार नहीं होता, जबकि दुःश्मन अपना खेल इतने समय में ही खेलते हैं। जैसे– ''मेरा एक जवान दुश्मन की शेलिंग में मारा गया है, हमें क्या आडर्स हैं? क्या इस बंध पर बिना गोली चलाये और दुश्मन की शक्ल को बिना देखे ही हमें मरना है या और भी कुछ करना है।''[3]

जगदीशचंद्र 'आधापुल' में सैनिकों के साहस, धैर्यता एवं उनकी कठिन परीक्षा की घड़ी में अपनी देश–भक्ति को दिखाते हैं, जहाँ साथी सिपाहियों के मारे जाने पर भी उनका मनोबल गिरने नहीं पाता है। कर्नल गिल द्वारा विकट परिस्थितियों में कहा गया यह वाक्य देखिये– ''मेरे बहादुर दोस्तों, इस समय पूरे देश की आँखें हम पर लगी हुई हैं, हमें किसी हालत में उन्हें निराश नहीं करना है।''[4] उपन्यासकार जिस प्रकार से सैनिकों की युद्ध पृष्ठभूमि तैयार करता है और युद्ध के बीचों–बीच सैनिकों का हौसला, धैर्यता कायम रखता है, उसी प्रकार घायल सैनिकों को एवं मर चुके सैनिकों को माता की गोद में सबसे सुरक्षित रहने का भी आभास उनको कराते हैं। मरने के लिए महफूज माँ की गोद जहाँ सैनिक कहते हैं, वहीं सैनिक दुल्हन का भी जिक्र करते हैं। जैसे– ''सिंह, बस उतना ही फासला है, जितना दुल्हन के घर और उस प्वाइंट में होता है, जहाँ से बारात बैंड के साथ जाती है।''[5]

'आधापुल' लेखक की वास्तविक सैनिक जीवन की सजीव एवं जीवंत कथा है, जिसमें कथानायक केप्टन इलावत अपने प्रेम का विद्रोह कर वीरगति को प्राप्त करता है। यह कथा केप्टन इलावत की न होकर संपूर्ण सैनिकों की कथा है, जिसमें पॉलिटीशियन है, प्रेम है, देश भक्ति है। युद्धोपरांत सैनिकों का मर मिटना एवं देश में वाकी सारी स्थितियों का ज्यों–का–त्यों बने रहना लेखक की सबसे बड़ी चिंता है। एक ही समय में शत्रुओं का मरना एवं अपने सैनिकों का मरना, लेखक के मन में एक मानवीय संवेदना का स्वरूप भी प्रकट करता है, वह यह है कि ''ये जीवित होते हुए शान्ति एवं अमन से इकट्ठे नहीं रह सके, एक दूसरे के खून के प्यासे रहे, लेकिन अब मरने के बाद इकट्ठे पड़े हैं, अब इनका आपस में कोई झगड़ा नहीं है।''[6]

अतः लेखक यहाँ साफ ज़ाहिर करता है कि दो मुल्कों के बीच लड़ाई का खत्म होना, सैनिकों के खत्म होने से नहीं होता है। सैनिक तो हमेशा हुक्म की तामील करते हैं। एक शरीर व देह मात्र है, जब तक आत्मा शुद्ध व पवित्र नहीं होगी, तब तक युद्धों का होते रहेंगे। कभी पाकिस्तान

से तो कभी चीन से, तो कभी अमेरिका से, जिसका परिणाम पुनः कोई केप्टन इलावत की तरह प्राणों को न्योछावर करके चुकाता रहेगा।

'टुण्डा लाट' जगदीशचंद्र का युद्ध विषयक उपन्यास है। इस कथा का नायक केप्टन सुनील कपूर है, जो आर्मी में एक आपातकालीन सेवा हेतु चुना जाता है। युद्ध के बाद केप्टन सुनील कपूर अपने जीवन के खालीपन और अपना शौक पूरा करने हेतु एक म्युजिक स्कूल में दाखिला लेता है। इसी बीच सुनील को एक रोमिला नामक युवती से प्रेम हो जाता है। रोमिला सुनील कपूर के जीवन में उसी तरह प्रवेश करती है, जिस प्रकार 'आधापुल' में केप्टन इलावत के जीवन में मिस सेमी ग्रेवाल करती है। रोमिला आधुनिक परिवेश की स्वार्थ एवं चतुर युवती है, जो शहरी परिवेश और एशोआराम में पली बड़ी है, इसके विपरीत केप्टन सुनील एक सीधा–साधा गाँव का युवक है, जो अपने किशोरमय जीवन के स्वप्न को साकार करने हेतु वायलिन सीखता है। रोमिला के आग्रह करने पर सुनील स्पष्ट कहता है, ''ऐसे ही एक गंदे गाँव में मेरा जन्म हुआ, बचपन गुजरा और मेरे किशोर ने अँगड़ाई लेनी शुरू की थी. .. में नवी क्लास में पड़ता था–पाँच मील दूर बसे कस्बे के हाई स्कूल में...''[7] केप्टन सुनील कपूर का जीवन युद्ध और प्रेम का जीवन है, जहाँ रोमिला और वायलिन प्रेम को उद्घाटित करते हैं, वहीं बन्दूक और सेना युद्ध की घोषणा करते है। सुनील बन्दूक और वायलिन का संबंध और अस्तित्व अपने जीवन में कुछ इस तरह बताता है, ''मेरा पक्का विश्वास है कि वायलिन के साथ अगर बन्दूक नहीं होगी तो लाजमी तौर पर वायलिन का अस्तित्व नहीं रहेगा, अगर बन्दूक के साथ वायलिन नहीं होगी तो बन्दूक सिर्फ जुल्म का प्रतीक बनकर रह जायेगी।''[8] और हुआ भी कुछ ऐसा ही सुनील की बन्दूक ने एक बार फिर बाजी मारी और वायलिन का सपना हमेशा–हमेशा के लिए टूट गया, क्योंकि शिक्षापूरी होने के बीच में ही फौज द्वारा उसको आपातकालीन सेवा के लिए पुनः बुला लिया जाता है।

आलोच्य उपन्यास 'टुण्डा लॉट' में जगदीशचंद्र एक ऐसे सैनिक की कथा प्रस्तुत करते हैं, जिसका जीवन अधूरा है, न पूर्ण आशा न पूर्णनिराशा अर्थात एक ऐसे बवंडर में फँसना जहाँ रोजगार भी है, और बेरोजगारी भी, देश भक्ति है और प्रेम भी। लेकिन दोनों से आत्मग्लानि भी है। केप्टन सुनील को फौज में पुनः बुलाना, संगीत शिक्षा को अधूरी छोड़कर जाना, अपने जीवन को दाँव पर लगाने बराबर है। जहाँ एक ओर उसे आशा है, कि शायद यही अवसर हो जहाँ उसे भी अन्य अफसरों व सैनिकों की तरह स्थायी सेवा में मौका मिल सके। वहीं दूसरी ओर अपनी वायलिनिस्ट बनने की महत्वाकाँक्षा और रोमी के प्रेम को हमेशा के लिए अपने से अलग करना है। वह कहता है कि ''मेरी जिन्दगी जिस धुरी पर जमने जा रही थी, उस धुरी पर से मुझे बलात् उठाया जा रहा है।''[9]

इस प्रकार केप्टन सुनील युद्ध में अपनी वापिसी करता है और उस भयंकर युद्ध में अपने साहस और पराक्रम का प्रमाण देता है। उस महा भयंकर रणक्षेत्र में सुनील अपाहिज हो जाता है। उसके दाहिने हाथ का विकलांग होना, सैना और संगीत दोनों से अलग कर देता है। सुनील का 'टुण्डा हांथ' उससे सब कुछ छीन लेता है, यहाँ तक कि बेकार पड़ा सुनील पुनः म्युजिक स्कूल कुछ महीनों के बाद जाता है और वहाँ उसको अपने ही मित्रों द्वारा अपरिचित जैसा व्यवहार बहुत खलने लगता है। सुनील का अपंग होना उसके लिए मानसिक रोगी बना देता है। देश के लिए सैनिक को हांथ की कुर्बानी देना या कुर्बान होना तो सैनिक का सौभाग्य है, लेकिन सुनील कुछ और ही सोचता है। ''सुनील सोचता है कि जिसे सब लोग उसका सौभाग्य बतला रहे हैं, उसके नजदीक वह उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। वह गोला यदि उसके माथे पर लगता, दिल पर लगता तो वह हमेशा के लिए उसके गुनाहों की इतनी दर्दनाक सजा से बच जाता।''[10] देश और सरकार की नजरों में वीरगति को प्राप्त होता। अब वह अधूरा आदमी बनकर रह गया है और पूरे आदमी जितना खा–पीकर भी मानसिक तौर पर हमेशा अतृप्त और भूखा रहेगा।

जगदीशचंद्र आलोच्य उपन्यास 'टुण्डा लॉट' की भीषण देशव्यापी समस्याओं का यथार्थ चित्रण कर स्पष्ट करना चाहते हैं, कि 'टुण्डा' सैनिक सुनील जैसा होनहार व्यक्ति अपने जीवन में निरूपाय होकर रह जाता है। वह देश के लिए लड़ता है और अपंग हो जाता है। सुनील ऐसी स्थिति में पहुँच

जाता है कि वह सेना तथा संगीत कला दोनों के अयोग्य घोषित कर दिया जाता है। उसकी अपनी प्रेमिका रोमी भी उससे दूर हो जाती है। होनहार सुनील देश के लिए तो बोझ बन ही जाता है, साथ–ही–साथ परिवार तथा समाज से केवल सहानुभूति ही सुनील को मिलती है। इस प्रकार लेखक एक सैनिक के वैयक्तिक जीवन की त्रासदी को नितांत गहराई से अनुभव करता है तथा प्रेम–त्याग, सेवा, बलिदान जैसी उच्च मानवीय भावनाओं को प्रस्तुत उपन्यास में संवेदनशीलता से दर्षाया गया है।

'लॉट की वापिसी' उपन्यास 'टुण्डा लॉट' की अगली कड़ी के रूप में निर्मित है। लेखक जहाँ 'टुण्डा लॉट' में केप्टन सुनील कपूर को अपाहिज के रूप में सैना और संगीत से अलग करता है, तो 'लॉट की वापिसी' में सुनील सारी सम्भावनाओं एवं अंतरसंवेदनाओं को मानवीयता के फलक पर वापिसी के रूप में दिखाते हैं। उसके टुण्डा जीवन की स्थिति एवं आत्मग्लानि का पश्चाताप उक्त उपन्यास की त्रासदी है। सुनील का युद्ध में अपंग होना, उसका संगीत कला का स्वप्न और मेजर बनने की ख्वाहिश का टूटना, यहाँ तक कि अपने दोस्तों और प्रेमिका से तिरस्कृत होना, उसे मानसिक अपंग बना देता है। इन सबसे परेशान सुनील अपने माँ–बाप के पास आता है, लेकिन समाज के लोगों की दृष्टि में सुनील का घर पर बेकार बैठा रहना, समाज को ही नहीं, अपने माँ–बाप को भी अखरने लगता है। ऊपर से जवान अविवाहित और वो भी अपंग, इन सारी बातों से परेशान सुनील अपने आपको एक केन्द्र बिन्दु की भाँति शून्य, शाँति और एकांत में अपने आपको समेटने लगता है। लेकिन सेवा निवृत्त बाबूजी और माँ के ऊपर सुनील को अपना बोझ असहनीय था। इस कारण सुनील को अब कोई न कोई रोजगार पाना जरूरी हो गया था। स्कूटर को बेचते वक्त माँ–बाबूजी को अधिक संताप सुनील के द्वारा होता है, ''जब घर का सामान बिकने लगे तो समझो, बरबादी के दिन आ गये। आज स्कूटर बेच रहा है, कल को कलाई की घड़ी उठवायेगा और फिर एक दिन तन के कपड़ों की बारी आ जायेगी। ये काम कमाई का बदल नहीं है।''[11]

इस प्रकार कथाकार सुनील के संघर्षमय जीवन की त्रासदी का मार्मिक चित्रण करता है। माँ–बाप के ताने एवं समाज की लोक–लज्जा के कारण सुनील का जीना, मरने के बराबर नरक जैसा हो जाता है। लेकिन, इसी बीच उम्मीद और आशा की किरण सुनील को जीने की लालसा एवं हरा–भरा तब कर देती है, जब उसे पुनः नौकरी के लिए आमंत्रण पत्र आता है। सुनील फारवर्ड एरिया, बार्डर रोड्ज ऑर्गेनाइजेशन में स्टोर सुपर वाइजर के पद पर नियुक्त होता है। वह अपनी अपंगता और मन की कुण्ठाओं को छुपाने के लिए सबसे जोखिमपूर्ण सफर के लिए दूर रोहतांग के पार शागा बैली में फील्ड एरिया चुनता है। वह कहता है, ''सर जिन्दगी में पहली बार तो मनपसंद की पोस्टिंग मिल रही है, में इस चाँस को हांथ से कैसे जाने दूँ।''[12]

जगदीशचंद्र ने 'टुण्डा लॉट' में जहाँ सुनील के जीवन को मानसिक अपंग और शारीरिक अपंगता से ईर्ष्यायुक्त चित्रण किया है, वहीं 'लॉट की वापिसी' में सुनील का जीवन पुनः सुखद बनाने की भरपूर कोशिश भी की है। सुनील खुद को दूसरों से दूर अपने आप में सिमट के रहना चाहता है। इसी कारण खुद अपनी पोस्टिंग दलदली बर्फीली पहाड़ियों में वो करवाता है। परन्तु जब सुनील अपनी जिन्दगी से प्यार करना छोड़ देता है, तब जिन्दगी उसे अपने गले लगाने को खड़ी होती है। सुनील के जीवन में अब एक बदलाव, एक परिवर्तन तब देखने को मिलता है, जब सुनील अचानक बर्फीले तूफान के बीच पहाड़ों में दब जाता है, उस वक्त कैम्प के साथियों की भरपूर कोशिशों और मेहनत की बदौलत सुनील को ढूँढ़कर मौत के मुँह से निकाल कर वापिस लाना और दिन–रात उसकी सेवा करके उसे नया जीवन देना ही सब कुछ बदल देता है। इस कारण यह है कि सुनील के सारे राज जो खुद तक सीमित थे, आज वो सब राज सार्वजनिक हो चुके थे। उसकी अपंगता का पता अब सबको चल चुका था और साथियों के अपार प्रेम और अपनत्व के आगे सुनील को झुकना पड़ा। सरदारा सिंह और मौलाबख्श के बेशुमार प्रेम ने सुनील के दिल को चूर–चूर कर दिया। सुनील के दुःखों और गमों को बाँटने वाला प्रेम सरदार सिंह के कथन में देखिये ''तू क्या समझता है, कि सिर्फ अपने दुःख को तू अकेला ही झेल रहा है, मुझे यह भी पता नहीं कि तुझे दुःख क्या है, लेकिन तेरा

दुःख तेरे से ज्यादा में झेल रहा हूँ। तू अपने दुःख को अच्छी तरह जानता है, पहचानता है, अगर तेरे दुःख का मुझे पता चल जाये, तो मेरे लिए उसे समझना आसान हो जायेगा... मैं तुझे जान से मार दूँगा, और खुद भी प्रांण दे दूँगा, लेकिन तेरा दुःख जानने के बाद।''[13]

अंततः सुनील अपनी सारी कहानी सुनाता है, जिसको सुनकर सभी साथियों को सुनील के प्रति आत्मीय सहानुभूति होती है, सुनील की अपनी जिन्दगी की सबसे महत्वपूर्ण बातें, लोगों की उपेक्षा सभी के दिलों में चोट कर गई थी। एक तो उसके जीवन में रोमिला के प्यार को न पा–पाना और दूसरी बात थी, अपने बचपन के स्वप्न संगीत की लालसा को अधूरा छोड़ना। वस्तुतः केम्प के सभी साथियों के प्रेम और परिश्रम ने 'टुण्डा लॉट' को लॉट बनाने में कामयाबी हासिल की और सरदारा सिंह एवं मौलबख्श के तकनीकी प्रयोग से सुनील को नकली हांथ बनाकर पुनः वायलिन बजाने योग्य बना दिया।

निष्कर्षतः जगदीशचन्द्र एक ऐसे उपन्यासकार हैं, जो जीवन के यथार्थ का चित्रण करने में सिद्धस्त हैं। युद्ध और विभीशिका से उपजी मानव दर्द को लेखक अपने उपन्यासों में परत–दर–परत खोलकर पाठकों के सम्मुख रख देते हैं। दुश्मन की गोलियों के दिये जख्म और उससे उपजी अपंगता मौत से भी भयावह होती है। इसका यथार्थ वर्णन जगदीशचंद्र के उपन्यासों में दिखाई देता है। एक सैनिक की अपंगता में उसकी राष्ट्र के लिए दी गयी कुर्बानी, वहाँ बे–मानी साबित होती है, जब उसके अपने ही, जो उससे बे–तहासा प्रेम करते थे, उसकी अपंगता को लेकर उसे बोझ समझते हुए अपमानित करने लगते हैं। एक सैनिक के जीवन की जिन्दगी में आने वाले पड़ावों को लेकर समाज और परिवार की सोच के ये उपन्यास यथार्थ वर्णन के रूप में हिन्दी साहित्य की वह कड़ी हैं, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। अतः जगदीशचंद्र युद्ध और शान्ति के साथ भारतीय समाज के यथार्थवादी उपन्यासकार हैं।

lUnHkZ %

1. जगदीशचंद्र रचनावली (भाग–3), संपादक– विनोदशाही, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, संस्करण : 2011, पृ0 18
2. वही, पृ0 118
3. वही, पृ0 154
4. वही, पृ0 195
5. वही, पृ0 195
6. वही, पृ0 167
7. वही, पृ0 244
8. वही, पृ0 245
9. वही, पृ0 275
10. वही, पृ0 339
11. वही, लॉट की वापिसी, पृ0 389
12. जगदीशचंद्र रचनावली (भाग–3), संपादक– विनोदशाही, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, संस्करण : 2011, पृ0 420
13. वही, पृ0 525

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 163-165

L=h vfLerk vkj eUUk Hk.Mkjh dh dgkfu;k

i tk ik.M;*

अस्मिता शब्द का अर्थ होता है– '^vgHkko] viuh lÙkk dk Hkko ;k vkikA**[1]

अस्मिता वस्तुतः व्यक्ति मन की वह भाव या मनोवृत्ति होती है जो यह प्रकट करती है कि मेरी भी एक अलग सत्ता या पहचान है। अर्थात् मैं हूँ। ''आधुनिकता के अर्थ में 'अस्मिता' व्यक्ति की पहचान का ही पर्याय है। बचपन में मिले संस्कार, शिक्षा और संस्कृति के साथ संसार में कदम रखने वाला व्यक्ति जब अच्छी–बुरी परिस्थितियों से गुजरता है तो संसारी अनुभूतियों के साथ मिले अहं से उसका जो व्यक्तित्व बनता है वही उसकी अस्मिता कहलाती है।''[2]

'अस्मिता' को लेकर समाज में प्रारम्भ से ही वाद–विवाद होते आ रहे हैं। आज उपेक्षित व्यक्ति, वर्ग, समुदाय आदि अपनी खोई हुई 'अस्मिता' को प्राप्त करना चाहते हैं। यह दौर साहित्य एवं समाज में अस्मितावादी संघर्ष का दौर है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी स्तरों पर हिस्सेदारी और अपने अधिकारों की मांग को लेकर हाशिए की अस्मिताओं के स्वर उभरे हैं। वर्ग, जाति, वर्ण, लिंग, स्थानिकता, सांस्कृतिक पहचान, विस्थापन आदि को आधार बनाकर नई अस्मिताएँ सामने आई है। जैसे– स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, थर्ड जेंडर और अल्पसंख्यक विमर्श आदि। इन्होंने समानता, न्याय, हिस्सेदारी और आत्मसम्मान के लिए प्रतिरोध, आन्दोलन और संघर्ष को अपना मुक्तिपथ घोषित किया है।

'स्त्री विमर्श' के द्वारा आज स्त्री सभी के दृष्टि का केन्द्र बन चुकी है। आज स्त्रियाँ अपने 'स्व' से वंचित नहीं है। वह पितृसत्ता के षड़यंत्रों को पहचान चुकी है। आज स्त्री के अन्दर 'स्वचेतना' विद्यमान है जो उसे बंधनों से मुक्ति दिलाता है एवं वह स्वयं को मुक्तिपथ तक ले जाने में समर्थ हो पाती है। स्त्री विमर्श ने नारी को उसके अस्तित्व के प्रति जागरूक करने का कार्य किया परिणामस्वरूप अनेकों परिवर्तन हुए, स्त्री शिक्षा का विकास हुआ, अधिकारों की मांग बढ़ी और लंबे समय से घुटन और दुःख को सहती स्त्रियों ने अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति साहित्य के माध्यम से करना प्रारम्भ किया। उन्होंने स्त्री अस्मिता का संघर्ष, स्त्री स्वातंत्र्य, यौन उत्पीड़न के प्रति विद्रोह और अपनी पहचान के प्रति जागरूकता को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। वर्तमान समय में भी स्त्री लेखिकाएँ अपनी स्वतंत्रता, समानता और न्याय के लिए संघर्षरत और सक्रिय है।

ehuk cf) jkt k के अनुसार, ''पिछले कुछ दशक में हिन्दी सात्यि में स्त्री लेखन का व्यापक प्रस्फुटन एक अनूठी और ऐतिहासिक घटना है। यहाँ स्त्री लेखन एक सामाजिक सच्चाई और अस्मिता के संघर्ष की चुनौती के रूप में सामने आता है। यह स्त्री के अपने नजरिए से स्त्री लेखन का नया पाठ है।''[3] साहित्य के क्षेत्र में 20वीं सदी ने कई कथा–लेखिकाओं को जन्म दिया। आज निरन्तर उनकी संख्या में बढ़ोत्तरी हो रही है। आज हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में महिला कहानीकारों की दो पीढ़िया लेखन के क्षेत्र में एक साथ सक्रिय है।

पहली पीढ़ी में वे लेखिकाएँ आती है जिन्होंने नयी कहानी के दौर से लिखना प्रारम्भ किया है और अब तक लिखते आ रही हैं और दूसरी पीढ़ी में वे लेखिकाएँ आती है जिन्होंने आठवे दशक में लिखना प्रारम्भ किया है। मन्नू भण्डारी जी पहली पीढ़ी के अन्तर्गत ही आती है। मन्नू जी ने स्वातंत्र्योत्तर कहानियों के विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गुण तथा मात्रा दोनों ही दृष्टि से मन्नू भण्डारी ने 'नई

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0

कहानी' को एक विशेष रूप देने में अपना योगदान दिया है। मन्नू भण्डारी जी ने स्त्री केन्द्रित कहानियाँ ही अधिकांश मात्रा में लिखी है।

मन्नू भण्डारी जी ने अपनी पाँच कहानी संग्रहों के अन्तर्गत अनेकों कहानियों का सृजन किया है। उनकी प्रकाशित कहानी संग्रह इस प्रकार है–

1. मैं हार गई (सन् 1957), 2. तीन निगाहों की एक तस्वीर (सन् 1959), 2. यही सच है (सन् 1966), 4. एक प्लेट सैलाब (सन् 1968) और 5. त्रिशंकु (सन् 1978)। 'मैं हार गई' कहानी संग्रह का नाम 'इस कहानी संग्रह में संकलित कहानी ''मैं हार गई' के आधार पर रखा गया है। यह कहानी सर्वप्रथम 'कहानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इस संग्रह में 12 कहानियाँ संकलित है। इस संग्रह की कहानियों के माध्यम से मन्नू जी ने नारी मन और उसके अन्तर्द्वन्द्व को बहुत ही सूक्ष्मता एवं सहजता से उकेरा है। 'ईसा के घर इन्सान' की एंजिला, गीत का चुंबन की 'कनिका', एक कमजोर लड़की की कहानी की रूप, अभिनेता की 'रंजना', कील और कसक की रानी, दो कलाकार की चित्रा और अरूणा, मैं हार गई की मैं (लेखिका)। इन सभी नारी पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को इन कहानियों में साफ देखा जा सकता है।

मन्नू भण्डारी का दूसरा कहानी संग्रह 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' के अन्तर्गत 8 कहानियाँ संकलित है। इनमें अकेली कहानी की सोमा बुआ, मजबूरी की 'बुढ़ी अम्मा', तीन निगाहों की एक तस्वीर की दर्शना के माध्यम से मन्नू जी ने स्त्री की पीढ़ा उसेक दुख एवं संत्रास को चित्रित करने का प्रयास किया है।

'अकेली' कहानी की सोमा बुआ एक ऐसी पात्र है, जिसके दिल में अथाह ममता और प्यार है। सोमा बुआ दूसरों से जुड़ने की ललक में मोहल्ले के सभी घरों में बिन बुलाए जाकर काम करती हैं। परंतु वह कभी उनकी अपनी नहीं हो पाती क्योंकि दूसरों से जुड़ने की प्रक्रिया में सिर्फ वहीं दूसरों से जुड़ती है, दूसरे उनके साथ नहीं। इस तरह वह 'अकेली' ही रह जाती है। एक अजीब सा अकेलापन सोमा बुआ को घेरे हुए है। 'मजबूरी' कहानी की बूढ़ी अम्मा की भी यही त्रासदी है। इस कहानी में मन्नू भण्डारी जी ने बूढ़ी अम्मा और उनकी बहू 'रमा' के माध्यम से दो पीढ़ियों के वैचारिक संघर्ष को भी दिखाया है। सुधा अरोड़ा लिखती है कि– 'अकेली' की सोमा बुआ हों या 'मजबूरी की बूढ़ी अम्मा' सब अपने जीवन के साँझ प्रहर में अपनी प्रासंगिकता को बचाने में लगी स्त्रियाँ हैं।''[4] मन्नू भण्डारी जी के तीसरे कहानी–संग्रह 'यही सच है' में भी 8 कहानियाँ संकलित है। मन्नू भण्डारी जी की कहनी 'यही सच है' को अपार सफलता प्राप्त हुई इसका कारण था मन्नू जी का अत्यंत सहजता के साथ 'दीपा' के अर्न्तद्वन्द्व को पाठकों के समक्ष हूबहू व्यक्त कर देना।

अनीता राजूरकर लिखती है कि ''प्रेम के अन्तर्द्वन्द्व की कहानियाँ पहले भी लिखी गई हैं और इस दृष्टि से इस कहानी में कुछ नयापन नहीं है। परन्तु मन्नू ने जिस सहजता और साहस के साथ इस अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण किया है और शिल्प के जिस अधिकार के साथ इसे कलाइमेक्स तक निबाहा है, उससे इसमें अपनी ही ताजगी आ गयी है और लगता है जैसे कहानी न होकर दीपा के जीवन का एक सच्चा अनुभव ही है और जैसे सचमुच हम दीपा की डायरी के पन्ने ही पलट रहे हैं।''[5]

आधुनिक नारी 'दीपा' के माध्यम से मन्नू जी ने मध्यकालीन सामाजिक मान्यता पर चोट पहुँचाई है। दीपा के मन में एक साथ दो युवक है– निशीथ और संजय। दोनों को लेकर वह उलझन में है। कभी उसे लगता है वह निशीथ को चाहती है कभी उसे लगता है वह संजय को चाहती है।

अनीता राजूरकर लिखती है कि ''दीपा न निशीथ को चाहती है, न संजय को, वह सिर्फ अपने आप को चाहती है। वर्तमान क्षणों में जो उसे सुख देता है, वह क्षण ही दीपा की दृष्टि में सत्य है।''[6]

'यही सच है' संकल की अन्य स्त्री केन्द्रित कहानियों में – क्षय, सजा, रानी माँ का चबूतरा कहानियाँ है। क्षय की कुंती, सजा की आशा, रानी माँ का चबूतरा की 'गुलाबी' की मनोदशा का विश्लेषण इन कहानियों में मन्नू जी ने किया है। 'क्षय' कहानी 'कुंती' के स्वप्नों उसकी इच्छाओं और आदर्शों के 'क्षय' की कहानी है वही 'रानी माँ का चबूतरा' कहानी के माध्यम से मन्नू जी ने मजदूर गुलाबी के जीवन संघर्ष को चित्रित किया है।

'गुलाबी एक आत्मनिर्भर स्त्री है उसे स्वयं पर विश्वास है वह अपने बच्चों के लिए माँ और बाप दोनों बनती है। वह दिन रात श्रम करती है ताकि वह अपने बच्चों का पालन–पोषण अच्छी तरह कर सके।

'एक प्लेट सैलाब' मन्नू जी का चौथा कहानी संग्रह है। इसमें 9 कहानियाँ संकलित है। पुरुष के द्वारा स्त्री हर बार छली गई है। वह पुरुष प्रधान समाज द्वारा रचे हुए चक्रव्यूह से खुद को बचा नहीं पाती है। इस संकलन की कहानी 'नई नौकरी' के द्वारा इस तथ्य को समझा जा सकता है कि कैसे रमाः एक शिक्षित स्त्री होते हुए भी पुरुष प्रधान संस्कृति के चंगुल में फंस जाती है और अन्ततः अपने व्यक्तित्व को खो देती है। इस कहानी संग्रह के अन्तर्गत एक बार और की बिन्नी, संख्या के पार की प्रमिला तथा कमरे कमरा और कमरे की नीलिमा के द्वारा मन्नू जी ने स्त्रियों की समस्याओं को उनके द्वन्द्व और उनके खंडित व्यक्तित्व को चित्रित किया है।

'त्रिशंकु' मन्नू जी का पांचवा कहानी संग्रह है। इसके अन्तर्गत 9 कहानियाँ संकलित है। प्रदीप सी.लाड लिखते हैं कि ''मन्नू जी का यह कहानी संग्रह कहानी कला की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। इसी कारण लेखिका को अत्यंत गौरव का स्थान प्राप्त हुआ है– 'आते जाते यायावर', 'त्रिशंकू', 'अलगाव', 'एखाने–अकााश नाई', इन कहानियों में नया कथ्य प्रस्तुत किया गया है। ये कहानियाँ सफल सिद्ध हुई है।''[7]

इस संग्रह के अन्तर्गत मन्नू जी ने 'दरार भरने दरार, की नंदिता, 'स्त्री–सुबोधिनी' की नायिका 'मैं' तथा 'त्रिशंकू' की तनु और उसकी माँ के माध्यम से स्त्री के विविध पक्षों को उजागर किया है। एक ओर जहाँ 'स्त्री सुबोधिनी कहानी के द्वारा मन्नू जी स्त्रियों को अगाह करते हुए उन्हें पुरुषों के छलावे से बचने के निर्देश देती है वही 'त्रिशंकू' कहानी के माध्यम से उन्होंने बड़ी ही रोचक ढ़ंग से तनु और उसकी माँ के द्वारा दो पीढ़ियों के वैचारिक अन्तर को स्पष्ट किया है।

इस प्रकार मन्नू भण्डारी जी ने आधुनिक स्त्री को अपनी कहानियों का केन्द्र बनाकर स्त्री अस्मिता और स्त्रियों की अनेकों समस्याओं पर विचार किया है। पारम्परिक संस्कारों में जकड़ी हुई नारी को उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से मुक्त करना चाहा है।

मन्नू जी का कथा–साहित्य अपने में बहुत कुछ समेटे हुए है। उन्होंने अपनी कहानियों के लिए पात्रों को अपने परिवेश से ही चूना है। उन्होंने अपने आस–पास जो देखा जिसकी अनुभूति की उसे ही उन्होंने अपनी कहानियों में उतारा है। वह कहती है कि ''मैं कहानी लिखती नहीं मेरी अनुभूतियाँ मेरे से लिखवा लेती हैं।''[8]

स्त्री कथाकार चूँकि पुरुष प्रधान समाज का ही एक अंग है अतः उनकी कहानियों में पुरुषवादी समाज के मध्य अपनी अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए संघर्ष करती स्त्री का चित्रण स्वाभाविक है।

मन्नू जी की कहानियों की स्त्री भी घर, परिवार एवं समाज में परिस्थितियों से संघर्ष करती है तथा अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए प्रयत्न करती है।

lUnHk %

1. राजपाल हिन्दी शब्द कोश– डॉ0 हरदेव बाहरी, राजपाल प्रकाशन, संस्करण 2016, पृ0 71
2. संघर्ष के मध्य मुक्ति के स्वर, प्रो0 आशा शुक्ला, डॉ0 संगीता सक्सेना, साहित्य भंडार प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2015, पृ0 29
3. जनसत्ता, रविवार, 11 मार्च 2018, लेख– महिला लेखन : स्त्री अस्मिता का साहित्य, मीना बुद्धिराजा
4. मन्नू भंडारी की चुनी हुई कहानियाँ, संपादन– सुधा अरोड़ा, साहित्य भंडार प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 2017, पृ0 8 (भूमिका)
5. कथाकार मन्नू भंडारी, अनीता राजूरकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1987, पृ0 49
6. वही, पृ0 49
7. मन्नू भंडारी की कहानियों के प्रमुख पात्र, प्रदीप सी. लाड, चन्द्रलोक प्रकाशन, प्रथम संस्करण–1992, पृ0 20
8. कथाकार मन्नू भंडारी, अनीता राजूरकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1987, पृ0 99

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 166-171

i0 Jh gfj 'kkL=h nk/khp dk 0;fDrÙo ,o Ñfr Ùo

euh"k dqekj nc*

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व राजस्थान में अनेक देशी रियासतों का शासन था। इन रियासतों में जैसलमेर रियासत के अन्तर्गत 'पोकरण' नामक स्थान था, जहाँ पर ठाकुरों (राजपूतों) का ठिकाना था। इसी वंश में स्व0 रागुरु श्री हरगोविन्द जी महाराज विशिष्ट विद्वान् एवं राजकीय कथावाचक हुए थे। इनको ''छोटेलाल'' के नाम से पुकारते थे। कालान्तर में पोकरण के ठाकुर सलीम सिंह जी को जयपुरीय शासक जगतसिंह ने सवालाख का ठिकाना और दरबार में उच्च पद प्रदान कर इनको गीजगढ़ का स्थान सहर्ष प्रदान किया। गीजगढ़ हाउस की हवेली उस समय घाट दरवाजे के पास स्थित थी। यहीं पर जगन्नाथ जी मिश्र (दाधीच) भी आश्रयाश्रयिभाव वश रहते थे।

जगन्नाथ जी के तीन पुत्र थे, जयकृष्ण जी, श्री जादूराम जी और श्री रामकिशन जी।[1] इनमें से ज्येष्ठ पुत्र श्री जयकृष्ण जी को दो पुत्र हुए श्री शालिग्राम जी और श्री बालूराम जी, और मध्यमपुत्र श्री जादूराम जी के एक पुत्र श्री छोटे लाल जी थे। शालिग्राम जी गीजगढ़ ठिकाने में कुल पुरोहित बने रहे, परन्तु छोटे लाल जी ने स्वकीय विद्वत्ता से जयपुरीय राजा सवाई रामसिंह द्वितीय का हृदय आकर्षित किया और वहाँ कथावाचक के रूप में नियुक्त हुए।[2] आपकी कथावाचन शैली इतनी आकर्षक थी कि उसे सुनने तत्कालीन बड़े–बड़े रईस, प्रतिष्ठित नागरिक तथा प्रसिद्ध विद्वान् आपके निवास स्थान पर आया करते थे। महाराज सवाई रामसिंह आपका बहुत सम्मान किया करते थे।

शालिग्राम जी के रामनारायण जी और गणेश जी ये दो पुत्र थे। गणेश जी हरिशास्त्री जी के पितामह थे। गणेश जी के द्वितीय पुत्र दामोदर जी इनके पिता थे। प0 दामोदर जी विख्यात कर्मकाण्डी थे। कर्मकाण्ड के साथ–साथ अध्यापन कार्य भी करते थे। दामोदर जी के चार पुत्र थे बदरी लाल जी, हरि जी, पुरुषोत्तम जी और कान्तिचन्द्र जी। बदरी लाल जी, गणेश जी के प्रथम (ज्येष्ठ) पुत्र विजयलाल जी के निःसन्तान होने के कारण उनके यहाँ गोंद चले गये। कान्तिचन्द्र जी गंगापुर में गंगा जी के मन्दिर के पुजारी बन गये। श्री हरिशास्त्री जी के दो पुत्र थे, गोविन्द नारायण जी और वाचस्पति जी। गोविन्द नारायण जी आपके रहते ही जयपुर छोड़कर कहीं बाहर चले गये थे, और वाचस्पति जी आयुर्वेद के विद्वान् थे इनका एकमात्र पुत्र लक्ष्मीपति हुआ। लक्ष्मीपति भावुक एवं असहाय बच्चा था।

thou & ifjp; % आशुकवि प0 श्रीहरि शास्त्री जी का जन्म ताजीमी सरदार, राजगुरु कथाभट्ट पं0 हरगोविन्द जी नामावल के कनिष्ठ पुत्रों के वंशजो में वत्स गोत्रीय शुक्लयजुर्वेदाध्यायी प0 श्री दामोदर शर्मा के यहाँ वैशाख कृष्णा चतुर्थी तीथि संवत 1940 को अर्थात् सन् 1793 में हुआ था। इनके पिता का नाम पं0 दामोदर शर्मा तथा माता का नाम घीसी था, आपका गोत्र वत्स एवं शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा वेद था, एवं इनके धर्मपत्नी का नाम मोती था।

;L; Jh gfjjfLr uke] tudk nkeknjk·Eck f?k lh] eäk[;k xfg.kh lrh p ru;k xkfoUnokpLirhA oRlk xk=djk% Jfr% flr;t% 'kk[kk p ek/;fUnuh] ru Jh yfyrk lgL=dfen dk0; Ñr n';rkeAA[4]

दाधीच वंश में ही नामावली गोत्र बहुत प्रसिद्ध है इसी गोत्र में विद्वन्मणि अविर्भूत हुये थे। उन विद्वन्मणि श्री हरि शास्त्री जी का धर्मशास्त्र एवं स्मृति के द्वारा प्रतिपादित नियम के अनुसार 8 वर्ष की अवस्था में ही श्री कृष्णचन्द्र जी के द्वारा उपनयन संस्कार सम्पन्न कराया गया। अपने हि उनको गायत्री मन्त्र की दीक्षा भी दी। तत्पश्चात् आपने परम्परानुसार सवाई रामसिंह द्वितीय के द्वारा संस्थापित संस्कृत

*शोधछात्र, संस्कृत विभाग कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ0प्र0

पाठशाला में प्रवेश किया। तात्कालीन वहाँ का नियम था कि राजदरबारों में जितने भी पण्डित एवं विद्वान् लोगों के पुत्र एवं पौत्र हैं, उन सभी लोगों का प्रारम्भिक शिक्षा के लिए इसी पाठशाला में प्रवेश हुआ करता था, और यहीं पर शिक्षा–दीक्षा ग्रहण करनी पड़ती थीं।

f'k{kk&nh{kk % शास्त्री जी के समय में जयपुरीय संस्कृत महाविद्यालय द्वितीय काशी (उत्तर काशी) के समान था। प्रारम्भ में शास्त्री जी ने वेद एवं कर्मकाण्ड के मर्मज्ञ, विद्वान श्री मगनीलाल जी दाधीच से वेद एवं कर्मकाण्ड की शिक्षा प्राप्त की। मगनीलाल जी 1999 में वहीं पर अध्यापन कार्य करते थे। इनसे हरिशास्त्री जी ने वेदमन्त्रों का उच्चारण एवं अर्थज्ञान ही नहीं प्राप्त किया अपितु शौनक प्रातिशाख्य, ऋग्वेद का वृहद्देवता तथा छन्दशास्त्र, पिंगलसूत्र और वेद भगवान् का नेत्र स्वरूप वेदांग ज्योतिष का भी प्रगाढ़ अध्ययन किया। शास्त्री जी की मेधा बहुत कुशाग्र थी जिसके फलस्वरूप इन्होंने अध्ययन काल में ही रचना करना आरम्भ कर दिये थे। शास्त्री जी ने श्रीमगनीराम श्रीमाली जी से लघुकौमुदी का अध्ययन किया एवं इन्हीं की प्रेरेणा से शास्त्री जी साहित्य अध्ययन प्रति उन्मुख हुए। उपाध्याय कक्षा पर्यन्त शुक्लयजुर्वेद अध्ययन कर, तत्पश्चात् शास्त्री कक्षा में साहित्य विषय लेकर, साहित्य शास्त्र में पारंगत श्रीलक्ष्मीनाथ शास्त्री द्राविड़ एवं पं0 बिहारीलाल दाधीच से साहित्यशास्त्र का अध्ययन किये। इन दोनों आचार्यप्रवर का शास्त्री जी पर विशेष स्नेह था। शास्त्री जी को अपना शिष्य मानकर गौरवान्वित एवं अपने आपको कृतकृत्य मानते थे। स्वामी वैद्य श्री लक्ष्मीराम महराज जो द्वितीय धन्वन्तरी वे आयुर्वेद शास्त्र में इतने पारंगत एवं निपुण थे की लोग उन्हें धन्वन्तरी का अवतार मानते थे। शास्त्री जी से घनिष्ठ प्रेम करते थे। उन्हीं के सानिध्य में शास्त्री जी ने उन्हीं से आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक, सुश्रुतादि ग्रन्थों का अध्ययन किया। राजगुरू श्री चन्द्रदत्त जी ढोढ़ा व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित थे। शास्त्री जी प्रायः अपनी नवीन रचनाओं को इनको ही सुनाया करते थे। न्यायाचार्य कन्हैयालाल जी का भी आपके प्रति सौहार्द था। उपरोक्त प्रकार से विभिन्न–विभिन्न विषयों के पण्डित प्रवरों से विभिन्न–विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन कर, शास्त्री जी में अद्वितीय प्रतिभा जागृत हो गई। जिसके फलस्वरूप बाल्यकाल में ही सुललित पद्यों की रचना करना प्रारम्भ कर दिये थे। आपकी प्रथम रचना संस्कृत रत्नाकर, 7 आकर, रत्न 7।

अश्विन् संवत् 1969 में प्रकाशित हुआ। यह रचना वर्तमान में आप्राप्त है। प्रभाकर शास्त्री ने ''जयपुर की संस्कृत साहित्य की देन 1735 से 1765'' नामक शोध ग्रन्थ में लिखा है कि – यह रचना महाकवि जयदेव के (गीत गोविन्दकार) ''श्रितकमलाकुचमण्डल धृत कुण्डल ए कलितललित वनमाल'' की तर्ज पर बनाया गया है। उदाहरणार्थ –

j?kdqyufyu fnokdj d#.kkdj gA Jqfr lqjurinid t t;t; jke gjsA
;'kLFkeknfoo/kqu [kyenu gA gj ân; ejky t; t; jke gjsAA

इसी नाम से (रामचन्द्रस्तवः) एक रचना मार्गशीर्ष संवत् 1969 में प्रकाशित हुई। यह सम्पादक ने इस रचना पर अपने विचार इन शब्दों में प्रकट किये हैं, ''बहोः कालादेतदधिगतमस्माभिः। विद्यार्थिनोऽभ्यस्यतः कृतिरियं वैचिष्यपूर्ण चेति परिशोध्य स्थापितमद्य पाठकानां पुरस्ताद्। स्तोत्रेऽस्मिन् नाद्यैरक्षरैः रामरामेति श्लोकमन्त्रो निःसरति। अतएव दूरान्वयेनार्थ काठिन्यमनिवार्य भवतीति सोढव्यं पाठकैरिति'' इस रमे रामे मनोरमे। सहस्त्रनामतत्तुल्यं रामनाम वरानने। पद्य की अभिव्यक्ति होती है। रचना के अन्त में लिखा हैः ''जयपुरीय राजकीय संस्कृतशालाविद्यार्थी नामावलोपान्ह– दाधीच–हरनारायण शर्मा'' इससे ज्ञात होता है कि आपने विद्यार्थी जीवन से ही सुन्दर कविता बनाना प्रारम्भ कर दिया था। विद्यार्थीकालीन अन्य रचनाओं के विषय में भी डा0 प्रभाकर शास्त्री ने लिखा है–

शास्त्री जी की प्रारम्भिक रचनाएँ ईश्वरभक्ति से परिपूर्ण है। इसी प्रकार शिवरात्रि महोत्सव पर ''श्रीमन्महेशस्तवः'' संस्कृत रत्नाकर में फाल्गुन संवत् 1969 में प्रकाशित हुई। यह भक्तिप्रधान रचना है। आधुनिक पद्य शैली के अन्तर्गत लावनी (लावण्यवती) आदि का भी प्रयोग किया गया है –

v;s fi;o;k% i;r/oeA LorUnke/kuk·iu;/oeA lRl ;"'kl p lLÑrd ;kfr dFkern/k% indeAA
nkgk % ikf.kHkk tukr· lLÑrk·eref/kxr Je.kA tyfeo fHkUu?kVkfnn gk lL=fr Øe.kAA[5]

इसी प्रकार अन्यान्य लेखों में समस्यापूर्ति रूपात्मक पद्यों की भी बहुलता है; जो विभिन्न छन्दों में उपलब्ध है। सर्वप्रथम समस्यापूर्ति पद्य का अन्तिम चरण है –

^^jRukdj% fdy lq/kkdj lkE;efrA**[6]

यह रत्नाकर पत्रिका के 9 वर्ष संवत् 1979 श्रावण मासांक में प्रकाशित है। शास्त्री जी की कब्बाली के तर्ज पर लिखी ''प्रेयसी गीतः''[7] भी अति प्रसिद्ध है। इसी तर्ज में एक पद्य उद्धरण रूप में देते हैं, जिसमें भगवती सरस्वती की स्तुति है –

v;s dY;kf.k! okf.k! Ro; focks/k; ikfg nhu ekeA
dykfo|k iz oh.ks! g s loh.ks! ikfg nhu eke! v;s dY;kf.kAA

इसी प्रकार शास्त्री जी ने विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन करते हुए, महा महोपाध्याय श्री दुगा प्रसाद शास्त्री जी से शक्ति (शाक्त सम्प्रदाय) की दीक्षा ग्रहण की। तदनन्तर रचना में गाम्भीर्य तथा प्रौढ़ता आने लगी। स्वयं श्री शास्त्री जी का कथन है कि यह परिवर्तन अभ्यास व शिक्षा के साथ ही भगवती शक्ति की उपासना का परिणाम है।

mikf/k;k¡% तत्कालीन समय में जयपुर को छोटी काशी या उत्तरकाशी कहा जाता था, संस्कृत के हर एक विषयों के विद्वान् वहाँ पर थे। उस संस्कृत समाज एवं साहित्य के मंच पर अग्रणी रहते थे शास्त्री जी। संस्कृत विषय के विद्वानों की बाहुल्यता होने के कारण प्रत्येक विषय की प्रतियोगिता निबन्ध लेखन, के साथ–साथ कवि–सम्मेलन भी वर्ष भर में तीन दिन तक होती थी। इसको संस्कृत दीक्षा–समारोह की संज्ञा दी गई थी। उन दिनों जयपुर के कवि–सम्मेलनों में संस्कृत जनसमुदाय प्रायः शास्त्री जी और मथुरानाथ भट्ट शास्त्री जी के कविता को सुनने के लिए कवि सम्मेलन सभागार में उपस्थित हुआ करता था। शास्त्री जी अपने वाक्चातुर्य और वक्तृत्व कौशल से विद्वज्जनों को आकर्षित कर लिया ''परिणामतः शिक्षा में उपाध्याय, शास्त्री और आचार्य तथा आगरा से ''साहित्य महोपाध्याय'' उपाधियों के साथ भारत धर्ममण्डल से माघमास शुक्ल पक्ष में पंचमी को संवत् 2006 में 'आगमरत्न' शाक्त सम्मेलन प्रयाग से आम्नाय धुरन्धर और साहित्य सम्मेलन जयपुरीय विद्वन्नमण्डल से आशुकवि और कविभूषण की उपाधियाँ प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद अनुशीलन समिति द्वारा शास्त्री जी को आयुर्वेद भूषण की उपाधि प्राप्त हुई। विद्या विभाग कॉकरौली से ब्रजभूषण लाल जी महाराजा कॉंकरौली नरेश के द्वारा ''काव्यरत्न'' के उपाधि प्रदान की गई और स्वर्णपदक भी सम्मान के लिए दिया गया था। इन उपाधियों के अतिरिक्त, वेदान्तभूषण, पुराणप्रभाकर, आदि उपाधियों, प्रशस्ति पत्रों, स्वर्णपदकों, से मण्डित श्री शास्त्री जी तत्कालीन विद्वत्समाज में अपना वर्चस्व बनाये रखा।

x`gLFkkJe esa izos'k % जैसा की पहले बताया जा चुका है कि प0 दमोदर शर्मा अपने बड़े पुत्र बदरी जी को विजयलाल जी के गोंद चले जाने के बाद अपने द्वितीय पुत्र श्री हरिशास्त्री जी का पाणिग्रहण (विवाह) संस्कार बाल्यकाल में हीं, साध्वी, सुशीला, सुमना, उदारमना, मोती नाम की कन्या के साथ सम्पन्न करा दिया। इनकी पत्नी का स्वभाव बहुत सुन्दर और उदार था, यदि कोई अतिथि शास्त्री जी के वसन (घर) पर पधारता था, उन अतिथियों को भोजन कराये बिना नहीं जाने देती थी। बहुत काल पर्यन्त शास्त्री जी को कोई सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई, तत्पश्चात् शास्त्री जी ने तन्त्र विद्या का प्रयोग किया, फलस्वरूप दो पुत्र और एक पुत्री आहत्य तीन सन्तानों की प्राप्ति हुई। इनके बड़े पुत्र का नाम गोविन्द और छोटे वाले पुत्र का नाम वाचस्पति तथा पुत्री का नाम ''चण्डी'' था। इनका बड़ा पुत्र गोविन्द कुसंगत में पड़कर कुमार्गगामी हो गया, शास्त्री जी के बहुत कोशिशों के बाद भी वह सुमार्ग पर नहीं आ सका, तत्पश्चात् वह शास्त्री जी से पृथक् हो गया। शास्त्री जी का अपने छोटे पुत्र वाचस्पति पर बहुत स्नेह था, इसकी शिक्षा–दीक्षा बहुत अच्छी तरह से जयपुर में ही सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् (जगदीश चन्द्र कथाभट्ट के अनुसार) शास्त्री जी ने वाचस्पति जी का विवाह उदयपुर में आचार्य निरंजन नाथ जी की पुत्री शान्ति देवी के साथ सम्पन्न करवाया। और पुत्री चण्डी क विवाह किशनगढ़ में किया था। शास्त्री जी का रहन–सहन एक धनाढय परिवारों जैसा था। शास्त्री जी का गार्हस्त जीवन बहुत सुखमय, और सफल था।

Jh gfj'kkL=h th dh Ñfr;k¡ % शास्त्री जी अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे, इनकी लेखनी संस्कृत वाङ्मय के प्रत्येक क्षेत्र में अविहत गति से चलती रहती थी, इसी के फलस्वरूप प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रन्थों के संख्या 100 से अधिक है। लहरी काव्य, स्तोत्र काव्य, काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ, लघु काव्य, तान्त्रिक

ग्रन्थ, आयुर्वेदशास्त्रीय ग्रन्थ, गद्य काव्य, कथा साहित्य, निबन्ध साहित्य गीतिकाएँ, राष्ट्र प्रेम युक्त गीत, स्तोत्र, उपरोक्त प्रकार से ग्रन्थों का विभाजन किया जा सकता है।

d½ ygjh & dk0; ½ 1. वाणीलहरिः

[k½ y?kq & dk0; ½ 1. उदर प्रशस्तिः, 2. नाथवंश प्रशस्ति :

x½ Lrks= & dk0; ;k lkfgR; ½ 1. राममानसपूनजम्, 2. सुवर्णलक्ष्मीनक्षत्रमाला, 3. सिद्धिस्तवः, 4. साम्राज्यसिद्धिस्तवः, 5. ललितासहस्त्रकाव्यम्,

?k½ dk0;'kkL=h; xzUFk ½ 1. अलंकार कौतुकम्, 2. अन्योक्तिमुक्तावली, 3. अन्योक्तिशतकम्, 4. अलंकारलीला

M½ rkfU=d jpuk,¡ ½ 1. कौल विलासः, 2. वर्णबीजप्रकाशः,

p½ vk;qosZn 'kkL=h; jpuk ½ 1. संजीवनी साम्राज्यम्

N½ x| dk0; ½ v½ dFkk lkfgR; ½ 1. पौराणिक कथा (महात्मा सत्यव्रतः), 2. सामाजिक कथा (ग्रामीण–पण्डितः कालिदासश्च), 3. जीवनी कथा (भक्त प्रवरः शंकरः तच्छिष्याश्च)

c½ fucU/k lkfgR; ½ वर्णनात्मक निबन्ध – 1. प्रभातः स्नानम्, 2. सन्ध्यावन्दनम्, 3. गुरुजनवन्दनम्, 4. प्रातरुद्बोधनम्, 5. व्यायाम–सेवनम्, 6. विद्याध्ययनम्

lehf{kkRed fucU/k ½ 1. तन्त्रसाधना–परिषदध्यक्ष–भाषणम्, 2. संस्कृत–भाषा–महत्त्वम्।

इन ग्रन्थों या रचनाओं के अतिरिक्त आपने विषय सम्बन्धित अनेक चार्ट भी तैयार किये, और बहुत सारी फुटकर रचनाएँ भी भारतीय पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। कतिपय रचनाओं का उद्धरण यहाँ प दिया जा रहा है।

xhfrdk,¡ ½

Ø0 l0	jpuk 'kh"kZd	if=dk	o"kZ	vad
1.	गीतागुणं गीति	संस्कृत रत्नाकर	1	11
2.	सुरसरस्वती गुण गीतिका	संस्कृत रत्नाकर	4	2
3.	वसन्त गीतिका	भारती	1	4
4.	गोरक्षा कृते गीतिः	भारती	16	13
5.	मंगल गीतिका	भारती	15	4
6.	अत्रापि किंचद् विमृशन्तु सन्तः	संस्कृत रत्नाकर	2	7
7.	मंगलं गीतागुणगीतिः	संस्कृत रत्नाकर	1	11
8.	गीतिका	भारतीय	15	6
9.	श्रीमान्महत्त्वम्	संस्कृत रत्नाकर	16	7
10.	गीतायां भगवान् श्रीकृष्णः	संस्कृत रत्नाकर	16	7
11	श्री शक्ति गीताजंलि			
12.	श्री कालिका त्रिशतनाममाला			

jk"Vª izse ;qä xhr ½

1.	राष्ट्रविजयाभ्यर्थना	भारती	1	2
2.	राष्ट्र रजः प्रशस्तिः	भारती	9	3
3.	जय जय भारत देश	भारती	7	10
4.	मातृ स्तवनम्	भारती	7	11
5.	भारती विनयः	भारती	1	1

^^Jh gfj'kkL=h dh Ñfr;ksa dk lehf{kkRed v/;;u**

Lrks= ½

1.	गणपति स्तुतिः	भारती	2	11
2.	श्री दधिमथि – पुष्पिताग्रा	भारती	14	11
3.	श्मशानाष्टकम्	भारती	17	4

4.	श्री धन्वन्तरि स्तवः	भारती	14	6–7
5.	श्री मन्महर्षिदधीचि स्तवः	भारती	1	2
6.	श्री दुर्गा स्तोत्र	भारती		

’kkL=h; th }kjk vuqokn fd;s x;s xzUFk % 1. श्री दुर्गासप्तशती का हिन्दी में पद्यानुवाद, 2. भतृहरि शतकत्रय का हिन्दी में पद्यानुवाद, 3. गीतगोविन्द का हिन्दी में पद्यानुवाद, 4. श्री शिवमहिम्नः स्त्रोत्रम् का हिन्दी में पद्यानुवाद, 5. दश उपनिषदों का हिन्दी में पद्यानुवाद।

’kkL=h th dh fgUnh Hkk"kk dh xzUFk % 1. होली के हास, 2. अन्योक्तिविनोद।

इन रचनाओं के अतिरिक्त कतिपय रचनाएं इस प्रकार है– प्रेमसुधा, शीघ्रसिद्धि, कस्तुरीस्तवराज, श्रीलक्ष्मीरामस्य, आदर्शजीवनम्, शिक्षारत्नावलिः, भगवतीगीता, दर्पदलन उपरोक्त विधि से शास्त्री जी ने शताधिक (100) ग्रन्थों की रचना किये। ''काव्यं यशसे भवति'' प्रस्तुतोक्त पङ्क्ति को चरितार्थ करते हुए अपने यश रूपी शरीर को जरा–मरण रूपी भय से मुक्त कर दिया।

mnj iz’kfLr % कवि की यह रचना तत्कालीन एवं एतत्कालीन समाज को दर्पण दिखाने का कार्य कर रही है। कवि का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने मूल कर्त्तव्यों को भूलकर सिर्फ उदर पूर्त्यर्थ ही काम कर रहा हैं। अध्ययन कर रहा है तो उतना ही अध्ययन करना चाह रहा है जिससे की उदर पूर्ति और जो थोड़ा बहुत कार्य है वह हो जाय। इसी समाज का सम्पूर्ण अध्ययन कर कवि ने उदर प्रशस्तिः नामक ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ दीपावली संवत् 1970 अर्थात् 1923 में प्रकाशित हुआ। इसका प्रकाशन श्री हरि शास्त्री के शिष्य बाबू वासुदेव प्रसाद जयपुरिया ने करवाया था। यह बहुत ही रोचक कृति है – Jhyfyrklgòk=dkO;e~ % यह कवि के अद्भुत कृति है। इस कृति को करने पर कवि को जयपुर अकादमी से पुरस्कार प्राप्त हुआ था। वह काव्य वर्तमान में उपलब्ध है। यह मिश्रगोविन्द भरतपुर में विजयादशमी विक्रम संवत् 2099 में इसे प्रकाशित किया है। यह आगमोक्त तान्त्रिक स्तोत्र है। त्रिपुर सुन्दरी का ही दूसरा नाम ललिता है। ब्रह्माण्ड पुराण के उत्तर काण्ड के द्वितीय अध्याय में श्री हयग्रीव अगस्त्य के संवाद में श्री ललिता सहस्रनाम स्तोत्र प्राप्त होता है। उसी नामों को उपजीव्य के रूप में लेकर कवि ने ललिता देवी के प्रत्येक नामों का अवलम्बन करके, हर एक नाम पर एक एक पद्य की रचना विभिन्न–विभिन्न छन्दों में किया है। इस काव्य में एक सहस्र (1000) पद्य है, और दश शतकों में विभक्त है, प्रत्येक शतक में 100 पद्य हैं। यही ग्रन्थ मेरे शोध का विषय है।

इस काव्य में नामगुण, नाम प्रभाव, नाम की उत्कृष्ट महिमा, पूजा फल, योगफल, नामनिरूक्तियाँ, चरितार्थता, प्रार्थनाएं, बलितर्पा का फल, कल्याण कामनाएं, स्तुतियाँ आदि हैं। यत्र तत्र सरस उपदेश तथा गूढ़ अस्पष्ट मन्त्र की व्याख्या भी की गई हैं। संस्कृत श्लोक का सरल हिन्दी भाषा में टिप्पणी सहित अनुवाद किया गया है जिसके उद्देश्य को कवि ने स्वयं स्पष्ट किया है –

dkyk% [kyk vL; i|o{kkUuoksRl [kufUrofrA fuc)k lnn<k á"kk foofrfgUnHkk"k;kAA[8]

नामजप की महिमा बताने के लिए 'भयापहा' नाम की विवृत्ति करते हुए कहता है कि – हे मातः। दुर्गा, अम्बा, कलिका, चण्डी, चामुण्डा, कमला, शिवा, भैरवी, इत्यादि एक ही आपका नाम संसार में जपने वालों के सभी प्रकार के भय को दूर करने वाला है।

dkO;’kkL=h; xzUFk %

1- vyadkj dkSrqde~ % ''अलंकार कौतुकम्'' नामक ग्रन्थ कवि की काव्यशास्त्रीय रचना है। इसमें कवि ने काव्य एवं काव्य के भेद एवं शब्द एवं अर्थालंकारो का विवेचन किया है। – कवि ने परिभाषा प्रकरणम् नामक प्रथम प्रकरण में 35 श्लोक हैं। सर्वप्रथम काव्यारम्भ में ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति हेतु कवि ने महिषमर्दिनी के विचित्र तेज की स्तुति की है। –

e|[k flrs ckgqp;s foughrs e/;s·#Hkkxs t?kus fofp=e~A
vEckf;rs fd´~pu futjk.kk Hk tkfe rstks efg"kkUrukfjAA[9]

इसके अनन्तर कवि अपने पूर्वीय काव्यशास्त्रीय आचार्यों का सम्मान करते हुए कहता है कि – भामह आदि अलंकार सम्प्रदाय के आचार्यों का विरोध न करते हुए उन्ही अलंकारों को नवीन रूप में विद्वानों के मनो विनोद के लिए कौतुक रूप में प्रस्तुत करता हूँ।[10]

इस प्रकार श्री हरिशास्त्री दाधिच ने संस्कृत साहित्य सर्जना की एक अद्वितीय मार्ग के प्रदर्शक रहे। इनकी सभी रचनायें प्रसाद गुण एवं वैदर्भी प्रधान रीति में हैं। इनकी काफी रचनाएँ तत्कालिक समाज एवं सामाजिक समस्याओं के उपर है। प्रस्तुत शोध पत्र में शास्त्री जी कुछ एक प्रसिद्ध रचनाओं की परिचय किया गया, अन्य का नामोच्चार एवं प्रकाशनादि का उल्लेख किया गया है।

lUnHk lph %

1. श्री ललितासहस्रकाव्य–श्री हरिशास्त्री दाधीच गोविन्ददास जी का बाग म्यूजियम मार्ग जयपुर
2. श्री हरिशास्त्रि ग्रन्थमाला प्रथम पुष्पम् – आचार्य उमेश शास्त्री व्यास बालाबक्ष शोध
3. जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन 1835–1965 – डॉ0 प्रभाकर शास्त्री हंसा प्रकाशन
4. राजस्थानीय भिनव संस्कृत साहित्यम् – जयपुर डॉ0 सुषमा सिंध्वी चन्द्रशेखर भूषा राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर
5. राजस्थान के संस्कृत कृतिकार – हंसा प्रकाशन जयपुर
6. उदर – प्रशस्ति : श्री हरिशास्त्री दाधीच व्यास बालबक्ष शोध संस्थान जयपुर

lUnHk lph %

1. (डा0 प्रभाकर शास्त्री) का ग्रन्थ ''जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन (1835–1965) पृ0 सं0 250''
2. (डा0 प्रभाकर शास्त्री) का ग्रन्थ ''जयपुर की संस्कृत साहित्य को देन'' (1835'1965) के अनुसार छोटे लाल जी के कथावाचक पद की प्राप्ति का उल्लेख इस प्रकार है– वै0 हरगोविन्द जी, षतागुर (कथागुरु) बेटा जअकीसन (जयकृष्ण) का जंगनाथ (जगन्नाथ) का पोता, वीरामण (ब्राह्मण) दायमा माजी महाराज श्री जी वकुंठवसीजी का मीद्र (मन्दिर) का रहणेवाला कुं (को) चन्द्रमहल में बुलाया साथ महरवानगी कखतागुरु (कथागुरु) पदवी का दसतूर को सोरोपाव (सिरोपाव) बकसो (बक्स्यो, प्रदान किया) द्रष्टव्य पृ0 सं0 249
3. राजस्थान के संस्कृत कृतिकार (ग्रन्थ)
4. राजस्थान के संस्कृत कृतिकार (ग्रन्थ)
5. संस्कृत रत्नाकर चैत्र 1979 लावण्यवती।
6. संस्कृत रत्नाकर वर्ष 9 (1994 ई0)
7. संस्कृत रत्नाकर मार्गपौष – संवत् 1979 में प्रकाशित है।
8. स्वाभिमतम् – पद्य संख्या – 11
9. अलंकार कौतुकम् – श्लोक संख्या 11
10. अलंकार कौतुकम् – श्लोक संख्या 6

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 172-175

Hkkjrh; eqlyeku % ,d v/;;u

MkW0 l/khj flag*

इस्लाम धर्म अंगीकार करने वाले लोगों को मुसलमान की संज्ञा दी जाती है या वह प्रत्येक व्यक्ति भारतीय मुसलमान है जो ईस्लाम में आस्था रखते हैं चाहे वह किसी देश या क्षेत्र का हो। परन्तु इस्लाम के प्रसार ने जहाँ लोगों को अपने प्रभाव में ले लिया वहीं दूसरों की संस्कृति से प्रभावित भी हुआ। जैसे इस्लाम जाति प्रथा में विश्वास नहीं करता परन्तु भारतीय उप महाद्वीप में मुसलमानों में जाति प्रथा विद्यमान हैं। ठीक इसी प्रकार क्षेत्रीयता व संस्कृति के आधार पर मुसलमानों में भिन्नता मौजूद है यथा ईरानी मुसलमान तुरानियो के मुकाबले श्रेष्ठ शिष्ट व सभ्य माने जाते हैं। ईरानी दरबार की परंपराओं को भारत में तुर्की शासकों ने भी अपनाया। इस प्रकार ईस्लाम व उनके सिद्धान्त भले ही एक हों उनके अनुयायियों में भिन्नता है जो वहाँ की स्थानीय परिस्थितियाँ व वातावरण से प्रभावित है। इस क्षेत्रीय विभिन्नता के आधार पर मुसलमानों को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है जैसे ईरानी, तुरानी, अफगान, तुर्क, ताजिक आदि। इन्ही में एक नाम या वर्ग भारतीय मुसलमानों का भी है।

भारतीय मुसलमान कौन है? इसको परिभाषित करना कठिन है, जहाँ यम मुजीब उन सभी को भारतीय मुसलमान मानते है जो मुसलमानों की एकता व भाई चारें में विश्वास करते हैं तथा इस सिद्धान्त में कि भले ही उनके सामाजिक तौर तरीकों व अनुपालन में फर्क हो, वे भारतीय मुसलमान ही हैं।[1] परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखे तो अनेकानेक कारणों से धर्मान्तरित हुये गैर मुसलमानों को भारतीय मुसलमान कहा गया। यद्यपि अरब अवीसीनिया मिस्त्र फारस से शरणार्थी या रोजगार की तलाश में लोग भारत आये व स्थायी रूप से वस गये लेकिन इसके बावजूद यहाँ की मुस्लिम आवादी का अधिकंश भाग हिन्दू से धर्मान्तरित मुसलमानों का ही हैं। भारत में मुस्लिम आबादी सदैव वृद्धि की ओर अग्रसर तो रही परन्तु पश्चिमी एशिया के देशो के मुकाबले भारत में धर्मान्तरण की गति काफी मंद रही।[2] इसके साथ ही इस्लामीकरण अधिक शहरो में हुआ क्योंकि इस्लामिक सभ्यता ने सभी देशों में शहरी जीवन के विस्तार को प्रश्रप दिया न कि ग्रामीण आवादी को जिससे सभ्यता, संस्कृति, कला, स्थापल्प का विकास शहरों में ही हुआ।[3]

भारत में मुसलमानों की मौजूदगी मुख्तः दो कारणों से थी पहला स्थानान्तरण व दूसरा धर्मान्तरण। LFkkukUrj.k % दक्षिणी भारत के पूर्वी व पश्चिमी तटों पर अरब बस्तियाँ व्यापारिक किया–कलापों की वजह से थी। तटीय उत्तरी अफ्रिका, मध्य एशिया, अफगानिस्तान ईरान से स्थानान्तरण हुये। यह सभी अवसरों की तलाश में भारत आये क्योकि उनके अपने देशो में जीवन कठिन हो गया था दूसरी ओर भारत की सम्पन्नता सर्व विदीत थी। आगे चलकर भारत में इस्लामी राज्य की स्थापना ने इन विदेशियों को यहाँ बसने का अवसर दिया व मुसलिम जन संख्या में वृद्धि हुई।[4] इसके अतिरिक्त तुर्की विजेताओं की सेना में बहुत से इस्लामी कबीले जैसे खिताई, क्पिचाकी गर्जी, इल्वरी आदि लोग भारत में आये व यही रूक गये। कुतुवुद्दीन की सेना में भी तुर्क गोरी खुरासानी खल्ज कबीलों के लोग शामिल थे। इस प्रकार तुर्की विजय के प्रारम्भिक वर्षों में स्थानान्तरण मुस्लिम जन संख्या की वृद्धि में सहायक हुआ। भारत में सल्तनत की स्थापना के वाद मध्य एशिया, ईरान अफ्रिका आदि देशों से मुसलमान भारत आने लगे। मध्य एशिया से ताजिक मंगोल आक्रमण से उत्पन्न अराजक स्थिति के फल स्वरूप रोजगार व स्थायित्व की तलाश में भारत आये व इल्तुतलिश के शासन में राजनीतिक स्थायित्व व प्रश्रय उन्हें प्राप्त हुआ इल्तुतलिश के

*पूर्व प्रवक्ता, उदय प्रताप स्वात्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी

ही शासन काल में चंगेज के भय से जलालुद्दीन मँगवर्नी भारत आया परन्तु उसके लौटने के बाद उसके कुछ सहयोगी भारत में रह गयें। 1291 में मंगोल आकांता आये व इस्लाम स्वीकार कर भारत में बस गयें।[5] इस प्रकार भारत उनके अपने देश की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ व उपजाऊ था, व भारत में मुस्लिम साम्राज्य के विस्तार, राजनैतिक शक्ति की वृद्धि के साथ बहुत से सैनिक व्यापारी फकीर तथा बिद्वान, राजनैतिक शरणार्थी कलाकार, शिल्पी व कारीगर भारत आये व बस गयें।

/kekUrj.k %

cykr /keZ ifjorZu % बहुसंख्यक भारतीय मुसलमान पहले हिन्दू थे, बाद में धर्म परिवर्तन किया जिसमें एक महत्वपूर्ण कारण वलात धर्म परिवर्तन था। किन्तु कितनी मात्रा में ऐसा हुआ यह बताना कठिन हैं। 664 ई. के आस पास काबुल व निकटवर्ती प्रदेश में अब्दुर्रहमान के आक्रमण आधिपत्य के फलस्वरूप वहाँ के हजारों निवासी इस्लाम में दीक्षित हुये। सुवुक्तगीन ने भी हिन्दुओं से युद्ध किया व कुछ हिन्दुओं को इस्लाम स्वीकार करने के लिये बाध्य किया।[6] 712 ई. में मुहम्मद विन कासिम ने सिंध के किनारे आलोर निरून देवल तथा मुल्तान में धर्मान्तरण के लिए बाध्य किया।[7] कुतुबुद्दीन ऐवक ने 1194 में अलीगढ़ पर विजय प्राप्त की व पराजित सैनिकां को ईस्लाम में दीक्षित किया। 1202 में कालिंञजर के युद्ध में सैनिकों को बंदी बनाया गया व उन्हें इस्लाम अंगीकार करने के लिये बाध्य किया गया। बिस्तियार खल्जी ने पूर्वी अभियान में नालन्दा विक्रमशीला उदन्तपुरी विश्वविद्यालयों को ध्वस्त कर बौद्ध भिक्षुओं को धर्म परिवर्तन हेतु बाध्य किया। 1231 में इल्तुतमिश ने ग्वालिपर पर आक्रमण कर, 1253 में बलबन नें रणथम्भौर, 1259 शिवलिक की पहाड़ी (हरियाणा) पर आक्रमण के दौरान महिलाओं व बच्चों को गुलाम बनाया।[8] खल्ज व तुगलक काल में भी पुद्ध के दौरान बंदी बनाये जाने की प्रकिया जारी रहीं। अलाउदीन के पास 50,000 गुलाम थे जिनमें अधिकतर छोटी उम्र के लड़के थे। जो युद्ध के दौरान बंदी थे।[9] मुहम्मद तुगलक महिलाओं को दास बनाने में अधिक रूचि लेता, ईद के मौके पर सुल्तान गुलाम लड़कियों का विवाह मुसलमान लड़को से बड़े पैमाने पर कराते। इब्नबतूता का यह कथन है कि ''काफिर हिन्दू राजाओं की पुत्रियाँ जो उस वर्ष युद्ध में बंदी बनाई जाती आकर नाचती गाती व तत्पश्चात वे अमीरों व प्रमुख परदेशियों को प्रदान कर दी जाती। इसके बाद अन्य काफिरों की पुत्रियाँ आकर नाचती गाती और जब वो नाच गा लेते तो सुल्तान उन्हें अपनें भाईयों सम्बन्धियों व मालिकों के पुत्रों को दे देता। दूसरे दिन पुनः दरबार लगता तब गायिकाएँ लाई जाती व नाचने गाने के बाद उन्हें मामलूक अमीरो (दास अमीरो) को दे दिया जाता। तीसरे दिन सुल्तान के सम्बन्धियों के विवाह होते व उन्हे उपहार दिये जाते। छठे दिन महिला दासी व पुरुष दास का विवाह होता।''[10]

इसी प्रकार भारत के विभिन्न प्रातो में जहाँ भी मुस्लिम शासन स्थापित हुआ वहाँ बलपूर्वक धर्मान्तरण किया गया। पंजाब में तैमूर के आक्रमण के दौरान, कश्मीर में सिकंदर बुतशिकन ने तलवार के बल पर, गुजरात में अहमद शाह ने जजिया के माध्यम से व 1433 में डूंगरपुर व 1440 में ईदर को विजीत कर धर्मान्तरण का कार्य किया।[11]

मालवा में 1454 में सुल्तान महमूद ने हाड़ा राजपुतों पर आक्रमण कर उनके बच्चों को गुलाम बनाया। मालवा के सुल्तानों के हरम में भी सुंदर गुलाम युवतियाँ, हिन्दू राजाओं व जमीदारों की लड़कियाँ लाई जाती व उन्हें मुसलमान बनाया जाता।[12] मुगल काल में बलपूर्वक धर्मान्तरण की प्रक्रिया सल्तनत काल की अपेक्षा कम दिखाई देती है क्योंकि अकबर के पूर्ववर्ती मुगल शासक पूरी तरह स्थापित नहीं हो पाये थे, अकबर का शासन स्थापित होने के बाद उसने सुलह कुल की नीति अपनायी। जहाँगीर ने कुछ एक अपवादों (राजोड़ी के हिन्दुओं का धर्मान्तरण) को छोड़कर इस नीति को कायम रखा। परन्तु शाहजहाँ ने खूले रूप से धर्मांतरण का कार्य किया। (कश्मीर) 1633 में प्रताप उज्जैनिया के विद्रोह को दबाते समय धर्मान्तरण कार्य भी किया। उसने धर्मान्तरण के लिए अलग विभाग खोला व अधीक्षक नियुक्त किया। इसके साथ ही पैत्रृक संपत्ति में धर्मान्तरित पुत्र को हक देकर, राजस्व न दे पाने की स्थिति में धर्मान्तरित होने के लिये बाध्य किया।[13] परन्तु शाहजहाँ के शासन काल में इस्लामी करण की प्रक्रिया उतनी व्यापक नहीं थी जितनी फिरोज तुगलक, सिकंदर बुतशिकन या आगे चलकर औरंगजेव के समय में हुई।

iykHku % धर्मान्तरण हेतु मुस्लिम शासकों ने बल प्रयोग के अलावा सरकारी खजानों से सुविधाओं का भी प्रयोग किया। सरकारी खजानों से मस्जिद सरायों खानकाहों का निर्माण हुआ व इनका उपयोग प्रार्थना के अलावा इस्लामी संस्कृति के रूप में तथा जरूरतमंदों बेसहारा लोगों की शरण स्थली के रूप में हुआ जिसका लाभ यह था कि विधर्मी यहाँ आकर सहायता पाते व कालान्तर में इस्लाम अंगीकार कर लेते।[14] प्रलोभन के द्वारा धर्मान्तरण का दूसरा उपाय जजिया था। शारूक स्वयं को धार्मिक दिखाने तथा आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिये जजिया लगाते। यद्यपि अलाउदीन व मुहम्मद तुगलक जैसे शासकों ने अर्थव्यवस्था की मजबूती के लिए यह कर वसूला।[15] परन्तु फिरोज जैसे शासकों ने धर्म प्रचार के लिए इनका इस्तेमाल किया। फिरोज तुगलक के समय जजिया से मुक्ति पाने के लिए गरीब तबके के लोगों ने अधिकतर ईस्लाम अंगीकार किया। ऐसा धर्मान्तरण अधिकतर शहरी क्षेत्रों में जैसे शिल्पकार कारीगर दस्तकार समुदाय में हुए कुछ जातियाँ ऐसी भी थी। जिन्होंने व्यवसायिक बाध्यता के कारण इस्लाम अंगीकार किया जैसे धुनिया, जुलाहा व दर्जी एक दूसरे पर आश्रित थे। अतः इन्होंने एक दूसरे को धर्मान्तरण के लिए प्रोत्साहित किया होगा।16 सरकारी प्रलोभन न केवल सल्तनत वरन प्रातीय मुस्लिम शासकों का भी हथियार था। बंगाल के सम्बन्ध में वारवोसा का कहना है''16वीं शताब्दी में बंगाल में मुसलमान होना इतना अधिक लाभप्रद था कि अपनें शासकों की कृपा दृष्टि प्राप्त करने के लिये हिन्दू इस्लाम ग्रहण करते थे।[17] मुगल काल में यह प्रलोभन विशेष रूप से औरंगजेब के समय में दिया व जजिया उसका सशक्त माध्यम था। औरंगजेब को इस बात से कोई मतलब नहीं था। कि यह व्यय भार गरीबों के उत्पीड़न का कारण बना सकता है। ट्रवेनियर ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुये कहा है, ''मुसलमान शासक बेचारे मूर्ति पुजकों पर घोर अत्याचार करते हैं, यदि कोई व्यक्ति इस्लाम स्वीकार कर लेता है तो स्वाभाविक रूप से उसके प्रति क्रूरता का व्यवहार रोक दिया जाता हैं।''

इस प्रकार न केवल बलपूर्वक बल्कि आर्थिक विपन्न्ता, अपराध दण्ड से मुक्ति, पद की लालसा आदि कारणों से भी प्रेरित होकर लोग धर्मान्तरित हुये।

l½ LofPNd /kekUrj.k % बलपूर्वक धर्म परिवर्तन व प्रलोभन वंश धर्म परिवर्तन करने के अलावा काफी हद तक स्वैच्छिक धर्मान्तरण भी हुये जिनके लिये भारत की सामाजिक परिस्थितियाँ उत्तरदायी थी। मुसलमानों ने भारत में प्रवेश किया जो जाति व्यवस्था का विभत्स रूप उन्हें दिखाई दिया। जैसे त्रावनकोर में कुछ छोटी जातियों को ब्राह्मण से 74 पग दूर रहना पड़ना था और ऐसे लोग जब सड़को पर चलते थे तो उन्हे 'घुर–घुर' शब्द कह कर अपनी उपस्थिति की सूचना देनी पड़ती। इन छोटी जातियों की सामाजिक स्थिति दयनीय थी। अतः इन्होनें आसानी से इस्लाम अंगीकार किया। 16वीं शताब्दी में मालावार तट पर 'मोपला' के रूप में पूरी जनसंख्या का 1/5 भाग मुसलमान हो गयी थी। इनकी भाषा वही थी जो हिन्दुओं की थी। ये मोपले अपने आपको ईरानी व अरब व्यापारियों का वंशज मानते थे। धर्मान्तरित लोगों को भारत की छोटी जातियों ने हेय नहीं समझा क्योंकि वह तो खुद ही अपने समाज में हेय दृष्टि से देखे जा रहे थे।

मुस्लिम शासन के केन्द्रों में जितने धर्म परिवर्तन हुये उनकी अपेक्षा ऐसे क्षेत्रों में धर्मान्तरण अधिक हुआ जहाँ छोटी जातियों के अछूत लोगों की संख्या अधिक थी। ऊँची जातियों के जो हिन्दू थे उन्हें अपने धर्म की श्रेष्ठता पर गर्व था क्योंकि उनकी स्थिति अच्छी थी परन्तु छोटी जातियों के हिन्दुओं में अपने धर्म के प्रति आदर नहीं था क्योंकि उन्हें अपनों ने 'अछूत' समझा और वे मुसलमानों की शक्ति व प्रलोभन का शिकार हुये। मध्यम वर्ग के हिन्दु जैसे व्यापारी दुकानदार लिपिक पुरोहित आदि की स्थिति अलग थी। यह वर्ग कष्ट तो सहन कर सकता था पर इस्लाम कबूल नहीं कर सकता था।

जातिगत विद्वेषों को धर्मशास्त्रों ने भी हवा दी। धर्म ग्रंथो में बतलाया गया जब यज्ञ हो रहा हो तब वहाँ कोई शूद्र उपस्थिति नहीं रहना चाहिए और यदि शूद्र द्विजों (बुद्धजीवी) के उठने बैठने चलने फिरने आदि में बराबरी करेगा तो दण्ड का भागी होगा। इसके फल स्वरूप छोटी जातियों का अपने धर्म से मोह भंग हुआ होगा। इस प्रकार छोटी जातियों पर इतने प्रतिबंध लगा दिये गये कि बात–बात में आदमी जाति से बहिष्कृत हो जाता।

भारत की तत्कालीन सामाजिक परिस्थितयों की और स्पष्ट विवेचना करते हुये रामधारी सिंह दिनकर भी धर्मान्तरण के लिए जाति–व्यवस्था ब्राह्मणों की कट्टरता, शास्त्रों में वर्णित निम्न लोगों के साथ व्यवहार को उत्तरदायी मानते है। उनका मानना है कि इस्लाम के आगमन से वर्षों पहले वेद विरोधी आंदोलन प्रारंभ हो चुका था और बहुतायत में लोग वेद व्रत अनुष्ठानों में विश्वास खो चुके थे। धर्म–परिवर्तन के अधिक आसान शिकार यही हुये। इस्लाम ने ऐसे बहुत से लोगों को आकर्षित किया जो अछूत होने के साथ अपमानित हो रहे थे और बहुत से लोग इसलिए मुसलमान हो गये कि प्रायश्चित के नियम हिन्दुओं में नहीं थे। हिदुत्व छुई–मुई सा नाजुक धर्म हो गया था। गाँव के कुएँ में अगर मुसलमान पानी डाल देते तो सारा गाँव स्वतः मुसलमानों का हो जाता व शास्त्रों के ज्ञाता पानी की शुद्धि के साथ मनुष्य की शुद्धि का मार्ग नहीं ढूढ़ पाये।[18]

इस प्रकार धर्मान्तरण का कोई एक कारण न होकर कई कारण थे जिनमें बल प्रयोग, प्रलोभन, हिन्दु समाज की अपनी दुर्बलता शामिल है। एम0 मुजीव भी इन सभी कारणों को उत्तरदायी मानते हुये कहते है कि बलात धर्म परिर्वतन प्रमुख कारण तो था ही इसके साथ ईस्लाम स्वीकार करने वाले वे परिवार थे जिन्हें मुसलमानों से संपर्क रखने के कारण बहिष्कृत कर दिया गया था। पहाड़ी इलाकों की जनजातियाँ (कवीलाई) फौजी नौकरी के लिये आकर्षित हुई व समूह में रहते–रहते मुसलमान हो गयी। गुजरात में खोजा, वोहरा, मेमन आदि मजहवी प्रचार करने वाली संस्थाओं द्वारा मुसलमान बनाये गये। व्यापारी वर्ग सुविधा पाने की लालच में इस्लाम के प्रति आकर्षित हुआ।

धर्मान्तरण की चाहे कोई भी वजह क्यों न हो परन्तु उनकी जीवन शैली पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। ये बहुसंख्यक हिन्दुओं के बीच पुराने ढर्रे पर ही रहते थे। उनके अपने स्वार्थ पुराने रिश्तेदारों मित्रों से जुड़े थे न कि विदेशी सहधर्मियों से। लेकिन हिन्दु समाज की प्रदूषित जाति–व्यवस्था आत्मसात करने की प्रवृत्ति के अभाव के कारण वे धर्मान्तरित मुसलमानों के प्रति उदासीन हो गये जिसके परिणाम स्वरूप वह धर्मान्तरित लोग अपने मूल समाज से कटकर दूर होते गये।

lUnHkZ %

1. एम0मुजिव–द इण्डियन मुस्लिम, जार्ज एलेन एण्ड अनविन लंदन, 1967 पृ023
2. के0एस0लाल–इण्डियन मुस्लिम्स, हूआरदे'' (हिन्दी) भारतीय मुसलमान, 2003, पृ0 1–2
3. एम0 मुजिव–पूर्वोक्त, पृ0 10
4. वही, पृ021
5. डॉ0 हेरम्च चतुर्वेदी–''मध्य कालीन भारत में राज्य व राजनीति'' इलाहाबाद 2005 पृ088–90
6. के0एस0लाल–पूर्वोक्त पृ02
7. इलियट डाउसन अंग्रेजी भाग–1 पृ0120
8. हवीबुल्ला–''फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया'' (हिन्दी) भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, 1992 पृ0 40,41,44,45,46
9. के0एस0.लाल–पूर्वोक्त पृ020
10. एस.ए0ए0 रिजवी–तुगलक कालीन भारत भा–1 पृ0189
11. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया–भाग–3पृ0 298 पृ0244
12. यू0एन0डे–मेडिवल मालवा, दिल्ली 1967 पृ0 244
13. एस0आर0शर्मा–मुगलों की धार्मिक नीति, पृ0 72–73, 107–113
14. के0एस0लाल–पूर्वोक्त पृ021–22
15. निर्मला गुप्ता–दिल्ली के सुल्तानों की धार्मिक नीति, वाराणसी 1980 पृ0179
16. के0 एस0लाल0 पूर्वोक्त पृ023–24
17. वारबोसा–''द बुक ऑफ डुवार्ड वारबोसा' भाग–2 पृ0148
18. रामधारी सिंह 'दिनकर'– संस्कृति के चार अध्याय।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 176-180

dBkifu"kn~ esa vkRek dk Lo:i

vfdr Çlg ;kno*

'kks/k lkj % *कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बन्धित कठोपनिषद् में ब्रह्म, आत्मा, जगत्, प्राण, बुद्धि आदि अनेक दार्शनिक विषयों पर सम्यक्तया विचार किया गया है। इनके अध्ययन से मनुष्य उन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर सकता है, जिन्हें प्राप्त करने के लिए प्राचीनकाल में ऋषि–मुनियों ने यम–नियम आदि का पालन करते हुए अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण वर्षों को कठोर तपस्या में लगाया।*

कठोपनिषद् में आत्मतत्त्व को विविध दृष्टियों से वर्णित किया गया है। कठोपनिषद् में आत्मा को सर्वव्यापक, शाश्वत्, अनिर्वचनीय, दुर्लभ, दुर्विज्ञेय, अशरीरी, मेधावी, पुरातन, अजन्मा, अणु, अशब्द, अस्पर्श, अव्यय, रसहीन, नित्य, प्रत्यक्, गन्धरहित, सर्वश्रेष्ठ, विज्ञानस्वरूप, अज्ञेय, विशुद्ध, महान्, विभु, अनादि, अनन्त, ध्रुव, अवाङ्घ्मनसगोचर, सूक्ष्मबुद्धिग्राह्य, आश्चर्यरूप, तथा सर्वोच्च सत्ता के रूप में वर्णित किया गया है।

'kks/k i= % भारतीय संस्कृति का मूल आधार वैदिक वाङ्मय है। वैदिक साहित्य में जहाँ कर्मकाण्ड का उल्लेख है, वहीं पर अध्यात्म–विद्या का भी वर्णन मिलता है। अध्यात्म–विद्या वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण–ग्रन्थों में बीजरूप में है किन्तु उपनिषदों में उनका पूर्ण विकास हुआ है। दुःखत्रय की आत्यान्तिक निवृत्ति के लिए उपनिषद् ही एकमात्र साधन है। यद्यपि कि उपनिषदों में ब्रह्म, आत्मा, जगत्, प्राण, बुद्धि आदि के विषय में सम्यक्तया विचार किया गया है इनका मूल प्रतिपाद्य विषय आत्मतत्त्व ही है। अतः कठोपनिषद् के परिप्रेक्ष्य में इसी आत्मतत्त्व के स्वरूप का विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

कठोपनिषद् में वाजश्रवा के पुत्र नचिकेता और यम के बीच हुए संवाद का सुप्रसिद्ध उपाख्यान है। वाजश्रवा ने यज्ञ की दक्षिणा में निरर्थक वस्तुओं का दान करना चाहा। उनके पुत्र नचिकेता ने पिता को यथार्थ बोध कराने के लिए बार–बार पूछा कि आप मुझे किसको प्रदान करेंगे? पिता ने खीझकर उन्हें यम को दान करने की बात कही।

नचिकेता यम के पास जाते हैं किन्तु यम की अनुपस्थिति में तीन दिन तक बाहर रहना पड़ता है। यम के वापस आने पर यम उनका आतिथ्य–सत्कार करते हैं एवं प्रत्येक रात्रि के बदले एक–एक वरदान माँगने को कहते हैं। नचिकेता प्रथम वरदान में पिता की प्रसन्नता तथा अनुकूलता तथा दूसरे वरदान में स्वर्ग प्रदायिनी अग्निविद्या माँगते हैं । यम उन्हें दोनों वर प्रदान करते हैं। तीसरे वरदान में नचिकेता आत्म–विद्या जानना चाहते हैं।

Þ;s;a çsrs fofpfdRlk euq";s·LrhR;sds uk;eLrhfr pSds A
,rf}|keuqf'k"VLRo;kga ojk.kkes"k ojLr`rh;% AAß[1]

अर्थात् मनुष्य के मृत हो जाने पर आत्मा का अस्तित्व रहता है, ऐसा ज्ञानियों का कथन है और अन्य कुछ की मान्यता यह है कि मृत्यु के पश्चात् अस्तित्व नहीं रहता। आपके उपदेश से मैं इस संदेह से मुक्त होकर आत्म–रहस्य को भली प्रकार जान सकूँ। वरों में मेरा यही तीसरा वर है। इस पर यम उन्हें प्रलोभन देकर विचालित करना चाहते हैं किन्तु नचिकेता विचलित नहीं होते तदुपरान्त यम नचिकेता के समक्ष आत्मा की मीमांसा बड़ी रमणीयता से करते हैं।

कठोपनिषद् पर भाष्य लिखते समय शङ्कराचार्य ने आत्मा शब्द की व्याख्या करने के लिए लिङ्ग पुराण से एक श्लोक उद्धृत किया है, जिसमें कहा गया है कि 'जो सबको व्याप्त करता है, जो

*पूर्व प्रवक्ता, उदय प्रताप स्वात्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी

विषयों को ग्रहण करता है तथा उनका उपयोग करता है और जिसका अस्तित्व सन्ततभाव है, उसे आत्मा कहा जाता है।'

Þ;nklukfr ;nknÙks ;PpkfÙk fo"k;kfugA ;PpkL; lUrrks HkkoLrLekRnkRefr dhR;rsAAß[2]

इस परिभाषा के द्वारा आत्मा की व्यापकता, विषयों का ग्रहण एवं उपभोग तथा शाश्वत् भाव आदि विशेषताएं प्रकाशित होती हैं।

आत्मा शब्द अत् (सातत्यगमने) धातु से मनिन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। शब्दकल्पद्रुम के अनुसार जो निरन्तर जाग्रत् आदि सभी अवस्थाओं में विद्यमान रहता है, वह आत्मा है।

Þvrfr lUrrHkkosu tkxzknfnlokZoLFkklq vuqorZrsAß[3]

कहने का अभिप्राय यह है कि जो सबको व्याप्त कर लेता है; जिसका सर्वदा सद्भाव है तथा जो सभी जीवादि में जाग्रतादि अवस्थाओं में निरन्तर व्यापक रूप से रहता है, वही आत्मा है। यास्क के अनुसार आत्मा शब्द 'अत' धातु से व्युत्पन्न होता है, जिसका अर्थ है सतत् चलना अथवा यह 'आप' धातु से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है व्याप्त होना।

ÞvkRek·rrsokZ··Irsokz·fiokIr bo L;kn~ ;koí ;kfIrHkwr bfrAß[4]

ऋग्वेद में आत्मा का वर्णन सूर्य के रूप में मिलता है। वहाँ पर कहा गया है कि सूर्य सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है। वह प्रातःकाल पूर्व दिशा में उदित होता है तथा उदित होते ही वह पृथिवी, द्युलोक तथा अन्तरिक्ष लोक में प्रकाश भर देता है। वह मित्र, वरूण तथा अग्नि का नेत्र है। वह जङ्गम अर्थात् गतिशील तथा तस्थुषः अर्थात् स्थावर संसार की आत्मा है। उसके उदित होने पर ही चर–अचर संसार में वृद्धि होती है।

Þfp=a nsokukeqnxkuhda p{kqfeZ=L; o:.kL;kXus%A
vkçk |kok iFfkoh vUrfj{ka lw;Z vkRek txrLrLFkq"k'pAAß[5]

यह आत्मज्ञान बहुत ही दुर्लभ है। यह आसानी से प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह ऐसा है कि जिसे हर कोई मनुष्य नहीं सुन सकता अपितु कोई कुशाग्र बुद्धि ही इसे प्राप्त कर सकता है।

ÞJo.kk;kfi cgqfHk;kZs u yH;% Ü.oUrks·fi cgoks ;a u fo|q%A
vk'p;kZs oäk dq'kyks·L; yCèkk'p;ksZ Kkrk dq'kykuqf'k"V%AAß[6]

आत्मा आनन्दस्वरूप है । उपनिषदों में आत्मा के आनन्दस्वरूप होने के अनेक उल्लेख उपलब्ध है। जो व्यक्ति आनन्दस्वरूप इस आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह अति आनन्दित हो जाता है ।

Þ,rr~ JqRok lEifjx`á eR;Z% çoÀá èkE;Ze.kqeresrekI;A
l eksnrs eksnuh;a fg yCèok foo`ra lne ufpdsrl eU;sAAß[7]

कठोपनिषद् में आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह आत्मा न तो पैदा होता है, न ही मरता है। यह तो अजन्मा है। यह शाश्वत तथा नित्य है अर्थात् यह कभी भी क्षय को प्राप्त नहीं होता। यह पुरातन अर्थात् शाश्वत है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह नष्ट नहीं होता।

Þu tk;rs fez;rs ok foif'pUuk;a dqrf'pUu cHkwo df'prA
vtks fuR;% 'kkÜorks·;a iqjk.kks u gU;rs gU;ekus 'kjhjsAAß[8]

आत्मा का वर्णन मात्र शब्दों में कर पाना कठिन है; इसलिए इसकी अपरिभाषेयता स्वीकार करके उसे अत्यन्त गूढ़ गुहा में अन्तर्हित बताया गया है। यह आत्मा सभी सूक्ष्म पदार्थों से सूक्ष्म है तथा पृथिवी आदि महान् पदार्थों से भी महान् है ।

Þv.kksj.kh;kUegrks egh;kukRekL; tUrksfuZfgrks xqgk;keA
reØrq% i';fr ohr'kksdks èkkrqçlknkUefgekuekReu%AAß[9]

कठोपनिषद् में आत्मा को सर्वव्यापक कहा गया है। वहां पर उल्लेख मिलता है कि यह आत्मा मनुष्य के शरीर में रहते हुए भी शरीर रहित है। यह नित्य तथा महान् है। यह सर्वव्यापक है। इसको जान लेने के पश्चात् मनुष्य शोक से रहित हो जाता है।

Þv'kjhja 'kjhjs"ouoLFks"oofLFkreA
egkUra foHkqekRekua eRok èkhjks u 'kkspfrAAß[10]

यह आत्मा चराचर के प्रत्येक रूप में विद्यमान है। यह अपने स्वरूप में सबको समाहित किये हुए है। जब यह आत्मा शरीर, इन्द्रिय तथा मन से युक्त होता है, तब यह भोक्ता कहा जाता है।

ÞvkRefUæ;euk;qä HkksäsR;kgqeZuhf"k.k%AA[11]

कठोपनिषद् में आत्मा को नित्य कहा गया है। इसलिए इस विषय में उल्लेख है कि यह आत्मा शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से रहित है। इसका न तो आदि है, और न ही अन्त है। यह महत्तत्त्व में भी श्रेष्ठ है। इसका व्यय तथा क्षय नहीं होता, जिसके कारण इसे नित्य कहा जाता है। इसे इस रूप में जानने वाला व्यक्ति मृत्यु से रहित हो जाता है।

Þv'kCneLi'ke:ie0;;a rFkkj l fuR;exU/koPp ;r~A
vuk|uUra egr% ija è/kzo fupk¸; rUeR;qe|[kkRçeqP;rsAAß[12]

इसका अभिप्राय यह है कि आत्मा शरीर के धर्मों से सदा अस्पृष्ट रहता है। उसमें रोग, शोक, मोह, भय तथा जन्म–मरण की कल्पना करना अज्ञान का द्योतक है।

कठोपनिषद् में आत्मा के लिए एक स्थल पर प्रत्यक् शब्द का प्रयोग किया गया है। वहाँ पर उल्लेख आया है कि उस परमपिता परमेश्वर ने मनुष्य की इन्द्रियों को बाहर की ओर जाने वाली बनाया है, जिसके कारण वे बाह्य–विषयों को आसानी से जान लेती है। किन्तु उस प्रत्यगात्मा का दर्शन मनुष्य तभी कर सकता है, जब वह अपनी इन्द्रियों को विषयों से दूर हटा ले, अन्यथा मनुष्य उस प्रत्यगात्मा का दर्शन नही कर सकता।

Þijkf¥p [kkfu O;r.kÙLo;EHkwLrLekRijkM-i';fr ukUrjkReuA
df'p)hj% çR;xkReekuS{knkoÙkp{kqeRofePNuAAß[13]

जिस प्रकार से सूर्य सारे लोकों का नेत्र होने पर भी नेत्र सम्बन्धी बाह्य दोषों से सर्वथा परे है, उसी प्रकार से यह आत्मा भी सांसारिक दुःखों में लिप्त नहीं होता अर्थात् यह दुःखों से सर्वथा दूर है।

Þl w;ksZ ;Fkk loZyksdL; p{kqua fyI;rs pk{kq"kSckZánks"kS%AA
,dLrFkk loZHkwrkUrjkRek u fyI;rs ykdnq%[ksu cká;AAß[14]

आत्मा तथा ब्रह्म एक ही है आत्मा तथा ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि उस नित्य विज्ञानस्वरूप आत्मा का पुर(नगर) द्वारों वाला है। उस आत्मा का ध्यान करने पर मनुष्य शोकरहित हो जाता है। वह इस शरीर के रहते हुए ही कर्मरूपी बंधन से मुक्त हो जाता है।

Þiqjkesdkn'k}kjetL;koØpsrl%A
vuq"Bk; u 'kkspfr foeqä'p foeqP;rs] ,r}S rr~AAß[15]

जब मनुष्य का शरीर नष्ट हो जाता है तब शरीर में केवल आत्मा ही शेष रह जाता है।

ÞvL; foLkaleekuL; 'kjhjLFkL; nsfgu%A
ngkf}eqP;ekuL; fde= ifjf'k"; rsAA ,r}S rr~AAß[16]

अतः जिस प्रकार से एक ही वायु प्राण रूप से भिन्न–भिन्न शरीरों में प्रविष्ट भिन्न–भिन्न रूप धारण कर लेता है, परन्तु वास्तव में वह एक ही है, उसी प्रकार से सभी प्राणियों में एक ही आत्मा विद्यमान रहता है, जोकि प्राणियों के अनुसार ही रूप धारण करता है।

Þok;q;Zfkdks Hkqoua çfo"Vks :ia :ia çfr:iks cHkoA
,dLrFkk loZHkwrkUrjkRek :ia :ia çfr:iks cfg'pAAß[17]

नचिकेता यमाचार्य के पास आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने हेतु गया था। नचिकेता के प्रत्युत्तर में यमाचार्य ने कहा कि आत्मा नित्य है। इसे किसी अधम मनुष्य द्वारा कहे जाने पर अच्छी तरह से नहीं जाना जा सकता।

Þu ujs.kkojs.k çksä ,"k lqfoKs;ks cgèkk fpUR;ekuk%A
vuU;çksäs xfrj= ukfLr v.kh;kUá r;Zek.kçek.kkrAAß[18]

यमाचार्य ने एक रमणीय रूपक के द्वारा इस आत्मतत्त्व का वर्णन किया है। वह कहते है कि आत्मा शरीररूपी रथ का स्वामी है। बुद्धि उसका सारथि है, मन लगाम है तथा इन्द्रियाँ उस शरीररूपी रथ के घोडे है जो विषयरूपी मार्ग पर चला करते है।

Þvkreku jfFkua fof) 'kjhja jFkeso rqA
cqf) rq lkjfFka fof) eu% çxzgeso pAAß[19]

आत्मा को रथ का स्वामी (रथी) बताकर यम ने आत्मा की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की है। जिस प्रकार रथस्वामी के कार्य के लिए रथादि वस्तुएं हुआ करती है, उसी प्रकार आत्मारूपी रथी के लिए ही शरीर आदि विषयों का व्यापार हुआ करता है। इस प्रकार बाह्य–विषयों से आरम्भ करके श्रेष्ठता क्रम से विचार करने पर आत्मा ही सबसे श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट ठहरता है।

ÞbfUæ;kf.k gk;kukgqfoZ"k;kaLrs"kq xkspjkuA
vkResfUæ;euks;qäa HkksäsR;kgqeZuhf"k.k%AAß[20]

आत्मा के स्वरूप उसकी अवस्थाएं तथा आत्मा के निवास का वर्णन करने के अतिरिक्त कठोपनिषद् में आत्मज्ञान के अधिकारी अथवा अनधिकारी तथा आत्मज्ञान के उपायों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

कठोपनिषद् में कहा गया है कि जो मनुष्य हमेशा पाप कर्मों में लीन रहता है, जिसकी इन्द्रियाँ चञ्चल है, विषयों की ओर भागती हैं तथा जिसका मन अशान्त है, वह कदापि आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं कर सकता है।

Þukfojrks nq'pfjrkUuk'kkUrks uklekfgr%A
uk'kkUreulks okfi çKkusuSueklq;kr~AAß[21]

कहने का अभिप्राय यह है कि जो मनुष्य रागद्वेष से रहित, पापकर्म से रहित, सत्यनिष्ठ, असूयारहित, जितेन्द्रिय तथा शान्तचित्त है, वही आत्मज्ञान को पाने के अधिकारी है।

आत्मा को प्राप्त करने के सन्दर्भ में कहा गया है कि इस आत्मा को प्रवचन द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। वेदाध्ययन से भी इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह बुद्धि से भी नहीं जाना जा सकता, न ही श्रवण मात्र से इसे प्राप्त किया जा सकता है। अपितु निष्काम पुरुष आत्मा के द्वारा ही आत्मा को प्राप्त किया जा सकता है।

Þuk;ekRek çopusu yH;ks u es/k;k u cgquk JqrsuA
;eoS"k o`.kqrs rsu yH;LrL;S"k vkRek foo`.kqrs ruwa LokeAAß[22]

इन्द्रियों की गति से परिमित होने के कारण आत्मा इन्द्रियों की गति से आगे है। कठोपनिषद् में भी यही वर्णन आया है कि आत्मा इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि से महान् तथा उत्कृष्ट है।

ÞbfUæ;sH;% ijk áFkkZ vFksZH;'p ija eu%A
eulLrq ijk cqf)cqZ)sjkRek egkUij%AAß[23]

इस आत्मा को तर्क–विर्तक द्वारा भी प्राप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि तार्किक तो अध्यात्मशास्त्र से अनभिज्ञ होता है। वह जो कुछ भी कहता है वह सब अपनी कल्पनात्मक बुद्धि के आधार पर कहता है किन्तु शास्त्रजनित जो आत्मबुद्धि है, वह तो तार्किक से भिन्न किसी शास्त्रज्ञ आचार्य द्वारा उपदेश किये जाने पर भी सम्यक् ज्ञान का कारण होती है।

Þu"kk rdsZ.k efrjkiu;k izksäkU;suso lqKkuk; izs"BA
;ka RoekiLlR;/k`frcZrkfl Rokn`Xuks Hkw;kUufpdsr%AAß[24]

आत्मा को वाणी तथा नेत्र से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। मन को नियन्त्रण में रखने तथा हृदय में स्थित रहने वाली बुद्धि के द्वारा मननरूप सम्यक् दर्शन से ही आत्मा प्रकाशित होती है । जो इस आत्मा को ब्रह्मरूप से जानते है वे अमृतत्त्व की प्राप्ति कर लेते है। कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसे व्यक्ति ब्रह्म को जानकर मृत्यु के मुख से हमेशा के लिए मुक्त हो जाते हैं।

Þfupk¸; rUe`R;qeq[kkRçeqP;rsAß[25]

कठोपनिषद् में कहा गया है कि आत्मज्ञान की प्राप्ति सूक्ष्म एवं कुशाग्रबुद्धि वाला मनुष्य ही कर सकता है।

þn'; r Roxr ;;k c) ;k l{e;k l{enÆ'kfHk%Aß[26]

जब मनुष्य भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् काल के शासक के रूप में इस आत्मा को जान लेता है, तब वह उसकी रक्षा करने का बिल्कुल भी प्रयत्न नहीं करता।

þ; be eèon on vkReku thoefUrdkrA

Ã'kku HkrHk0;L; u rrk fotxlI rAA ,r}r rAAß[27]

जब मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं से रहित होकर आत्मा को जानने का प्रयास करता है, तब आत्मा स्वयं ही उसके प्रति अपने वास्तविक स्वरूप को उद्घाटित अथवा प्रकाशित कर देता है। जब मनुष्य आत्मज्ञान की प्राप्ति कर लेते है तब इस संसार में परम एवं नित्य शान्ति को प्राप्त कर लेते है।

þrekReLFk ;·ui';fUr èkhjkLr"kk 'kkfUr 'kkÜorh urj"kkeAAß[28]

अतएव यह कहा जा सकता है कि आत्मा सर्वव्यापक, अविनाशी, नित्य, अजन्मा, अव्यय, अच्छेद्य, अग्राह्य, अक्लेद्य, स्याणु, अचल, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य, निर्विकार, अनिर्वचनीय, मनोमय, अकृष्ट, अव्यवहार्य, अलक्षण, अवाङ्मनसगोचर, सूक्ष्म, अगोत्र, अवर्ण, अपाणिपाद, विभु, महान्, सर्वगत, शुद्ध, अक्षत, निर्मल, अपापहत, सर्व.ष्टा, सर्वज्ञ, सर्वोत.ष्ट तथा स्वयम्भू है। आत्मा की उपर्युक्त विशेषताओं को सम्यकतया समझने के बाद मनुष्य इसी लोक में अमरत्व की प्राप्ति कर सकता है।

lUnHk %

1. कठ. उप. 1.1.20
2. कठ. उप. शां.भा. 2.1.1 में उद्धृत लिङ्ग.पुराण 1.70.96
3. श.क.दु. काण्ड 1 पृ. 172
4. निरू. 3.3.15 पृ. 136
5. ऋक्, 1.115.1
6. कठ. उप. 1.2.7
7. कठ. उप. 1.2.13
8. कठ. उप. 1.2.18
9. कठ. उप.1.2.20
10. कठ. उप. 1.2.22
11. कठ. उप. 1.3.4
12. कठ. उप. 1.3.15
13. कठ. उप. 2.1.1
14. कठ. उप. 2.1.11
15. कठ. उप. 2.2.1
16. कठ. उप. 2.2.4
17. कठ. उप. 2.2.10
18. कठ. उप. 1.2.8
19. कठ. उप. 1.3.3
20. कठ. उप. 1.3.4
21. कठ. उप. 1.2.24
22. कठ. उप. 1.2.23
23. कठ. उप. 1.3.11
24. कठ. उप. शां. भा. 1.2.9
25. कठ. उप. 1.3.15
26. कठ. उप. 1.3.12
27. कठ. उप. 2.1.5
28. कठ. उप. 2.2.13

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 181-182

vk/kfud Hkkjrh; lxhr ds ?kjkuk dh fLFkfr

Mk0 ehjk vxzoky*

भारतीय शास्त्रीय संगीत में वैदिक काल से लेकर आज तक अनेक परिवर्तन होते आये हैं और यह परिवर्तन संगीत के महत्व के लिए आज भी अत्यन्त आवश्यक है। अनुसंधान के बिना इन परिवर्तनों को विकासशील बनाये रहना असम्भव है। अनुसंधान तथा अध्ययन चेतना एवं क्रियाशीलता को विकसित करने का सर्वश्रेष्ठ अथवा सबल माध्यम है।

अतः प्रत्येक जीवित अथवा जीती जागती कला का ठीक–ठीक अध्ययन उसके ऐतिहासिक वातावरण तथा ऐताहासिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों के अध्ययन व अनुसंधान के द्वारा ही सम्भव है। किसी भी कला के गौरवशाली अतीतकाल का केवल स्तुतिगान ही काफी नहीं है, वरन् वर्तमान काल में उसके गुणों, उसकी विशेषताओं का कलात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन भी बहुत आवश्यक है।

अपने विषय का अध्ययन करने से पूर्व हमारा ये जानना आवश्यक है कि भारतीय संगीत की विकास परम्परा में गुरु–शिष्य परम्परा का विशेष स्थान एवं महत्व रहा है। भारतीय संगीत में समय–समय पर ऐसे संगीतज्ञ होते रहे हैं। जिन्होनें अपनी कला साधना से संगीत की उपासना की। समयानुसार उनकी कलागत शैली में पारिवारिक परम्परा अथवा घराना परम्परा के उदय होने के साथ संगीतकाश पर छाया अंधकार क्रमशः छटने लगा और कला को प्रगति प्रावहमान हुई।

आधुनिक काल में घराना शब्द का जो अर्थ लिया जाता है उसका इतिहास डेढ़ सौ वर्षों से अधिक नहीं है। यद्यपि प्राचीन काल में भी ''घराना'' था किन्तु यह शब्द संकुचित रुप अथवा अर्थ में दृष्टिगोचर नहीं होता था, वरन् अति व्यापक अर्थ था इसका (प्रख्यात संगीत शास्त्रकार भरत, शारंगदेव, नारद, नंदिकेश्वर, मतंग तथा कोहल आदि की संगीत कला अपनी विशेषताओं के फलस्वरुप अलग–अलग व्यक्ति विशेष प्रचलित संगीत की विशेष रीति या स्टाइल घराना है।

वास्तव में कला की दृष्टि से संगीत कला को स्थिरता, स्थायित्व तथा महत्वता प्रदान करने में तथा विशेष रुप में स्थायित्व की दृष्टि से घरानों की अत्यन्त महत्ता रही है। घरानों के द्वारा ही उच्च कोटि के संगीतज्ञ, कलाकार तथा अन्याय गायकियों, विशेष रुप से ख्याल गायकी का आविष्कार अनेकानेक सौन्दर्य प्रणालियों के द्वारा ही होना आरम्भ हुआ था। घराने की पूर्ण रुपेण शिक्षा की बदौलत ही उत्कृष्ट एवं महान कलाकारों का निर्माण सम्भव हुआ। प्रत्येक घराने की अपनी कुछ विशेषतायें हैं, प्रत्येक घराने का अपना एक इतिहास एवं उपलब्धियाँ हैं, प्रत्येक घराने की शैली भिन्न है तथापि शैली में निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है– 1. गीत का बन्दिश (स्वर लिपि)। 2. स्वरोच्चारण, आवाज लगाने का ढंग। 3. तान एवं बोलतानों का प्रयोग। 4. राग विस्तार एवं आलाप। 5. तान और लयकारी। 6. रागों का चयन 7. रागों की बढ़त।

इस समय ख्याल गायकी के मुख्य घराने निम्न है – आगरा घराना, दिल्ली घराना, पटियाला घराना, किराना घराना, जयपुर घराना, पटियाला घराना। ग्वालियर घराना संगीत का विद्यापीठ माना जाता है। संगीत क्षेत्र में नवीन प्रयोग, विकास, शिक्षा एवं प्रचार–प्रसार में इसका बहुत बड़ा योगदान है। ख्याल शैली को लोकप्रिय बनाने में ग्वालियर घराने का सर्वाधिक योगदान रहा है। अन्यान्य घरानों का जन्म इसी ग्वालियर घराने से माना जाता है।

*एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग, श्रीमती बी0डी0 जैन डिग्री कॉलेज, आगरा उ0प्र0

आज के सन्दर्भ में सह अध्ययन हेतु आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है कि विभिन्न घरानों का संगीत के क्षेत्र में, शिक्षा के क्षेत्र में क्या योगदान था? इन घरानों की क्या विशेषता थी, तथा इन घरानां की क्या उपलब्धियाँ थी तथा आज क्या है? आधुनिक समय में इन घरानों की क्सा स्थिति है? तथा इन घरानों के संगीतज्ञ आज के युग में कौन–कौन हैं? तथा उनका क्या योगदान है?

बढ़ते हुए पाश्चात्य एवं फिल्मी संगीत के कारण, जनमानस की बढ़ती हुयी रुचियों के कारण, समाज के बदलते हुए मूल्यों के कारण, आज ये अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि से घराने जो कि अपनी विशेषताओं के कारण भारतीय शास्त्रीय संगीत का एक उज्जवल भविष्य थे उनकी ये विशेषतायें आज भी हैं या कहीं सीमित तो नहीं हो गई? अतः आज कुछ प्रश्नों का उत्तर पाना आवश्यक है।

1. समाज के कौन–कौन से कारक थे जिन्होनें घराना पद्धति को जन्म दिया?
2. घराना पद्धति ने आगे चलकर कौन–कौन से प्रमिान स्थापित किये?
3. इन सभी घरानों में कौन से प्रमुख संगीतज्ञ हुए तथा उनका क्या योगदान रहा है?
4. इन घरानां ने किन नवीन गायकियों, शैलियों, बन्दिशों, तालों एवं रागों की उत्पत्ति की?
5. वर्तमान समय में इन घरानों के संगीतज्ञ की क्या स्थिति है?
6. वह क्या कारण है जिसके कारण आज घरानें सीमित होते जा रहे हैं?
7. घराना पद्धति व घरानेदार गायकी का पूर्वकालीन महत्व व उपलब्धियाँ आज के समय में विद्यमान हैं अथवा नहीं?
8. क्या आज घरानेदार गायकी का सरली करण हो गया है अथवा आसान हो गया है?

यद्यपि घराना पद्धति पर अनेक विद्वानों ने शोध कार्य किये हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत की स्थिति व घरानों पर भी महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं, किन्तु वह सभी आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत की स्थिति व घराने का एक विवरणात्मक अध्ययन मात्र है। संगीत के सन्दर्भ में संगीत की स्थिति व घराने के योगदान के अतिरिक्त यह भी जानना आवश्यक है कि आज इन घरानों का वैज्ञानिक व विस्तारपूर्वक आंकलन, मूल्यांकन हुआ है या नहीं? जो कि होना अत्यन्त आवश्यक है।

lUnHk %

1. शर्मा, अमलदास, आर्य प्रकाशन मण्डल दिल्ली
2. चौबे, सुशील कुमार, उ0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ 1975
3. चौबे, सुशील कुमार, उ0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ 1977
4. कपूर, तृप्त, हरमन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1989
5. गर्ग, लक्ष्मी नरायण (स0) संगीत कार्यालय, हाथरस मई–1978 (संगीत निबन्धवली)
6. गर्ग, लक्ष्मी नरायण (स0) संगीत कार्यालय, हाथरस मई–1978 (निबन्ध संगीत)
7. पाठक जगदीश नारायण, प्रयाग संगीत समिति इलाहाबद, 1970
8. जोशी, उमेश, मानसरोवर प्रकाश प्रतिष्ठान, फरोजाबाद आगरा 1969
9. देशपाण्डे, रामनराव, ओरिएण्ड लॉगमेन लि0 1973
10. परांजये, शरचचन्द्र श्रीधर, म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल
11. शर्मा, भगवतशरण, संगीत कार्यालय हाथरस

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 183-184

ofnd f'k{kk e: ou l:j{k.k

Mk0 d:å e'.kkfyuh*

वेद भारत का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार का प्राचीनतम ग्रंथ है इस विषय में कोई सन्देह नहीं है। वेद पृथ्वी पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। सभी वेद संस्कृत भाषा में लिखा गया है। इसलिए यहाँ विचारणीय यह है कि वेदों में वन संरक्षण की चर्चा की गई है तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हमारे पूर्वज पर्यावरण संरक्षण के लिए अत्यन्त प्रयत्नशील थे। वे लोग पर्यावरण के महत्व को पूर्णतः जानते थे।

आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण में मुख्य रूप से प्रकृति को ही पर्यावरण के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल में प्रकृति अत्यन्त पवित्र थी। 'प्रकर्षा कृतिः प्रकृतिरिति' अर्थात ईश्वर का सर्वोत्कृष्ट यत्न इसका अभिप्राय था। प्रकृति और पुरूष में पारस्परिक समता है। प्रकृति और पुरूष में पारस्परिक अन्योन्याश्रय सम्बन्ध माना जाता है पुरूष को ईश्वर या ब्रह्म कहा गया है। अतः प्रकृति तत्सारूप्य ब्रह्म ही है। वस्तुतः पंचमहाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु को ही ब्रह्म कहा गया है। अतः इनकी रक्षा अनिवार्य है।

ऋग्वेद सभी वेदों में प्राचीनतम है। यहाँ भी पर्यावरण के महत्व का वर्णन किया गया है। **vklhnokr Lo/;k rnde** मन्त्र के द्वारा संकेत होता है कि पंचमहाभूत ही इस समय संसार के सभी बुद्धिमान व्यक्ति अधिकाधिक वक्षों की आवश्यकता महसूस करते है। परन्तु यह अवधारणा वर्तमानकालिक ही नही है यह तो मूलतः वैदिक ऋषियों की धारणा रही है। अतएव वे लोग वृक्षों को बार–बार नमस्कार करते है।

uekso{kH;% (यजुर्वेद 16–17)
vk'kf/kuka ir;s ue% (यजुर्वेद 16–16)
vj.;kuka ir;s ue% (यजुर्वेद 16–20)
uek oU;k; p (यजुर्वेद 16–34)

वृक्षों को देवता के समान मानकर उनकी उपासना अभ्यर्थना की परम्पराएँ हमारी धरोहर रही है। वेदों में वृक्षों को पृथ्वी की संतति कहकर इन्हें अत्यधिक महत्व एवं सम्मान प्रदान किया गया है– सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा गया है– Hkw tK mRrku ink--- (ऋग्वेद 10/73/4) अर्थात हमारी पृथ्वी वृक्ष से उत्पन्न हुई है यह माना गया है कि ब्रह्मा ने जल में बीज बोया और वनस्पति उपजी। ये मान्यताएं सृष्टि में वक्षों के प्रथम आगमन की सूचनाएं ही नहीं देतीं बल्कि इन्हें आदि शक्ति से भी जोड़ती हैं। गीता में भी कृष्ण स्वयं कहते है कि vgœ Ørqjge~ ;K% Lok/kkgegeks'k/ke~ (9/16) अर्थात, मै ही औषधि हूँ तथा वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल) हूँ– v'oRFk% loZo{k.kke~ (10/26) वृहदारण्यक उपनिषद (3/9/28) में वृक्ष का दृष्टांत देकर पुरूष का वर्णन किया गया है क्योकि पुरूष का स्वरूप वृक्ष के समान है। दोनों में पर्याप्त समानताएं है। आयुर्वेदाचार्यो की दृष्टि में देखे तो विश्व में ऐसी कोई वनस्पति नहीं, जो औषधि के गुणों से युक्त न हो। यहाँ पर वृक्षों को देवतुल्य मानकर इन्हें व्यर्थ रूप से काटने पर नैतिक प्रतिबन्ध लगाया गया है। इसलिए श्वेताश्वेतरोपनिषद में वृक्षों को साक्षात ब्रह्म के सदृश्य बताया गया है वृक्ष इवस्तग्धों दिवि तिष्ठात्येकः। पद्म पुराण में भगवान विष्णु को अश्वत्थ, वट को रूद्र रूप और पलाश को ब्रह्म रूप बताया गया है।[1] महाभारत एवं रामायण में वृक्षों के प्रति मनोरम कल्पना की गई है। महाभारत

*स0 आचार्य, संस्कृत, दी0द0उ0गो0वि0वि०, गोरखपुर

के भीष्म पर्व में वृक्ष को सभी मनोरथों को पूरा करने वाला कहा गया है– सर्वकाम फलाः वृक्षा। धार्मिक मान्यता है कि जिस घर में तुलसी की नित्य पूजा होती है, वहाँ पर यमदूत कभी नहीं पधारते है। वाराह पुराण में उल्लेख किया गया है कि जो पीपल, नीम या बरगद के एक, अनार या नारंगी के दो, आम के पाँच एवं लताओं के दस वृक्ष लगाता है वह कभी भी नारकीय पीड़ा को नहीं भोगता है और न ही नरक–यात्रा करता है।

महाभारत में वृक्षों को देवताओं के समान माना गया है और ये पूजन सामग्री के रूप में भी प्रयोग की जाती है। महाभारत के एक पर्व में कहा गया है कि पर्व और फलों से समबन्धित कोई भी सुन्दर वृक्ष उतना सजीव एवं जीवंत है कि वह पूजनीय हो जाता है।[2]

समुद्रमंथन से वृक्ष जाति के प्रतिनिधि के रूप में कल्प वृक्ष का उद्‌भव होना एवं देवताओं द्वारा उसे अपने संरक्षण में लेना वृक्षों की महत्ता को अवगत कराते हैं पृथ्वी सूक्त में लिखा है कि वन तथा वृक्ष वर्षा लाते है, मिट्टी को बहाने से बचाते है साथ ही बाढ़ तथा सूखे को रोकते है तथा दूषित गैसों को स्वयं पी जाते है।

हमारी संस्कृति में वृक्षारोपण अत्यधिक पुण्यदायी माना जाता है। एवं मन्त्र में स्पष्ट निर्देश है कि पादपारोपण अवश्य करना चाहिए। कभी भी वृक्षों को क्षति नहीं पहुँचानी चाहिए। जैसे–

ouLifr ou vkl;k;lgo (ऋग्वेद 10–101–11)

iu'p & ;k ik;k"k/kh fglh (यजुर्वेद 6/12)

यहाँ जिज्ञासा होती है कि वृक्षों की हिंसा क्या है। वृक्षों का काटना वृक्षों की हिंसा कहलाती है। वैदिक काल में सभी जगह यज्ञों का महत्व था। यज्ञों में निश्चित रूप से होम होता था। होम का क्या महत्व है? होम से निकली हुई धूम पर्यावरण को शुद्ध करती है।

अग्नि पुराण में वृक्षों को पुत्र के समान मानकर उनके पोषण एवं संरक्षण की शिक्षा दी गई है। जो व्यक्ति वृक्षों को काटता है वह घोर नरक में दुःख भोगता है। जो वृक्षारोपण करता है और वृक्षों का संरक्षण करता है उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वृक्षों को सम्मान एवं पूजन अर्चना तथा वेदन तथा संरक्षण के पीछे पर्यावरण को सुरक्षित रखना था। वर्तमान में प्रकृति और पर्यावरण को बचाने उसे फिर से भावानात्मक सम्बन्ध स्थापित करने होंगे। इसके साथ ही भारतीय वैदिक कालीन संस्कृति की प्राचीन मान्यताओं को सामयिक परिप्रेक्ष्य में कसौटी में कसकर फिर से हमें ''माता भूमिः पुत्राः अहं पृथिव्याः' का उद्‌घोष करना होगा। संस्कृति संवेदना से पनपती है और हमारे अंदर वृक्षों के प्रति जब तक गहरी संवेदना संप्रेषित नही होती तब तक पर्यावरण का शोषण एवं दोहन होता रहेगा। इसके लिए आवश्यकता है एक सर्वोपरि अखण्डित अनुशासन की। जिस तरह सूर्य, चन्द्रमा, आकाश अपनी–अपनी सीमाओं में आबद्ध होकर नियमबद्ध तरीके से परिचालित है। इसी को मूलमंत्र मानकर पर्यावरण के अपार क्षरण को रोका जा सकता है। वसुधैन कुटुम्कबम् की भावना का प्रतिपादन करते हुए एवं भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र–

lo HkoUr lf[ku% lo lUr fujke;%A

lo Hknkf.k i';Ur ek df'pr n%[k HkkxHkor AA

की आज के पर्यावरण संरक्षण की इस विराट अवधारणा की सार्थकता है जिसकी प्रासंगिकता आज के ग्लोबल वार्मिग के युग में इतनी महत्वपूर्ण हो गई है।

lUnHk %

1. अश्वत्थ रूपी भगवान विष्णुरेव न संशयः। रूद्ररूपी वटस्तदूत पलाशो ब्रह्मरूप घष्क (पद्‌मपुराण)
2. एको वृक्षो हि यो ग्रामे भवेत पर्णफलान्वितः।
   चैत्यों भवति निर्ज्ञातिर्श्चनीयः सुपूजितः।। (आ० 151/33)

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October, 2018
Pg. No. 185-187

uohu ik|kfxdh vkj m|kxk d lc/kk dk ,d fo'y"k.k

Mk0 uhj t dekj jk;*

लघु और मध्यम उद्यमों को भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है। यह क्षेत्र नवोन्मेष और रोजगार का प्रमुख तो है ही, देश में ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगीकरण का भी महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। भारत में पाँच करोड़ से ज्यादा और मध्यम उद्योग पहले से ही हैं और उपभोक्ता की बढ़ती शक्ति, उपभोक्तावाद के विकास और बढ़ावा देने वाली नीतियाँ चलते उनकी संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। जहाँ तक साधनों और प्रौद्योगिकी का सवाल है, इस निरंतर बढ़ते हुए की जरूरतें भी लगातार बढ़ रही है। उसे अधिक उत्पादक, अधिक गुणवत्ता–संपन्न और लाभप्रद बनाने के साथ–साथ उसके का विस्तार करने में भी प्रौद्योगिकी की अहम भूमिका हो सकती है। भारत सरकार इस क्षेत्र की आवश्यकताओं को समझते लघु और मध्यम उद्यमों की प्रौद्योगिकी सक्षमता बढ़ाने, उसका नयन करने, आधारभूत सुविधाओं के विकास तथा प्रशिक्षण के जरिए कई योजनाएं तथा कार्यक्रम चला रही है।

मास्टर कार्ड और भारतीय व्यापारी परिसंघ की ओर से जारी की गई माइक्रो मर्चेंट मार्केट साइजिंग एंड प्रोफाइलिंग नाम पोर्ट के अनुसार लघु और मध्यम उद्योग देश की अर्थव्यवस्था में बड़ी कंपनियों की तुलना में लगभग तीन गुना योगदान दे रहे हैं। करीब 46 करोड़ लोगों को इस क्षेत्र में रोजगार मिला है। इतना ही नहीं, यह क्षेत्र हर साल 11.5 फीसदी की दर से बढ़ रहा है। लेकिन इस क्षेत्र की अनेक समस्याएं भी हैं, जिनमें प्रौद्योगिकी से जुड़ी हुई ये समस्याएं भी शामिल हैं– तकनीक के बारे में नवीनतम जानकारी का अभाव, तकनीकी प्रशिक्षण और कौशल की कमी, प्रौद्योगिकी में दक्षता रखने वाले कर्मचारियों को नौकरियों के लिए आकर्षित करने की चुनौती और आधारभूत तकनीकी सुविधाओं का अभाव।

आज इंटरनेट हर क्षेत्र में नए अवसर पैदा करने, पहुँच बढ़ाने, प्रक्रियाओं को सरल बनाने, संसाधनों को आसानी से जुटाने और संचार को सुगम बनाने में मद्द कर रहा है। लघु और मध्यम उद्यम वर्ग भी इससे अछूता नहीं है। उद्यमी इंटरनेट का प्रयोग करके नए बाजारों तक पहुँचने में कामयाब हो रहे हैं जो उनके लिए पहले संभव नहीं था। जितनी बड़ी संख्या में उपभोक्ता और सप्लायर इंटरनेट और मोबाइल माध्यमों से जुड़ रहे हैं, उसी संख्या में लघु और मध्यम उद्यमों के विकास के नए अवसर भी सामने आ रहे हैं। एक अध्ययन के अनुसार जो उद्यम इंटरनेट से जुड़े हैं, वे इंटरनेट से दूर रहने वाले उद्यमों की तुलना में दो गुना तेजी से विकास करने में सफल हो रहे हैं। इन परिस्थितियों में इस वर्ग को इंटरनेट में निहित संभावनाओं के प्रति सजग बनाना उनके अपने हित में भी है और हमारी अर्थव्यवस्था के हित में भी।

संयोगवश, इस समय सिर्फ 32 प्रतिशत छोटे उद्यमी इंटरनेट पर मौजूद है। इसलिए इस क्षेत्र में काम करने की बहुत अधिक पैमाइश है। न सिर्फ उद्यमों को नई तकनीकों से जोड़ने की जरूरत है बल्कि जो पहले से तकनीकी रूप से जागरूक हैं, उन्हें बेहतर परिणामों और कार्यकुशलता के लिए अपनी मौजूदा प्रौद्योगिकी के उन्नयन के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। यह एक सुखद तथ्य है कि सरकार के विभिन्न मंत्रालय, सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय इस क्षेत्र की तकनीकी सीमाओं और समस्याओं के समाधान में जुटे है। मंत्रालय के राष्ट्रीय विनिर्माण प्रतिस्पर्धात्मकता कार्यक्रम के तहत इस वर्ग उद्यमियों को सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़े उपयोगों और तकनीकों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसक तहत वेबपोर्टलों का विकास, स्थानीय सॉफ्टवेयर संसाधनों की व्यवस्था, कर्मचारियों को ई–साक्षरता

*असि0 प्रो0, समाजशास्त्र, राजकीय महिला पी0जी0 कालेज, बिन्दकी, फतेहपुर, उ0प्र0

प्रशिक्षण ई–तैयारी केन्द्र स्थापित करने में मद्द दी जाती है। उद्यमियों को कम ऊर्जा खर्च करने वाली तकनीकी की जानकारी दी जाती है। अंतर्राष्ट्रीय गुणवत्ता प्रमाणन हासिल करने में मद्द की जाती है।

सितम्बर 2014 में जारी किए गए भारत सरकार महत्वाकांक्षी कार्यक्रम मेक इन इंडिया के अन्तर्गत और मध्यम उद्यम काफी लाभान्वित हुए हैं। उन्हें निवेश आमंत्रित करने, नवोन्मेष को बढ़ावा कौशल विकास, बौद्धिक संपदा के संरक्षण और आधुनिक विनिर्माण संरचनाओं के विकास में मद्द है।

'स्किल इंडिया कार्यक्रम के अंतर्गत लघु और महत्व उद्यमों सहित तमाम आकार के उद्यमों को तकनीकी, व्यवहारिक, वित्तीय, डिजिटल और उद्योग –अनुकूल भौतिक शिक्षा, व्यावहारिक शिक्षण, प्रशिक्षण और परियोजनामूलक सहायता दी जाती है। केन्द्र सरकार की संशोधित विशेष प्रोत्साहन पैकेज स्कीम –सिप्स के तहत विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) के दायरे में आने वाले लघु और मध्यम उद्यमों को 20 प्रतिशत और गैर–सेज उद्यमों 25 फीसदी का अनुदान दिया जाता है। ये उद्यम वे हैं जो इंटरनेट ऑफ थिंग्स, प्रौद्योगिकी, हरित प्रौद्योगिकी, नैनो प्रौद्योगिकी, एरोनॉटिक्स, ऑटोमोटिव और नवीकृत तथा गैर–नवीकृत ऊर्जा जैसे क्षेत्रों में विर्निमाण में लगे है।

तकनीकी हार्डवेयर, आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस, ऑगमेंटेड और अल रियलिटी, दूरसंचार, नेटवर्किंग, कम्प्यूटर विजन, डिजाइन, प्रौद्योगिकी, वित्तीय प्रौद्योगिकी, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, नैनो प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में कार्यरत उद्यमियों के लिए 25 लाख रूपये सहायता की व्यवस्था न्यूजेन इनोवेशन एंड एंटरप्रिन्योरशिप डेवलपमेंट सेंटर के रूप में उपलब्ध है। अटल नवाचार मिशन के तहत केन्द्र सरकार देश में नवाचार और उद्यमिता की संस्कृति को प्रोत्साहित करने में जुटी है। इसके तहत प्रौद्योगिकी से संचालित क्षेत्रों में नवाचार केन्द्रों की स्थापना, स्टार्टअप/उद्यमों को प्रौत्साहन देने और स्वरोजगार की अन्य गतिविधियों के लिए मार्ग प्रशस्त हो रहा है।

जो उद्यमी अटल इन्क्यूबेशन केंद्रों की स्थापना के इच्छुक है और सभी नियमों के अंतर्गत पात्रता रखते हैं, ऐसे केंन्द्रों के लिए अधिकतम पांच साल की अवधि के लिए, दस करोड़ रूपये की ग्रांट–इन–एड (सहायता अनुदान) की व्यवस्था है। क्रेडिट लिंक्ड कैपिटल सब्सिडी फॉर टेक्नोलॉजी अपग्रेडेशन के तहत लघु और मध्यम उद्यमियों को बेहतर तकनीक के प्रयोग के लिए एक करोड़ रूपये तक के अतिरिक्त निवेश पर 15 प्रतिशत का अनुदान दिया जाता है। इसके दायरे में 7500 उत्पाद शामिल हैं जो भारतीय लघु और मध्यम उद्यमों द्वारा विनिर्मित किए जाते हैं। पात्र उद्यमी इस अनुदान का लाभ उठाने के लिए सिडबी, नाबार्ड, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, बैंक ऑफ बड़ौदा, पंजाब नेशनल बैंक, आंध्र बैंक, कॉरपोरेशन बैंक, केनरा बैंक और इंडियन बैंक आदि से संपर्क कर सकते हैं। इन उद्यमों को ऊर्जा–सक्षम प्रौद्योगिकी के प्रयोग के लिए भी अलग से मद्द दी जाती है। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम देश भर में फैले अपने एनएसआईसी तकनीकी सेवा केंद्रों (एनटीएससी) और उनके विस्तार केंद्रो तथा उपकेंद्रो के माध्यम से सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम इकाइयों को तकनीकी सहायता प्रदान करता है। इन केद्रों के माध्यम से तकनीकी सेवा केंद्रों द्वारा प्रदान की जा रही सेवाओं में प्रशिक्षण तथा परीक्षण, सामान्य सुविधाओं, टूल किट्स, पर्यावरण प्रबन्धन आदि अनेक प्रकार की सुविधाएँ दी जाती है।

केंद्र सरकार के अभियानों, कार्यक्रमों और योजनाओं से लघु और मध्यम उद्यमों का प्रत्यक्ष लाभ ही नहीं हुआ, इनसे देश में ऐसा माहौल बना है जिसके तहत इस वर्ग के उद्यम नई तकनीकों से अधिकाधिक लाभान्वित हो सकते है। अब इन उद्यमों की दर्षष्टि परंपरागत उद्योगों तक सीमित नहीं है और वे आधुनिक प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी कदम बढ़ा रहे है। खासतौर पर सोशल, मोबाइल, एनालिटिक्स और क्लाउड (स्मैक) के बारे में कहा जाता है कि वह भारतीय प्रौद्योगिक मानचित्र की तस्वीर बदलने में सक्षम है। खुशी की बात है कि डिजिटल इंडिया, मेक इन इंडिया, स्किल इंडिया आदि कार्यक्रमों से इन नए प्रौद्योगिकी क्षेत्रामें के प्रति आकर्षण और दिचस्पी बढ़ी है, जिसका इन उद्यमों को त्वरित तथा दीर्घकालीन लाभ हो सकता है। सॉफ्टवेयर और सर्विस कंपनियों के संगठन नैसकॉम का मानना है कि स्मैक के क्षेत्र में 2020 तक तीस प्रतिशत की वृद्धि संभावित है और इस प्रक्रिया में एसएमई क्षेत्र की अग्रणी भूमिका हो सकती है।

इस क्षेत्र में नैसकॉम और सरकार के आशावाद के अनेक कारण है जैसे– ❖ 3 जी और 4जी नेटवर्कों की ओर आसान पहुंच सुनिश्चित करने वाले स्मार्ट उपकरणों कीसंख्या में आशातीत वृद्धि। ❖ सोशल मीडिया की बढ़ती लोकप्रियता। ❖ कारोबारी संस्थानों द्वारा एकत्रित किए जाने वाले डाटा की मात्रा में अथाह वृद्धि। आज कारोबारों के विभिन्न पहलुओं से संबंध रखने वाला डाटा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। ❖ एनालिटिक्स के क्षेत्र में हुई प्रगति, जिसकी वजह से आज डाटा का विश्लेषण करना बहुत आसान हो गया है और लघु तथा मध्यम उद्यम भी अपने स्तर पर इसका लाभ उठाने में सक्षम हो गए है। ❖ क्लाउड तकनीकों का आगमन जिन्होंने उद्यमों को मोबिलिटी और एनालिटिक्स समाधानों का कम लागत पर इस्तेमाल करने का रास्ता खोल दिया है।

और भी अनेक ऐसी तकनीकें हैं जिनमें इस वर्ग के उद्यमी दिलचस्पी ले रहे हैं। उदाहरण के तौर पर रोबोटिक्स और स्वचालन। बहुत से उद्योंगों ने इन्हें अपनाया है और अपनी उत्पादकता का कायाकल्प कर दिया है। जिन्होंने भारतीय एसएमई सेक्टर के बदलते चेहरे को ध्यान से नहीं देखा है, उन्हें शायद इस तथ्य पर यकीन नहीं होगा कि देश के 59 प्रतिशत लघु और मध्यम उद्यम किसी न किसी रूप में रोबोटिक्स प्रौद्योगिकी का प्रयोग कर रहे हैं। प्राइसवाटर हाउसकूपर्स के एक सर्वेक्षण में यह निष्कर्ष सामने आया है। एक अन्य क्षेत्र, जिसमें सरकार के प्रोत्साहन और जागरूकता निर्माण की काफी प्रभाव पड़ा है, वह है कृत्रिम मेधा या आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस तथा मशीन लर्निंग का। इन नई प्रौद्योगिकियों का प्रयोग करके इस क्षेत्र के उद्यम अपनी कारोबारी प्रक्रियाओं को सरल, कार्यकुशल, तेज–तर्रार और लाभप्रद बना सकते हैं। आज सरकारी विभागों के साथ–साथ देशी–विदेशी कंपनियां भी उनके सहयोग के लिए आगे आई हैं क्योंकि उन्हें इस क्षेत्र में टिकाऊ कारोबारी वातावरण के निर्माण की अच्छी संभावनाएं दिखाई दे रही हैं। इन कंपनियों में माइक्रोसॉफ्ट और आईबीएम के नाम प्रमुख है।

उभर रहे सकारात्मक आर्थिक, कारोबारी और तकनीकी माहौल से सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों के लिए नए अवसर पैदा हो रहे हैं। नवीन प्रौद्योगिकी उनके विकास और समृद्धि में अप्रत्याशित भूमिका निभा सकती है। भारतीय सकल घरेलू उत्पाद में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले इस क्षेत्र का कायाकल्प करने में आधुनिक प्रौद्योगिकी की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। जिस सरलता और सहजता से नवीन प्रौद्योगिकी उद्योगों को गति दे रही है वह दिन दूर नहीं जब किसी भी प्रकार का उद्योग अपने को गतिमान तथा बाजार में तत्काल उपस्थिति के लिए सिर्फ और सिर्फ नवीन प्रौद्योगिकी और सूचना प्रौद्योगिकी को ही महत्व देगी। आज का सामाजिक परिवेश पूर्णतः सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग के लिए उत्सुक है और जैसे जैसे नवीन प्रौद्योगिकी और संचार की सुविधाओं की उपलब्धता बढ़ती जायेगी वैसे वैसे उद्योगों की पहुँच जन समाज तक आसानी से सुलभ होगी। यह सुलभता इनकी उपलब्धि का एक नवीन मार्ग तैयार करेगा। क्योंकि समाज का प्रत्येक व्यक्ति ऑनलाइन सामाजिक संरचना के मजबूत नेटवर्क तेजी से स्वीकार कर रहा है।

lUnHk %

1. दाधीच, बालेन्दु शर्मा (2018) : ई–प्रौद्योगिकी से उद्योगों की बढ़ती संभावनायें, अक्टूबर 2018 योजना।
2. राय, नीरज कुमार (2011) : सूचना प्रौद्योगिकी और सामाजिक संरचना, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
3. मेडंलसन, एडवर्ड (2016) : इन द डेप्थ आफ डिजिटल ऐज, दी न्यूयार्क रिव्यू आफ बुक्स।
4 शर्मा शैलेन्द्र डी (2006) : ग्लोबलाइजेशन इन इन साइक्लोपीडिया ऑफ इंडिया (वो0 2) ऐडीटेड बाय स्टेनले वोल पार्ट, थामसन गेल
5. वर्ड, डीलैन (2017) : हाऊ इर्मजिंग टेक्नोलाजी आर इंपैक्टिंग इंडस्ट्रीज, मिडियम डाट काम, दी स्र्टाटअप नवम्बर 2017।

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October 2018
Pg. No. 1-3

ICT integration: Designing Innovative Techno-Pedagogic Strategies for Teacher Education Programmes

Dr. Ajay Singh*

Abstract: *ICT technology to bring changes in our curriculum and also make our teachers technology friendly. ICT enables students with special needs or difficulties. It also helps to reduce the social disparities between pupils, This paper discusses with some basic issues challenges and aims for the use of ICT in education and training.*

Keywords : ICT, Educomp, Equity, Reciprocal, Mentoring.

"ICTs stand for information and communication technologies and are defined, for the purposes of this primer, as a "diverse set of technological tools and resources used to communicate, and to create, disseminate, store, and manage information."(Wikipedia)

ICT is an extended term for information technology (IT) which stresses the role of unified communications and the integration of telecommunications (telephone lines and wireless signals) as well as necessary enterprise software, middleware, storage and audio visual systems which enable users to access, store, transmit and manipulate information. (Wikipedia.org/ICT)

ICT has also been used as the powerful tool for the interaction to the world. ICT includes the range of hardware and software devices and programs such as personal computers, assistive technologies, scanners, digital cameras, multimedia programs, and image editing software, spreadsheet and database programs. ICT includes communication technologies such as computers, video chats and video conferencing. Today in every field it may be banking, business, medical and most important education etc. The literacy of ICT has become very important for people's work, social and personal lives. ICT includes the range of hardware and software devices and programs such as personal computers, assistive technologies, scanners, digital cameras, multimedia programs, image editing software, spreadsheets and database programs. It includes the communication technologies such as computer, video chat and video conferencing.

Internet nowadays playing the most important role in our life. On our smartphones the internet lets you connect to the world and the most important factor which internet is playing is that it provides each and every type of information on your fingertips whether it may be of any area of the world or continent. In the field of education the use of ICT is also a very important factor. While teaching learning process the auditory and visual presence of a student is very important. Through the use of this ICT we create an interest in the students towards learning. ICT makes learning more interesting and joyful. Many schools have inherited the e learning system. Many of the schools have the educomp classes which are called digital classes. In the field of education ICT has changed the method of learning. ICT use in teaching makes teaching learning process more interesting. We all know studying anything visually helps us to remember it for a long term than traditional method of teaching. By the use of ICT teachers can teach the chapter easily and make teaching learning process joyful. The concept of smart classes is based on the same. But in some areas smart classes are adopted because teachers are incompetent of teaching with the help of ICT.

*Asst. Prof. Department of Education, P.S.M. P.G. College, Kannouj, U.P.

The use of ICT:-E-learning gets real,.Bringing the world closer.Presenting creative options, A good source of knowledge etc.

Objectives of ICT in Education: 1. Teachers can encourage the learners to become critical and reflective users of ICT who can evaluate the capabilities and limitations of the technology and of social, technical, political, ethical, organisational and economical principles associated with its use. **2.**Teachers can make the learners become competent and confident users of ICT who can make efficient, effective and creative use of basic application software in their everyday activities; and the teaching of the teachers may improve. **3.** Teachers can prepare the learners for the society of tomorrow by making them adaptable users of ICT who have the necessary openness and flexibility of mind to be able to adjust to future changes in the technology. **4.** Teachers can develop the appropriate social skills that are essential for co-operative and collaborative learning based around ICT; and, **5.** To facilitate better communication between the colleagues thereby promoting greater social understanding and harmony. **6.** To ensure equity between all learners by providing appropriate qualitative and quantitative opportunities to overcome social and learning disadvantages. **7.** To encourage the Teachers to develop the appropriate personal skills that are essential for independent teaching-learning based around ICT.

Measures to improve pre service teacher's competencies in ICT :

1. Technology should be introduced in context. Teaching trainee students basic computer literacy-the traditional operating system, word processor, spreadsheet and database topics are not enough. As with any profession, there is a level of literacy beyond general computer literacy. This more specific or professional literacy involves learning to use technology to enhance the educational growth of students. Professional literacy is best learned in context. Pre-service students should learn many uses of technology because they are involve it into their coursework and field experiences. They should see their professors and mentor teachers model innovative uses of technology; they should use it in their own teaching, and they should explore creative uses of technology in their teaching.

2. Technology should be infused into the entire teacher education programme: Throughout their teacher education sessions, students should learn about and with technology and how to use ICT into their own teaching to make it teaching more interesting and joyful. Limited technology experiences to a single course or to a single area of teacher education, such as methods courses, will not prepare student teachers to be technology-using teachers. Trainee teacher education students should learn about a wide range of latest educational technologies across their professional preparation, from introductory and foundations courses to student teaching and professional development experiences.

3. Students should experience innovative technology-supported learning environments in their programme. A PowerPoint presentation, for example, can improve a traditional lecture, but it does not necessarily transform the learning experience. On the other hand, using multimedia cases to teach topics that have previously been addressed through lectures may well be an example of a learning experience transformed by technology. Students should experience both types of uses of technology in their programme; however, the brightest promise of technology in education is as a support for new, innovative, and creative forms of teaching and learning (SITE, 2002).

The planning and implementation of ICT-related professional development of teacher educators should be led by a planning group that includes representation and expertise from teacher educators, programme administrators, teachers, school administrators, technology experts, and business leaders. The diverse perspectives of the group should provide an understanding of the realities of the classroom, new views of the teaching-learning process, knowledge of the array of technologies that may be used to enhance learning, and community opinions. It is important for a planning group to negotiate a shared understanding of the role of

ICTs in the agenda for educational renewal based on their individual cares and concerns It is also helpful to have a larger advisory or liaison group that may facilitate collaborative professional development efforts and sharing of resources across related organizations, for example, between the university and the partner schools where students are placed for teaching practice.

Measures to improve In service teachers competencies in ICT:

1. Strategically supported workshops: Several workshops can be designed that focused on a few useful applications that faculty could incorporate into their instruction. The teacher educators should learn how to post these materials online in Web CT and set up online class discussions. After the teacher educators had time to see how this worked in practice with their students, a second workshop was provided to help them consider appropriate ways to facilitate collaboration and networking, along with the social issues that might arise in using these methods. These redesigned workshops were highly successful and led to ongoing faculty development.

2. Reciprocal Mentoring: During weekly meetings, the graduate students learn about mentoring and a variety of approaches to infusing technology into education. These meetings foster collaboration and networking among the graduate students, lend moral support, provide opportunities for the development of technical skills, and engage students with relevant literature. Each student also meets with his or her teacher educator mentor weekly and responds to their needs at an appropriate pace. In the early stages of this process, many teacher educators develop confidence with ICTs very slowly, often starting with word processing of scholarly work or with the creation of slides using software. Technical competence is purposefully developed slowly, to keep pace with the emerging confidence and autonomy levels of the teacher educator. This process will be very helpful if we incorporate it in the teaching learning process in the field of teacher education. The teacher mentor and the student mentor both computer and ICT competencies can be developed through this.

Conclusion : This study indicated that introduction of ICTs in teaching and learning process could create significant changes in both teaching and learning. ICT also plays a crucial role in socio-economic development. And could create the educated people who can compete according to the requirement of the world.

References:

1. Carr, N.M. (2013) Graduate Teachers and ICT: The Prospect of Transformative Integration. Melbourne Graduate School of Education .The University of Melbourne. August 2013
2. Devi, S. Rizwaan, M.Chander,S.(2012) ICT for Quality of Education in India, IJPSS Volume 2, Issue 6 ISSN: 2249-5894.
3. Jhuree, V.K. (2005) Technology integration in education in developing countries: Guidelines to policy makers. International Education Journal, 2005, 6(4), 467-483. ISSN 1443-1475 © 2005 Shannon Research Press.
4. Shah, R.A. and Pansare.R.R. (2015) :- Information technology act 2000 &cyber crimes: implications, consequences & control in Maharashtra. Advances in Computational Research ISSN: 0975-3273 & E-ISSN: 0975-9085, Volume 7, Issue 1, 2015, PP.-256-258.
5. Thomas, O.O. , Babatope , K.O., Johnathan , O.O. (2013) Teacher Education, Information and Communication Technology: Prospects and Challenges of E-Teaching Profession in Nigeria. American Journal of Humanities and Social Sciences Vo1. 1, No, 2, 2013, 87-91 DOI: 10.11634/232907811301314.
6. http://lff.iite.unesco.org/eng/effective-integration-of-ict-in-teaching-and-learning.aspx
7. http://legacy.oise.utoronto.ca/research/field-centres/TVC/RossReports/vol7no1.htm
8. https://www.moroccoworldnews.com/2014/06/122206/advantages-of-using-ict-in-learning-teaching-process
9. http://www.teachersofindia.org/en/article/ict-education
10. http://www.indiaeducationreview.com/vc-desk/role-ict-teaching-and-learning

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October 2018
Pg. No. 4-7

Higher Education in New India

Dr. Alok Kumar*

Abstract : *India higher education system is the third largest in the world. The present structure of higher education offers under graduate, post graduate and other technical courses. Institutions of higher education have been providing thousands of graduates and post graduates every year but the Institutions have failed to make the students self sustainable. At this time higher education system in both quantitative and qualitative is important but quality is most important for best future of the students. The Present paper is an attempt to identify and discuss a number of critical issues of quantity and quality of higher education system in India. This paper also advocates for quality, needs and challenges of higher education system in India. So India needs more efficient and educated people to drive for our economy forward. It is correct time to build excelled system in field of education and research.*

Key Words : Higher Education, Technical Education, Quality Education and Quantity.

Introduction : Higher education in India as well as technical education has various aspects of professional education and technical education. India has produced a number of researcher, engineers, technologists, doctors, managers, who are in great demand all over the world. Nowadays Indian higher education system is giving a new way of technical education & professional education. Technical education provides specialized, knowledge, and skilled persons for national development. In technical education engineering students are giving new researchers in the field of science, computer, and courses. In next few decades India will have world's largest set of young people. Currently India has a huge asset in the form of young population which can be channelized and converged to boost the slowly creeping Indian Economy. Significant contribution of manpower and tools provided by higher education, especially technical education can act as a backbone to lead India to a progressive path of various engineering domains. The engineering sector in India has led the society to create, to exchange, to share through networking, to utilize and thus to optimize the limited amount of resources to its full extent for the benefit of the society as a whole. India needs to make the system of education innovative with changing demand. India has already entered in to the era of knowledge explosion. India holds an important place in the global education industry. The country has more than 1.4 million schools with over 227 million students enrolled and more than 36000 higher education institutes. India has one of the largest higher education systems in the world. At the end of introduction the aim of the government to raise its current gross enrolment ratio of 30% by 2020 will boost the growth of higher education in India.

Objectives : The main objectives of this research paper were following- To analyze the present scenario of higher education as well as technical education in India. To identify the issues and challenges that India's higher education sector is facing.To identify the benefit "Make in India" policy in technical education. Suggestion for Improving, quality of higher education and techincal education.

Methodology : The paper is an outcome of the detailed analysis and thorough review of numerous secondary sources in amalgamation with personal observation and understanding

*Associate Professor, Deptt. of Education, Armapur PG. College, Kanpur

of current state of higher education, the challenges faced in the education sector and its impact in the qualitative growth of higher education domain in India.

Literature Survey :

Current Scenario - Emerging Issues & Challenges : The role of higher education in emerging scenario of knowledge economy is very crucial with many problems. Indian higher education system does not create a positive environment as international level. Unfortunately either of the universities, be it private or public, is not at par with the educational standards set up by the prestigious international universities. Hence it is not surprising that none of the Indian universities is listed in the ranks of top educational institutions.

This definitely is a serious concern as a lot has been spent on improvement and upliftment of educational sector and still there is a bottleneck in this sector. A keen insight into this issue evolved certain grey areas that need to be addressed by the nobles and policy makers to bring much needed reform in the education sector.

Findings:

Areas of Concern -

Faculty Shortage Issues : According to a recent report of HRD ministry Govt. of India said that Indian universities as well as technical colleges are facing many problems with faculty issues. Even leading institutions of India like IITs and IIMs are facing the problem of shortage of faculty both in quantitative and qualitative measures. IITs, IIMs and many Indian universities, central universities have many vacant posts. At time to time vacant posts should be filled up by Govt. of India or state government. It is a very important issue for higher education as well as technical education.

Poor Infrastructure : Most of the universities campuses in India lack a good infrastructure viz. outdated equipments in laboratories, inadequate workshop, and lack of Wi-Fi campuses. These basic norms should be taken into consideration and adopted by the UGC and AICTE before granting permission to set up the institution.

Privatization : Privatization of higher education is the critical issue for best and quality education. As only few private universities are giving quality and good education but most of them are not at par with their counterparts. UGC must strictly keep a check on their functioning and their model of education. Higher education in India has expanded very rapidly in last few years. Presently India's Higher education system in the largest in the world in terms of number of institutions.

Total No. of universities are India given below-on 12.04.2018

Total number of universities in India (approx.)

Universities	Total number
State universities	384
Deemed universities	123
Central universities	47
Private universities	296
Total	**850**

According to this report many universities are running various courses. Privatization is the important part of higher education for expansion of higher education but quality should be maintained.

Corruption in education with politics: A large number of people who belongs the political background which are running many colleges they exploit the students with political powers. Students facing many problems related his education. Colleges receive the various courses affiliation but not complete the norms of affiliation bodies. So it is the corruption in education.

Researches issues : In higher education researches are major issues. At this time India needs qualitative research & development for developing India. Education sector has seen a host of reforms and improved with good quality researches. The Government of India should take several steps including openings of IITs and IIMs in new locations as well as allocating educational grants for research scholars.

Lack of Human Values and discipline : There is a lack of mutual respect among the students and faculty members. The so called niche class of researchers and educators in the field of technical as well as non technical education has failed to inculcate much needed human values and professional ethics. In this modern age of machines and robotics we are progressing at a very rapid pace in infrastructure and engineering sectors but at the cost of degraded moral and ethical values.

Modi Government starts a new chapter in Education as "Make in India" boosts higher learning:-New institutes of excellence have been announced making development more regionally balanced with states such as Jammu & Kashmir, Bihar, Himachal Pradesh, Uttrakhand and Assam getting AIIMS, IITs & IIMs .The All India council of technical education (AICTE) and National council of educational of educational research and training (NCERT) are deciding a new syllabus for new problems which have elaborated together the overcome the challenges passed a head in the field of education technical education.
Their emphasis is an to formulate a framework and design curriculum on the job requirements of industries, Thus keeping in mind objective of creating ample amount of job opportunities for the young aspirations in the field of technical education. The road map laid a head by the Modi Government strength the end by the "Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojna" (PMKVY) campaign is an initiative towards imparting job based technical education for the newbie's in engineering sector. "Make in India" is the part of this yojana.

Kaushal Bharat Kushal Bharat : Prime minister Mr. Narendra Modi Launched the Skill India Initiative -"Kaushal Bharat, Kushal Bharat". Under this initiative the government has set itself a target of training 400 million citizens by 2022 that would enable them to find jobs. The initiatives launched include various programmes like: Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojna (PMKVY), National Policy for Skill Development & Entrepreneurship 2015, Skill Loan Scheme & National Skill Development Mission.

* PMKVY is the flag ship programme under the skill initiative and it includes skill training by providing financial reward on completion of training to the participants. The Central Govt. plans to set up skill development centers across India with an investment of Rs 12000 Crore to create opportunities for 10 million individuals by 2020 under PMKVY.
* National Policy for Skill Development and Entrepreneurship 2015 is India's first integrated program to develop skill programme.
* Skill Loan Scheme is designed to disburse loans of 5000 to 150000 with 3.4 million Indian planning to develop their skills in the next years.

Results/Suggestions : Measures to improve the Quality of Higher Education:-

To increase the quantity and quality of higher education: We need more universities with new innovative study methods. There is a dearth of reputed technical Govt. Institutions/ Universities. Hence a large pool of talented students completing their secondary education is not able to join such premier institutes. The primary reason being the lack of money. Due to shortage of money the students cannot afford to take admission in private institutions. At this time there is a need of government universities. The growth of higher education has led to the higher investment in higher education. A large number of private colleges and universities have grown up in recent years providing education from degree to doctoral degree.

Need Higher Investment : India needs more investment in higher education to impart world class education & infrastructure facilities. The opportunities for higher education have increased manifold recently due to the private participation.

Innovative & Dynamic Pedagogy : Learning Methods of higher education should be innovative and dynamic. Quality education requires from teachers new ideas & new skills. Lecture method should be delivered with innovative methods. Workshop, Seminars & other activities should be organized in college campus.

Rich & Dynamic libraries : Our Colleges & Universities libraries should be rich with good and relevant collection of books, journals and research papers. The library must be equipped with The Research Magazines, Encyclopedia and Conference publications that must be made available to the students using web access. Libraries play a vital role in Quality Education.

Conclusion : There are many other challenges that we face in higher education & technical education in India. As we know India has already entered into the era of knowledge explosion. In the few decades the recent developments in computer & communication technology have helped the human life. Progress of our country is must but not at the cost of human values. As the world progresses, people have to face a lot of social, economical, political and cultural challenges which affect their daily lives. Quality Education addresses the issue and formulates a long term solution for the same. So Higher Education lays the foundation for the progress and development of liberal modern Indian society. Therefore we have to be ready for a collective endeavor to initiate reforms in the national interest, since education is the primary agent of transformation towards sustainable development by enhancing people's capacity for transforming their vision into reality. So we can say education should not be treated as a commodity but rather it should be mission. Indian higher education should act as a guiding light to the whole world.

References :

1. Agarwal, Pawan (2006) "Higher education in India Need for change" Indian council for research in International economics relations working paper no 15.
2. Agarwal,R (2014)Higher Education & quality improvement : 'A Challenge for India' Indian Journal of Applied Research
3. Mishra Sharda (2006) UGC and Higher education system in India: Book Enclare Jaipur 30200
4. University News Vol 49 no 31, Aug 2011
5. University News Vol 49 no 35, Aug-29 Sept 04, 2011

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October 2018
Pg. No. 8-12

The Engineer of Soil- Earthworm (Vermicompost)

Parth*

The word soil is originated from ' Solam' which means floor. Soil is natural mass which has three dimensional form. Every soil has three phases- solid, liquid and gas. All soil have main components like miniral ions, organic mass, air and water. Soil is an open system in which substances can be mixed or removed. Soil is a medium for plant growth which gives nutrients to plants.

Soil fertility is the ability to give plants all the necessary nutrients in receptive form. Many types of fertilizers are used to strengthen the soil fertility. Vermicompost is one of them.A revolution is unfold in vermiculture studies for vermicomposting of diverse organic wastes by wast eater earthworms into a nutritive 'organic fertilizer' and using them for production of chemical free safe food in both quality and quantity without recourse to agrochemicals. Heavy use of agrochemicals since in green revolution of the 1960s boosted food productivity at the cost of environment and society. It killed the beneficial soil organisms and destroyed their natural fertility, impaired the power of ' biological resistance' in crop making them more susceptible to pests and diseases. Chemically grown foods have adversely affected human health. The scientific community all over the world is looking for an economically viable, socially safe and environmentally sustainable alternative to the agrochemicals.Vermicompost is the excreta of earthworm, which are capable of improving soil health and nutritive status. Vermiculture is a process by which all type of biodegradable wastes such as farm wastes, kitchen wastes, market wastes, bio wastes of agro based industries, livestock wastes etc. are converted while passing through the worm-gut to nutrient rich vermicompost. Vermi worms are used here act as biological agents to consume those wastes and to deposit excreta in the process called vermicompost.

Vermicomposting : Vermicomposting is an simple biotechnological process of composting, in which certain species of earthworms are used to enhance the process of waste conversion and produce a better product. Vermicomposting differs from composting in several ways. It's a mesophilic process that utilizes micro-organisms and earthworms that are active at 10? to 32? temperature.The process is faster than composting, because the material passes through the earthworms gut, a significant but not fully understood transformation takes place, whereby the resulting earthworm casting are rich in microbial activity and plant growth regulators and fortified with pest repellence attributes as well. So earthworms through a type of biological alchemy are capable of transforming garbage into 'gold'.

Vermicomposting has gained popularity in both industrial and domestic setting because , as compared with conventional composting , it provides a way to treat organic wastes more quickly. It also generates products that have lower salinity levels those are therefore more beneficial to plant medium.The earthworm species most often used are red wiggler, though European nightcrawler could also be used. Red wigglers are recommended by most vermicomposting experts, as they have some of the best appetites and breed very quickly. Users refer to European nightcrawler by a variety of other names, including dendrobeanas, dendras, Dutch nightcrawler and Belgiun nightcrawlers.

*Research Scholar, Department of Horticulture, Veer Bahadur Singh Purvanchal University, Jaunpur

Containing water soluble nutrients, vermicompost is a nutrient rich organic fertilizer and soil conditioner in a form that is relatively easy for plants to absorb. Worm, casting are sometimes used as an organic fertilizer. Because the earthworm grind and uniformly mix minerals in simple form, plants need only minimal effort to obtain them. The worms' digestive system create environments that allow certain species of microbes to thrive to help create a 'living' soil environment for plants.The fraction of soil which has gone through the digestive tract of earthworm is called the Drilosphere.

Pattern idea:

Able worm species : One of the species most often used for composting is the red wiggler or tiger worm; Lumbricus rubellus is another breed of worm that can be used, but it does not adapted as well to the shallow compost bin as does Eisenia fetida. European nightcrawlers may also be used. Users refers to European nightcrawlers by a variety of other names, including dendrobaenas, dendras and nightcrawlers. African nightcrawlers are another set of popular composters. Lubricus terrestris or common earthworm are not recommended, since they burrow deeper than most compost bins can accommodate blueworms may be used in the tropics.These species commonly are found in organic - rich soils throughout Europe and North America and live in rotting vegetation, compost and manurepiles. They may be an invasive species in some areas. As they are shallow dwelling and feed on decomposing plant matter in the soil, they adapt easily to living on food or plant waste in the confines of a wormbin.

Large scale : Large scale vermicomposting is practiced in Canada, Italy, Japan, India, Malaysia the Philippines and the United States. The vermicompost may be used for farming, landscaping,to create compost tea or for sale. Some of these operations produce worms for bait and/or home vermicomposting.

These are two main methods of large-scale vermiculture. Some systems use a windrow,which consists of bedding materials for the earthworms to live in and act as a large bin. Organic material is added to it. Although the windrow has no physical barrier to prevent worms from escaping, in theory they should not due to an abundance of organic matter for them to feed on. Often windrows are used on a concrete surface to prevent predators from gaining access to the worm population. The windrow method and compost windrow turners were developed by Fletcher Sims Jr. of the compost corporation in Canyon, Texas. The windrow Composting system is noted as a sustainable, cost efficient way for farmers to manage, dairy waste.

The second type of large scale vermicomposting system is raised bed or flow-through system.

Here the worms are fed an inch of 'worm chow' across the top of the bed, and an inch of casting are harvested from below by pulling a breaker bar across the largemesh screen which form the base of the bed.

Because red worms are surface dwellers constantly moving towards the new food source, the flow through system eliminates the needs to separate worms from the casting before packaging. Flow- through systems are well suited to indoor facilities, making them the preferred choice for operations in colder climates.

Small Scale : For vermicomposting at home a large variety of adapted containers may be used. They may be made of old plastic containers, wood,styrofoam or a metal containers. The design of a small bin usually depends on where an individual wishes to store the bin and how they wish to feed the worms. Bins need holes or mesh for aeration. Some people add a spout or holes in the bottom for excess liquid to drain into a tray for The most common materials used are plastic :

Recycled polyethylene and poly propylene and wood. Worm compost bins made from plastic are ideal, but require more drainage than wooden ones because they are non - absorbent. However wooden bins will eventually decay and need to be replaced.

Small scale vermicomposting is well suited to turn kitchen waste into high - quality soil amendments, where space is limited. Worms can decompose organic matter without the additional human physical effort that bin composting requires.

Composting worms which are detritivorous, such as the red wiggler Eisenia fetidae are epigeic and together with symbiotic associated microbes are the ideal vectors for decomposing food waste. Common earthworms are anecic species and hence unsuitable for use in a closed system. Other soil species thatContribute include insects, other worms and molds.

Climate and temperature : There may be difference in vermicomposting method depending on the climate. Its necessary to monitor the temperatures of large scale bin system, as the raw materials or feed stocks used can compost, heating up the worm bins as they decay and killing the worms. The most common worms used in composting system, red worms feed most rapidly at temperature of 15-25?. They can survive at 10?. Temperature above 30? may harm them. This temperature range means that indoor vermicomposting with red worms is possible in all but tropical climates. other worms like Perionyx excavatus are suitable for warmer climates. If a worm bin is kept outside, it should be placed in a sheltered position away fromDirect sunlight and insulated against frost in winter.

Vermicompost feature : Vermicompost is an excellent soil additive made up of digested compost worm casting are much higher in nutrients and microbial life and therefore, are considered as a higher value product. Worm casting contain upto 5 times the plant available nutrients found in average potting soil mixes. Chemical analysis of the casting was conducted and found that it contains 5 times the available nitrogen, 7 times the available potash and 1.5 times more calcium than that found in 15 cm of good top soil. In addition, the nutrient life is up to 6 times more in comparison to the other of potting mixes. It's reported that phosphorus while passage through gut of worm is converted to the plant available form. Phosphorus is usually considered as a limitingelement for plant growth. Therefore, any process that significantly increases phosphorus availability through plants and organic matter will be very important for agriculture. The average potting soil mixes that is found in market are usually sterile and do not have a microbial population. The combination of nutrients and microbial organisms are assential for growing healthy and productive plants. Vermicompost not only adds microbial and nutrients that have long lasting residual effects, it also modulates structure to the existing soil, increases water retention capacity. Vermicompost may also have significant effects on the soil physical properties. It was observed that addition of vermicompost @ 20t/ha to an agriculture soil in two consecutive soil porosity after a single application of a dose ofvermicompost equivalent to 200kg/ha of nitrogen to a corn field. Similarly, a significant decrease in soil bulk density and a significant increase in soil ph and total organic carbon after application of vermicompost in two consecutive growing seasons, at a rate equivalent to 60 kg/ha of N. Together these changes in soil properties improve the availability of air and water, thus encouraging seedling emergence and root growth.

Vermicompost contains an average of 1.5%-2.2% N,1.8 %-2.2% P,1.0% 1.5% K. The organic carbon is ranging from 9.15 to 17.98 and contains micronutrients like Sodium, Calcium, Zinc, Sulphur, Magnesium and Iron. Earthworms consume various organic wastes and reduce the volume by 40%-60%. Each earthworm weight about 0.5 to 0.6 gm.eats waste equivalent to about50% of the waste it consumes in a day. The moisture content of casting ranges between 32% to 66% and the ph is around 7.0.

From various studies it's also evident that vermicompost provides all nutrients in readily available form and enhance uptake of nutrients by plants. Soil available nitrogen increased significantly with increasing levels of vermicompost and highest nitrogen uptake was obtained at 50% of the recommended fertilizer rate plus10t/ha vermicompost. Similarly, the uptake of nitrogen (N), Phosphorus (P), Potassium (K) and Magnesium (Mg) by rice plant was highest when fertilizer was applied in combination with vermicompost. The production of potato by application of vermicompost in a reclaimed sodic in India was studied and observed that with good potato growth the sorority of the soil was also reducedfrom initial 96.74kg/ha to 73.68 kg/ha in just about 12 weeks. The average available nitrogen (N) content of the soil increased from initial 336.00 kg/ha to 829.33 kg/ha. Vermicompost contains enzymes like amylase, lipase, cellulase and chitinase which can break down the organic matter in the soil to release the nutrients and make it available to plant roots.

Biological features of worms : About 3000 species of earthworms are found world wide. Out of which, approximately 384 species are reported to found in India and their detail taxonomic studies have been done already majority of earthworm species live in the soil, expect sone species like pontodrilus burmudensis, which lives in estuaries water. Earthworms vary greatly in length.Earthworms are known to inhabit in diverse ecological niches. Besides, they are also found in organic materials like manures litter, compost and hydrophilic environments near fresh and brackish water and also in snowy patches. Most of the earthworms are omnivorous, however, Agastrodrilus a carnivorous genus of earthworms from the Ivory Coast of Africa has been reported to feed upon other earthworms of the family Eudrilidae.

The most effective use of earthworms in organic waste management could be achieved when a detailed understanding of biology of all potentially useful species and their population dynamics, productivity and the life cycle of earthworm are known. Detail studies on Indian species and tropical species and knowledge about productive strategies of earthworm have been done. Earthworms belongsto the family Lumbricidae. Earthworms are hermaphrodites but self- fertilization is rarity. Cocoons or eggs are small varying according to earthworm species. Cocoon colour changes with aging. At the age of 6 weeks, earthworms start laying cocoons.In favorable food and weath conditions are of earthworms could produce approximately 100 cocoons in 6 weeks to 6 months. Cocoon incubate roughly for about 3-5 weeks. Earthworms passes the ability to regenerate body segments, which are lost by accident or coercion.

The doubling time that is the time taken by a given earth worm population to double in its number or biomass,specifically depends upon the eaeth worm species, types of food,climate,condition etc.for example- the mean blinking time of Lampito Mauritii in different organic inputs ranges from 33.77 to 38.05 days while the value for perionyx excavatus is 11.72 to 16.14 days.The adult worm might live for about two years. Full grown worms could be separated and dried in an over to make 'worm meal' which is a rich source of protein (70%), which are often use as animal, poultry and fish feed. E. Eugenia is a manure worm, which has been extensively used in North America and Europe for vermin composting because of its voracious appetite, high rate of growth and reproductive ability. A few years back it was brought to India and it has been progressively increasing.

Benefits of vermicompost:

Soil : Vermicompost improves soil aeration, Enriches soil with micro organisms, Microbial activity in worm casting is 10 to 20 times higher than in the soil and the organic matterthat the worm ingests. Attracts deep-burrowing earthworms already present in the soil, Improves water holding capacity, Enhances germination, plant growth and crop yield Improves root growth and structure, Enriches soil with micro organisms plant hormones such as auxins

and gibberellic acid, Biowastes conversion reduce waste flow to landfills. Elimination of biowastes from the waste stream reduce contamination of other recyclable collected in single bin. Creates low skill jobs at local level, Low capital investment and relatively simple technologies make vermicomposting practical for less developed agricultural regions.Helps to close the 'metabolic gap' through recycling waste on site.

Large systems often use temperature control and mechanized harvesting, however other equipment is relatively simple and does not wear out quickly. Production reduces green house gas such as methane and nitric oxide landfills or incinerators when not composted.

Vermicompost can be mixed directly into the soil. The dark brown waste liquid, or leachate that drains into the bottom of some vermicomposting system as water rich food break down, is best applied back to the bin when added moisture is needed due to the possibility of phytotoxic content and organic acids that may be toxic to plants.The ph, nutrient and microbial content of these fertilizer varies upon the inputs fed to worms. Pulverized limestone, or calcium carbonate can be added to the system to raise the ph.

Conclusion : Vermicomposting to a nonprofessional simply means making of compost by worms by utilizing worms' innate behavior. Vermicomposting process improves soil aeration and thereby promotes the survival and dispersal of the useful bacterium within such systems, which is slowly becoming clear day by day. Vermicomposts could be prepared from the kitchen waste, market waste even from biodegradable city waste. The most effective uses of earthworm are organic waste management and supplement of readily available plant nutrients and vermicompost demands the credit as itmaintain as well as improves soil health.

Reference :

1. Parkin, T. B. and Berry , E. C.(1994) Nitrogen transformations associated with earthworm casts. Soil Biology and Biochemistry,26,1233-1238.
2. Doi:10.1016/0038-0717(94)90148-1
3. Ruz-Zerez, B. E. Ball, P. R. and Tillman, R. W. (1992) Laboratory assessment of nutrient release from a pasture soil receiving grass or clover residues, in the presence or absence of Lumbricus rubellus or Eisenia fetida. Soil Biology and Biochemistry,24,1529-1534.
4. Tara Crescent (2003) vermicomposting development alternatives (DA) sustainable livelihoods.
5. http:// www.dainet.org/livelihoodsVermi Co. (2001) vermicomposting technology for waste management and agriculture: An executive summary Vermi Co., Grants Pass.
6. Gandhi, M., Sangwan, V., Kapoor, K.K. and Dil baghi, N. (1997)
7. Composting of household wastes with and without earthworms.
8. Environment and Ecology, 15,. 432-434. {Citation time (s):1}
9. V. S. Board of Agriculture (1980).
10. Report and recommendations or organic farming -case studies of 69 organic farmers in USA. Publication of V.S. Board of Agriculture. {Citation time(s):1}.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October 2018
Pg. No. 13-16

The Familial Role of Woman as the Housewife

Dr. Mamta Rani*

Abstract : *In modern age, the traditional notion about the functions of a housewife is undergoing a change. Not only the roles of housewife are splitting up but a change is occurring with the regard to the emergence of new roles to be performed by them. Today she is expected to participate in decision making process in the family and gaining a new status of a responsible member of the family. The participation of women in work and social life has also put heavy demands upon the educated women. She has to make adjustment between her traditional role in the family and new roles outside the family. Modern technology and new inventions of time and energy saving household appliances have influenced the household responsibility very much. These inventions have enabled her to perform her roles inside her family in a new way.*

Thus, it will be an interesting proposition to explore how under the changing circumstances the housewife is able to achieve new status and importance in the family and what new role she has developed in the newly emerging situations. The present is devoted to the exploration of familial status and role of the woman as a housewife. The emphasis is to know about the emerging nature of the regulative role of the housewife.

Key Words : House wife, Changing roles, Modern technology.

Aim of the study : How modern housewife under the impact of new forces, has developed new patterns of role- differentiate and diversification, is the main aim of the present study.

Introduction : "The household management is primarily a wife's duty, to be discharged in consultation with her husband. She is to frame a proper annual budget and regulates the daily expenditure according to it. She is to be the paymaster of the household. She is to look after the general needs and comforts of the servants by giving them old clothes and articles. General supervision over cattle and agriculture comes within her jurisdiction, if the family is an agriculturist one. If it is poor, she is to help her husband by taking her own share in the manual labour of the household management. If the family is well to do, knitting, embroidery, kitchen-garden and household decorations are to engage her leisure hours. If the husband is away, she is to shoulder the whole responsibility of the household, and discharge it with due regard to any instructions that he may have left behind.

Data Analysis : In our random sample of 50 house wives, the chief responsibility of keeping household, in nearly one fourth cases was their responsibility. In nearly one fourth cases the mother-in-law was mainly responsible for managing the household. A few said that their husbands were responsible for managing the household affairs. It is strange but probably such women did all the household duties as advised by their husbands and were not ready to claim the responsibility.

Initiative in household works : In both the nuclear and joint families, it is the duty of a wife of get up early in the morning and being to do the household duties. Generally, husband and mother-in-law leave beds later. In some families the servants have to begin the household duties before anyone has left his/her bed.

In 54.25 percent cases the respondents had to take the initiative in household activities getting up first in the morning. In 28.25 per cent case the mother-in-law bore the responsibility of beginning the household duties. In 9.25 per cent families the household duties commenced

*Associate Professor, Dept. Of Sociology, K.G.K (P.G) College, Moradabad

with the grown up daughter and other family members. A few husband (5.75%) had to take the initiative of performing household jobs first, as some of the respondents were handicapped a few had to go their work in the early morning. In some families the servant also shouldered this responsibility.

Differentiation and diversification of roles in household chores : In modern family the responsibility for conducting the household affairs is not upon the shoulders of husband or wife alone, but it is increasingly shared by other member of the family as well. The role of husband, wife and other members are not segmental but are becoming diffused. Morden house wife is now called to perform many function in their family, which were hitherto exclusively in the domain of male members only. Similarly the husbands are also sharing many of the household work which was traditionally enjoined upon their wives only. Recent changes have brought about not only the diversification of roles to be hove performed of role-differentiation in terms of household functions to be performed by the wives and husbands. There is the great change in the attitudes of a modern husband and wife about household duties. A modern woman believes that it is the husband's duty to help his wife in the household chores and the husband also treats his wife as an equal partner in life. He does not feel ashamed of helping her in the household jobs, nor does he ever express that he is obliging her by helping her in household chores which is not his duty at all. With the changing times and needs they both have very well changed their outlook and do not have water-tight compartments in respect of their respective duties. The husband thinks that his wife is not obliged to carry out all the responsibilities and duties as a housewife and a mother, single-handed. In modern times, in some families, if the wife has to be in service out of economic necessity and where due to financial stringency she cannot afford to employ a servant, or also in situations where nobody is to assist her, the husband help in carrying out the household routine. In the educated and economically well off families, servants also help in household activities. In India, domestic help is cheap and most of the middle class families can afford to hire help. With changing times, however, domestic servants are becoming less available in most urban centres and women are obliged to rely on their personal resources. Grown up children also help their mothers in household keeping especially the girls do a lot of household work as cleaning utensils, washing daily garments and decorating their homes. The need of training the young daughters in household duties also obliges many women to involve their daughters in household duties.

Child Care : Child care is the important roles performed by the housewife. But in modern families and especially in nuclear families where the housewives have diverse roles to perform, the responsibility of child is increasingly being shared by her husband and other members of the family.

In our sample, more than a half of the respondent them-selves exclusively cared for their children. In the case of those respondents who were working outside on a job or were handicapped, this responsibility was shared by their husbands and other members of the family. In the case of 20 per cent respondents the children were kept under the care of maid servants. Such case were mostly concerned with working housewives and economically well off families.

Responsibility of family budget : In the earlier period, an earner used to give his income to the head of the family and it was the head's duty to regulate the family budget. But in modern families the educated housewives are taking over the function of keeping the family budget.More than a half of the respondents managed their family budget themselves.

Share in decision-making concerning settlement and arrangement of the marriages of family members

Woman as a household rarely hold the dominant position in making decisions about their siblings' marriages.

The present enquiry points out that the chief responsibility of making decisions about the marriages of children was taken by the mother-in-law and other relatives. In 21.25 per cent families husbands were responsibility for making such decisions. In nuclear families both husbands and wife equally shared this responsibility. There were 20.25 per cent respondents who said that they were themselves responsible for making decisions about the marriage of their children.

It is quite clear that the roles of the family members in performing the household chores have not only diversified but have also been differentiated. It seems that the allocation of household functions has undergone significant change. Some of the role which were exclusively performed by husband and other male members in the family, are now being transferred to the house wife. The higher education among others is the most important cases for such change. The educated house wives on account of their greater maturity and under social exposure are able to control the affairs of the household while modern innovations in connection with domestic appliances have helped them to conduct the household functions more conveniently and effectively, their economic betterment has helped them to employ servants to perform many menial job and the thus providing them enough time for attending social and other familial responsibilities.

Head of Family : In Indian families generally the eldest male member is the head of family. In nuclear families the households the key-position and in the joint family generally the father-in-law and sometimes the mother-in-law or elder brother/his wife enjoy the position.

More than a half of the respondents told that their husband were the heads of their families. In 8.00 per cent joint families the husband of the respondents were acting as head. A few respondents said that they were holding the position of head of their families.

It clearly show the superior status of man to that of woman in our society, and in joint families the authority goes by age, and in majority with males.

Control of the husband's income : In a joint family all earning are expected to be pooled with the head of the family and there is common family purse. Each member of the family is dependent for his/her needs upon the male head of the family. A woman has no concern with her husband's salary. She is often ignorant of the earnings of her husband.

It shows that in India, the control of family income is still in the hands of husbands or eldest male members. In the nuclear families, the wives have much greater control of the husbands' income than in joint families.

Leisure - time : In the past, a woman had no leisure time due to the innumerable tasks of the household. She had to work from early morning till late at night. The invention of electricity and other household labour saving devices have lessened the burden of household chores. Today, an average house wife can do her work in half time.

Majority of the respondents said that their husbands enjoyed their leisure with them (respondents). 15.75 per cent respondents told that their husbands never gave them company and spent their leisure with their friends and colleagues outside the home. In the case of 8.75 per cent respondents, their husbands seldom spend their leisure time. 3.25 per cent husbands had no leisure time as they were always busy in their business.

Thus, most of the women found their husbands as considerate and they had better adjustment in their married life.

Freedom of social intercourse : Woman of every nation has suffered the miseries caused by the concept of double morality for man and woman. Man never tolerates any infidelity on the part of woman but for him the situation is reverse.

After Independence, this atmosphere has somewhat changed. She talked and discussed the problems with her men-colleagues. Traditional barriers between the two sexes were broken. Now she joins co-educational institutions, works in the same office with males, and has friendship too with them.

This shows that the rapid strides in higher education have exercised their impact by creating conditions for a woman to be self-reliant and by creating stronger emotional bonds between her and her husband. The educated wife is expected to be a companion who will share their interests, go with them to clubs and films and participate in social intercourse too. This new concept of wife-hood has assigned to the wife a new status in the family, even if it be joint.

To conclude, the high educational achievement of the women and the economic affluence of their family are the most important reasons responsible for opening new horizons of housewife's role both inside and outside her family.

References :

1. GavronHannah, 'The Captive Wife. Conflicts of Household Mothers.' New York. Routledge and Kegan Paul.Ed.1998
2. Gupta S.S., 'Women in India Folklore', Calcutta, Indian Publication. Ed.2000
3. Indra,'The Status of Women in Ancient India', Banaras, Motilal Banarasi Das. Ed.1990.
4. Mitter, D.N.,'The Position of Women in Hindu Law', Calcutta. ED.1997.
5. Myerson Abraham, 'The Nervous House Wife', Boston Little Brown & Co, 2000.
6. Rajgopal T.S,'Indian Women in the New Age', Mysore, 2008.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October 2018
Pg. No. 17-26

Mobile Phone and Rural Youth: A Sociological Analysis

Dr. Sita Ram Singh*

Abstract : *Mobile phone emerged as one of the defining technologies of contemporary period. Its impact is in term of informative, culturally innovative, participative and converging society. It also affects the personal life of users in many ways including time usage, privacy issues, emancipation, individuality, communications and connectedness, life amusement and time management. Smart phones allow users to surf internet, download music and other data services.*

The present study aims to comprehend how mobile phones are enabling today's rural youth, to communicate with each other and develop relations among them. Present study has three objectives : (1) To discover the general pattern of usage of mobile phones by the rural youth in Sultanpur (U.P.), India. (2) To understand the role of mobile phones as inhibitor or facilitator of communications, interactions and relationships. (3) To discover rural youth addiction for mobile phones.

In this study, 100 rural youths have been selected by purposive sampling in Sultanpur District. Most of the rural youth are using mobile phones for academic purposes. With the help of mobile phones, the rural youth also contact there friends and relatives for social interaction. Hence, mobile phones play a vital role in the day to day life of rural youth. These are more a facilitator, rather than an inhibitor, of building social relations and associated virtual community groupings. Mobile phones have become a symbol of the identity of today's young generation.

Keywords: Mobile Phone, Rural, Youth

Introduction :

India is a vast country of villages where 99 million peoples resides. Out of which 70 per cent population is youth. New digital age consists of mobile phones, internet and media plays important role and it is characterize as new media. It is playing very crucial and unique role in the life of common people of India. Multi-media device is more popular among youth. It is reshaping the social and inter-personal communications. Therefore, new values and cultures are emerging in the new age of media. Rural youth and their mobile phone usages are challenging the traditional restrictions of communications, especially young boys and girl, their interactions, at low cost and without any social hierarchy.

In modern India, it is moving agrarian based economy to service based information society. Therefore, the youth of India turned with new electronic media channel i.e. radio (FM), satellite, television channel, mobile phone, computer (laptop) with mobile internet. It has a powerful force in the social transformation of the rural youth as well as urban youth of the India.

Mobile phone and its technology changes play a major role in each individual's life. These are boon of this century. Mobile phone is considered as an important communication tool and became the integral part of the society. This is not only a communication device but also a necessary social accomplice. Youth surveys consider mobile phones an integral part of survival and some have even gone to the extent of saying that they would rather go without food for a day than without their mobile phones. With mobile phone constant testing, calling, listening to music, playing games or simply fiddling with the mobile phone being such an integral part of their lifestyles.

*Associate Professor and Head, Department of Sociology, Ganpat Sahai P.G. College, Sultanpur (U.P.), India

All India Mobile subscriber figure as of April, 2018-1049.74 million according to COAI (Cellular operators Association of India). In this context growth of mobile phone were very increasingly in March 2018 1040.00 million mobile subscribers. Also all India mobile rural subscriber figures is of March, 2018-432.80 million according to cellular operators Association of India. According to National Digital Communication Policy (NDCP) 2018 India needs collaborative paradigm where multiple stakeholders- Government & private come together to pool in their resources for uniform infrastructure and fiber corridor that benefits all. We need to focus on cyber security and infrastructure security as new technologies and networks could make us more prone to cyber attacks.

More than half of the Indian population is under 25 years of age and is at the forefront of mobile phone revolution. Youth in India clearly indicate that mobile phones play a crucial role in their life and they use them for a variety of communication and media related activities such as accessing internet, news, facebook, listening to music, whatsApp and taking pictures.

Adoption of Mobile Phones among Youth : A mobile phone is a portable telephone that can make and receive calls over a radio frequency. Modern mobile telephone services use cellular network architecture. Mobile phones support a variety of other services, such as text messaging, MMS, email, Internet access, short-range wireless communications (infrared, Blue tooth), business applications, video games and digital photography. Mobile phones offering only those capabilities are known as feature plant. Mobile phones which offer greatly advanced computing capabilities are referred to as smart phones. In India, Jio 4G services were launched on 27 December 2015 and commercially launched its services on 5 September 2016.

Rural youth use mobile phones at increasingly young ages. This underscores the change underway in many societies of Indian youth itself. Status of rural youth and youth in Indian culture in mobiles has become a much more complicated area. When mobile phones include text, photography, news, reading material, television, music, radio, games, advertising, magazines, mobiles turned into media.

Youth throughout the country regularly use the mobile phones to gather information and communicative with each other. This ability to interact with others is the unique feature of mobile phones which provides powerful new ways for youth to create and navigate their social environments. In order to develop identity, physical development, sexuality and moral consciousness, mobile phones are largely used by Indian youth.

Mobile phone has increased mobility among youth in modern generation. Therefore, it has become one of the most prevalent communications generally used by youth. At present, every youth like to have their own mobile phone. Mobile phone is very convenient to contact with family friends and near relatives because it covers several miles away from home. It is considered not only a luxury but a great necessity. Rural youth are using mobile phone for various activities namely- Internet, playing games, text chatting in their personal mobile and in this way they are spending too much time on mobile phone. Mobile phones can also be used to deliver, services and contents by empowering citizens across all sections of society. Mobile phone is also important to enhance social contacts and network in rural and urban youth. Youths are able to update themselves what is happening around them and current events.

Rural India is now expected to grow mobile phone services in future. Mobile phone has made convenience of communications to an unavoidable part of life and mobility accessibility. Mobile phone can also be used as an effective time to convert human mind to stress level to free level. Mobile phones also solve various important problems and provide new channels of communication. Mobile phone can facilitate basic needs and user's centric information and services to an affordable cost of rural youth.

Theoretical Frame Work: A Review : Schramn has study three important functions of the media in a traditional society i.e. to act as a watch dog, as an aid to decision making and as a teacher (Schramn 1964)1. Habermas who is linked with the Frankfurt school of thought made an extensive study on media and they called it the culture industry, meaning the entertainment industries of film, television, popular music etc. According to McLuhan the electronic media are creating a global village, people throughout the world see major news events, unfold and hence participate together (McLuhan 1996)2. Fortunati sought advance social theoretical inquiry into mobiles with her studies of Italian youth (Fortunati 2002)3. Youth was intense for researchers seeking to understand the nature of mobile communications (among many important papers, see: Yoon 2003.4 Katz & Sugiyama 20065 ; Green 2000.6

Taylor and Harper explain that the advantage of text messages through mobile phone is partly responsible for youth's interests in mobile phone. For the other reason advanced is the fact that mobile phone is a fashion and status symbol. This is reflected in the different kinds of sophisticated phone accessories the youths attached to their mobile phones (Taylor and Harper 2003)7. Mobile phones have aided in smoothening the progress of social release of youngsters from parental authority. He had published a sequence of important studies brought together in his influential book 'The mobile connection' (Ling 2004)8. The mobile phone become a critical accessory in the materialization of personal identity. That is mobile phone is a medium for the assertion of its own identity and autonomy (Srivastava 2004)9. Youths found mobile phone precious and useful than any other means of communication (Livingstone and Bober 2005)10. Many researchers contributed studies about youth in particular countries or regions are numerous. The interaction of youth with other social categories and demographics was a leitmotif of formative work, especially in the influential, vibrant area of mobiles in the Asia-Pacific. In this study, many researchers thought that there was an intimate connection between mobiles and youth. Particular aspects of mobile phone culture were strongly associated with young people (Goggin 2006).11 Leslie Haddon was also establishment of mobile studies who undertook probing studies in youth and also children (Green & Haddon 2009)12.

Young people's lives are typically regulated by their parents, families, communities and institutions heavily such as school and previous technologies were not portable (the telephone) or communicative (the television) mobile phones offered new possibilities for the reconfiguration of relationships with their intimates, friendship groups, peers and families (Donald, Anderson & Spry 2010).13 There has been quite an enormous amount of popularity of cell phones in younger generation within a short span of time (Hakoama & Hakoyama 2011)14.

In 21st century, social studies of communication technology, involved in new nations of social interaction with many old and new social problems especially. Issues of social control and safety among people who used mobile phones emerged as a major problems across many societies.

Methodology And Source Of Data : This paper is mainly based on information collected from primary data by using a structured schedule. This study was conducted among mobile phone users in rural areas of U.P. The selection of district and block is purposively done, as it was convenient for the researcher. The selected villages are presented below:-

Table-1 Selected Villages and Sample Taken

Sl. No.	Name of the village	Universe	Sample taken
1	Dihbhikhari	288	24(12%)
2	Jajrahi Jamalpur	324	27(12%)
3	Katrachughupur	336	28(12%)
4	Tindauli	252	21(12%)
	Total	**1200**	**100 (100%)**

Out of these four villages, 100 youth are selected on the basis of purposive sampling method belonging the age-group 15 to 23 years. The nature of study is descriptive. Interview-schedule and participant observation techniques have been used. The data has been collected from primary and secondary sources.

Research Question : The following main research question are framed and discussed in this paper:-

1. To discover the general pattern of usage of mobile phones by the rural youth.
2. To understand the role of mobile phones as inhibitor or facilitator of communications interaction and relationship.
3. To discover rural youth addiction for mobile phones.

Table-2 Socio-Economic Backgrounds of Rural Youth

Criteria	**Sub-group**	**Frequency**	**Percentage**
Gender	Boys	58	58.00
	Girls	42	42.00
Age group	15-17 years	27	27.00
	18-20 years	42	42.00
	21-23 years	31	31.00
Caste	Upper	33	33.00
	Backward	48	48.00
	Scheduled	19	19.00
Educational Status	Schooling	41	41.00
	Graduation	35	35.00
	Post graduation/ others	24	24.00
Family Structure	Nuclear family	71	71.00
	Joint family	29	29.00
Occupational family	Farmers	68	68.00
	Teachers	09	09.00
	Business	17	17.00
	Others	06	06.00
Family Income (Monthly)	Below - 5,000	12	12.00
	5,001 - 10,000	17	17.00
	10,001 - 15000	31	31.00
	Above Rs. 15001	40	40.00
Marital Status	Unmarried	69	69.00
	Married	31	31.00
	Total	**100**	**100.00**

Above table shows that there are 58 boys and 42 girls in four villages of Sultanpur Districts. As far as age-group is concerned there are 27 respondents belonging to 15-17 years age-group, majority of 42 respondents belonging to 18-20 years age-group while 31 respondents come in the 21- 23 years age-group. According to caste category, there are three caste category. Majority of backward caste is 48 percent, number of respondents of upper caste is 33 percent, schedule castes are 19 percent respectively. Our study shows that the backward caste are in majority. Out of 100 respondents there are 41 respondents who have upto 12 standard level education, 35 respondents have graduation level, while 24 respondents have post-graduation/ other degrees achieved.

Family structure shows that majority of respondents (71 percent) belongs to nuclear family while 29 respondents belong to joint family. Regarding occupation of the family, it has been found that 68 percent respondents coming from farmers family, 17 percent respondents come from business family, 9 percent respondent having teacher family occupation, 6 percent

coming from other than three family occupation. Regarding family income it has four categories. 40 percent belong to fourth category i.e. above 15,001 rupees monthly income, 31 percent respondent belong to 10,001-15,000/- rupees monthly income category, 17 percent respondents belong to second category i.e. 5,001-10,000 while 12 percent respondents belong to first category i.e. below 5,000 monthly income. Marriage status shows that in our study majority of the respondents (69 percent) belongs to unmarried, while 31 percent belong to married category.

Chart-1 : Percentage Of Rural Youth Having Smart Phones And Internet

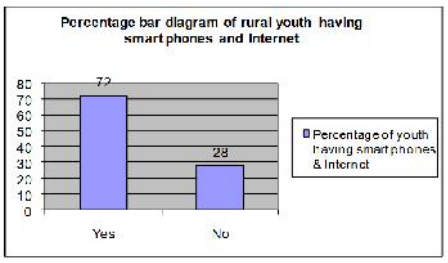

Chart-1 shows there are 72 percent rural youth having smartphones and internet enabled phones while 28 percent respondents have no any smart phones and internet enabled phones.

Chart-2 : Rural Youth Use of Mobile Phone

The split of the use of mobile phone of rural youth shows that there are 53 percent respondents use of mobile phone as social networking. 21 percent respondents users are music category, 5 percent users are games category, while 4 percent respondents are browsing category, 2 percent belong to other category, there are 15 percent respondents of mobile phone users utilise above category.

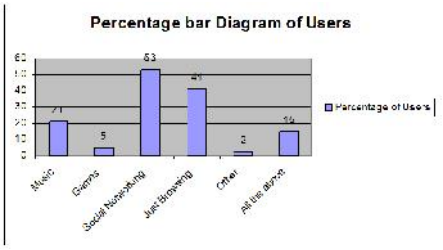

Chart-3 : Rural Youth Preference for Mobile Apps.

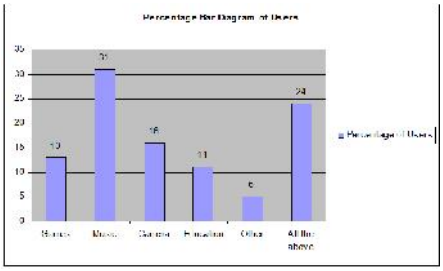

Chart-3 shows there are 31 percent of rural youth prefer music as mobile apps, 16 percent rural youth respondents preference belong to camera mobile apps category, while 13 percent belong to games mobile apps. There are 11 percent rural youth preference are education mobile apps, 5 percents respondents other mobile apps category. On the whole 24 percent respondents preference all the above category.

Chart-4 : Rural Youth Amount of Time Spent on Mobile Phone

Chart-4 shows there 44 percent rural youth spent 4-6 hours on their mobile phones daily, 28 percent rural youth spent 2-4 hours on their mobile phones, 19 percent respondents spent 6-8 hours daily on their mobile phones, 9 percent respondents spent more than 8 hours on their mobile phone.

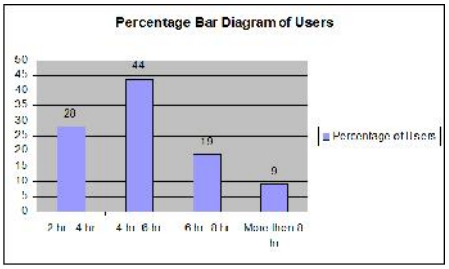

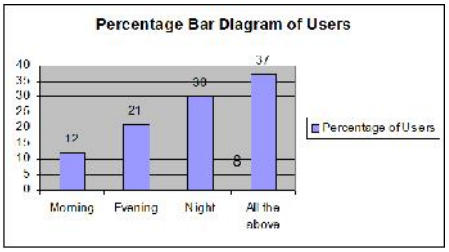

Chart-5 : Use of Mobile Phone at Morning, Evening and Night

Chart-5 clearly shows about the use of mobile phone morning, evening and night by the respondents, 30 percent rural youth mobile phone at

night only, 21 percent respondents use mobile phone at evening only and 12 percent respondents use of mobile phone at morning only, 37 percent rural youth respondents use their mobile phone at morning evening and night time.

Chart-6 : Rural Youth Showing Mobile Use

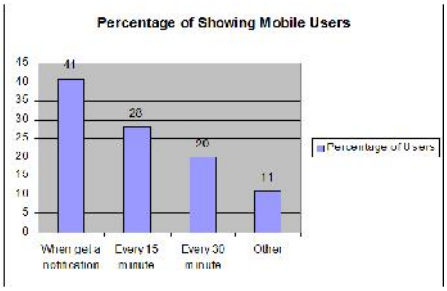

Chart-6 shows that 41 percent rural youth showing their mobile phone when they get a notification, 24 percent rural youth are their mobile phone at every 15 minutes, 20 percent rural youth using their mobile phone at every 30 minutes, 11 percent rural youth use their mobile phone are of other category.

Table-3 Addicted to Mobile Phone and Perceptions of Rural Youth

Criteria	Sub-group	Frequency	Percentage
Addiction	Yes	34	34.00
	No	66	66.00
Perceptions	Necessity agreed	18	18.00
	Disagreed	82	82.00
Perceptions of Medical side effects (MSE)	Perceive MSE	43	43.00
	Do not perceive MSE	57	57.00

Table-3 shows about the addicted to mobile phone and there perceptions of rural youth. There are 34 percent who are completely addicted to mobile phone while 66 percent not addicted to mobile phone. Perceptions of mobile phone addiction of rural youth, there 18 percent respondent agreed that it is necessity, while 82 percent respondents are disagreed about these perceptions. As far as medical side effects (MSE) are concerned 43 percent respondents perceive medical side effects while 57 percent respondents do not perceive medical side effects.

Table-4 Effects of Mobile Phone use in Health of Rural Youth

Criteria	Sub-groups	Frequency	Percentage
Physical Problems	Eye Strain	27	27.00
	Laziness	28	28.00
	Pain in Fingers and wrist	09	09.00
	Reduction in Physical Activity	36	36.00
Mental Problems	Anxious	41	41.00
	Irritable	29	29.00
	Reduction in sleep	30	30.00
Social Problems	Not mixing with friends	11	11.00
	Fighting with friends	06	06.00
	Watching porn sites	19	19.00
	Not obeying parents	28	28.00
	Reduction in educational activity	36	36.00
	TOTAL	**100**	**100.00**

Table-4 describes the effects of mobile phone use in health of rural youth. As far as physical problems are concerned 36 percent respondents agreed that mobile phone use has reduction in physical ability, 28 percent agreed that they have laziness problems, 27 percent

complain about eye strain, only 09 percent respondent are agreed about pain in fingers and wrist due to effects of mobile phone. As far as mental problems are concerned majority of respondents (41 percent) agreed about anxious problems due to effects of mobile phone use, 30 percent respondents complain about reduction in sleep due to the effect of mobile phone use, 29 percent respondents having irritable problems.

Social problems emerged due to effects of mobile phone use. 36 percent respondent agree about the reduction in educational activities. 28 percent respondents do not obey their parents due to more use of mobile phone, 22 percent respondents agree about the reduction in educational activities, 19 percent agree about the porn sites, 11 percent agree that they are not mixing with friends, only 06 percent respondents accept due to the effect of mobile phone use they are fighting with friends.

Mobile Phone And Education

Mobile phone undoubtedly at greater impact on education positively as well as negatively school as a part of agency of socialization has greater importance. In the beginning youth take mobile phone with enthusiasm, but later on they face many problems associated with the use of mobile phone by college going students. According to Srivastava (2005) use of mobile phone provides some problems such as concern for discipline, examination, malpractices and mobile bullying.

Table-5: Rural youth of educational effect from mobile phones

Criteria	Sub-groups	Frequency	Percentage
Disturbance from mobile phones during studies	Yes	42	42.00
	No	58	58.00
Loss of concentration from studies	Yes	54	54.00
	No	29	29.00
	May be	17	17.00

Table-5 indicates data about the rural youth of educational effects from mobile phones. There are 58 percent respondents who have no disturbance from mobile phone during studies, while 42 percent respondents having disturbance from mobile phone during studies. 54 percent respondents agree about loss of concentration from studies, while 29 percent respondents having no loss of concentration from studies, 17 percent respondents are doubtful or may be loss of concentration from studies.

Family Rules : It is interesting to note that there are few common family rules about young people's use of the mobile phone.

Table-6: Mobile Phones use in family

Criteria	Sub-groups	Frequency	Percentage
Mobile Phone Rule	Yes	32	32.00
	No	68	68.00
If Rule, not follow the youth parents punishment.	Yes	18	26.47
	No	50	73.53
Removal of their mobile phones as punishment	Yes	18	26.47
	No	50	73.53

Regarding family rules of mobile phone use it has been found that 68 percent respondents do not follow mobile phone rules, while 32 percent respondents follow mobile phone rules. 73.53 percent respondent accept the family rules parent will not punish them, 26.47 percent respondents agree the family rules are not follow they are punished by parents. 73.53 percent respondent agree that parents will not remove their mobile phone as punishment, when they do not follow family rules, 26.47 percent accept that parents will remove their mobile phone as punishment if they do not follow family rules.

Therefore due to increased freedom as well as micro coordination of daily life has changed power and control parents-child relationship by the adoption of mobile phone within the family. It has little negative impact of the mobile phone on family relationship.

Table-7 : Family Effects of Mobile Phones by Rural Youth

Criteria	Subgroups	Frequency	Percentage
How the mobile have affected the family interactions?	Developed	21	21.00
	Is undo or normal	32	32.00
	Has diminished	47	47.00
What type of relationship do you find between parents and youth?	Sweet	29	29.00
	All of bitterness	32	32.00
	Conflictful	39	39.00
Do you have any increase in family stress from mobile?	Yes	69	69.00
	No	31	31.00
Do you feel any decrease in family oral conversations due to busy on mobile phone?	Yes	60	60.00
	No	40	40.00
Whether mobile has increased companionship with Peer groups than the family companionships?	Yes	73	73.00
	No	27	27.00
Do you feel the maintenance of family responsibilities have come down due to peer group?	Yes	58	58.00
	No	42	42.00
Whether mobile has increased attraction towards heterosexual?	Yes	76	76.00
	No	24	24.00
If yes, then what is the level of attraction	Very Strong	46	60.53
	Normal	22	28.95
	Can not say	08	10.52

Table-7 shows about family effect of rural youth from rural youth. The respondents has been asked how the mobile phone have effected their family interaction. It has been found that 47 percent replied that it has diminished their family interactions, 32 percent says that normal family interaction, 21 percent respondents say mobile phone has developed their family interactions.

Respondents have been asked reply about the relationship between the parents and youth. 39 percent respondent explain that relation between parents and youth are conflictful, 32 percent respondents have been bitterness relationship, 29 percent respondent have very sweet relationship among parents and themselves. Respondents have been asked to dictate regarding increase in family stress by use of mobile phones. It has been found that 69 percent respondents agree with the statement. That they have increase in family stress by using mobile phone, while 31 percent respondents having no increase in family stress by using mobile phone.

Respondents have been asked to reply about the degree of decrease in family oral conversations by busy mobile phones. It has been found that 60 percent respondents have found any decrease in family oral conversations by busy talk on mobile, while 40 percent respondent did not. It has been found that 73 percent respondents have replied affirmative. They believe that mobile use increased better peer-group companionship than family companionship, while 27 percent have replied negative. It has been found that 58 percent respondents accepted the maintenance of family responsibilities have come down due to peer-group, while 42 percent do not have any such opinion. 76 percent respondent replied that mobile has increased attraction towards heterosexual or opposite sex, while 24 percent have not any such opinion. 60.53 percent respondents are of the opinion that mobile has increased the level of attraction very strongly, 28.95 percent respondents are on the opinion

that mobile has normal level of attraction, while 10.52 percent can not say any thing about the level of attraction.

Table-8: Social Effects of Mobile Phones by Rural Youth

Criteria	*Subgroups*	*Frequency*	*Percentage*
Whether the use of mobile phones has reduced the traditional ideal values among rural youth?	Yes	63	63.00
	No	37	37.00
Do you thing that Mobile has created an atmosphere of openness in family and society?	Yes	58	58.00
	No	42	42.00
Whether openness in the family and society has neglected the values and ethics rapidly change in rural youth?	Yes	60	60.00
	No	40	40.00
Due you think that mobile has created any conflicts in performance of social roles?	Yes	57	57.00
	No	43	43.00

It has been found that 63 percent respondent have accepted that use of mobile phone has reduced the traditional ideal values among rural youth, while 37 percent respondents replied in negative. It has been found that 58 percent respondent have accepted the use of mobile phone has created an atmosphere of openness in family and society, while 42 percent do not have any such opinion. It has been found that 60 percent respondents agreed that values and ethics has been changed rapidly in the rural youth due to openness in family and society, while 40 percent respondents, do not have such opinion. It has been found that 57 percent respondents think that mobile has really created multiple conflicts in performing social roles in present society, while 43 percent respondents do not thing as such.

Conclusion : In the present study 100 mobile phone users rural youth have been selected from the four villages of district Sultanpur of Uttar Pradesh in India. It has been found that 58 boys and 42 girls are using mobile phones. It has been found that 72 percent respondents having smart phones and using internet while 28 percent have not such facilities. They use mainly for social networking, music, games, just browsing and others. Majority of rural youth (53 percent) are engaged in social networking, while 21 percent in music, 31 percent rural youth use music mobile apps, and 11 percent education mobile apps. The majority of rural youth (42 percent) in the age group of 18-20 years, using frequent mobile phones.

The use of mobile phone by the rural youth in the caste ridden Indian society it has been surprised that 48 percent backward caste are using mobile phones than the upper caste 33 percent and scheduled caste 19 percent. As per educational status is concerned 12th grade student (41 percent) are using mobile phones than graduation 35 percent and post-graduation/ others 24 percent as for as the nature of family is concerned 71 percent rural youth belong to nuclear family, only 29 percent belong to joint family. On the basis of occupational status of the family 68 percent rural youth belong to farmers occupational category, 17 percent from business occupation family, 9 percent from teachers family occupation.

In our study it has been found that 40 percent rural youths monthly family income is above 15,001/-.

In our study I have found the role of mobile phones as medium of facilitator of communications, interactions and social relationship, mobile phones are facilitating need based, user-centric information and services at an affordable cost of rural youth rather than inhibiting in fulfilling socio-cultural activities. Mobile phone is reshaping the social and inter-

personal communication, leading new values and culture. Caste structure is not barrier in social communications. Rural youth and their mobile phone used are challenging the traditional restrictions of communication, especially young rural boys and girl's interactions. Therefore, mobile phone are playing crucial and unique role in the life of common people especially younger age group.

It has been found that 34 percent rural youth are addicted to mobile phone while 66 percent are not addicted to mobile phone. There are 18 percent rural youth agreed the perception of mobile phone addiction of rural youth is positive. 43 percent rural youth perceive medical side effects.

In mental problems mainly anxiousness 41 percent, reduction in sleep 30 percent and irritability 29 percent have been found. Regarding social problems namely not obeying parents 28 percent, reduction in educational activities 36 percent, watching porn sites 19 percent not mixing the friends 11 percent, and fighting with friends 06 percent only have been found.

This type of study will serve as foundation for more analytical studies in the area of mobile phone in a developing countries like India.

References :

1. Schramn, W.: "Mass Media and National Development", Stanford, CA: Stanford University Press, 1964.
2. McLuhan, Marshall: "Understanding Media: The extensions of Man", Ist Ed., McGraw Hil, New York, 1994.
3. Fortunati, L. (2002): "The Mobile Phone: Towards New Categories and Social Relations: Information, Communication & Society, 5,513-528.
4. Yoon, K. (2003): Retraditionalizing the mobile: Young people's sociality and mobile phone use in Seol, Korea, European Journal of Cultural Studies 6(3), 327-343.
5. Katz, J.E. & Sugiyama, S. (2006): "Mobile phones as fashion statements : Evidence from student surveys in the US and Japan, New Media & Society, 8, 321-337.
6. Green, N. & Haddon, L. (2009): "Mobile Communications, Oxford, UK and New York, NY: Berg.
7. Taylor, A. & Harper, R. (2003): "The gift of the gab: A design oriented sociology of young people's use of mobilize. Journal of computer supported cooperative work 12,3,267-296.
8. Ling., R. (2004): "The mobile connections: The cell phones impact on society", San Francisco, CA: Morgan Kaufmann.
   --- Ling R. : 'Adolescent girls and young adult men: Two subcultures of the mobile telephone", Revista de Estudios de Juventud 2002; 57(2): 33-46, Retrieved January 9, 2007.
9. Srivastava, L. (2004): "Social and Human considerations for a more mobile world. Paper presented at the ITV/MIC Workshop on shaping the future Mobile Information Society, Seoul, South Korea, Retrieved on March 29,2014 from http://www.itau.imt/ osg/spu/ni/futuremobile/ socialconsiderationsBP.pdf
10. Livingstone, E, S & Bober, M. (2005): "United Kingdom 90 online: Final report of Key Project Findings Ladson LSE Report Retrieved 4/2/2001 from www.children.go.online.
11. Goggin, G. (2006): "Cell phone culture: Mobile technology in everyday life, London, UK and New York, NY: Routeledge.
12. Green, N. & Haddon, L. (2009): "Mobile Communications" Oxford, UK and New York, NZ: Berg.
13. Donald, S.H., Anderson, T. & Spray, D. (Eds.) (2010): "Youth, society and mobile media in Asio", London, UK and New York, NY; Routeledge.
14. Hakoama M. and Hakoyama S. : "The Impact of Cell Phone Use on Social Networking and Development among College Students" The American Association of Behavioral and Social Sciences Journal, 2011; 15:1-20.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October 2018
Pg. No. 27-31

The Significance of Rational thoughts of Dr. B. R . Ambedkar on Education

Shishu Pal Singh*

Abstract : *The Researcher try to throw light onSignificance of Rational thoughts of Dr.B.R Ambedkar on Education.Dr. Bhim Rao Ambedker was a well-known teacher himself. He established People's Education Society in Bombay and Aurangabad to educate the students of Dalit community. His educational philosophy is reflected in his lectures, his published articles in various magazines and his work in the educational institutions. The present paper is concerned with his educational philosophy. According to him school is a holy institution where the minds of students are made well cultured. School is a factory of making good citizens. Education is a lifelong continuous process and teacher is the major part of it. The education of women is also important like the education of men. Education is the way of freedom from exploitation. It awakens the society and helps to make it self-dependent and self-confident.He considered the education as the most powerful weapons to survive in front of upper-caste society. So, try achieve this weapon as education.*

Introduction : Dr. B.R Ambedkar was not only the father of Indian Constitution but was a great freedom fighter, political leader, philosopher, thinker, writer, economist, editor, and a revivalist for Buddhism in India. His Educational philosophy stresses on development of persons and their environment. Ambedkar strongly believed that education should be provided without any discrimination to all the citizens of independent India.

"Education is not only the birth right of every human being but also a weapon of social change." - Dr. Bhimrao Ramji Ambedkar.

Dr. B.R. Ambedkar was a great intellectual of international repute, orator, erudite scholar and prolific writer. The range of his writings includes education, economics, sociology, law, constitution, anthropology, political science, religion and philosophy etc. Dr. Ambedkar brought a new awakening and a sense of social significance and confidence among the deprived section of the society. He waged a relentless war against the Hindu social order for social equality, human dignity and politico economic empowerment. His primary aim was to make the Dalits of India socially and politically conscious of their human rights. He inspired them to prepare themselves for a revolution through education, organization and agitation.

Dr. Ambedkar states that the true function of philosophy is not only to explain the nature of the world, but also to inspire man for changing it in order to make it a better habitation for mankind. Although philosophy includes in its scope a multifarious range of subjects, yet, Dr. Ambedkar viewed philosophy in his own way. For Dr. Ambedkar, philosophy has a social and ethical meaning, because he wanted it to be a means of social change. Ambedkar was a social philosopher in a more fundamental way. According to him, "Philosophy has its roots in the problems of life and whatever theories philosophy propounds must return to society as instruments of reconstructing society. It is not enough to know. Those who know must endeavour to fulfil." Dr. Ambedkar applied his social philosophy in the field of education and tried to use it as instrument to change the society. He said that learning was essential for every individual if he wished to make progress in the life. He stresses the need of educating the downtrodden for the real social and economic progress of the society.

*Research Scholar, Faculty of Education (K), Banaras Hindu University, Varanasi

Ambedkar believed in liberal education and based on religious inspiration of non -theistic nature. Education according to Ambedkar was a blend of pragmatism of Dewey and 'dhamma' of Buddha. He thought that education would enlighten his people and bridge the gap between the higher classes and untouchables.

The Concept of Dr. Ambedkar's Philosophy on Education : Dr. B.R. Ambedkar had constantly fought to eradicate birth-based oppression where the basic amenities like education, employment, housing, equal opportunities are restricted for the benefit and development of the few upper classes. Equality in every aspect is reflected in the constitution and proves to be an important element is its composition.

The NCERT says, "Across the country, enormous strides towards establishing schools within the reach of every habitation have been made. Attempts to put larger number of children through schooling have proved to be successful. But pockets of children still remain to be reached- children from the socially weaker sections, those belonging to the scheduled castes and tribes, those belonging to the minority groups, and particularly girls, in each of these groups. The need of the hour is to identify the extraordinary socio-cultural circumstances which restrict these children from accessing schools." Hence despite of making constitutional legal rights, the children and youth of depressed classes are not able to enjoy the equal and quality education. In the Indian society, people are illiterate and they are not aware about education as well as their basic rights of the life, still people are facing caste discrimination in society.

The education system projects itself as a tool for empowerment, upliftment and equality for depressed sections. But social perspective has not changed its image. Dalit students in today's knowledge and technological laden era, are still facing the rejection from their teachers who give priority to so called upper caste students. The lower castes are still sidelined from the learning process and are harshly treated. Although for economic upliftment of these students government but maximum students are giving scholarships under various schemes are devoid of awareness about these scholarships.

Education and Success of Indian Democracy : For the smooth functioning of Democracy in India he laid greater emphasis on education. Due to the western impact and his own experience in democratic countries, he understood the dire necessity of education for the country like in India. He considered education as an important tool for the eradication of caste system in India and for thebetter prospects of Democracy in India. He interrelated caste, democracy and education in his own manner and tried to give solution for eradication of caste system.

Dr. Ambedkar said in his speech on Prospects of Democracy in India on 20 May 1956 that "can education destroy caste?" The answer is 'Yes' as well as 'No'. If education is given as it is today, education can have no effect on caste. It will remain as it will be. The glaring example of it is the Brahmin Caste. Cent percent of it is educated, nay, majority of it is highly educated. Yet not one Brahmin has shown himself to be against caste. In fact an educated person belonging to the higher caste is more interested after his education to retain the caste system than when he was not educated. For education gives him an additional interest in the retention of the caste system namely by opening additional opportunity of getting a bigger job. From the point of view, education is not helpful as means to dissolve caste. So far is the negative side of education. But education may be solvent if it is applied to the lower strata of the Indian Society. It would raise their spirit of rebellion. In their present state of ignorance they are the supporters of the caste system. Once their eyes are opened they will be ready to fight the caste system.

He considered the chief aim of education is the moralization and socialization of people. He declared that 'Education is the foundation of civilization and culture.'Ambedkar

advised the downtrodden people to take education to openly challenge and annihilate the caste system from Indian society.

Dr. Ambedkar put lot of emphasis on education to elevate the economic position of Dalits. To end the unjust and unequal social order, there is no alternative other than education for Dalits. Ambedkar believed that through education and knowledge Dalits will gain self-motivation and self-confidence which will give them power and strength to fight against the unjust social order. That is why along with social movement and educational movement, Ambedkar established educational institutions in different parts of Maharashtra. He established colleges and gave opportunities of higher education to Dalits. He also demanded scholarship, free ships and economic concessions for the spread of education as he was aware of the economic difficulties of students. In constitution, he prescribed many articles for the spread of education. Free and compulsory education was also made as state responsibility under Directive Principles of State Policy. He firmly knew that without education Dalit's cannot achieve any progress in society. That is why he established educational institutes and gave fee concessions, demanded reservation in educational institutes and hostels for the promotion of education.

Education and Teachers : Babasaheb himself was innovative and creative teacher. According to him education is a continuous process and the teacher provides the real base to it. Therefore, education and ability depends entirely upon authentic knowledge, self-reliance, learning attitude and delivering skill of the teacher. He adopted the triangular formula of 'वाचन–मनन, चिंतन और अध्ययन' in his teachings. Due to this formula he himself became a good teacher and in broader sense a social teacher. A teacher should be multifaceted. He should be sharp minded and choosey character. He is the national builder because education is in the hands of teacher and the development of a nation depends upon educated manpower. So, every educational institution should have intellectual, positivist and kind hearted teachers to teach the poor and baseline students.

Dr. Ambedkar's Views on University Education : Ambedkar not only stood for primary universal education, but he also urged and emphasized the need of a well-organized university education to meet the social requirements of the poor and the weaker sections of our society. He himself was the fellow of University of Mumbai. He said the chief aim of University should be spread of education amongst the subaltern masses.

Even in regard to higher education, Dr. Ambedkar held that "it is the duty of a modern University to provide facilities for the highest education to the backward communities" and as a necessary corollary suggested that "the backward communities should have some control in the University affairs". He looked upon the University "primarily as a machinery, whereby educational facilities are provided to all those who are intellectually capable of using those facilities to the best advantage, but who cannot avail themselves of those facilities for want of funds or for other handicaps in life." He strongly recommended nomination of members of backward communities on the University senates which functioned like legislative bodies and were supposed to put forth the needs of the backward communities and to suggest the facilities that were necessary for meeting them.

Dr. B. R. Ambedkar addressed the students' annual gathering at Elphinstone College on 16 December 1952 on "the problems of modern students". He appealed to the students to reorganize university education to meet the requirements of the modern world, and to make the university a place for knowledge and not as centre for training clerks." In this way, Dr. Ambedkar has delivered number of speeches on the reforms in higher education and social inclusion.

Social Justice: Concept and Issues: The ideas of social justice applied solely to a particular people or nation with the intention of redressing effects of hierarchical inequalities, particularly

inherited inequalities. 'What is justice?' Perhaps since then, this has been one of the most vital questions of social and political ethics. In other hand, the social justice being a multi-dimensional concept, it has been viewed by scholars of law, philosophy and political science with differences. The term social justice is quite comprehensive. The Social justice is a bundle of rights, it is Ambedkar's Vision: Social Justice balancing wheel between upper to down. It is a great social value in providing a stable society and in securing the unity of the country. In legal point of view, Social justice may be defined as "the right of the weak, aged, destitute, and deprived, women, children and other under-privileged castes". As a result, most moral and political philosophers are treating injustice as the simple absence of justice: as Justice in the time of transition a kind of situation, where the principles of justice are premeditated to manage or eradication of injustice. Plato defined Social Justice as,"the principle of a society consisting of different types of men… who have combined the impulse of their need for one another and their concentration on their combination in one society and their concentration on their separate function, have made a whole which is perfect because it is the product of image of the whole of the human mind (Annas 1981)" it means, his theory of Justice is based upon equal treatments for all human beings but in Indian scenario it is very complex about Justice for the Downgraded Castes because Indian society is based upon the grading system. In this regard, it is critical to conceptualise the term of Egalitarian society and Hindu Social system.

Education is Equivalent to Food : Babasaheb says by stressing on progress of literacy and development that to admit a child in a school is not surety of his being literate. The development of the ability to make him literate and educate till whole of the life is the purpose of the school or educational institution. The child should not drop out of the system till the achievement of the basic goal. Education is equivalent to food which is needed daily till whole of our life.

Conclusion : Thus, Dr. Ambedkar's philosophy of education was the blend of rational and secular philosophy of Gautama Buddha and the pragmatic philosophy of John Dewey. Dr. Ambedkar's three word formula - 'educate, agitate and organize' is a powerful tool of social change even today. Ambedkar made the oppressed lot of the depressed classes conscious of their rights, which was denied to them for centuries. Educating the downtrodden people, he thought, was a sure way to instil in them a sense of consciousness, self-respect and dignity. He wanted the people to cultivate the values of freedom and equality among themselves; it was possible only through education. This is turn would provide the necessary cultural basis for their progressive assimilation into the mainstream of an enlightened national life.

Dr. Ambedkar was a symbol of knowledge and character. He regarded education as a means to reach the doors of light and perception to remove the regions of darkness and ignorance. He used his philosophy of education to make aware of the condition of social degeneration in Hindu society among the lower strata of society and change the social order for the benefit of entire humanity. Through his educational institutes, he strives for educational development of all. He was an 'organic intellectual' in real sense. Dr. Ambedkar's contribution towards education and his independent thinking made him an independent intellectual of the world. He propounded his own philosophy of education and had largely influenced the outlook of downtrodden. In order to honour his brilliant academic career his statue is placed at the entrance London School of Economics and below that "Symbol of Knowledge" is written. It shows that how he was acclaimedas great student and educationist of far excellence. Dr. Ambedkar's thoughts on education and his educational philosophy are relevant even today in the 21st Century for the socio-economic and political development of our country.

"So long as you do not achieve social liberty, whatever freedom is provided by the law is of no avail to you" - Dr.B.R. Ambedkar, India's first Law Minister.

References :

1. Babasaheb Ambedkar: Writing and Speeches, Vol II, pp. 40-41
2. Ambedkar, B.R. (1936), Annihilation of Caste; reprinted in Government of Maharashtra (1979-98), volume I.
3. Babasaheb Ambedkar: Writing and Speeches,Vol XIX
4. Dr. Babasaheb Ambedkar Writing and Speeches, Vol. I, p. 15, Bombay: The Education Department, Government of Maharashtra, (1979)
5. Ambedkar, B.R. (1957), The Buddha and His Dhamma (Bombay: People's Education Society
6. Dr. BabasahabAmbedkar Writings and speeches Bombay 1979, Vol.14, part 2.
7. Rodriguez, Valerian (ed.) (2002), the Essential Writings of B. R. Ambedkar (New Delhi: Oxford University Press).
8. Drèze, J.P., and Sen, A.K. (2002), India: Development and Participation (New Delhi: Oxford University Press).
9. Dr. Navjot - Education and Vulnerable Communities- Reading B.R. Ambedkar'sVisionhttp://ijellh.com/education-and-vulnerable-communities-reading-b-r-ambedkarsvision/ 2-10-2016 2-25pm
10. Ambedkar,B. (1995).Writings and Speeches,14(1) Education Department, Govt. of Maharashtra
11. Goel, S. (2014), ,The Relevance of Ambedkar's Educational Philosophy for the 21st Century?, Recent Educational & Psychological Researches, Vol.3, Jan.-Feb.-March, pp.59-62.
12. Ambedkar, B. R. (1987), Dr. Babasaheb Ambedkar Writing and Speeches Vol. 3, Bombay: Department of Education, Government of Maharashtra.
13. Badal, S. (2013) Dr. B. R. Ambedkar's theory of State Socialism International Research Journal of Social Sciences.

14 Waghmare, S.(2015).Why is Education so Important? Retrieved onhttp://www.baiae.org.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October 2018
Pg. No. 32-35

Victim of Crime: An Introduction to Compensation and Rehabilitation

Sudhanshu Singh*

Introduction : Social justice is the signature tune on the Indian Constitution. Preamble and directive principles of the State policy plan to ensure justice-social economic and political to all. Article 14 speaks of equality before law and equal protection of the laws within the territory of India. Article 21 forbids state from depriving "any person of the life or personal liability" except with the procedure established by the law. Article 41 requires state to make effective provisions or "securing the right to public assistance in cases of disablement and in the other cases of undeserved wants, Article 51-A imposes fundamental duties on every citizen "to have compassion for living creatures", "to abjure violence" and "to develop humanism." The constitutional guarantee should include the right of the individual to remain free from being made a victim. Our constitutional commitment should have its overtone in criminal justice system.

Many countries of the world have passed comprehensive victim's code dealing with victim's participation, reparation and restoration. The present study proposes to examine the Indian attempts to keep pace with victim's right in view of radical victimology. The present study plans to critically examine the sufficiency of present legislation recognizing victim's right to restitution and compensation under section 357 of the code of criminal procedure.

The Meaning, Definition and Classification of the Victims of The Crime : Definition of Victim: Section 2(wa)[1] of Cr.p.c. provides that "Victim" means a person who has suffered any loss or injury caused by reason of the act or omission for which the accused person has been charged and the expression "Victim" includes his or her guardian or legal heir. Another word "Victim" means person harm, injured, or killed as result of a crime, accident or other events or action.

Who Are The Victims? Anyone Can Be A Victim! Victim´s can be of any age, sex, race, culture, religion, education, employment or marital status. Although both men and women can be abused, most victims are women. Children in homes where there is domestic violence are more likely to be abused and/or neglected. Most children in these homes know about the violence. Even if a child is not physically harmed, they may have emotional and behavior problems. Since abuse can happen to anyone, people can have special concerns. All resources listed in this book understand your special concerns. They will listen to you and treat you with respect.

If you are a person of color... You may be afraid of prejudice. You may be afraid of being blamed for going out of your community for help.

If you are a lesbian, gay, or transgendered person... You may be afraid of having people know about your sexual orientation.

If you are physically or mentally challenged or elderly ... You may depend on your abuser to care for you. You may not have other people to help you.

If you are a male victim of abuse ... You may be ashamed and scared that no one will believe you.

*Assistant Professor, Gyananda Law College, Mirzapur

If you are from another country ... You may be afraid of being deported.

If your religion makes it hard to get help ... You may feel like you have to stay and not break up the family.

If you are a teen ... You could be a victim of abuse or at risk if you are dating someone who:

- ♦ is very jealous and/or spies on you;
- ♦ will not let you break off the relationship;
- ♦ hurts you in any way, is violent, or brags about hurting other people;
- ♦ puts you down or makes you feel bad;
- ♦ forces you to have sex or makes you afraid to say no to sex;
- ♦ abuses drugs or alcohol; pressures you to use drugs or alcohol;
- ♦ has a history of bad relationships and blames it on others;
- ♦ It is hard for teens to leave their abuser if they go to the same school. They cannot hide. Gay and lesbian teens are very isolated. They can be scared they may have to reveal their sexual orientation.If you think you are being abused, think about getting help. If your family or friends warn you about the person you are dating, think about getting help. Tell friends, family members or anybody you can trust. Call a resource listed in this book. There is help for you. You do not have to suffer in silence.

If you are a child in a violent home ... Most children in these homes know about the violence. Parents may think children do not know about the violence, but most of the time they do. Children often know what happened. They can feel helpless, scared and upset. They may also feel like the violence is their fault. Violence in the home is dangerous for children. Children live with scary noises, yelling and hitting. They are afraid for their parents and themselves. Children feel bad that they cannot stop the abuse. If they try to stop the fight, they can be hurt. They can also be hurt by things that are thrown or weapons that are used. Children are harmed just by seeing a hearing the violence. Children in violent homes may not get the care they need. A parent who is being abused may be in too much pain to take good care of their child. Children who live in violent homes can have many problems. They can have trouble sleeping. They can have trouble in school and getting along with others. They often feel sad and scared all the time. They may grow up feeling bad about themselves. These problems do not go away on their own. They can be there even as the child gets older.There is help for children in violent homes. Call a resource listed in this book to talk to someone. This can also help if you grew up in a violent home.

If you are being stalked... Stalking is repeated harassment that makes you feel scared or upset. A stalker can be someone you know or a stranger. They often bother people by giving them attention they do not want. This can be unwanted phone calls or gifts, or following people by going to where they work or live. It can also be threats to you or your family.

People may think stalking is not dangerous because no one has been physically hurt. Stalking is serious. It is against the law. It often turns to physical violence. There is help. Find out how to get a Personal Protection Order (PPO). You can also tell the police. You can make a case by keeping track of what the stalker does by:

1) telling the police every time the stalker makes contact with you;
2) keeping a book with you at all times so that you can write down the stalkers contacts;
3) saving phone messages from the stalker;
4) saving letters and gifts from the stalker;
5) Writing down information about the stalker, like the way they look, kind of car they drive and license plate number.

Meaning of The Victims of Crime : The expression 'victims of crime' refers to any person, group or entity who has suffered injury, harm or loss due to illegal activity of someone .The harm or injury, as said earlier, may be physical, psychological or financial. Such a person may be called a 'primary victim' of crime. Besides , there may also be 'secondary victim's who suffer injury or harm as a result of injury or harm to the primary victim .For instance, the children of a raped woman or a bettered woman suffering from lack of paternity and called a 'bastards'.

There may also be tertiary victims who experience harm or injury due to the criminal act of the offender. The term tertiary 'victim' means another person besides the immediate victim, who is the victimized as a result of the first person's action. For instance in the case of a communal riot the Muslims who are killed, injured or whose property is ransacked are the primary victims of the crime whereas the dependents and relatives of the deceased or injured persons are the secondary victims of that crime. Besides these victims, the hatred culminated for the Muslim community by the perpetrators of communal tension and riots generates hate phobia and fear of violence among the Muslim members of the society. Thus, they are tertiary victims of the communal riots. Let it be illustrated by yet another example. In case of rape, the woman raped is the primary victim while her husband, children or illegitimate child, if born out of such rape, are secondary victims. But the general share and disgrace, which the entire family of the raped victims has to suffer makes the member of the family 'tertiary victims'. Particularly, the people would shun and avoid contacts with the family of the victimized woman and would refrain from entering into any kind of matrimonial relationship with such a family. The media, through newspaper reporting, television, radio etc. are to some extent responsible for tertiary victimization in such offences.

The expression 'primary', secondary and 'tertiary' victimization suggests that there is some sort of hierarchy in level of suffering experienced as the result of crime. But it can be assumed that secondary and tertiary victims necessarily suffer less trauma than the primary victims. They may also face the physical, psychological and emotional pain similar to that of the primary victims. Therefore, it would not be correct to define primary secondary and tertiary victims in the terms of more suffering, less suffering or least suffering. For example where a person meets with an auto-accident when a truck negligently being driven by the driver hits an auto rickshaw and the person (occupant) was instantly killed the deceased is the prime victim who has died. His wife is the secondary victim, because now she is left with entire responsibility of supporting her children and family and if she not a working woman or sufficiently educated woman, her suffering would aggravate much more. The three kinds of the deceased person would be tertiary victims in the case because they suffered the impact of untimely loss of their father's support and now are burdened with the responsibility of helping their mother financially or otherwise. Though they are the tertiary victims, suffering is perhaps far more than their mother is the secondary victim of the crime and the primary victim i.e. the deceased; having died there is hardly any question of his suffering in strict sense of the term though it was unfortunate and fatal of his family.

The Legal Definition Of The Term 'Victim' Typically Includes : "A person who suffered directly or threatened physical, emotional or pecuniary harm as a result of omission of a crime, or in the case of a victim being an institutional entity, any of the similar harm by an individual or authorized representative of another entity or group who are essentially covered under civil or constitutional law and deserves assistance by the criminal justice system."[2]

The UN Generally Assembly Declaration of basic principles of justice for Victim and Abuse of power, which was adopted in November, 1985 contains an exhaustive definition of the term 'victim of crime' in articles 1 and 2 which reads as fallow:

"Article 1: 'Victims' means those who individually or collectively, have suffered harm including physical or mental injury, emotional suffering, economic loss or substantial impairment of their fundamental rights, through act or omission that are in violation of criminal laws operative within member states including those prescribing criminal abuse of power.

Article 2: A person may be considered a victim under this Declaration, regardless of whether the perpetrator is identified apprehended, prosecuted or convicted and regardless of the familial relationship between the perpetrator and the victim. The term victim also includes where an appropriate the immediate family or the dependents of the victim and persons who have suffered harm in intervening to assist victims in distress or to prevent victimization."

Classification of Victims of Crime : Hans Von Hentig (1948) carried out the work of Mendelssohn (1937) further and placed victim five in main categories as follows: **1.** The innocent who fell a victim to crime being in the wrong place at the wrong time. **2.** The depressive type who is easy target, being careless and unsuspecting, they mostly contribute to their own injury.[3] **3.** The greedy type who are easily duped because of craze for money and easy gain. **4.** The 'wanton type' who is particularly vulnerable to stresses of life such as juveniles, pregnant women, prostitutes etc. **5.** The tormentor type who are the victims of attack from the target of their abuse such as battered women, or those in living-in-relationship.

The Concept Of Compensation : The word compensation means a thing or financial help given to the victims of crime with a view to make good the loss of property or inury sustained by the victim in person. This would show that the whole purpose of compensation is to make good the loss sustained by the victim or the legal representatives of the deceased. This concept is not new to India. Manu clearly saya that if limb is injured or a wound is cacccused or blood flows, the assailant shall be made to pay for the expenses incurred on cure as a whole. He further says that he who damages the goods of another, be it intentionally or unintentionally, shall give to the owner a kind of fine equal to the damage. To make it more clear the maxim- tooth for tooth and an eye for an eye based on the retributive theory of the punishment gives the victim of a kind of relief to satisfy his/her vengeance by punishing the wrong doer. The compensation to crime victim is not considered a punishment to the offender it has been an obligation on the part of the society to re-impose faith and confidence on the victim which has been lost due to the offender's act of delinquency and crime.

Victim Compensation Under Various Legislations In India : In India, gradual steps have been taken by the legislature and judiciary to devolop the principles by which compensation could be provided to the victims of crime and their dependents. General law as well as special law have been enacted by the legislature on the issues pertaining to compensation to the victims. Where as, the judiciary while deciding the cases whenever it was felt that the law is not adequate to provide a remedy to the victim of crime have propounded set of principles to provide compensation to the victims of crime.

The general law concerning the compensation to the victims of crime is the Code of criminal procedure, 1973 where as special laws dealing with this subject probation of offenders act, 1958 Personal Injuries (emergency provisions) Act, 1962 Motor Vehicle Act, 1988 The scheduled castes and scheduled tribes (Atrocities Prevention) Act, 1988 The Protection of Human Rights Act, 1993.

References :

1. Section 2(wa) as inserted by the Cr.P.C. (Amendment) Act, 2008 w.e.f. Dec. 31, 2009
2. Section 2(wa) as inserted by the Cr.P.C. (Amendment) Act, 2008 w.e.f. Dec. 31, 2009.
3. This is called 'victim precipitation', or 'victim blaming', because they fall a prey to crime because of their fault or contribution.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October 2018
Pg. No. 36-38

Condition of Women in Patriarchal Society of India with special reference to "A Matter of Time" by Shashi Deshpande

Dr. Vidyawati Yadav*

Abstract : *'A Matter of Time ' is a novel by Shashi Deshpande. Usually in Deshpande's fiction the focus in on the impact of the action of a male character, Gopal, who leaves his family. She does not claim herself to be a feminist writer, however she is very much concerned with the women who suffer and struggle for the freedom and self identity. On the surface, the novel represents the world of middle-class educated women who are caught in the net of problems which arise from the conflict between their views of life and the conventional values of the society. This novel is a fine study of female subjugation in yet another female character, Sumi after Sarita, Indu and Jaya of The Dark Holds No Terrors, 'Roots and Shadows' and 'That Long Silence' respectively.*

Keywords: feminist, subjugation.

A Matter of Time : It is a novel by Shashi Deshpande. It got published in 1996. The present novel talks about woman's emancipation. Shashi Deshpande has already talked about women's liberation and empowerment in her previous novels as 'The Dark Holds No Terrors' 'Roots and Shadows' and 'That Long Silence'. That Long Silence is an emphatic attempt by the novelist to bring forth her issues of women's liberation. The female protagonist Jaya is an emancipated heroine who tries to liberate herself breaking the silence after seventeen long years of her marriage but she does not try to revolt rather being in the family relations she set herself to bring an equal partnership in marriage.

A Matter of Time is concerned with the tragic life of three women representing three generations of a family. Kalyani, the grandmother represents the first generation. Her daughter Sumitra called Sumi represents the second generation and granddaughter Arundhati called Aru is the representative of the third generation.

The novel is the story of pain, suffering, endurance, love, understanding. In Brihad-aranyaka Upnishad, there is a reference of the sage informing his renunciation from the world of flesh and blood. The same sentiment has been expressed by N.Poovalingam:

……. the perception….. that Gopal's desertion of his family signifies Vedic renunciation….. is not entirely convincing…….. Gopal abandoning the family is not the result of saturation in the wordly life. He is more a withdrawal in pain than a renunciation due to contentment. Gopal's life has nothing to offer in lines corresponding to the older Vedic stages of a man's life….. His predicament is more akin to the existentialist's. 1

She has depicted what happens when a husband leaves the family in lurch and how a woman has to suffer not only herself but her children too. The present paper is a study of female liberation as it captures the journey of a female protagonist Sumi to her liberation. Gopal's withdrawal from the family wrecks the smooth life of Sumi and her three daughters. Sumi's choice of Gopal for marriage, disappointed her father. He was not satisfied.

'Gopal's desertion is not just a tragedy; it is both a shame and disgrace'2 Sumi is a bold lady and she does not want any one's sympathy. Sumi and her three daughters return to the shelter of the big home where Kalyani and Sripati live in a strangely oppressive silence.

*Senior Assitant Professor, English, I.S.S.S.S.Govt. Degree College, Pachwas, Basti

They have not spoken to each other for thirty five years. There is a parallel between Shripati's desertion of Kalyani and Gopal's desertion of Sumi. Her case is very strange as "In a culture where marriage is the be all and end all of existence, where responsibilities outweigh desires, this expression to free of all bondage in itself is strange and different to say the least."[3] We see that Gopal has put an end to their 23 years long relationship and she has been fated to be alone at the age of forty years. Keerthi Ramachandra says in this regard:

One evening, while Sumi is watching a film on T.V. about circus, "without the dirt, the smells, the fear and despair of the real thing, but sanitized, bacteria free." Gopal tells her that he wants to talk to her. And without any preamble says what he has to do. He waits for Sumi's reaction but within comments both realize that there is nothing more to be said and he leaves as quietly as he has entered.[4] (AMOT)

Sumi's mind keeps various interpretations of the song: Jeena Yaha Marna Yana, Iske Siwa Jana Kaha (You have to live here and die here. There is no other place to go) The tragedy of Sumi's life; the circus has begun wherein she herself is the pivotal clown; prancing here and there. The clown actually represents her own life. She is being made to dance according to the whims of her husband. Human beings are not more than clowns in the circus of life. Their actions are comic. Sumi suffers the inner pain due to her husband but pretends as if everything is normal, nothing has happened. She faces every suffering but lives a life of sheer pretence so that her daughters may not confront the reality of Gopal's desertion. She does not want to disturb her daughters. But from the inner heart she suffers from deep silence and pain. She has a different look, "despite her façade of normality, has a quality about her-a kind of blankness-that makes them uneasy." 5 (AMOT 10-11)

Sumi is a rebel in her own way. She would do what she can for pride and self-respect. She always revolts against traditions which decreases a woman's happiness after marriage.

A Matter of Time is not only about Sumi or Gopal, it covers the life of four generations of women. Manorama belongs to the first generation is dead but presence is always felt, Kalyani is of second generation. Sumi belongs to third generation and Aru is of fourth generation. Manorama was the daughter of a poor man and was married in a vary elite family. It was like a miracle in the society that a very rich man marries a woman from a very humble and modest family economically. The narrator quotes Kalyani and Goda having a conversation about their marriage;

The two women speak of the marriage as a miracle. What else, they seem to imply, can explain this marriage between the daughter of a poor village Brahmin, who often had nothing more than the coin with which he tucked in the extra length of his dhoti, and the educated intelligent son of a well-to-do man from Bengalore. (AMOT. 118)

Manorama's mother sent her for education to the school run by Yamunabai. After her marriage she broke all the relationship with her family. The fact, "…. Her mother died just a year after her marriage made it easier perhaps for her to distance herself from them." (AMOT 120). The need for a male child is presented in this novel very well. Manorama and Vithalrao both wanted a male child. Manorama is so much disturbed to think that if she failed to give birth to a male child then in that case her husband would marry another woman.

Manorama always sees a dream of a son as most of the Indian women want. But she could not bear a son rather she bore a daughter whom she named Kalyani. Manorama desired Kalyani to well groom herself but she failed. "Manorama wanted a son; instead there was Kalyani. But for Manorama, she became the visible symbol of their failure to have a son" (AMOT 150-151)

Manorama choose her own brother Shripati for Kalyani as husband so that she might save the family property that Kalyani would inherit to go to any other one outside their family. Kalyani accepted her Uncle as husband. After all Manorama felt secure. The property would remain in the family now.

At last Kalyani actually bore a male child but soon after the son was lost and Shripati went missing because he was so tense after his son's getting lost which forced Kalyani to come back to Manorama as a rejected wife who has been deserted by her own husband. The disgrace was too much for Manorama. The treatment that Manorama gave to Kalyani brought her in complete objection with her own husband Vithalrao who did not want this to happen. "Kalyani destroyed all this. When she returned home, a deserted wife, as Manorama saw it, a disgrace to the family. Manorama gave up everything, she never took part in any public activities again." (AMOT 154)

Aru represents the third generation of the family. She is a rebel. Her reaction to her mother's indifference to the father's desertion is very sharp and violent. She advises her mother to consult a lawyer and claim maintenance. She says, "But he owes you, he owes all of us……. he has to give us maintenance".

Thus Deshpande's novel 'A Matter of Time' gives an expression to anguish and agony of educated Indian women who are caught between tradition and modernity and struggle for freedom and self-respect. It presents a picture of patriarchal society set up which prescribes two different patterns of behavior- one for the male and the other of the female.

It may be a phenomenon to some and an incredible one to others. The novelist has interwoven the feuds of this story from one generation to another. Everyone is vexed and afflicted by their own problems. The main cause for their trouble and mental agony is their detachment, misunderstanding and communication gap. They are giving prominence to male-children; it may be the root cause for their dejection in life.

References :

1. Poovaligam, N. A Matter of Time: Beyond the Stranglehold of Women. In R. Pathak, The Fiction of Shashi Deshpande (p174) New Delhi: Creative Publishers.
2. Shashi Deshpande 'A Matter of Time' New Delhi: Penguin Books of India.
3. Pathak R.S. A Matter of Time : Of Human Bonds and Bondages. New Delhi, Creative Books.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October 2018
Pg. No. 39-42

Problem of Cultural Connotations in Indian Vernacular: a Study of Limbale's Hindu and Premchand's Godaan

Kamalesh Kumar Mourya*

Abstract : *This paper has concise research of problems of cultural connotations in vernacular source texts which are being translated in foreign target language texts. It has also been negotiated in this paper how a particular culturally rich and pregnant language poses different connotative problems while being translated in a target language text. It is further argued in the paper that how much it is difficult to locate a distinct meaning of one culture in a foreign culture trough the medium of language. There are several problems such as problem of equivalence, untranslatability, loss and gain, add and remove which keep on troubling. But, the translation cannot simply run away to these problems, so he has to borrow or create equivalences and to provide notes to his or her reader related to that source culture which is not exactly in target one. To justify these theoretical aspects of translation, the two particular texts have been discussed. One is Sharankumar Limbale's Hindu (2010) and another is Premchand's Godaan (1936).*

Key Words: Culture, Vernacular, Hindu, Connotation, Translation, Equivalence.

"Translation has been an important cross-linguistic and cross- cultural practice since earliest times." (House, 14)

Translation, in contemporary time, has become one of the most integral parts of every field of knowledge. Neither science, social science, humanities, mass communication, medical, commerce nor even university, government administration, commercial import or export, advertisements, are left with the hold and help of translation. It has expended its area of inquiry in the field of literature and social sciences at a great measure. It was also done extensively by British in India for a politically motivated cause, which was to rule the country through different ideological manipulations. They portrayed their morally degraded culture as the supreme most culture of the world and Hindustani culture, which was the most ancient and broadest one, as the inferior one by translating number of English texts into Indian languages and vice-versa. At that time they introduced English language and literature, which has now become inseparable part of global and indigenous lives.

Indian vernacular languages, before colonization, have been written enormous range of literature in their own languages but weren't able to appeal outside their language community and culture, because each vernacular language of India is an outcome of multiple implicit layers of age long culture and civilization. 'Yet this distinction is not of the essence. Just as, mentioned by Dr. Nagendra: Indian culture is one inspite of a vast multiplicity of religions, ideologies, and modes of living, in the same way it is not difficult to discover the essential unity of Indian Literature in variety of languages and media of expression(Nagendra, ii). So, when translation of these Indian vernacular texts were being done, there was the major problem of locating and finding the equivalences, which didn't had the same cultural connotation in target language text or culture. And that problem of finding equivalence having appropriate cultural meaning in target language, is also has the principal debate in present translation studies as well as in the process of translation. Kamala Suraiya, in her forward note of the book Our Favourite Indian Stories (2002), provides a glimpse of that indigenous culture in literature and literature in culture by saying that a literary analyst must

*Research Scholar, Department of English, Banaras Hindu University, Varanasi

know the sensibilities from which emanated the peerless fiction and poetry read and loved by the natives of the country through the centuries. Indian fiction has robust roots. Myth and reality, like warp and woof together, construct the rich tapestry of our literature. In translation each story suffers a colour change. A sea change infact (Suraiya,VI). So, it can be understood about translation that:

"Translation thus ultimately serves the purpose of expressing the central reciprocal relationship between languages. It cannot possibly reveal or establish this hidden relationship itself; but it can represent it by realizing it in embryonic or intensive form (Benjamin, 74)."

While a translator translates a source language in a target language text, it faces many challenges and sometime because the lack of equivalence along with the problem to decide the connotative meaning for the target text reader at the approximate level of source text. So, without keeping these facts, the translator cannot provide a loyal or faithful translation. Since, these connotations get their different meanings after being set in a definite culture and context, they become equally important and complex to translate with same connotation in target language. What is often missing from translation studies accounts is a clear definition of what "culture" means. While "culture" is recognized as one of the most difficult and overdetermined concepts in the contemporary human and social sciences, it often appears in translation studies as if it had an obvious and unproblematic meaning. Translators are told that in order to do their work correctly they must understand the culture of the original text, because texts are "embedded" in a culture. The more extensive is this "embedding," the more difficult it will be to find equivalents for terms and ideas (Simon, 30). There are several translation theories and procedures are involved, which confronts with many difficulties. Finding of Cultural connotative meaning is always a problematic task. So we can conclude about this:

The analytical procedures by which we come to understand the message we want to translate involve two quite distinct but closely related aspects of message: (1) the grammatical and (2) the semantic. But we not only understand the reference of words; but we also react to them emotionally, sometime strongly, sometime weakly, sometime affirmatively, sometime negatively. This aspect of the meaning which deals with our emotional reactions to words is called connotative meaning (Nida and Taber, 91).

Problems of these cultural connotations and equivalence are occurring very frequent one not only in inter-lingual or intra-lingual translation but in inter-semiotic translations as well. Particularly and excessively in inter-lingual translation, the replacement of appropriate source language text's cultural connotative meanings has always faced the problem of equivalence in target language text. So, cultural connotations have strong role to play in the process of translation of Indian vernacular texts, generally those texts, which have been or are being written in different dialectical languages. These languages have a complex working condition on both the levels structural and functional. It is well acknowledged about the language functioning, its arbitrariness and conventionality, as Ferdinand de Saussure, the great Swiss linguist, has observed about language:

"Language in its entirety has many different and disparate aspects. It lies astride the boundaries separating various domains. It is at the same time physical, physiological and psychological. It belongs to both the individual and to society (Saussure, 44)."

The works of Marathi Dalit writer, poet, critic and novelist Sharankumar Limbale's works which are deeply rooted in Maharashtra province and the cultural richness of its vast kind of community. Particularly in his novel Hindu (2010) which has many cultural and religious connotations embedded in its narrative, is translated by Arun Prabha Mukherjee. There are several words and expressions remain untranslated, such as: jalasakar, bastis, bhau, bidagi, chaupal, bakshish, bhumipujan, tamashagir, savarna, avarana, rashtra, etc. That may be for two reasons, first because there is no appropriate or exact term or equivalence

in target language and the second might be a deliberate attempt to merge these words and expression in the target language to show the cultural richness of source language. The word 'bhai' in different parts of India, in different context have different cultural connotative meanings, in Maharashtra, the 'bhai' is a person as Limbale also mentioned "people were scared of goons and addressed them as 'bhai' "(69) now in the target language the meaning of 'bhai' simply carries the meaning of brother. Another such type of connotation can be seen in the line: "Our God will change, our rituals of worship will change but the questions regarding 'dal roti' won't change" (Limbale, 82).

See how the meaning of 'dal roti' in Indian context and culture is not pulses and bread but has wider variety of meanings which connects the Primary need of a citizen, that aren't in the target culture, so it might betray the reader of target text to its real sense until and unless notes are provided there in the book. Some expressions, especially the slangs such as saala, saali, which have some approximate equivalence in English as bastard, bloody, etc., are left untranslated because of their linguistic and cultural meanings. The translator, Arun Prabha Mukherjee, has talked about these problems in the introduction of the book and said:

"I have retained a large number of Marathi words that would be easily understood by Indian readers and for which there are no English equivalents. There were some concepts that are impossible to translate in English, such as gharjamai or sandhya namaskar (Mukherjee, xxviii)."

Now it is clearly mentioned here by the translator Arun Prabha Mukherjee herself how these problems are very frequent, basically in the vernacular texts. But one good thing is that the translator here provides a strong and valid way to tackle these kinds of problems and to provide approximation and said: others I struggled with to approximate but was not always successful. For example, my translation of dhwaj vandhan, as 'flag hoisting' does not convey the religious connotation of prayer in the original phrase(I found it interesting that Hindi now no longer uses' 'vandan' but 'arohan,' which is closer to 'hoisting) (Mukherjee, xxviii).

So, it is quite evident that most of the translated Indian vernaculars have these kinds of problem. In the vision of resolving problems of the kind, the translator must retain some important culturally pregnant words and terms and one must provide after note and glossary at the end of the book so that the reader of a target language not only be acquainted with the different cultural meanings and its richness within the set of the one's language performance but also can compare the significance of both the cultures.

These sorts of problems of cultural connotation and untranslatability are very frequent in Hindi writer Munshi Premchand's Godaan (1936) and Gaban (1928). Godaan is translated by Gordon C. Roadarmel as The Gift of a Cow (1968). Now, see how the title: 'The Gift of a Cow' in itself bearing the problem of cultural connotation because of lack of equivalence of Godaan in English culture. In Indian context the cultural meaning of Godan is very much pious and spiritual. The ritual of Godaan ceremonies mostly on the cultural occasions i.e. marriage, death ceremony or anniversary or other holy occasions. The act of donating a cow in charity or Godaan is considered to be an important and pious Hindu ritual, because it helps in exculpating one's sin and showers divine blessings, brings the peace for departed soul, and also for the well-wishing or betterment of the family members or relatives. And there is no context to accept anything in return. But the meaning of gifting a cow in western cultural context is as something being offered in the hope for getting something in return on future occasions. So, when a reader of target language culture will read 'Godaan', one will be failed to have the broader cultural connotation of the title Godaan as it has in Indian context or in the source language culture unless it hasn't glossary of 'Godan' in it to explain its meaning to a foreign culture reader. In the translator's note, the translator highlighted the

role of a translator and how translation works but hasn't displayed or talked about the lack of cultural meaning in his translated text when he says: the broad ideal has had to modified, of course, since the translator has to rely in the end of his own intuition in trying to recreate for the English reader something of the experience of the Hindi reader. That attempt requires a consideration not only of equivalents of sense but also of levels of vocabulary and imagery, of syntactic emphasis, of sound patterns, and of cross-cultural intelligibility (Roadarmel, xi).

But, here in this particular text, his statement proved ironical. It hasn't been cared as much as the translator is stating. Here lies the problem of cultural connotations in a target language that is frequent in other translated vernacular texts as well. The same problem is also there with another text of Premchand, Gaban (1928), because there is no equivalence of it in English so it has translated as 'Gaban: The Stolen Jewels (2000) by Christopher R. King. The good thing King did here that he provided a subtitle so that the culture connotation might be evident to the readers. But the secrecy or the doubts that are embedded in the title 'Gaban', has failed to maintain that into translated one. The weight which the word 'Gaban' has is not visible in its translated title. Before one goes to read, it is already known to reader around which stolen thing, the story is about to rotate.

This is a minimal approach to highlight some of the common but important errors and notions of translation that keep on befalling in the process of a faithful translation of not only in above discussed texts but texts as whole which are being translated from Indian vernaculars to other foreign languages. It is also important for the translator to have a profound knowledge and insight about the structures and functioning of source and target language along with the turns and twists of cultural connotations of both the languages and cultures. So, we can conclude that apart from the great labor of a translator, the translated text is always considered as second hand. There may be may not be a faithful translation but what is greatest is that a particular book written in a language, which has a small access community just after being translated in another language is ready to have been read by the across the globe. This is the greatness of translation which is highly appreciative which can be more useful and informative just by applying little botheration over discussed problems of cultural connotation and equivalences.

References :

1. Benjamin, Walter. "The Task of the Translator." Modern Criticism and Theory: A Reader. Ed. by Lodge, David and Wood, Nigel. New York: 3rd ed. Routledge, 2013. 72-80.
2. De Saussure, Ferdinand. "The Object of Study." Modern Criticism and Theory: A Reader. Ed. by David Lodge and Nigel Wood. New York: 3rd ed. Routledge, 2013.
3. House, Juliane. Translation as Communication across Languages and Cultures. New York: Routledge, 2016.
4. Mukherjee, Arun Prabha. Introduction. Hindu. By Limbale, Sharankumar. Trans. Arun Prabha Mukherjee. Samya, 2010.
5. Limbale, Sharankumar. Hindu. Samya, 2010.
6. Nagendra. Indian Literature. Agra: Lakshmi Narain Agarwal, 1959.
7. Nida, Eugene A. and Taber, Charles R. The Theory and Practice of Translation with Special Reference to Bible Translation. Netherlands: E.J. Brill Leiden, 1982.
8. Premchand. Gaban: The Stolen Jewels. Trans. by Christopher R. King. India: Oxford University Press, 2000.
9. Roadarmel, C. Gordon. Introduction. The Gift of a Cow. By Premchand. Trans. Roadarmel, C. Gordon. London: George Allen & Unwin Ltd, 1968
10. Simon, Sherry. Gender in Translation-Cultural Identity and Politics of Translation. London: Routledge, 1996.
11. Suraiya, Kamala. Foreword. Our Favourite Indian Stories by Kumar, Neelam and Khushwant Singh. Mumbai: Jaico Publishing House, 2013.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October 2018
Pg. No. 43-45

Five Year Plans and Health Facilities in India: A Brief Study

Gayatri Maurya* & Dr. D. Gownamani**

Our country India is mostly based on the agricultural system. Above 70 percent of the total pupation is living in the rural area. With the huge decadal wise increase in the population, industries growth and the generation of land , water, air, pollution many huge number of diseases is coming forward day by day. After independence the government seeks over this problem and launching lot of social welfare programmes related to health. India launched a nationwide Family Planning Programme in 1952. India is the first country in theworld to launchsuch a programme. A separate department of family Planning was created in 1966 in the ministry of health.

Keywords : Family Welfare, Social welfare, Industries growth, pollution.

After China India is the second most populous country in the world sustaining above 17. After independence there are lack of food and spread of fatal diseases like pelage on the large scale. So India became the first country to formulate a National family planning programme in 1952. The main objective of the policy was - reducing birth rate so the fast gowning population could be controlled so "the main appeal for family planning is based on considerations of health and welfare of the family. Family limitation or spacing of children is necessary and desirable in order to secure better health for the mother and better care and upbringing of children.

Large number of health programmes has been launched during five is plans here is the brief detail given below. The population issue has engaged the attention of the planning Commission. The Draft Outline of the First Plan, published in July 1951, contained a section on "Population Pressure: Its Bearing on Development"' which recognized that India had a population problem. "The increasing pressure of population on natural resources retards economic progress and limits

Second five year plan (1956 -1961)) : The measure focus of second five year plan is to enormously increasing population so This plan highlights the need for a large and active programme aimed at restraining population growth.

Third five year plan (1961-1966) While considering population control in the context of long term development, stated: "The objective of stabilizing the growth of population over a reasonable period must therefore be at the very centre of planned development.

Fourth five year plan (1969-1974)theis plan focuses population not only from the point of view of economic development, but also from that of social change.

Fifth five year plan (1974-1979) : Sixth five year plan (1980-1985) The sixth five year plan laid down the long term demographic goal of reducing the net reproduction rate (NRR) to one by 1996 for the country as a whole and by 2001 in all states. The implication of this long -term demographic goals are as follows: A. Birth rate per thousand population would be reduced from the level of 33 in 1978 to 21. B. The death rate per thousand population would be reduced from about 14 in 1978 to- 09 and infant mortality rate would be reduced from 129 to 60 or less. C. The average size as the family would be reduced from 4.2 children to 2.3 children. D. As against 22 percent as eligible couples protected in 1979-80, 60 percent would be protected by the year 1984-85. E. The population as India will be around 900 million by the turn of the century and will stabilize at 1200 million by the year 2050 A.D.11

*Km Gayatri Maurya, Senior Research Fellow, Department of Geography, Institute of Science, BHU, Varanasi
**Dr. D. Gownamani, Associate Professor, Department of Geography, Institute of Science, BHU, Varanasi

Seventh five year plan (1985-1990) : Eight five year plan (1992-1997)The eighth plan has targeted to achieve the following demographic goals by 1997. A. Crude birth rate 26.1 B. Effective couples protection rate 56.1 C. Infant mortality rate 70.1 D. Literacy rate 75.1 E. Net reproduction rate equal to unity by the period 2011-2016 A.D.

In order to achieve the targets the govt. had prepared an "Action plan" which had following features. Improving the quality of family welfare services.Introducing a new packing as compensation and incentives with the co-operation of state Govt. Initiating innovative programmes in urban slums for propagating family welfare. Adopting a differentials strategy for focusing attention on 90 districts of the country where the crude birth rate is above 39 per thousand. Increasing the involvement as voluntary agencies and private organizations in family welfare programme. Linking grants that are provided to state governments for rural development and poverty alleviation to districts on the basis as their performance in the birth rate. Reducing a strong preference for a son on part of a family having one or two daughters by providing social security measures. During eight plan, a sum as Rs. 6500 croreshad been spenton the implementationof the programme the eight plan envisages a series of incentives and disincentives in order to promote and popularize the family planning programme. The incentives had been given to the employees of thecentral govt. state govt. and public sector undertakings who had accepted two-child family norm. these incentives included special increments cash award, priority in house building schemes and grant of leave travel concession benefits disincentives included, restriction on free medical benefits, no maternity leave no preference in govt. services.13 The govt. of India is the previous had appointed an expert group on national population policy under the chairmanship as Dr. M S Swaminathan which submitted its reports on 22 may 1994.The report had suggested a number of sociodemographic goals viz, the programme and the date is used for mid-course corrections. The Department has drawn up the national population policy 2000(N P 2000).which aims at achieving replacement level of fertility by 2010 and population stabilization by 2045 the national population policy 2000 has set the following goals.14 A. Universal access to quality contraceptive services in order to lower the total fertility Rate to 2.1 and attaining two-child norm. B. Full coverage of registration of births, deaths and marriage and pregnancy. C. Universal access to information /counseling and services for fertility regulation and conception with a wide basket of choices. D. Infant mortality Rate to reduce below 30per thousand live births and sharp reduction in the incidence as low births weight (below 2.5kg) babies. E. Universal immunization as children against vaccine preventable disease, elimination of tetanus and measles. F. Promotes delayed marriage for girls, not earlier than age 18 and preferable after 20 years as age. G. Achieve 80 percent institutional deliveries and increase in the percentage as deliveries conducted by trained persons to 100 percent. H. Containing as sexually transmitted diseases.

Ninth five year plan (1998-2002) : Ninth five year plan 1998-2002: Reduction in population growth is one of the major objectives as the ninth plan during the ninth plan period. The Department of family welfare implemented the recommendations of the N D C subcommittee. Centrally definedmethod specific targets for family planning were abolished. The emphasis shifted to decentralized planning at the district level based on assessment of community needs and implementation of programmes aimed at fulfilment of these needs. State specific goals for process and impact parameters for maternal and child health and contraceptive care were worked out and used for monitoring progress efforts were made to improve the quality and content of services through training to upgrade skills for all personal and building up a referral network. A massive pulse polio campaign was taken up to eliminate polio. The department of family welfare set up a consultative committee to suggest appropriate restructuring as in for structure funded by the states and the center and revise norms for re-imbursement by the center and has started implementing the recommendations of the committee monitoring and evaluation had become a part of the I. Reduction in maternal mortality Rate to loss than 100per one-lakh live births. J. Universalization as primary education

and reduction in the dropout rates at primary and secondary levels to below 20 percent both for boys and girls

Tenth five year plan (2002-2007) : During the tenth plan. The paradigm shift, which began in ninth plan, will be fully operationalized. The shift was from. A. Demographic targets to focusing on enabling couples to achieve their reproductive goals. B. Method specific contraceptive targets to meeting all the unmet needs for contraception to reduce unwanted pregnancies. C. Numerous vertical programmes for family planning and maternal and child to integrated health care for women and children D. Centrally defined targets to community need assessment and decentralized area specific micro planning and implementation of program for health care for women and children, to reduce infant mortality and reduce high desired fertility. E. Quantitative coverage to emphasis on quality and content of care. F. Predominantly women cantered programmes to meeting the health care needs as the family with emphasis on involvement as men in Planned Parenthood. G. Supply driven service delivery to the need and demand driven service. Improved logistics for ensuring adequate and timely supply to meet the needs H. Providing service provisions as per the choices and conveniences of the couple The population growth rate continued to be high due to … The large safe as the population in the reproductive age-group accounting for an estimated 60 percent as the total population on growth. Higher fertility due to the unmet need for contraceptives (contributing to around 20 percent of population growth).

Wanted fertility due to the prevailing high infant mortality Rate and other socio-economic reasons (estimated contribution as about 20 percent to population growth). The Tenth plan had fully operationalized efforts to; 1. Assess and meet the unmet needs for contraceptives. 2. Achieve reduction in the high desired level of fertility through programmes for reduction in IMR and MMR and 3. Enable families to achieve their reproductive goals. If the reproductive goals of families are fully met the country would be able to achieve the national population policy replacement level of fertility by 2010.The medium and long term goals will be to continuing this process to accelerate the pace of demographic transition by 2045.Early population stabilization on will enable the country to achieve its developmental goal of improving the economic states and quality of life of the citizens.16 Eleventh five year plan 2007-2011:

Eleventh five year plan (2007-2012) : The 11Th plan will continue to advocate fertility regulation through voluntary and informed consent.it will also address the special health care needs of the elderly, especially those who are economically and socially vulnerable. 1. Reduce infant mortality rate to 28 and maternal mortality rate 0 to 1 per 1000 live births 2. Reduce total fertility rate to 2.1 3. Provide clean drinking water for all by 2009 and ensure that there is no slip -backs Reduce malnutrition among children as age group 0-3to half its present level Reduce anaemia among women and girls by 50% by the end as the plan Women and children: Raise the sex ratio for age a group 0-6 to 935 by 2011-12 and to 950 by 2016-17. Ensure that at least 33 percent of the direct and indirect beneficiaries of all government schemes are women and girls children Ensure that all children enjoy a safe childhood, without any compulsion to work.

References :

1. Health, Family Welfare, and Nutrition the Health Transition planningcommission.gov.in/plans/.../chapter-02b.pdf accessed on 5 November2018.
2. https://www.researchgate.net/publication/284467291_NATIONAL_FAMILY_PLANNING_PROGRAMME_-_DURING_THE_FIVE_YEAR_PLANS accessed on 2 November 2018.
3. Ministry of Health and Family Welfare https://mohfw.gov.in/about-us/departments/departments-health-and-family-welfare accessed on 3 October 2018.
4. Five Year Plans of India https://en.wikipedia.org/wiki/Five-Year_Plans_of_India accessed on 28 September 2018.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October 2018
Pg. No. 46-47

Manimekalai : On Buddhist Path

Anoma Saakhare*

Introduction : Buddhism is an ethical system that incorporates practicality in morality and rules of religion. The Buddha did not profess to expound the relation of God to man nor did he discuss questions concerning the nature of God or soul. He wanted his disciples to aim at purity in thought, word, and deed. He laid special stress on the virtues of truthfulness, reverence, and respect for animal life. Buddhism relies on reason and not on brutal authority or demonic majority. It throws away speculation and accepts the practical realities of life. Love and purity are the first wisdom to the Buddhists. The spirit of Buddhism is essentially socialistic that is to say, it teaches concerted action for social ends. There is no caste system in Buddhism. Accidence of birth does not confer any distinction or disadvantage.

Buddha was also ensnared by asceticism but it is good fortune of the world that he relieved himself from its clutches Buddhism is not wedded to pessimism. The spread of Buddhism sums up superbly caused by the novelty in its teachings and forms of worship, the humanitarian work the monks readily undertook among the people, like amenities for the poor, giving medical aid to men and animals, digging wells, planting trees etc. won a very large number of followers. It afforded social equality to all its adherents without any distinction of caste. It gave an excellent opportunity to the rabble not to be dubbed as 'low caste'. They freed themselves from humiliation. The policy of the Buddhist monks everywhere was to preach their religion in the language of the people in their particular localities. Humanity aspires for three things- tranquility of mind, fortitude in adversity and peaceful death. All the three are ensured through Nirvaana.

Manimekalai's Initiation towards Buddhism : Sathanar, through the mouth of Aravana Adigal, espouses the esoteric logic in Canto 29 and ethics of life in Canto 30 when he initiates Manimekalai in the ways of Buddhism, and she starts ascetic life. M?dhavi and Manimekalai born in the family of play actresses rose to the highest nun-hood Udayakumaaran, the prince became crestfallen because of lust. Thus, this epic proves that women were given equal opportunity during the Sangam age.

The young and pretty Manimekalai, who was already felt disenchanted by the life of dance and music was immediately drawn to the sublime teaching of the Buddha and decided to adopt the life of a Buddhist nun. On hearing the excellent Dhamma, both mother and daughter became Buddhists. She went on pilgrimage to Sri Lanka and worshipped at the Buddha's footprint at the Naagadipa shrine on an island of the northern coast of Sri Lanka. There a deity gave her a miraculous bowl from which she could feed any number of people without the supply of food becoming exhausted. After returning to K?veripattinam, Manimekalai gave alms daily to the poor in a public hall. Then, Manimekalai was implicated in a number case on a false charge and imprisoned. Whenthe truth came to light, she was freed. The Chola queen, who has manipulated her imprisonment, begged her pardon.

Manimekalai's magic bowl : She obtained the Amuda Surabhi (nectar vessel) that produced food without end. She used it for charity. In the course of her travel to Kaanchi,as directed by

*Research Scholar (Bharata Naatyam), Tiruchirraappalli Diocesan Educational Society, Tiruchirraappalli, Tamil Naadu

her grandfather Masattuvan. When she went there, she found a temple of Buddha at the very center of the city. She went around the fort rightwards and got down into the central part of the city. She prayed at the temple built by the king's brother. The king built a garden in honor of Manimekalai's coming to help his people. Delighted by this, she helped him build a lotus seat for Buddha. She also placed the Amuda Surabhi on the lotus seat and welcomed all living beings to gather to be fed. She met Aravana Adigal, who later became her spiritual teacher.

Manimekalai's refuge to Triratna : Manimekalaibeseeched Adigal to teach her the Buddhist Dhamma and logic. Thereupon Aravana instructed her on all the subtleties of the Buddha's dhamma and also the logic formulae to find out the truth. Her mind illumined and dedicated herself to the ideal life that leads to salvation. Manimekalai achieved pre-eminence in virtue. She repeated the holy formulae thrice Buddhan Sarnan Gaccaami (I seek refuge in Buddha), Dhamman Sarnan Gaccaami (I seek refuge in Dhamma), Sanghan Sarnan Gaccaami (I seek refuge in Sangha). She became fully enlightened and took to penance declaring that away with the embodiment and consequential sorrow. Manimekalai, despite her beauty, shunned the pleasures of the world, and sought truth, finally gaining ultimate knowledge.

Conclusion : The story is set in the second century CE in the Tamil region, when the Chola, Chera and Paandya dynasties ruled the region of south India where most of the action took place. Two Tamil epics, Silappadikaaram and Manimekalai mark the next stage of Tamil literature. The sight of the lustrousfootrestof Buddha stirs up and Manimekalai saw everything in her mental eye - the cavernous centre, all the happenings past, present and future as though on a cinema screen. It is an advanced stage in Yoga. Manimekalai is the only Tamil Buddhist literary work of an extensive literature. The reason for its survival is probably its status as the sequel to the Silapathikaaram or Seelappadhikaaram. Tamil Nadu produced many Buddhist teachers who made valuable contributions to Tamil, Pali and Sanskrit literature. Reference to their works is found in Tamil literature and other historical records. Lost Tamil Buddhist works are the poem Kunnalakesee by Naagaguttanaar, the grammar Veerasoliyam, the Abhidhamma work Siddhaantattokai, the panegyric Tiruppadigam, and the biography Bimbisaara Kadai.

Manimekalai encourages full liberation from the three roots of evil - greed, hatred and delusion; Raga, dosa, and moha. Manimekalai strove to rid herself of the bondage of birth and death and its recycle. This emphasis on liberation from the defilements (kilesa), ending the cycle of birth, old age and death (samsaara), and becoming an arhant, also suggests that the author of the poem was affiliated to an early Sraavakayaana Buddhist school. Buddhist logic as expounded by Aravana Anigal of the Manimekalai antedates the logic of Dignaaga and his school.

References:

1. Kantacaami, C.N., Buddhism as expounded in Manimekalai, Annamalai University, Tamil Naadu, 1978
2. Guruswamy G, Srinivasan S, Manimekalai - Retold in English, Dr. U.V Swaminatha Aiyar Library, Madraas - 90, 1993
3. Sengupta Arputha Rani, Manimekalai: Dancer with Magic bowl: Buddhist epic in Tamil (second century AD), Regency Publication, West Patel Nagar, New Delhi, 2006
4. Holmstrom Lakshmi, Silappadikaram Manimekalai, Orient Longman limited, 160, Anna Salai, Madraas, - 02, 1996
5. Pandian P, Manimekalai, The South India Saiva Siddhanta Works Publishing Society, Tinnelvelly limited, Madras - 18, 1989

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October 2018
Pg. No. 48-56

Equal Pay for Equal Work a Gender Perspective

Gajendra Singh Yadav*

Equal Pay: Definition and Scope : The primary issue that arises in relation to the concept of equal pay is whether 'equal pay' is wide enough to include not only wages but also other benefits associated with employment or it relates only to basic wages.

The Equal Remuneration Act 1976 defines "remuneration" in Section 2*(g)* as follows:

"*the basic wages or salary, and any additional emoluments whatsoever payable, either in cash or in kind to a person employed in respect of employment or work done in such employment, if the terms of the contract of employment, express or implied, were fulfilled.*"

The definition of 'remuneration' under the Equal Remuneration Act, 1976 sheds some light on the issue at hand. It is the basic wage or salary, and any additional emoluments whatsoever payable, either in cash or in kind, to a person employed in respect of employment or work done in such employment, if the terms of the contract of employment, express or implied, were fulfilled.[1] This indicates that the concept of 'equal pay' is wide enough to include not only wages but also other benefits associated with employment.

In ***Air India Cabin Crew Association* v. *Yeshawinee Merchant,***[2] the issue was whether the action of the State in fixing the retirement age for air hostesses at 50 years was violative of the principle of equal pay for equal work because the retirement age for their male counterparts was fixed at 58 years. A 2-Judge Bench of the Supreme Court allowed the claim and observed that fixing different retirement ages for persons doing equal work would violate the principle of equal pay for equal work because the person with the lower retirement age would be deprived of remuneration for a period equal to the difference between the two retirement ages.

It is submitted that the above understanding of the concept of 'equal pay' is a comprehensive one because it takes into account the fact that parity in basic wages alone is no parity at all if the other employment benefits are not the same. Thus, the question of whether two persons are receiving equal pay involves an analysis of the entire terms and conditions of employment of the two persons rather than a mere examination of their basic wages. The only restriction is that the said benefit must be in respect of employment or work done and must also be conditional upon employees fulfilling their obligations under the contract of employment. An employer cannot be allowed to evade the object and purpose of the principle of equal pay for equal work by simply paying the same basic wages but providing different employment benefits to persons doing equal work.

Another reason why the concept of 'equal pay' should encompass more than simply basic wages is to account for performance-linked bonuses. If two persons are doing equal work and one is doing the work better than the other, then giving them the same basic wages will, it is submitted, amount to treating unequal persons equally. On the other hand, if both the persons are entitled to a performance-linked bonus to be assessed on the same criteria, then this problem can be overcome.

*Research Scholar, Faculty of Law, University of Allahaba, Allahabad, U.P.

In determining whether two persons are receiving equal pay, the following issues need to be looked into:

- Are the same basic wages being paid to both the persons?
- Are the two persons receiving the same employment benefits?

Another issue is the concept of "Equal Work" and it is not easy to identify that whether the two people are doing "equal work" or not. In India, the principle of equal pay means equal remuneration for "the same work or work of a similar nature" (Section 4), which in turn is defined in Section 2*(h)* of the Act as follows:

"work in respect of which the skill, effort and responsibility required are the same, when performed under similar working conditions, by a man or a woman and the differences, if any, between the skill, effort and responsibility required of a man and those required of a woman are not of practical importance in relation to the terms and conditions of employment."

According to the above definition, Jobs do not have to be identical for the courts to consider them equal. If two employees are actually doing the same work, it doesn't matter if their titles or job descriptions differ. What counts are the duties the employees actually perform. In general, it means that two jobs are equal for the purposes of Act when both require equal levels of skill, effort, and responsibility and are performed under similar conditions.

The manner in which the expression ***'same work or work of a similar nature'*** is defined in the Equal Remuneration Act, 1976 also sheds some light on the concept of equal work. It is work in respect of which the skill, effort and responsibility required are the same, when performed under similar working conditions and the differences, if any, between the skill, effort and responsibility required are not of practical importance to the terms and conditions of employment.[3] This definition was explained in *Ashok Kumar Garg* v. *State of Rajasthan*[4] as clarifying that the question of equal work depends on various factors like responsibility, skill, efforts and condition of work.

In ***K.M. Bakshi* v. *Union of India,***[5] one of the earliest Indian Supreme Court cases dealing with the principle of equal pay for equal work, certain income tax officers challenged the reconstitution of the income tax services to separate income tax officers into Class I and Class II income tax officers. One of the grounds for challenge was that the said reconstitution was violative of Article 14 of the Constitution because though both Class I and Class II income tax officers did the same kind of work, their pay scales were different. However, a 5-Judge Bench of the Supreme Court upheld the validity of the impugned reconstitution and observed that the abstract principle of equal pay for equal work has nothing to do with Article 14 of the Constitution.

This decision sheds some light on the concept of 'equal work'. It indicates that the test for determining equality of work done is dissociated from the nature of the work and linked to classification of employees under the applicable service rules. Thus, in the opinion of the Das Gupta, J., even though Class I and Class II income tax officers do the same work, i.e. carry out assessments, paying the former higher wages than the latter did not offend the principle of equal pay for equal work. Another proposition that emerges from this case is that the mere fact that two persons belong to two different grades under the applicable service rules is enough to infer that they are not performing similar tasks.

Two decades later, a 3-Judge Bench of the Supreme Court, in ***Randhir Singh* v. *Union of India,***[6] discussed the ***K.M. Bakshi* case** and interpreted it narrowly as merely laying down the proposition that different scales of pay for different grades of employees was permissible when there were higher academic qualifications or greater experience based on length of service prescribed for the higher grade that could reasonably sustain the

classification. In this case, a driver in the Delhi Police Force was entitled to claim the same pay as the other drivers in the service of the Delhi Administration. The Supreme Court allowed the claim and observed that the principle of equal pay for equal work was deducible from Articles 14 and 16 of the Constitution and could be properly applied to cases of unequal scales of pay based on no classification or irrational classification where persons drawing different scales of pay are doing identical work under the same employer.

Constitutional Perspective

Introduction : India's Constitution is in some ways very attuned to issues of sex equality, which were prominently debated when the constitution was adopted in 1950. The framers of the Constitution were very conscious of deeply entrenched inequalities, both those based on caste and those based on sex, and they made their removal one of their central goals. The text of the Constitution remains in many ways exemplary in its treatment of issues of gender and sex. The understanding of equality in the Constitution is explicitly aimed at securing substantive equality for previously subordinated groups.

Equality and Non- Discrimination Under Constitution : Article 14 says that the State shall not deny to any person, equality before the law and the equal protection of the Laws. Article 15 prohibits State discrimination on grounds only or religion, race, caste, sex, place of birth or any of them. Article 16 (equality of opportunity in public employment). Although these Articles are not related directly to concept of "equal pay for equal work" but they are attracted by virtue of "equality" clause in these articles. The jurisprudence interpreting these Articles however, has a more mixed history.

The Supreme Court has interpreted Article 14 as a prohibition against "unreasonable" classifications based on sex. The standard of reasonableness, set out in ***Budhan Choudhary v/s. State of Bihar***[7] requires that:

i)...the classification must be founded on an intelligible differentiation which distinguishes persons or things that are grouped together from others left out of the group" and **ii)**... that differentia must have a rational relation to the object sought to be achieved by the statute in question.

These criteria import a formal idea of equality: only those individuals who are similar need be treated similarly; it turns away from what appears to have been the original intent of the Articles, to break down hierarchies founded upon caste and sex. In keeping with this formal understanding of equality, the clauses of Articles 15 and 16 pertaining to affirmative measures were initially interpreted by the Court as exceptions to the (allegedly formal) doctrine of equal treatment articulated within the Articles, rather than as part of the Articles' substantive doctrine of equality.[8]

New Concept of Equality: Protection Against Arbitrariness : In ***E.P. Royappa v/s State of Tamil Nadu***[9], the Supreme Court challenged the traditional concept of equality which was based on reasonable classification and has laid down a new concept of equality. Bhagwati J, Delivering the judgment propounded the new concept of equality in the following words-

'Equality is a dynamic concept with many aspects and dimensions and it cannot be 'cribbed, cabined and confined' with in traditional and doctrinaire limits. From a positive point of view, equality is antithetic to arbitrariness. In fact equality and arbitrariness are sworn enemies; one belong to the rule of law in a republic while the other, to the whim and caprice of an absolute monarch. Where an act is arbitrary, it is implicit in it that it is unequal both according to political logic and constitutional law and therefore violative of Article 14'.[10]

Protective Discrimination: Article 15 Clause 3 : Article 15(3) is an exception to the general rule laid down in clauses (1) and (2) of Article 15. It says that nothing in article 15

shall prevent the state in making any special prevention for women and children. Women and children require special treatment on account of their very nature. Article 15(3) empowers the state to make special provision for them.[11] The reason is that "women's physical structural and the performance of maternal functions place her at disadvantage in the struggle for subsistence and her physical well being becomes an object of public interest land care in order to preserve the strength and vigour of race". Thus under Article 42, women workers can be given special maternity relief and a law to this effect will not infringe Article 15(1). Again, it would not be violation of Article 15, if education institution is established by the state exclusively for women. The reservation of seats for women in a college does not offend again Article 15(1).[12]

In ***Air India Cabin Cabin Crew Association v/s Yashawinee Merchan***[13]**,** It was held that Article 16(2) prohibits discrimination only on sex but clause 3 of Article 15 enables the State to make 'any special provision for women and children'. Article 15 and 16 read together prohibit direct discrimination between members of different sexes if they would have received the same treatment as comparable to members of the opposite gender. The two Articles do not prohibit special treatment of women

In ***Yusuf Abdul Aziz V. State of Bombay,*** Section 497 of IPC which only punishes man for adultery and exempt the women from punishment even though she may be equally guilty as an abettor was held to be valid since the classification was not based on ground of sex alone. It has however been held that article 15(3) provides for only special provision for benefit of women and children and does not require that absolutely identical treatment as those enjoyed by male in similar matters must be afforded to them.

Equality of Opportunity in Public Employment : Article 16(1) guarantees equality of opportunity for all citizens in matter of 'employment' or 'appointment' to any post under the clause (2) says that no citizen shall, on grounds of religion, race, caste, sex, descent, place of birth, residence or any of them, be eligible for or discriminated against in respect of , any employment or office under the state. Article 16(1) and (2) applies only in respect of employment or office under the state.[14]

In ***C.B. Muthamma v/s Union of India***[15], a provision in service rules requiring a female employee to obtain the permission of the government in writing before her marriage is solemnized and denying her the right to be promoted on the ground that the candidate was married woman was held to be discriminatory against woman and hence unconstitutional. The Petitioner was denied promotion to Grade I of the Indian Foreign Service only on this ground. However the court made it clear that it does not mean that the men and the women are equal in all occupations and in all situations and do not exclude the need to pragmatize where the requirements of particular employments, the sensitivities of sex or the peculiarities of social sectors of the handicaps of either sex may compel selectivity.

The Constitution (44th Amendment) Act, 1978 inserted a new directive principle in Article 38 of the Constitution which provides that the state shall in particular, strive to minimize inequalities in income and endeavours to eliminate inequalities in status, facilities and opportunities, not only amongst individuals but also amongst group of people residing in different are or engaged in different vocation. The new clause aims at equality in all spheres of life. It would enable the state to have a national policy on wages and eliminate inequalities in various spheres of life.[16]

Equal Pay for Equal Work: Article 39(d) : "Equal pay for equal work for both men and women" is one of the Directive Principles of State Policy laid down in Article 39(d) of the Constitution of India.[17] Article 37 makes it non-justifiable, yet, it must be borne in mind by the legislature while making laws.

Kishori Mohanlal Bakshi vs. Union of India[18] **:** This was the first case in which the principle of equal pay for equal work was considered and unfortunately it was held by the Court that it is not enforceable. Here the Supreme Court commits a big mistake by not enforcing the right and violates the basic feature of the Constitution of India i.e. equality.

In ***Randhir singh v/s Union of India***[19] the Supreme Court took a turn from its earliest view and held that although the principle of 'equal pay for equal work' is not expressly declared by our constitution to be a fundamental right, but it is certainly a constitutional goal under Article 14, and 16, 39(d) of the Constitution. The right can therefore, be enforced in case of unequal scales of pay based on irrational classification. The decision has been followed in a number of cases by the Supreme Court.

In ***Shamsher Singh vs. State of Punjab***[20]**,** the Court went up to the sayings that even a protective discrimination in favour of women is valid by virtue of Article 15(3) of the Constitution.

In ***Air India v/s Nargesh Meerza***,[21] Supreme Court stuck down the Air India and Air India Regulations on the retirement and pregnancy bar on the service of airhostesses as unconstitutional on the ground that the conditions laid down therein v\were entirely unreasonable and arbitrary and against the principle of equal pay for equal work. Regulation 46 provided that an air hostess would retire from the services of the corporation upon attaining the age of 35 years, or on marriage, if it took place within four years of service or on first pregnancy, whichever occurred earlier, under Regulation 47 the Managing director had the discretion to extend the age of retirement by one year at time beyond the age of retirement up to the age of 45 years if an air hostess was found medically fit. The condition that the service of air hostesses would be terminated on first pregnancy was the most unreasonable and arbitrary provision and liable to be struck down. The Court held that the termination of services on pregnancy was manifestly unreasonable and arbitrary and was therefore clearly violative of Article 14 of the Constitution.

In ***Union of India v/s Hiranmoy Roy,***[22] the present case there was infringement of Articles 38 and 39 and therefore stated the duty of the state and its scope. It was held in this case that state is expected to have a constitutional vision. It must give effect to the constitutional mandate and any act done by it should be considered to have been effected in the light of provisions contained in part IV of the Constitution.

In ***Union of India v/s Ram Aggarwal***,[23] it was observed by the Court that before applying the Principle of "equal pay for equal work", the nature, sphere, duration of work, and other special circumstances attaching to the performance of duties have to be considered. Where there was a clear distinction in the terms and conditions of service between combatised and non-combatised personnel, claim based on the above principle was held unsustainable.

In ***Dhirendra Chamoli v/s State of U.P,*** [24] It has been held that the principle of equal pay for equal work is also applicable to casual workers employed on daily wage basis. Accordingly it was held that the person employed in Nehru Yuwak Kendra in the country as casual workers on daily wage basis work were doing the same work as done by class IV employees appointed on regular basis and therefore, entitled to the same salary and conditions of service. This principle of 'equal pay for equal work' has no mechanical application in every case of similar work. There can be two scales of pay in the same cadre of persons performing the same or similar work or duties. More often functions of two posts may appear to be the same or similar but there may be difference in degrees in the performance. The quantity of work may be the same, but the quality may be different.

Statutory Provision

Equal Remuneration Act, 1976 : Pursuant to Article 39(d) of the Constitution of India parliament has enacted the Equal Remuneration Act, 1976. The purpose of the Act is to

make sure that employers do not discriminate on the basis of gender in matters of wage fixing, transfers, training and promotion. It provides for payment of equal remuneration to men and women workers, for same work or work of a similar nature and for the prevention of discrimination against women in the matters of employment.[25]

Statement of Object and Reasons : The statement of objects and reasons for passing the Equal Remuneration Act, 1976 is as follows:

1)"Article 39 of the Constitution envisages that the State shall direct its policy, among other things, towards securing that there is equal pay for equal work for both men and women. To give effect to this constitutional provision, the President promulgated on 26-9-1975, the Equal Remuneration Ordinance, 1975 so that the provisions of article 39 of the Constitution of India may be implemented in the year which is being celebrated as the International Women's Year. The Ordinance provides for payment of equal remuneration to men and women workers for the same work or work of similar nature and for the prevention of discrimination on grounds of sex."

2) The Ordinance also ensures that there will be no discrimination against recruitment of women and provides for the setting up of Advisory Committees to promote employment opportunities for women.[26]

Scope of the Act : The Equal Remuneration Act, 1976 covers all industries and sectors, public and private, organized and unorganized, and all employees doing permanent, temporary and casual work. The law covers all central, state and local authorities, The Act does not cover self-employed workers like unpaid women workers in farming, households and in the unorganized sectors in large numbers. The principle of equality is applicable within an establishment. The law permits wage differences to exist across establishments.[27]

The Act does not apply in cases affecting the terms and conditions of a woman's employment in compliance with the requirements of any law giving special treatment to any women, or to any special treatment accorded to women in connection with the birth or expected birth of a child, or the terms and conditions relating to retirement, marriage or death or to any provision made in connection with retirement, marriage or death.[28]

Some Relevant Provisions of the Act:

Duty of employer : Duty of employer to pay equal remuneration to men and women workers for same work or work of a similar nature-

1. No employer shall pay to any worker, employed by him in an establishment or employment, remuneration, whether payable in cash or in kind, at rates less favourable than those at which remuneration is paid by him to the workers of the opposite sex in such establishment or employment for performing the same work or work of a similar nature.
2. No employer shall, for the purpose of complying with the provisions of sub-section (1A), reduce the rate for remuneration of any worker.
3. Where, in an establishment or employment, the rates of remuneration payable before the commencement of this Act for men and women workers for the same worker or work of a similar nature are different only on the ground of sex, then the higher (in case where there only two rates), or, as the case may be, the highest (in case where there are more than two rates), of such rates shall be the rate at which remuneration shall be payable, on and from such commencement, to such men and women workers:[29]

In ***M/s MacKinnon Mackenzie & Co. Ltd., v. Audrev D'Costa***,[30] a petition was filed by an employee of a company who during the period of her employment was working as a confidential lady stenographer complaining that during the period of her employment, after the act came into force, she was being paid remuneration at the rates less favorable

than those at which remuneration was being paid by the company to the stenographers of the male sex in its establishment for performing the same or similar work.

The company opposed the said petition, on ground that the lady stenographer who had been doing the duty as confidential stenographers attached to the senior executives of the company were not doing the same or similar work which the male stenographers were discharge; and that there was no discrimination in salary; on account sex

It was held that the confidential lady stenographers were doing the same work or work of a similar nature as defined by s.2 (h) which male stenographers in the company were performing. The discrimination between the male stenographers and the confidential lady stenographers was only on the ground of sex. The lady stenographers working in the company were called 'Confidential Lady Stenographers since they were attached to the senior executive works in the company. In addition to the work of stenographers they were also attending to the persons who came to interview the senior executives and to the work of filing, correspondence etc. there was practically no difference between the work which the confidential lady stenographers were doing and the work of their male counter parts.

Prohibition of discrimination during recruitment : Section 5 of the Act provides that, no employer shall, while making recruitment for the same work or work of a similar nature, or in any condition of service subsequent to recruitment such as promotions, training or transfer, make any discrimination against women except where the employment of women in such work is prohibited or restricted by or under any law for the time being in force.

Enforcement process : The Equal Remuneration Act requires employers to maintain such registers and other documents as may be prescribed for the purposes of the Act. The Act also specify that a register must be maintained that contains information on the category of workers, a brief description of the work, the numbers of men and women employed , and details of their remuneration.[31] The Act gives wide investigatory powers to specialist Inspectors to enter premises, inspect documents, and take evidence for the purposes of the Act.[32]

Penalties : The penalties in cases where an employer contravenes the Equal Remuneration Act range from Rs. 10 000 to 20 000 as fine and between three and twelve months imprisonment for the first offence. An employer is liable to up to two years imprisonment for the second and subsequent offences.[33]

The Supreme Court decision in the case of ***Mackinnon Mackenzie and Company v Audrev D'Costa (1987) 2 SCC 469)***, very precisely indicates that the scope of the Equal Remuneration Act in relation to work comparison is more limited than the principle set out in the Conventions. The Supreme Court stated that discrimination arose only where men and women doing the same or a similar kind of work were paid differently. The Court distinguished this situation from that where men and women carried out different kinds of work. It held that there can not be any discrimination on the grounds of sex in respect of the work done by men which women may not be able to undertake, such as loading, unloading, carrying and lifting heavy things.[34]

Conlusion : Despite ratifications to various Conventions, Constitution Protections and Equal pay legislation, there still remains a gender-based wage gap**s.** Although attempts have been made to tackle the issue of gender based 'Pay- Gaps', these efforts have proved futile. There is a lack of proper and effective implementation on the part of the government in combating the problem of inequality. In spite of having made endless efforts still there is lack of a subsequent and meaningful legislation. Also factors like ignorance and uniform interpretation of law act as barriers in demolishing pay gap. In order to resolve this issue, it is important to not only create awareness for, but also effectively implement the legislative enactments. Therefore, a new re-orientation is required in this context in order to foster equilibrium in matters of grant of payments.

The provisions of Indian Constitution were drafted so as to prevent any kind of discrimination on whatsoever grounds. Sex equality has enjoyed some important victories, but discriminatory perceptions of women still exercise a reactionary influence. The bottom line is that women aren't paid according to "***responsibility and talent***" but according to a "***bias against women workers***" that companies needed to combat more vigorously.

The principle of equal pay for equal work does not merely require that everyone who does equal work should be paid the same basic wages, i.e. 'equal pay' is not synonymous with 'same salary'. It also requires that everyone who does equal work should be given the same employment benefits. 'Equal work' is not synonymous with 'equal time spent at work'. It takes into account a variety of factors that are related to the work done. These include the nature of the work involved, the working conditions, the duties undertaken, the responsibility owed, the skill required, the manner of appointment or recruitment and the qualifications required, to name a few. Thus, while the work done need not be identical in order to attract the principle of equal pay for equal work, they must be similar enough to justify the payment of the same wages in accordance with the above criteria.

The unorganized sector of the economy is mostly left attended and that is due to lack of comprehensive gender equality strategy in India. The formulation of the priorities and tasks in the policy are often very general and abstract. Also, in some cases they omit important issues that should be dealt with the policy levels like field of advertisement which is not even identified as an issue of concern when dealing with media and public awareness. The same situation can be identified in case of harassment which has not been mentioned in any of the documents at all.

Free market supporters believe that government actions to correct gender pay disparity serve to interfere with the system of voluntary exchange. They see the fundamental issue is that the employer is the owner of the job, not the government or the employee. The employer negotiates the job and pays according to performance, not according to job duties. A private business would not want to lose its best performers by compensating them less and can ill afford paying its lower performers higher because the overall productivity will decline.

There are also specific affirmative defenses to the criticism above that government is forcing employers to pay less qualified workers the same as superior workers. The Equal Remuneration Act, 1976 also provides for some affirmative defenses allows unequal pay for equal work like when the wages are set "pursuant to a merit system; or a system which measures earnings by quantity or quality of production; or any other factor other than sex". If an employer can prove that a pay differential exists because of one of these factors or there exists a rational basis for the classification there is no liability.

References :

1. Section 2(g) of the Equal Remuneration Act, 1976.
2. (2003) 6 SCC 277.
3. Section 2(h) of the Equal Remuneration Act, 1976.
4. *Ashok Kumar Garg* v. *State of Rajasthan*, 1993 INDLAW RAJ 55.
5. *Kishori Mohanlal Bakshi* v. *Union of India*, AIR 1962 SC 1139.
6. *Randhir Singh* v. *Union of India*, (1982) 1 SCC 618.
7. AIR 1955 SC 191
8. J.N. Pandey,"***Constitutional Law of India"***,Central Law Agency, Allahabad,2004,p-74-75
9. AIR 1974 SC 555
10. H.M.Seervai "**Constitutional Law of India**", N.M.Tripathi Pvt. Ltd., Bombay,2006.
11. See- Article 15(3), Constitution of India.
12. Rao, Mamta," ***Law Relating to Women & Children***", Eastern Book Company, Lucknow, 2005 ed. at p.53.

13. (2003) 6 SCC 277.
14. Article 16, Constitution of India.
15. Article 38(2), Constitution of India.
16. D. D. Basu, " ***Constitution of India***", Butterworths & Wadhwa & Co. Publishers, Nagpur, 2007
17. Article 39, Constitution of India.
    The state shall direct its policy towards securing the following principles:
    a) Equal right for men and women to educate means of livelihood.
    b) Distribution of ownership and control of the material resources of the community to the common good.
    c) To ensure that the economic system should not result in concentration of wealth and means of production to the common detriment.
    d) Equal pay for equal work for both men and women.
    e) To protect health and strength of workers and tender age of children and to ensure that they are not forced by economic necessity to enter avocation unsuited to their age and strength.
18. AIR 1962 SC 1139
19. (1982) 1 SCC 618
20. AIR 1974 SC 2192
21. AIR 1981 SC 1829
22. AIR 1982 SC 1632.
23. AIR 1973 SC 878.
24. (1986) 1 SCC 637
25. S.Kannan,"***Industrial and Labour Laws Procedure***", Jaycee Publishers, New Delhi,1997, p-799-804.
26. Rao, Mamta," ***Law Relating to Women & Children***", Eastern Book Company, Lucknow, 2005 ed. at p.364.
27. Rao, Mamta," ***Law Relating to Women & Children***", Eastern Book Company, Lucknow, 2005 ed. at p.365.
28. *Ibid.*
29. Equal Remuneration Act, 1976- Section 4.
30. (1987) 2 SCC 469)
31. Ibid, Section 8.
32. Ibid, Section 9.
33. See section 10, The Equal Remuneration Act, 1976.
34. P.L Malik's, "***Labour and Industrial law***", Eastern Book Company, Lucknow, 2005, p.416.

♦♦♦

उन्मेष Unmesh - ISSN 2394-2207

IIJ Impact Factor : 2.011
Vol. IV, No. II
May-October 2018
Pg. No. 57-59

Social Media Innovations for Excellence in Teaching and Learning

Dr. Rashmi Singh*

Abstract : *Social media is a wonderful medium of communication and can act as an educational tool where students can establish beneficial connections for their careers. Professors can use their Twitter or Facebook handles or even messaging services such as WhatsApp to hold live sessions, offer extended support to students thereby enhancing the scope of learning beyond classroom. Organizing discussions related to their subjects or class assignments on social media platforms can be very easy through it. Social media thus, helps both, teachers and students to stay in touch and connected off campus. This helps in creating a name for them in the academic sororities. Facebook, Whatsapp, Twitter, blogs and YouTube are some of the channels where professors can mark their expertise. These platforms are popular among youth and students, hence can assist in establishing high standing and repute. The question of, how these newer approaches can be utilized efficiently to create a connection amongst the members to connect can be smartly handled through innovative and creative use of it to compliment our traditional ways of teaching and learning in classrooms .*

Key Words: Social Media, Teaching and Learning, Academic social networking, , Mobility and networking abilities etc.

Social media has become a new way of life in the 21sr century, it is an amazing new tool and a key to communication, sharing, entertainment, networking and marketing. Increasing number of academicians are using social media in teaching and learning and in classrooms to engage students in the educational process. Social media is a matchless tool for teachers to make their classrooms more interesting, live, engaging, vibrant, and culturally diverse. Its importance in the educational process can be discerned as then President of USA, Barack Obama called for educators of his country to support innovative approaches to teaching and learning, to bring lasting change, to our lowest-performing, schools, and, to investigate and evaluate what works and what can work better in schools.

Media includes tools and technologies to make active connections such as Television, radio, websites, photos, and drawings. Internet-based, websites and software applications, are more,,advanced,,,type of media which are gaining popularity among its users all over the world. Today a number of academic social networking have been approved and established for academic purposes. Their registered members, can make profiles, create or join scientific and ideological discussion groups and webs, blogs, channels, they may share pictures, audios, , voice memo, and videos. Potential of virtual practices for teaching objectives exists, smart phones are having a profound impact on these probabilities. Social media enables the faculties to facilitate learning process for the students, to share knowledge ideas and thought on forums, to conduct surveys within the members of a group with common goals and/or backgrounds. Smart device users such as smart phone, laptops, i-pads, tablets, smart watches

*Associate Professor, Department of Psychology, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi, Uttar Pradesh

and so on, are creating educational social media groups and networks to use media for the purpose of learning, for e.g. Linkedin, Researchgate etc. The amount of interaction and participation may differ to a great extent among popular members of a network and their followers , depending on their needs, mobility and networking abilities and.

Social networks empowers students, researchers, academicians and educational institutions with opportunities to improve and enhance teaching-learning process. Educational web pages, Quora, Slide Share, and ResearchGate etc. are helping students by online tutorials. These platforms offer valuable resource materials for elevating wider knowledge base.

Social media is also a medium where students can establish beneficial connections for their careers. As an educational institution, it is crucial to be active in many social platforms possible, this helps create better student engagement strategies and makes learning more interactive and inclusive.

Impact for Faculty : Professors can use their Twitter or Facebook handles or even messaging services such as WhatsApp to arrange live and interactive sessions, offer unmitigated support to students and hence enhancing the scope of learning beyond the boundaries of a classroom. Professors may organize deliberations and discussions related to their subjects or class tutorials or assignments on social-media platforms. Social networking, therefore, helps both teachers and students to remain connected on and off campus. For an instance, LinkedIn is a professional soft application which provides database with over 40 million user members who are mostly college and university graduates or people related to academia. Instagram is a photo, content sharing platform useful for a quick view, contains inspirational pictures and short videos that can give informational messages.

Faculty can create learning groups using social media where useful information can be accessed by all as a platform for sharing ideas. They use hashtags to augment outreach of academic posts and view submissions by students to check engagement level. One of main reasons for professors adapting to social media in and out of the classrooms is for personal branding using social media. This helps in creating a name for them in the academic sororities. Facebook, Whatsapp,Twitter, blogs and YouTube are some of the channels where professors can mark their expertise. These platforms are popular among youth and students, hence can assist in establishing high standing and repute.

Impact on Student Learning :

- Two foremost benefits of using social media in an online classroom are the sense of community it fosters among students and the ability for students and professors to distribute information with each other to help enhance their education.
- Engage students outside of school will increase achievement, attendance rates, graduation rates and students will find their learning much more relevant and meaningful.

Social Media as an Educational Tool : Social media as an educational tool have several advantages. Most of the websites or applications are either free or very inexpensive.

- It is efficient. Teachers may use different presentation techniques such as audio-video clips, interactive Question and answers. Students are equipped to lead and solve problems for any analogous pattern.
- It provides access to expert in almost every specific field.
- It enables its users to access unlimited resources through social media platforms which have the best retrievable and searchable archives and libraries.
- Surfing in academic socialmedia creates networking more friendly relationships. Online programs enables instructors to feel that they are close to the students who are mainly from younger generation and have boundary constraints.
- It facilitates prompt, acceptable and reliable surveys.

- It does not require traveling thousands miles away for education.
- It is a upright tool for assignments. Tasks could be posted online by the faculty members. The students submit their completed work using the same technique.

There are few disadvantages also using social media for educational drive as well. It requires knowledge of information technology, verification by the subscribers, ability to locate similar professionals. Other probable barriers are slow net speed data or internet crash, and time consuming trust-forming. Insufficient information technology, knowledge for older generation faculties could be a challenge and make them uneasy using cyberspace for the educational purposes. Verification and conformation by the users is crucial when using such public source. The major drawback of social media is that a scientific subject can be broadcasted anonymously or by an individual without proper scientific knowledge. there is no systematic control and manage over the distribution of the incorrect posts. To conclude, using social media as an educational tool have several advantages if used smartly over its disadvantages. It goes without boundaries, its inexpensive, efficient, provide more access to specialists and experts, access to unlimited resources, friendly groups, prompt and reliable surveys, side by side, and decent tool for assignments.

Bibliography :

1. Bakkenes, I., Vermunt, J., & Wubbels, T. (2010). Teacher learning in the context of educational innovation: learning activities and learning outcomes of experienced teachers. Learning and Instruction, 20, 533-548
2. Cleveland, B., & Fisher, K. (2014). The evaluation of physical learning environments: a critical review of the literature. Learning Environments Research, 17(1), 1-28
3. Crook, C., Harrison, C., Farrington-Flint, L., Tomás, C., & Underwood, J. (2010). The impact of technology: Value-added classroom practice. Becta
4. John-Steiner, V., & Mann, H. (1996). Sociocultural approaches to learning and development: a Vygotskian framework. Educational Psychologist, 31, 191-206

♦♦♦

सदस्यता शुल्क :
वार्षिक सदस्यता शुल्क व्यक्तिगत : २००० रु०
वार्षिक सदस्यता शुल्क संस्थागत : ३००० रु०

सम्पादकीय सम्पर्क :
जन सेवा एवं शोध शिक्षा संस्थान
सी–23, आवास विकास कालोनी,
प्रतापगढ–230001 (उ0प्र0) भारत
मो0– 09415627372, 08004802456
वेब साईट : **unmeshjournal.com**
ई–मेल : **unmesh0110@gmail.com**
shivendrakr.maurya@gmail.com

ISSN 2394-2207

RAJ GRAPHICS # 09415847611